गलती होती है।

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि संकल्पों या पक्के इरादों को मनुष्य इसलिए भूल जाता है कि उसके मन में उन संकल्पों को पूरा करने की विरोधी भावना की धारा बह रही होती है। किंतु यह हमारा, मनोविश्लेषकों का ही विचार नहीं है। वह हर आदमी का अपने रोज़ाना के कारबार में होनेवाला सामान्य रवैया है, जिसे वह सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार करता है। जब किसी आश्रित का आश्रयदाता उसकी प्रार्थना भूल जाने के कारण क्षमा मांगता है, तब आश्रित व्यक्ति ऐसी क्षमाप्रार्थना से शांत नहीं होता। वह तुरत यह सोचता है, 'ज़ाहिर है कि इस क्षमाप्रार्थना का कोई मतलब नहीं। उसने वायदा किया था, पर अब वह उसे पूरा नहीं करना चाहता।'

इसलिए जीवन में भी कुछ प्रसंगों में भूलने की जो आलोचना की जाती है, और इन गलतियों के बारे में आम प्रचलित विचार और मनोविश्लेषण वाले विचार का अन्तर मिट जाता है। कल्पना करें कि कोई गृहलक्ष्मी किसी अतिथि का इन शब्दों में स्वागत करती है, 'ओहो, क्या आपको आज आना था? मैं तो बिलकुल भूल गई थी कि मैंने आपसे आने के लिए कहा था!' या कल्पना करें कि कोई नवयुवक अपनी प्रेयसी के सामने यह स्वीकार करता है कि हमने पिछली बार आगे मिलने के बारे में जो बात तय की थी, उसे मैं बिलकुल भूल गया था। वह कभी यह बात स्वीकार नहीं करेगा, बल्कि वह फौरन इधर-उधर की अजीबोगरीब सम्भव-असम्भव रुकावटें गढ़कर बता देगा, जिनके कारण वह नहीं आ सका, और उसके लिए उस दिन से आज तक अपनी प्रेयसी को सूचना देना असम्भव हो गया। हम सब जानते हैं कि फौज में भूल जाने का बहाना बिलकुल बेकार समझा जाता है, और यह किसीको सज़ा से नहीं बचा सकता। यह पद्धति उचित मानी जाती है। यहां हर कोई अनायास सहमत है कि किसी विशेष गलती का कुछ अर्थ है, और वह अर्थ क्या है। वे लोग अपनी बात पर दृढ़ रहकर दूसरी गलतियों तक भी अपनी सूक्ष्म दृष्टि क्यों नहीं पहुंचा लेते, और फिर इन्हें क्यों खुलेआम स्वीकार नहीं कर लेते? स्वभावतः इसका भी एक उत्तर है।

यदि सामान्य लोगों के मन में पक्के इरादों को भूल जाने का अर्थ इतना असंदिग्ध रूप से जमा हुआ है, तो आपको यह देखकर कुछ भी आश्चर्य न होगा कि साहित्य-लेखक ऐसी भूलों का इसी तरह के अर्थ में उपयोग करते हैं। आपमें से जिन लोगों ने शॉ का सीज़र एण्ड क्लियोपाट्रा देखा या पढ़ा है, उन्हें याद कि अन्तिम दृश्य में जाते समय सीज़र के मन में यह भावना घूम रही है कि वह और करना चाहता था जिसे इस समय वह भूल गया है। उसे जाता है कि वह क्या बात थी; वह क्लियोपाट्रा से मन

इस छोटे-से कौशल से लेखक ने सीजर में एक बड़प्पन की भावना, जो उसमें नहीं थी और जिसकी उसने कभी आकांक्षा भी नहीं की थी, दिखाने का प्रयत्न किया है। इतिहास से आप जान सकते हैं कि सीजर ने यह व्यवस्था की थी कि क्लियोपाट्रा उसके पीछे-पीछे रोम आ जाए, और कि वह सीजर की हत्या होने के समय अपने बच्चे के साथ वहीं रह रही थी। हत्या के बाद वह शहर से भाग गई।

पक्के इरादों को भूल जाने के उदाहरण आम तौर से इतने स्पष्ट होते हैं कि हमारे प्रयोजन के लिए वे खास उपयोगी नहीं हैं। हमारा प्रयोजन तो गलती के अर्थ के मानसिक स्थिति-संबंधी संकेत ढूंढना है। इसलिए अब हम गलती के एक विशेष रूप से एक संदिग्ध और अस्पष्ट रूप पर, अर्थात् वस्तुएं खो देने या गलत जगह पर रख देने पर, विचार करेंगे। यह बात तो निश्चय ही आपको अविश्वसनीय मालूम होगी कि वस्तुएं खोने में, जिससे प्रायः इतनी परेशानी और कष्ट उठाना पड़ता है, खोनेवाले व्यक्ति का अपना कोई प्रयोजन हो सकता है, पर इस तरह के असंख्य उदाहरण हैं। एक नौजवान ने एक पेन्सिल खो दी, जो उसे बहुत पसन्द थी। कुछ ही दिन पहले उसे अपने बहनोई का एक पत्र मिला था, जिसके अन्त में ये शब्द थे, 'मेरे पास न तो समय है और न यह इच्छा ही है कि इस समय तुम्हारे निकम्मेपन और आवारागर्दी को बढ़ावा दूं।'[1] वह पेन्सिल उसे उसके बहनोई ने भेंट में दी थी। यदि यह संयोग न होता तो निश्चय ही हम यह नहीं कह सकते थे कि इस खोने का अर्थ यह है कि उसके मन में इस उपहार से छुटकारा पाने की बात थी। इसी तरह के और बहुत-से उदाहरण हैं। मनुष्य तब अपनी वस्तुएं खो देता है, जब उसका वस्तु देनेवाले से झगड़ा हो गया हो, या वह उसका नाम अपने मन में न आने देना चाहता हो, या फिर जब वह उन वस्तुओं से ऊब गया हो, और कोई दूसरी, और इससे अच्छी, चीज लेने के लिए बहाना चाहता हो। वस्तुओं को गिराने, तोड़ने और बर्बाद करने से वस्तु के विषय में निश्चित रूप से ऐसा ही प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या इस बात को आकस्मिक माना जा सकता है कि एक बालक अपने जन्मदिन से ठीक पहले अपनी वस्तुएं, उदाहरण के लिए, अपनी घड़ी और बस्ता, खो देता है या बर्बाद कर लेता है?

जिस आदमी को कभी यह परेशानी अनुभव हुई है कि उसकी अपने हाथ से रखी हुई वस्तु उसके हाथ नहीं आई, वह निश्चित रूप से कभी यह मानने को तैयार नहीं होगा कि ऐसा करने में उसका कोई आशय हो सकता था; परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरण दुर्लभ नहीं जिनमें कोई चीज कहीं रख देने के समय की परिस्थितियों से यह संकेत मिलता है कि वस्तु को कुछ समय, या सदा के लिए हटा देने की प्रवृत्ति मन में मौजूद थी। शायद इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है:

[1] B. Dattner से

एक नौजवान ने मुझे यह किस्सा बताया, 'कुछ वर्ष पहले मुझमें और मेरी पत्नी में मनमुटाव था, मैं उसे बिलकुल प्यारहीन समझता था, और यद्यपि मैं उसके श्रेष्ठ गुणों को खुशी से स्वीकार करता था, पर तो भी हम बिना प्रेम के साथ रहते थे। एक दिन घूमकर लौटते हुए वह मेरे लिए एक पुस्तक लाई जो उसने मेरे लिए यह सोचकर खरीदी थी, कि मुझे वह पसन्द आएगी। उसने मेरा थोड़ा-सा ध्यान रखा, इसके लिए मैंने उसे धन्यवाद दिया, यह पुस्तक पढ़ने का वचन दिया और उसे अपनी चीज़ों में रख दिया, और फिर वह कभी मेरे हाथ न आई। महीनों गुज़र गए और कभी-कभी मैंने उस पुस्तक को पढ़ने की बात सोची, पर उसे ढूंढने की सब कोशिशें बेकार गईं। छः महीने बाद मेरी प्यारी मां, जो कुछ दूरी पर रहती थी, बीमार पड़ी। उसकी हालत खराब हो गई, और मेरी पत्नी अपनी सास की सेवा करने के लिए चली गई। बीमारी गम्भीर होने से मेरी पत्नी को अपने श्रेष्ठ गुण दिखाने का मौका मिला। एक दिन शाम को मैं अपनी पत्नी के प्रति उत्साह और कृतज्ञता से भरा हुआ घर आया। मैं अपनी मेज़ के पास पहुंचा, और मैंने बिना किसी निश्चित आशय के, बल्कि एक तरह की नींद-भरी निश्चितता से उसकी एक दराज खोली और वहां मेरे सामने वही खोई हुई पुस्तक रखी थी जिसे मैं इतनी बार तलाश कर चुका था।'

प्रवर्तक अथवा प्रेरक कारण[१] के लुप्त हो जाने पर, रखकर भूली हुई पुस्तक खोजने की अयोग्यता भी लुप्त हो गई।

मैं इस तरह के सैंकड़ों उदाहरण दे सकता हूं पर अब मैं नहीं दूंगा। मेरी साइको-पैथोलोजी ऑफ एवरीडे लाइफ (Psycho-pathology of Everyday Life)' जो पहले १६०१ में प्रकाशित हुई थी, में गलतियों के अध्ययन के लिए बहुत सारे उदाहरण मिलेंगे। इन सब उदाहरणों से यही बात बार-बार सामने आती है। उससे आपको यह सम्भाव्य मालूम होने लगता है कि भूलों का कुछ अर्थ होता है, और वे आपको यह बताती हैं कि साथ की परिस्थितियों में किस तरह अर्थ का अनुमान या पुष्टि की जा सकती है। आज मैं अधिक विस्तृत बातों में नहीं जा रहा क्योंकि यहां हमारा आशय सिर्फ इतना था कि हम मनोविश्लेषण का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से इन घटनाओं पर विचार करें। सिर्फ दो घटना-समूह और हैं जिनपर मुझे अभी कुछ कहना है—संचित और मिली-जुली गलतियां, और बाद की घटनाओं से हमारी व्याख्याओं की पुष्टि।

संचित और मिली-जुली गलतियां निश्चित ही सबसे बढ़िया किस्म की गलतियां हैं। यदि हमें सिर्फ इतना ही [illegible] गलती [illegible] होता है, तो हम शुरू में उतने तक ही [illegible]

१ Motive

बुद्धू भी समझ सकता है, और बड़े तीव्रबुद्धि आलोचक को भी उसे मानना पड़
है। घटनाओं के दोहराए जाने से एक ऐसे आग्रह का पता चलता है जो क
अकस्मात् या अचानक नही हो सकता, बल्कि जिसके पीछे कोई विचार होने की बा
ही जचती है। फिर, एक तरह की भूल के स्थान पर दूसरी तरह की भूल होने
हमें यह पता चलता है कि गलती मे सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक तत्त्व क्या है
और वह न तो गलती का बाह्य रूप है, और न वह साधन है जिसके द्वारा यह प्रक
होता है, बल्कि वह प्रवृत्ति है जो इसका उपयोग करती है, और बड़े भिन्न-भि
तरीकों से अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकती है। इस प्रकार मैं आपको बार-बार भूल
का एक उदाहरण दूंगा। अर्नेस्ट जोन्स लिखता है, 'मैंने एक बार एक पत्र कि
अज्ञात कारण से कई दिन तक अपनी मेज़ पर पड़ा रहने दिया। अत मे मैंने इ
डाक में डालने का निश्चय किया, पर वह मृतपत्र-कार्यालय से लौटकर आ गया
क्योंकि मैं उसपर पता लिखना भूल गया था। उसपर पता लिखने के बाद मैं उ
डाक में डालने गया, पर इस बार टिकट लगाना भूल गया। अब मुझे अपने म
में यह मानना पड़ा कि असल मे मैं उस पत्र को बिलकुल भेजना ही नही चाहता था

दूसरे उदाहरण में, भूल से कोई चीज़ उठा लेना और उसे कही रखकर भू
जाना, ये दो बातें जुड़ी हुई हैं। एक महिला अपने बहनोई के साथ, जो एक प्रसि
कलाकार था, रोम गई। कलाकार का रोम में रहनेवाले जर्मनों ने बड़ा स्वाग
किया, और उसे भेंट में, और वस्तुओं के साथ, एक पुराना सोने का तमगा
दिया। उस महिला को इस बात से बड़ी परेशानी हुई कि उसके बहनोई ने उ
बढ़िया चीज़ को बहुत ज्यादा पसन्द नही किया। अपनी बहिन के आ जाने
बाद वह स्वदेश लौट गई, और वहा अपना सामान खोलने पर उसने देखा
वह उस तमगे को अपने साथ ले आई थी; कैसे ले आई थी, यह उसे पता न
था। उसने तुरन्त अपने बहनोई को पत्र लिखा कि अगले दिन वह उस चुराई हु
वस्तु को वापस भेज देगी। पर अगले दिन वह तमगा ऐसी चतुराई से कही रख
कर भुला दिया गया कि वह हाथ ही नहीं आ सका, और वापस नहीं किया ज
सका, और तब उस महिला के मन में यह बात मानो शुरू हुई कि उसकी अन्य
मनस्कता, अर्थात् ध्यान कहीं और होने का कुछ अर्थ था, और वह यह था
वह उस कलाकृति को अपने ही पास रखना चाहती थी।'

भुलक्कड़पन और गलती के मिल जाने का एक उदाहरण मैं आपको पह
दे चुका हूं, जिसमें एक आदमी किसी सभा का नियत समय भूल जाता है, औ
दूसरी बार, जब वह उसे न भूलने का पक्का इरादा कर लेता है, तब वह निय
समय के बाद पहुंचता है। बिलकुल इसी तरह का एक उदाहरण मुझे एक मि

जो साहित्य और विज्ञान का विद्वान है, अपने निजी अनुभव से बनाया
ने कहा, 'कुछ वर्ष पहले मैंने एक साहित्यिक समाज की परिषद् के लिए
या स्वीकार कर लिया, क्योंकि मुझे यह आशा थी कि किसी समय मेरे
समाज इस तरह उपयोगी हो सकता है कि वह मेरा नाटक खेलने का
र दे, और बहुत दिलचस्पी न होते हुए भी मैं नियमित रूप से हर शुक्रवार
ठक मे जाया करता था। कुछ महीने पहले मुझे यह आश्वासन मिल ग
रा नाटक फ मे एक थियेटर मे खेला जाएगा और तब से सदा ऐसा
कि मैं उस समाज की बैठको मे जाना भूल जाता हू। जब मैंने इस
आपके लेख पढे, तब मुझे अपनी इस क्षुद्रता पर ग्लानि हुई कि अब इन
अपने लिए उपयोगी न जानकर मैंने बैठको मे जाना छोड दिया है, और
निश्चय कर लिया कि अगले शुक्रवार को मैं किसी भी सूरत मे नही भू
अपने इरादे को याद करता रहा, और अत मे मैंने उसे पूरा किया, औ
भवन के दरवाजे पर जा पहुचा। मैंने आश्चर्य से देखा कि दरवाजा
और बैठक पहले ही खत्म हो चुकी थी। मैंने सप्ताह के दिन के बारे
डाली थी, और उस दिन शनिवार था।'

इस तरह के उदाहरण बहुत-से इकट्ठे किए जा सकते हैं, पर
चलूगा और इनके बदले आपको उन उदाहरणो पर विचार करने क
जिनमे अर्थ की पुष्टि भविष्य मे होने की प्रतीक्षा करनी पडती है।
जिनमे ... चाहि

इन उदाहरणो मे मुख्य शर्त, जैसी हमे आशा भी करनी चाहि
उस समय मानसिक स्थिति पता नही है, या उसका पता नही लगाया ज
लिए उस समय हमारा अर्थ एक कल्पना-मात्र है, जिसे हम स्वय भी
महत्त्व नही देगे ; परन्तु बाद मे कोई ऐसी बात हो जाती है जि
चलता है कि हमने जो अर्थ पहले समझा था, वह कितना उचित थ
एक तरुण विवाहित दम्पती का अतिथि बना। तरुण पत्नी ने हसने
का यह अनुभव सुनाया कि सुहागरात या हनीमून से लौटने के अगले
बहिन को बुलाया था, और पहले की तरह उसके साथ सामान ख
थी, और मेरा पति अपने कारबार के लिए चला गया था। एका
दूसरी ओर एक आदमी देखा और अपनी बहिन को दिखाते हु
महाशय आ रहे है।' वह यह भूल गई थी कि यह आदमी कुछ म
पति बन चुका था। यह किस्सा सुनकर मैं काप गया, पर मुझे
अनुमान करने का साहस न हुआ। कई वर्ष बाद यह छोटी-
मन मे उस समय आई जब उस विवाह का बहुत दुखद अन
मेहर ने एक ऐसी महिला की कहानी बताई जो विवाह
विवाह की पोशाक की ट्राई देना भूल गई थी, जिससे दर्जी क

श्रौर महिला को शाम को बहुत देर से इसकी याद आई। उसने इस बात का सबंध इस तथ्य से जोड़ा है कि विवाह के कुछ ही समय बाद उसके पति ने उसे तलाक दे दिया। मैं एक ऐसी स्त्री को जानता हूं जिसका अब तो अपने पति से तलाक हो चुका है, पर जो अपने रुपये-पैसे के मामले में बहुत बार अपने अविवाहित अवस्था वाले नाम से ही कागजात पर हस्ताक्षर किया करती थी, यद्यपि उसने इसके बहुत वर्ष बाद अपना कुमारावस्था का नाम असल में अपनाया। मैं कुछ और ऐसी स्त्रियों को भी जानता हूं जिनके विवाह की अंगूठियां सुहागरात के दिनों में खो गईं, और यह भी जानता हूं कि विवाह होने तक की बातें इस घटना के पीछे थीं। अब एक और विशेष उदाहरण लीजिए, जिसका अंत सुखद हुआ। एक प्रसिद्ध जर्मन रसायन-शास्त्री के विषय में कहा जाता है कि उसका विवाह इस कारण कभी न हो सका क्योंकि वह संस्कार का समय भूल जाता था, और चर्च पहुंचने के बजाय प्रयोगशाला पहुंच जाता था। वह समझदार था, इसलिए एक बार प्रयत्न करके ही उसने हाथ खींच लिया और बहुत बड़ी उम्र में अविवाहित ही मरा।

शायद आपके मन में भी यह बात आई है कि इन उदाहरणों में पुराने ज़माने के शकुनों या अपशकुनों के स्थान पर भूलें आ गई मालूम होती हैं और सचमुच अपशकुनों के कुछ प्रकार गलतियों के सिवाय कुछ नहीं थे; जैसे उदाहरण के लिए, जब कोई आदमी ठोकर खा जाता था या गिर पड़ता था। यह ठीक है कि कुछ शकुन मनुष्य के आत्मनिष्ठ कार्य होने के बजाय, वस्तुनिष्ठ घटनाओं के रूप वाले होते थे, पर आप विश्वास न करेंगे कि कभी-कभी यह फैसला करना कितना कठिन होता है कि कोई विशेष उदाहरण पहले वर्ग में आता है या दूसरे में। आम कार्य यह जानता है कि अपने-आपको स्वयभावी या निष्क्रिय अनुभव के रूप में कैसे पेश किया जाए।

हममें से जो लोग अपने जीवन के पिछले काफी लम्बे अनुभव का विचार कर सकते हैं, उनमें से हरेक सम्भवतः यही कहेगा कि यदि हमें दूसरों के साथ व्यवहार में दिखाई देनेवाली छोटी-छोटी भूलों को अपशकुन समझने का, और उन्हें अंदर छिपी हुई प्रवृत्तियों के चिह्न समझने का साहस और संकल्प होता, तो हम बहुत-सी निराशाओं और कष्टदायक आश्चर्यों से बच गए होते। अधिकतर अवसरों पर मनुष्य को ऐसा करने का साहस नहीं होता। वह सोचता है कि मैं इस टेढ़े-मेढ़े वैज्ञानिक रास्ते से फिर अंधविश्वासी हो जाऊंगा, और फिर, सब शकुन सच्चे भी नहीं होते, और हमारे सिद्धान्तों से आपको पता चलेगा कि उन सबका सच्चा होना किस तरह ज़रूरी भी नहीं है।

गलतियों का मनोविज्ञान

यहा तक हमने जो प्रयत्न किए हैं, उनसे यह बात तो नि
हो गई मानी जा सकती है कि गलतियो का अर्थ होता है, अ
जाव के लिए इस निष्कर्ष को हम अपना आधार बना सकते है
तथ्य पर फिर बल देना चाहता हू कि हमारी यह मान्यता न
प्रयोजनो के लिए हमें इस मान्यता की आवश्यकता भी नही–कि
है उसका अर्थ होता है, हालांकि मैं इसे सम्भाव्य समझता हू
सिद्ध करना ही काफी है कि विभिन्न प्रकार की गलतियो मे ब
का अर्थ होता है। इस सिलसिले मे मैं यह बात बता दू कि
गलतियों में कुछ अन्तर दिखाई देते हैं। बोलने की, लिखने की,
अन्य कुछ गलतिया शुद्ध रूप से कायिकीय कारण का परिणाम हो
मैं उन गलतियो के बारे मे इस बात को सम्भव नहीं मान सक
(नामों या आशयों का भूल जाना, चीज रखकर भूल जाना
यही अधिक सम्भाव्य है कि कुछ अवस्थाओ मे सामान खो जाने
की घटना माना जाए; कुल मिलाकर हमारे विचार दैनिक
भूलो पर एक निश्चित सीमा तक ही लागू हो सकते हैं। अब
मान चलते हैं कि गलतिया दो आशयों के पारस्परिक संघर्ष से पैदा
जाते हैं, तब आपको इन सीमाओं का मन मे ध्यान रखना चा

यह हमारे मनोविश्लेषण का पहला परिणाम है। अब त
ऐसे संघर्षों का, या इस सम्भावना का कि वे संघर्ष इस तरह
दे सकते हैं, कुछ पता नहीं था। हमने मानसिक घटनाओं के
विस्तृत कर दिया है, और ऐसी घटनाओं को भी मनोवैज्ञानिक
दिया है, जिसे पहले कभी मनोवैज्ञानिक नहीं माना गया।

मतलब है ? मैं ऐसा नहीं समझता, इसके विपरीत, यह अधिक अनिश्चित कथन है, और इसमें गलतफहमी की अधिक गुंजायश है। मानसिक जीवन में दिखाई देनेवाली प्रत्येक चीज़ को किसी न किसी समय एक मानसिक घटना कहा जाएगा, परन्तु यह इस बात पर निर्भर है कि कोई विशेष मानसिक घटना सीधे रूप से शारीरिक या ऐन्द्रिय या भौतिक कारणों से पैदा होती है—इस अवस्था में इसकी जांच का काम मनोविज्ञान का नहीं है, अथवा यह सीधे अन्य मानसिक प्रक्रमों से पैदा हुई है, जिनके पीछे किसी जगह ऐन्द्रिय कारणों का सिलसिला शुरू होता है। जब हम किसी घटना को मानसिक प्रक्रम कहते हैं, तब हमारा आशय इस दूसरी अवस्था से ही होता है और इसलिए अपने कथन को इस रूप में पेश करना अधिक अच्छा होगा। घटना का अर्थ होता है, और अर्थ से हमारा मतलब है सार्थकता, आशय, प्रवृत्ति, और मानसिक कड़ियों की शृंखला में एक स्थान।

घटनाओं का एक और समूह है जिसका गलतियों से बड़ा नज़दीकी संबंध है, और जिसके लिए यह नाम उपयुक्त नहीं। हम उन्हें 'आकस्मिक' और लक्षणसूचक कार्य कहते हैं। वे भी बिना किसी प्रवर्तक या प्रेरक कारण के होनेवाले, अर्थहीन, और महत्त्वहीन कार्य प्रतीत होते हैं, पर इसके साथ-साथ उनमें स्पष्ट रूप से 'अनावश्यक' होने की विशेषता होती है। एक ओर तो वे गलतियों से अलग पहचाने जाते हैं, क्योंकि उनमें ऐसा कोई दूसरा आशय नहीं होता जिसका वे विरोध करते हों, या जिसे वे बाधित करते हों, दूसरी ओर, वे उन हाव-भावों और चेष्टाओं में बिना किसी निश्चित भेदक सीमा के आ जाते हैं, जिन्हें हम भावों की अभिव्यक्तियां मानते हैं। आकस्मिक घटनाओं के इस वर्ग में ऊपर से निष्प्रयोजन दीखनेवाले सब कार्य आ जाते हैं, जो हम कपड़ों से, शरीर के अंगों से और अपनी पकड़ में आनेवाली वस्तुओं से मानो खेल-खेल में किया करते हैं। ऐसे कार्यों का लोप भी और वे स्वर-लहरियां भी, जो हम आपसे-आप गुनगुनाया करते हैं, इसीके अंतर्गत आते हैं। मेरा यह कहना है कि ऐसे सब कार्यों का अर्थ होता है और उनकी उसी तरह व्याख्या की जा सकती है जैसे गलतियों की, अर्थात् यह कि वे अधिक महत्त्वपूर्ण मानसिक कार्यों के हलके संकेत हैं, और सही रूप में मानसिक कार्य हैं। पर अब मैं मानसिक घटनाओं के क्षेत्र के और अधिक विस्तार पर अधिक समय न लगाकर फिर गलतियों पर आता हूं, क्योंकि उनपर विचार करने से मनोविश्लेषण-विषयक जांच-पड़ताल की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को अधिक स्पष्ट रीति से हल किया जा सकता है।

गलतियों पर विचार करते हुए हमने जो सबसे अधिक मनोरंजक प्रश्न बनाए थे, और जिनका अब तक उत्तर नहीं दिया गया है, नि:सदेह, ये हैं, हमने कहा था कि गलतियां दो भिन्न आशयों के आपसी संघर्ष या बाधन[1] से पैदा होती हैं, जिनमें

१. Interference

जिसने दूसरे शब्द घर (होम) की विकृति के रूप में ज़बान से निकल पड़ा।

अब हम मुख्य प्रश्न पर आ सकते हैं, जिसे हम अब तक टालते आए हैं, और वह यह है कि ये प्रवृत्तियां, जो इस तरह दूसरे आशयों को बाधित करके अजीब रीति से सामने आती हैं, किस तरह की होती हैं। स्पष्टतः वे अनेक प्रकार की होती हैं, पर हमें ऐसा तत्त्व खोजना है जो उन सबमें रहता हो। यदि इस काम के लिए हम कुछ उदाहरणों पर विचार करें तो हमें शीघ्र ही मालूम हो जाएगा कि वे तीन समूहों में आते हैं। पहले समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें बाधाकारक प्रवृत्ति का वक्ता को ज्ञान है, और इसके अलावा गलती करने से पहले उसने उसे अनुभव किया था। इस प्रकार 'रिफ़िल्ड' की गलती में, वक्ता ने न केवल यह स्वीकार किया कि उसने प्रस्तुत घटनाओं को 'गंदी' कहकर उनकी आलोचना की थी, बल्कि यह भी स्वीकार किया कि उसका आशय इस राय को शब्दों में प्रकट करने का था, पर उसने बाद में इस आशय को बदल लिया। दूसरे समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें बाधाकारक प्रवृत्ति को वक्ता अपनी प्रवृत्ति मानता है, पर उसे यह पता नहीं है कि गलती करने से पहले उसके भीतर वह प्रवृत्ति प्रबल थी। इसलिए वह हमारे बताए हुए अर्थ को मान लेता है, पर कुछ देर तक इसपर आश्चर्य करता रहता है। इस तरह के प्रवृत्ति के उदाहरण बोलने की गलतियों की अपेक्षा शायद दूसरी गलतियों में अधिक आसानी से मिल जाएंगे। तीसरे समूह में, बाधक प्रवृत्ति का वक्ता द्वारा ज़ोर-शोर से खंडन किया जाता है, वह इतना ही नहीं कहता कि गलती से पहले यह प्रवृत्ति उसमें प्रबल थी बल्कि वह यह भी कहता है कि [illegible]

अन्तिम तार्किक निष्कर्ष तक पहुचाना चाहते हैं, तो आपको यह चौंकानेवाली कल्पना स्वीकार करनी होगी। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो आपको गलतियों को समझने का काम, जो अभी आपने शुरू ही किया है, छोड देना होगा।

जरा उस बात पर विचार कीजिए जो तीनों समूहों को जोड़ती है, और बोलने की गलती के तीनो तन्त्रों मे एक-सी है। सौभाग्य से यह सामान्य अश बिलकुल स्पष्ट है। पहले दो समूहों मे वक्ता बाधाकारक प्रवृत्ति का अस्तित्व मानता है; पहले समूह मे इतनी बात और भी है कि वह प्रवृत्ति गलती से ठीक पहले दिखाई दी थी, पर पिछली दोनों अवस्थाओं मे इसे पीछे धकेल दिया गया है। वक्ता ने उस विचार को न बोलने का पक्का इरादा किया हुआ था, और फिर ऐसा होता है कि वह बोलने की गलती कर जाता है; मतलब यह हुआ कि जिस प्रवृत्ति को बाहर आने से रोका गया है, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध बल लगती है, और मुंह से निकलती है—या तो वह वक्ता द्वारा प्रकट किए जा रहे आशय की अभिव्यक्ति को बदलकर या उसमें मिलकर या स्वय उसके स्थान पर आकर प्रकट होती है। यही बोलने की गलती का तन्त्र या प्रक्रिया है।

जहा तक मेरा सवाल है, मैं तीसरे समूह मे भी उपर्युक्त प्रतिक्रिया को बिलकुल ठीक विठा सकता हू। मुझे सिर्फ इतना मान लेना होगा कि इन तीनों समूहों मे इतना ही अन्तर है कि किसीमें आशय को पीछे धकेलने मे कम सफलता हुई है और किसीमे अधिक। पहले समूह मे आशय मौजूद है, और शब्द बोले जाने से पहले सामने आ जाता है। तब तक इसे पीछे नहीं धकेला गया है, और धकेले जाने की भरपाई यह गलती मे कर लेता है। दूसरे समूह मे आशय और भी पीछे धकेल दिया जाता है; उसका भाषण से पहले भी कहीं पता नहीं चलता। यह उल्लेखनीय बात है कि पीछे धकेले जाने से उसके गलती का सक्रिय कारण होने में जरा भी रुकावट नहीं होती। पर यह अवस्था तीसरे समूह मे इस प्रक्रम की व्याख्या को सरल बना देती है। यह कल्पना करना साहस का काम है कि कोई प्रवृत्ति तब भी गलती के रूप मे प्रकट हो सकती है जब उसे बहुत दिनों तक, बहुत ही दिनों तक, प्रकट होने से रोके रखा गया हो, वह जरा भी दिखाई न दी हो और इसलिए वक्ता सीधे तौर से उसका खण्डन कर सकता है। पर तीसरे समूह के सवाल को एक ओर छोड़-कर अन्य उदाहरणों में आप इस नतीजे पर पहुंचते हैं, कि बोलने की गलती होने को यह अपरिहार्य शर्त है कि कोई बात कहने के आशय को पहले निगृहीत या अव-रुद्ध[1] किया गया हो (अर्थात् दबाया गया हो।)

अब हम यह कह सकते हैं कि गलतियों को समझने में हम कुछ आगे बढ़े हैं। हम यह जानते हैं कि वे मानसिक घटनाएं हैं; जिनमे अर्थ और प्रयोजन पहचाने जा

---

१. Suppression

जाते हैं, हम यह भी जानते हैं कि वे दो भिन्न आशयों के परस्पर बाधन या टकराव से पैदा होती हैं, और इसके अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि इनमें से कोई आशय दूसरे को बाधित करके तभी प्रकट हो सकता है, जब इसे स्वयं अपनी प्रकृति में कोई बाधा या रुकावट सहनी पड़ी हो। दूसरों को बाधित करने से पहले यह स्वयं किसी तरह बाधित किया गया होना चाहिए। स्वभावतः इससे हमें उन घटनाओं की पूरी व्याख्या नहीं प्राप्त होती, जिन्हें हम गलतियां कहते हैं। हम देखते हैं कि कुछ और सवाल पैदा हो जाते हैं, और साधारणतया हमें यह पता होता है कि ज्यों-ज्यों हम इसे समझने की दिशा में आगे बढ़ेंगे, त्यों-त्यों नये प्रश्न पैदा होते जाएंगे और अधिक मौके आएंगे, उदाहरण के लिए हम पूछ सकते हैं कि यह मामला अधिक सरल ढंग से क्यों नहीं चलता। यदि मन में यह आशय है कि किसी प्रवृत्ति को पूरा होने देने के बजाय रोका जाए तो यह रोक सफल होनी चाहिए और उस प्रवृत्ति का कुछ भी रूप प्रकट नहीं होना चाहिए, अथवा यह रोक असफल होनी चाहिए और वह रोकी गई प्रवृत्ति पूरी तरह प्रकट होनी चाहिए। परन्तु गलतियां समझौते के रूप में होती हैं; वे दोनों आशयों की आंशिक सफलता और आंशिक विफलता को प्रकट करती हैं। अवांछित आशय न तो पूरी तरह दबता है, और न सारे का सारा बाहर आ पाता है, यद्यपि कुछ उदाहरणों में यह आ भी जाता है। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि ऐसे बाधाजनित (या समझौते वाले) रूप पैदा होने के लिए विशेष अवस्थाएं मौजूद होनी चाहिए, पर यह हम अनुमान भी नहीं कर सकते कि वे किस तरह की हो सकती हैं। मैं यह नहीं समझता हूं कि हम गलतियों का और गहरा अध्ययन करके इन अज्ञात परिस्थितियों का पता लगा सकते हैं। पहले मानसिक जीवन के कुछ और गुप्त क्षेत्रों की पूरी तरह जांच करना जरूरी होगा। उनमें मिलनेवाले सादृश्य ही हमें यह हौसला दे सकते हैं कि हम वे कल्पनाएं कर सकें जिनकी गलतियों के बारे में और अधिक सूक्ष्म स्पष्टीकरण के लिए आवश्यकता है। और एक

और स्वभावत मेरा यह दावा नहीं है कि इस तरह के आधार पर निकाले गए नतीजे सारे सही होते हैं। इस खतरे से बचने के लिए हमें अपने परीक्षणों का क्षेत्र विस्तृत रखना चाहिए और मानसिक जीवन के बड़े विविध रूपों से एक जैसे प्रभाव इकट्ठे करने चाहिए।

तो अब हम गलतियों का विश्लेषण यहीं छोड़ देते हैं, पर एक बात और है जो मैं आपके ध्यान में जमाना चाहता हूं। आप उस विधि को एक नमूने के रूप में

१. Combinatory paranoia

ध्यान में रखें जिससे हमने इन घटनाओं पर विचार किया है। इन उदाहरणों से आप यह समझ सकते हैं कि हमारे मनोविज्ञान का लक्ष्य क्या है। हमारा प्रयोजन इतना ही नहीं है कि घटनाओं का सिर्फ वर्णन और वर्गीकरण कर दें, बल्कि हमें यह विचार भी करना है कि वे मन में दो बलों के संघर्ष से, किसी ध्येय की ओर जाने के लिए यत्नशील प्रवृत्तियों की अभिव्यक्तियों के रूप में, जो मिलकर या एक-दूसरे के विरुद्ध कार्य कर रही हैं, पैदा हुई हैं। हम मानसिक घटनाओं की एक गतिकीय अवधारणा[1] प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। इस अवधारणा में जो प्रवृत्तियां हम सिर्फ अनुमान से जानते हैं, वे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और जो घटनाएं हम प्रत्यक्ष देखते हैं, वे कम महत्त्व की हैं।

तो अब हम गलतियों की और जांच-पड़ताल नहीं करेंगे, पर तब भी हम सारे क्षेत्र के विस्तार का विहंगावलोकन कर सकते हैं, जिसमें वे चीजें भी आएंगी जिन्हें हम पहले जानते हैं, और उन बातों के चिह्न भी दिखाई देंगे जो नई हैं। ऐसा करते हुए हम पहले किया गया तीन समूहों वाला विभाजन कायम रखेंगे, बोलने की गलतियां और उन्हीं जैसी दूसरी गलतियां, जैसे लिखने में, पढ़ने में, या सुनने में होनेवाली गलतियां; भूली हुई वस्तु (व्यक्तिवाचक नाम, विदेशी शब्द, संकल्प, संस्कार) के अनुसार उसके उपविभागों-सहित भूल जाना और चीज कहीं रखकर भूल जाना, भूल से कोई और चीज उठा लेना और वस्तुएं खो देना। जहां तक भूलों से हमारा संबंध है, उनमें से कुछ को भूलने के शीर्षक के नीचे, और कुछ गलत किए गए कार्यों (गलत वस्तु उठा लेने आदि) के शीर्षक के नीचे रखा जाएगा।

हम बोलने की गलतियों पर पहले बड़े विस्तार से विचार कर चुके हैं। तो भी उसके विषय में कुछ और बात बाकी है। बोलने की गलतियों के साथ सम्बद्ध कुछ छोटी-छोटी भावनात्मक चेष्टाएं होती हैं, जो बिलकुल निरर्थक नहीं होतीं। कोई भी यह नहीं समझना चाहता कि उसने बोलने में गलती की है। प्रायः स्वयं गलती करने पर मनुष्य उसे नहीं सुन पाता, पर दूसरा वह गलती करे तो वह हमारे कान से नहीं बच सकती। एक अर्थ में, बोलने की गलतियां छूत की बीमारी हैं, उनकी चर्चा करते हुए अपने को उनसे अछूता रखना आसान काम नहीं। छोटी से छोटी गलती का भी प्रेरक कारण पता लगा लेना कठिन नहीं है, यद्यपि इनसे छिपे हुए मानसिक प्रक्रमों पर कोई विशेष रोशनी नहीं पड़ती; उदाहरण के लिए, यदि कोई आदमी किसी शब्द पर गड़बड़ के कारण दीर्घ स्वर को ह्रस्व बोल जाता है, चाहे उसका प्रेरक कारण कैसा ही हो, तो इसके परिणामस्वरूप, वह शीघ्र ही किसी ह्रस्व स्वर को दीर्घ बोलेगा और पहली गलती से हुई कमी पूरी करने के लिए एक नई गलती करेगा। यही बात तब होती है जब कोई किसी संयुक्त स्वर

---

१. Dynamic conception

जैसे 'एइ' या 'श्रोइ' को अस्पष्टता से और असावधानी से 'इ' की तरह बोल जाता है, वह बाद मे 'इ' आने पर उसे 'एइ' या 'श्रोइ' बोलकर इसे शुद्ध करना चाहता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उसे श्रोता का ध्यान है, और मानो वह सुननेवाले को यह नही समझने देना चाहता कि मैं अपनी मातृभाषा बोलने के बारे मे उदासीन हू। दूसरी क्षतिपूरक विकृति से सुननेवाले का ध्यान पहली विकृति की ओर भी जाता है, और उसे यह निश्चय हो जाता है कि वक्ता का ध्यान भी उस गलती की ओर जा चुका है। सबसे अधिक होनेवाली, महत्त्वहीन और सरल गल-तियां भाषण के दिलचस्पी-रहित भागो मे, शब्दो के सिकुडने या संक्षिप्त होने और पूर्वोच्चारणो के रूप मे होती हैं। उदाहरण के लिए, किसी लम्बे वाक्य मे बोलने की गलतियां वैसी होगी जिनमे अंतिम आशयित शब्द किसी पहले वाले शब्द की ध्वनि पर असर डालता है। इससे हमपर यह असर पडता है कि वाक्य बोलने मे कुछ अधैर्य था, और साधारणतया इससे यह संकेत मिलता है कि उस वाक्य या सारी बात बोलने का कुछ प्रतिरोध हो रहा है। इससे हम ऐसे सीमावर्ती उदाहरणो पर आ जाते हैं, जिनमे बोलने की गलती के विषय मे मनोविश्लेषण वाली और सामान्य कायिकीय अवधारणा के अंतर मिलकर एक हो जाते हैं। हम यह कल्पना करते हैं कि उदाहरणो मे बाधक प्रवृत्ति आशयित भाषण का विरोध कर रही है, पर वह अपनी उपस्थिति ही जाहिर कर सकती है, अपना निजी प्रयोजन नही। यह जो बाधा पैदा करती है, वह किसी ध्वनि-प्रभाव या साहचर्य के संबंध के बाद होती है, और इसे आशयित भाषण से ध्यान बटानेवाली प्रवृत्ति माना जा सकता है, किन्तु इस घटना का सारतत्त्व न तो ध्यानबटाई है और न साहचर्यात्मक प्रवृत्ति है, जो सक्रिय हो गई है। इसका सारतत्त्व इस घटना से मिलनेवाला य... संकेत है कि आशयित भाषण को बाधा पहुचानेवाला कोई और आशय मौजूद है, जिसके स्वरूप का पता इस उदाहरण मे उसके परिणामो से नही चल सकता, जैसे कि बोलने की गलती से अधिक प्रमुख सब उदाहरणों मे सम्भव होता है।

लिखने की गलतियां, जिनकी अब मैं चर्चा कर रहा हू, अपने तंत्र या प्रकि... की दृष्टि से बोलने की गलतियों से इतनी मिलती-जुलती होती हैं कि उनमे किसी... दृष्टिकोण की आशा नहीं की जा सकती। शायद इस समूह से हमारी जानका... थोडी वृद्धि हो जाने से हमें सन्तोष हो जाए। लिखने की उन ही आम तौर मे... वाली छोटी-छोटी गलतियो, शब्दो के सिकुड जाने, बाद के शब्दो के—विशे... मे अंतिम शब्दों के—पहले लिखे जाने से यह सूचित होता है कि लिखनेवा... लिखने मे दिलचस्पी नहीं है, और उसमे अधैर्य है। लिखने की गलतियों मे... मुख्य रूप से दीखनेवाली बातो से बाधक प्रवृत्ति के स्वरूप और आशय का प... चल जाता है। साधारणतया, यदि हमें किसी पत्र मे लिखने की कोई... दिखाई दे, तो हम समझ जाते हैं कि लेखक का मन उस समय ठीक न...

कार्य नहीं कर रहा था । बात क्या थी, यह हमेशा निश्चित नहीं हो सकता । बोलने की गलतियों की तरह, लिखने की गलतियों पर भी स्वयं लिखनेवालों का ध्यान नहीं जाता । इस प्रसंग में निम्नलिखित बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है । निस्सदेह कुछ लोगों को सदा अपना लिखा हुआ प्रत्येक पत्र भेजने से पहले दुबारा पढ़ने की आदत होती है। कुछ लोग ऐसा नहीं करते; पर यदि ये लोग कभी किसी पत्र को दुबारा पढ़ें तो उन्हें कोई न कोई महत्त्वपूर्ण गलती देखने और उसे सही करने का मौका सदा मिलता है । इसकी कैसे व्याख्या की जाए। यह तो कुछ ऐसा मालूम होता है, जैसे उन्हें पता था कि उन्होंने पत्र लिखने में कोई गलती की है । क्या हम सचमुच यह मान सकते हैं कि ऐसी बात थी ?

लिखने की गलतियों के व्यावहारिक महत्त्व के साथ एक मनोरंजक समस्या जुड़ी हुई है । आपको उस हत्यारे ह का मामला याद होगा जिसने अपने-आपको जीवाणुशास्त्री[१] बताकर वैज्ञानिक सस्थाओ से बड़े भयकर रोगाणु-बीज प्राप्त कर लिए थे, पर उनका उपयोग उसने अपने से सबधित व्यक्तियों से इस बिलकुल नये तरीके द्वारा पिण्ड छुड़ाने मे किया । इस व्यक्ति ने एक बार एक वैज्ञानिक सस्था के अधिकारियों से शिकायत की कि मुझे भेजे गए रोगाणु-बीज प्रभावहीन थे, पर उसने लिखने में एक गलती कर दी; पत्र मे यह लिखने के बजाय कि 'Mausen und Meerchweinchen' (चूहों और गिनी-पिगों) पर किए गए मेरे परीक्षणों में, उसने लिखा कि 'Menschen' (लोगों) पर किए गए मेरे परीक्षणों में—ये शब्द साफ पढ़े जाते थे। इस गलती की ओर उस संस्था के डाक्टरों का ध्यान भी गया, पर जहाँ तक मैं जानता हू, उन्होंने इससे कोई नतीजा नहीं निकाला। अब आपका क्या विचार है ? क्या यह अच्छा नहीं होता कि डाक्टर उस गलती को उसकी अपराध-स्वीकृति मानते, और जाच शुरू कर देते, जिससे हत्यारे की हलचलें समय पर रोकी जा सकती ? इस उदाहरण मे क्या यह उपेक्षा, जो असल मे बड़ी महत्त्वपूर्ण हो सकती थी, इसलिए नहीं की गई कि हमे गलतियों की अपनी अवधारणा के बारे में जानकारी नहीं थी । मैं कहता हू कि लिखने की इस तरह की गलती मे मेरे मन में निश्चय ही बड़ा सदेह पैदा हो गया होता, पर इसे अपराध-स्वीकृति मानने के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण आपत्ति है । यह मामला इतना सीधा नहीं है । लिखने की गलती निश्चित रूप से एक सकेत है, पर सिर्फ इसके आधार पर जाच करना उचित न होता । इससे यह बात सचमुच सामने आती है कि यह आदमी मनुष्यों को रोगाणुओं से प्रभावित करने की बात सोच रहा है, पर इससे यह बात निश्चित रूप से नहीं प्रकट होती कि यह विचार हानि पहुंचाने की कोई सुनिश्चित योजना है; या एक कल्पना-मात्र है, जिसका व्यवहार में कोई महत्त्व नहीं । यह भी संभव है

१. Bacteriologist

कि ऐसी गलती करनेवाला आदमी इस बात से इनकार करे, और उसकी दृष्टि से
उसका इनकार करना ठीक ही होगा, कि उसके मन में कोई ऐसी कल्पना थी, और
वह इस विचार को अपने से बिलकुल अपरिचित बताएगा। बाद में, जब हम मान-
सिक यथार्थता और भौतिक यथार्थता के अन्तर पर विचार करेंगे, तब आप इन
सम्भावनाओं को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। पर यह भी वैसा ही उदाहरण
है, जिसमें बाद में गलती का ऐसा अर्थ निकल आया, जिसकी आशंका नहीं थी।

अपपठन या गलत पढ़ जाना हमें एक ऐसी मानसिक स्थिति में पहुंचाता है,
जो बोलने या लिखने की गलतियों की मानसिक स्थिति से स्पष्टतः भिन्न है। दो
संघर्षकारी प्रवृत्तियों में से एक के स्थान पर यहां एक ऐन्द्रिय उद्दीपन आ जाता
है, और शायद इसलिए कम स्थायी होता है। आदमी जो कुछ पढ़ रहा है, वह उस
तरह उसके अपने मन की उपज नहीं है, जैसे उसकी लिखी हुई चीज, इसलिए
अधिकतर उदाहरणों में अपपठन में पूर्ण स्थानापन्नता हो जाती है। पुस्तक के शब्द
की जगह दूसरा भिन्न शब्द आ जाता है, और आवश्यक नहीं कि मूल शब्द और गलती
के कारण आए हुए शब्द की वस्तु में कोई सम्बन्ध हो, और आम तौर से शब्दों में
सादृश्य होने से ऐसा होता है। इसका लिश्टनबर्ग का उदाहरण 'एगेनाम्मेन'
(Agenommen) के स्थान पर 'एगामेम्नोन' (Agamemnon) इस समूह को
सबसे अच्छा उदाहरण है। इस गलती की कारणभूत बाधक प्रवृत्ति का पता लगाने
ए मूल पाठ को सर्वथा अलग रख दीजिए, विश्लेषणात्मक जांच दो प्रश्नों से
हो सकती है. अपपठन के परिणाम से (स्थानापन्न अर्थात् जो शब्द पढ़ा है
से) मुक्त साहचर्य[2] में रहने वाला पहला विचार कौन-सा, और अपपठन कि
रिस्थितियों में हुआ ? कभी-कभी अपपठन की व्यवस्था करने के लिए इस पी
ली बात को जानना ही काफी होता है, जैसे उदाहरण के लिए, तब जब को
ादमी सख्त लाचारियों से परेशान होकर किसी नये नगर में घूमता हुआ पह
ंजिल पर बहुत बड़े बोर्ड पर 'क्लोसेथॉम' (Closethaus) शब्द पढ़ता है।
वह यह आश्चर्य ही कर रहा है कि इतनी ऊंचाई पर बोर्ड लगाया गया है कि
पता चलता है कि असल में वह शब्द 'कोर्सेथॉम' (Corsethaus) है। दूसरे उ
हरणों में, जहां मूल और गलती की वस्तु में संबंध नहीं होता, बारीकी से विश्ले
की आवश्यकता होती है, जो मनोविश्लेषण की रीति के अभ्यास और इसमें वि
के बिना नहीं किया जा सकता। पर, आम तौर से, अपपठन के उदाहरण की व्या
कर सकना इतना कठिन नहीं होता। 'एगामेम्नोन' के उदाहरण में स्थानापन्न
से बिना कठिनाई के यह पता चल जाता है कि यह गड़बड़ किस विचार-प

---

१ Sensory excitation २ Free association

पैदा हुई है। उदाहरण के लिए, आजकल युद्धकाल होने से, सब जगह नगरों व सेनापतियों के नाम और सैनिक शब्द आम तौर से पढ़ने में आते हैं, जो सदा आदमी के कान में पड़ते रहते हैं। जो कुछ अच्छा लगता है और मन में होता है, वह अपरिचित और अच्छा न लगनेवाले को हटाकर आ बैठता है। मन में मौजूद विचारों की छायाएं नई प्रतीतियों को धुंधला कर देती हैं।

एक और तरह का अपपठन भी हो सकता है, जिसमें स्वयं मूल पाठ ही बाधाकारक प्रवृत्ति पैदा करता है, और जिससे वह आम तौर से, विपरीत शब्द में बदल जाता है। किसी आदमी को कोई ऐसी चीज पढ़नी पड़ती है जिसे वह नहीं पढ़ना चाहता, और विश्लेषण से उसे निश्चय हो जाता है कि जो कुछ उसने पढ़ा है, उसे न मानने की प्रबल इच्छा के कारण ही शब्द-परिवर्तन हो गया है।

अपपठन के जिन अधिक दिखाई देनेवाले उदाहरणों का पहले उल्लेख हुआ है, उनमें वे दो बातें प्रमुखता से दिखाई नहीं देतीं, जिन्हें गलतियों का तन्त्र बताते हुए हमने बहुत महत्त्वपूर्ण बताया था, ये हैं दो प्रवृत्तियों में संघर्ष, और उनमें से एक का पीछे धकेला जाना, जो गलती करके अपनी कमी पूरी कर लेती है। यह बात नहीं है कि अपपठन में कोई इसके विरुद्ध बात होती हो, पर तो भी, इस भूल की ओर झुकनेवाली विचार-शृंखला की अतिशयता कहीं अधिक मुख्य होती है और इसे जो निरोध या रुकावट पहले सहनी पड़ती हो, वह उतनी प्रमुख नहीं होती। जिन विभिन्न स्थितियों में भुलक्कड़पन के कारण गलतियां होती हैं, उनमें यही दो बातें सबसे अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देती हैं।

संकल्पों को भूल जाने का निश्चित रूप से एक ही अर्थ होता है; उसके अर्थ को, जैसाकि हम सुन चुके हैं, सामान्य आदमी भी अस्वीकार नहीं करता; संकल्प में बाधा डालनेवाली प्रवृत्ति सदा विरोधी प्रवृत्ति होती है; एक अनिच्छा होती है, जिसके विषय में यही पता लगाना बाकी है कि वह किसी और, तथा कम छिपे हुए रूप में प्रगट नहीं होती, क्योंकि इस विरोधी प्रवृत्ति के अस्तित्व में कोई संदेह नहीं हो सकता। कभी-कभी उन प्रवर्तक कारणों का अनुमान भी किया जा सकता है जिनके कारण इस विरोधी भावना को छिपाना आवश्यक हो जाता है; आदमी देखता है कि यदि वह खुले आम इसका विरोध करता तो निश्चित रूप से इसकी निंदा की जाती, परन्तु चतुराई से गलती के रूप में यह सदा अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेती है। जब संकल्प करने और उसे अमल में लाने के बीच में, मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन होता है, जिसके परिणामस्वरूप अब इसपर अमल करने की जरूरत नहीं रहेगी, तब यदि उसे भुला दिया जाए तो वह घटना गलतियों के अन्तर्गत नहीं रहेगी। इस गलती में कोई आश्चर्य करने की चीज नहीं रहेगी क्योंकि वह जानता है कि उस संकल्प को याद रखने की कोई आवश्यकता नहीं रही थी, वह स्थायी रूप से रद्द कर दिया गया था। किसी संकल्प पर अमल

करने को भूल जाना तब ही गलती कहला सकती है, जब मन को मानने के लिए कोई कारण न हो कि इस तरह संकल्प को रद्द किया गया है।

संकल्पों को अमल में लाने की बात भूल जाने के उदाहरण आम तौर से ऐसे एक-समान और स्पष्ट होते हैं कि वे हमारी गवेषणाओं के लिए कोई दिलचस्पी की चीज नहीं हैं। तो भी दो प्रश्न ऐसे हैं जिनपर विचार करके इस तरह की गलतियों के अध्ययन से कोई नई बात सीखी जा सकती है। हम कह चुके हैं कि किसी संकल्प को भूल जाना और उसपर अमल न करना, इस बात का संकेत है कि कोई उसकी विरोधी प्रवृत्ति के मुकाबले में मौजूद है। यह निश्चय ही सच है पर हमारी अपनी जांच-पड़ताल से यह पता चलता है कि यह 'विरोधी इच्छा' या 'विपरीत इच्छा'[1] दो प्रकार की हो सकती है—प्रत्यक्ष[2] या परोक्ष[3] (अथवा समवाय और असमवाय)। इस दूसरी इच्छा का अर्थ स्पष्ट करने के लिए हम एक-दो उदाहरण लेंगे। जब कोई कृपालु अपने कृपाकांक्षी आश्रित के लिए किसी तीसरे व्यक्ति से सिफारिश करना भूल जाता है, तब इसका यह कारण हो सकता है कि उसे उस आश्रित में, असल में, विशेष दिलचस्पी नहीं है, और इसलिए उसकी सिफारिश करने की कोई विशेष इच्छा नहीं थी। कम से कम आश्रित तो अपने आश्रयदाता की इस उपेक्षा को इसी दृष्टि से देखेगा। पर हो सकता है कि मामला इससे अधिक उलझा हुआ हो। अपने संकल्प पर अमल करने का विरोध किसी आश्रयदाता में किसी और कारण से, और किसी और लक्ष्य से भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि इसका आश्रित से कोई भी सम्बन्ध न हो, और शायद यह उस व्यक्ति से विरोध के कारण हो, जिससे सिफारिश करनी थी। यहां भी आप देखते हैं कि हमारे निकाले हुए अर्थ को व्यवहार में लागू करने पर क्या आपत्तियां हैं। गलती का ठीक-ठीक अर्थ लगा लेने के बावजूद, यह खतरा है कि आश्रित व्यक्ति बहुत अधिक सन्देही बन जाएगा, और अपने आश्रयदाता के प्रति घोर अन्याय करेगा। फिर, यदि कोई आदमी कोई ऐसा नियत कार्य भूल जाता है, जिसका उसने वचन दिया था, और जिसे पूरा करने का पूरा संकल्प किया था, तो इसका सबसे अधिक सम्भावित कारण निश्चित रूप से यही है कि उसे दूसरे व्यक्ति से मिलने की स्पष्ट अनिच्छा है; पर विश्लेषण से यह बात सिद्ध हो सकती है कि बाधाकारक प्रवृत्ति का सबंध उस व्यक्ति से नहीं था, बल्कि मिलने के स्थान से था, जिससे सम्बन्धित कुछ कष्ट-दायक स्मृतियों के कारण वह वहां जाने से बच गया; या यदि कोई आदमी पत्र डाक में डालना भूल जाता है, तो हो सकता है कि विरोधी प्रवृत्ति पत्र में लिखी हुई बातों से सम्बन्धित हो; परन्तु इससे यह सम्भावना खत्म नहीं हो जाती कि पत्र अपने-आपमें भी हानिरहित नहीं है, और यह विरोधी प्रवृत्ति का शिकार सिर्फ

१. Counter-will २. Immediate ३. Mediate

इस कारण हुआ है क्योंकि इसमें लिखी हुई किसी चीज़ से लेखक को पहले लिखे गए एक और पत्र का ध्यान आ गया है, जो सचमुच विरोध का सीधा कारण था। तो, यह कहा जा सकता है कि विरोध पहले पत्र से, जहां कि यह उचित था, मौजूदा पत्र को, जहां इसका असल में कोई उद्देश्य नहीं है, स्थानान्तरित हो गया है। इस प्रकार, आप देखते हैं कि हमारे बिलकुल मज़बूत बुनियाद पर निकाले गए अर्थों को लागू करने में संयम और सावधानी बरतनी आवश्यक है। जो बात मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुल्य अर्थ वाली है, असल में उसके बहुत-से अर्थ हो सकते हैं।

यह बात आपको बड़ी अजीब लग सकती है कि ऐसी चीज़ें हो सकती हैं। शायद आपका झुकाव यह मानने की ओर होगा कि 'परोक्ष' विपरीतेच्छा ही किसी घटना को रोगात्मक बताने के लिए काफी है; परन्तु मैं आपको यह निश्चित रूप से कह सकता हूं कि यह स्वस्थ और सामान्य व्यक्तियों में भी पाई जाती है, और फिर, मेरी बात को गलत रूप में न समझिए। मेरी बात का यह अर्थ नहीं है कि मैं यह मान रहा हूं कि हमारे विश्लेषणात्मक अर्थों पर भरोसा नहीं करना चाहिए। मैं कह चुका हूं कि किसी योजना पर अमल करने को भूल जाने के बहुत-से अर्थ हो सकते हैं, पर ऐसा उन्हीं उदाहरणों में होता है जिनका हमने विश्लेषण नहीं किया है, और जिनका अर्थ हमें अपने व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार लगाना पड़ता है। यदि उस उदाहरण में व्यक्ति का विश्लेषण किया जाए तो हमेशा काफी निश्चित रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि विरोध प्रत्यक्ष है, अथवा इसका और कौन-सा कारण है।

अब यह दूसरी बात लीजिए। जब हम बहुत सारे उदाहरणों में यह प्रमाण पाते हैं कि किसी आशय को भूल जाने का मूल विपरीत इच्छा है तो हम यह हम दूसरे समूह के उदाहरणों पर लागू करने का साहस कर सकते हैं, जिनमें विश्लेषित व्यक्ति हमारी अनुमान की हुई विपरीत इच्छा की मौजूदगी को पुष्ट नहीं करता, बल्कि उसका निषेध करता है। इसके उदाहरण के रूप में ये आम घटनाएं लीजिए, जैसे मांगी हुई किताब लौटाना, या कर्ज़ चुकाना भूल जाना। हम सम्बद्ध व्यक्ति से यह कहने का साहस कर सकते हैं कि आपके मन में पुस्तकें अपने ही पास रख लेने और ऋण न चुकाने का आशय था, जिसपर वह इस आशय का निषेध करेगा, पर अपने आचरण का कोई और स्पष्टीकरण नहीं दे सकेगा। तब हम यह आग्रह करते हैं कि उसका यह आशय अवश्य था, पर वह इसे जानता नहीं है। हमारे लिए इतना काफी है कि यह भूलने के प्रभाव में द्वारा अपना रूप प्रकट कर जाता है। हो सकता है कि तब वह यह बात दोहराए कि मैं इस बारे में सिर्फ भूल गया था। आपको याद होगा कि हम वैसी ही स्थिति में आ गए हैं, जिसमें एक बार पहले आए थे। यदि हम गलतियों के उन अर्थों को, जो इतने सारे उदाहरणों से उचित सिद्ध

अपनानी होगी कि मनुष्यों में ऐसी प्रवृत्तियों का वास है जिनसे परिणाम तो पैदा होते हैं, पर मनुष्य उन्हें जानता नहीं; परन्तु ऐसा कहकर हम अपने-आपको जीवन में, और मनोविज्ञान में प्रचलित सब विचारों के विरोध में खड़ा कर लेते हैं।

व्यक्तिवाचक नामों और विदेशी नामों तथा शब्दों को भूलने का कारण भी इस तरह एक ऐसी विरोधी प्रवृत्ति में पाया जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से हो या परोक्ष रूप में, पर प्रस्तुत नाम की विरोधी है। इस तरह के प्रत्यक्ष विरोध के अनेक उदाहरण मैं पहले आपको दे चुका हूं। यहां परोक्ष कारण विशेष रूप से अधिक दिखाई देता है, और आम तौर से इसपर रोशनी डालने के लिए सावधानी से जांच करना आवश्यक होता है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, इस युद्धकाल में, जिसने हमें अपने बहुत सारे पहले के सुख छोड़ने को मजबूर कर दिया है, व्यक्तिवाचक नामों को याद रखने की हमारी योग्यता को बड़े-बड़े दूर के संबंधों के कारण बड़ी हानि पहुंची है। कुछ समय पहले ऐसा हुआ कि मुझे मोराविया के छोटे-सादे नगर बिसेन्ज का नाम याद न आया, और विश्लेषण से पता चला कि इस मामले में मैं प्रत्यक्ष विरोध का दोषी नहीं था, बल्कि इसका कारण यह था कि यह नाम ओरविएटो के प्लाजो बिसेन्जी के नाम से मिलता हुआ था, जहां मैंने पहले बहुत समय सुख से बिताया था। इस नाम के याद आने का विरोध करने वाली प्रवृत्ति के प्रयोजक कारण के रूप में, यहां पहली बार, हमारे सामने एक सिद्धान्त आ रहा है जो बाद में स्नायु-लक्षणों के पैदा करने में बहुत महत्त्वपूर्ण बनकर सामने आएगा; वह यह है कि स्मृति-शक्ति कष्टकारक भावनाओं से सम्बन्धित किसी बात को, जिसके याद आने से कष्ट फिर जाग उठेगा, याद नहीं करना चाहती। स्मरण द्वारा या अन्य मानसिक प्रक्रमों द्वारा कष्ट से बचने की ओर होने वाली इस प्रवृत्ति में, कष्टकर बातों से मन के इस पलायन में, शायद हम वह अन्तिम प्रयोजक देख सकें जो न केवल नामों को भूलने के पीछे, बल्कि और बहुत-सी गलतियों, भूलों और चूकों के पीछे भी क्रियाशील है।

पर नामों को भूलने की व्याख्या मनोविश्लेषणीय दृष्टि से विशेष आसानी से हो जाती प्रतीत होती है, और इसलिए नाम भूलने की घटना बहुत भी प्राय होती है यहां प्रतिरोध [illegible] सिद्ध किया जा सकता। जब किसी आदमी में नाम भूल जाने की प्रवृत्ति होती है, तब विश्लेषण द्वारा जांच करके इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि उसके मन से नाम सिर्फ इसलिए नहीं गायब हो जाते कि वह उन्हें पसन्द नहीं करता, या वे उसे किसी अप्रिय बात की याद दिला देते हैं, बल्कि इसलिए भी गायब हो जाते हैं क्योंकि वह विशेष नाम अधिक [illegible]

था [illegible] है [illegible] है किसी और शृंखला से जुड़ा होता है। वह नाम [illegible] और उस समय इसलिए याद [illegible] से [illegible] ी प्रवृत्तियों का [illegible]

रें तो आप कुछ आश्चर्य के साथ यह महसूस करेंगे कि जो साहचर्य नामों को
ल जाने से रोकने के लिए वहा कृत्रिम रूप से प्रविष्ट कराए जाते हैं, उन्हींके
कारण वे नाम भूल जाते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण व्यक्तियो के नाम है, जिनके
ान स्वभावत व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बहुत भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरण के
लिए, एक पहला नाम लें, जैसे थियोडोर। आपमे से कुछ के लिए इसका कोई
ास अर्थ नही होगा, कुछ के लिए यह पिता, भाई, या मित्र का, या अपना ही नाम
होगा। विश्लेषण के अनुभव से पता चलेगा कि आपमे से पहले वर्ग के लोगो को
यह भूलने का कोई खतरा नही होगा कि यह किसी अजनबी का नाम है, पर शेष
लोगो को यह बात लगातार चुभती-सी रहेगी कि एक ऐसा नाम, जोआपको अपने
किसी निकट सबधी के लिए ही सुरक्षित रखा हुआ मालूम होता है, किसी
अजनबी का भी हो। अब यह कल्पना करें कि साहचर्यों के कारण उत्पन्न यह निरोध[1]
'अप्ट'-सिद्धान्त के क्रियाशील होने के समय ही होता है, और इसके अतिरिक्त
परोक्ष प्रक्रिया से होता है, तब आपको कार्य-कारण सम्बन्ध की दृष्टि से इस तरह
नाम अस्थायी रूप से भूलने की प्रक्रिया की जटिलता ठीक-ठीक समझ मे आ
सकेगी। परन्तु पर्याप्त विश्लेषण, जिसमे तथ्यो का पूरा ध्यान रखा जाए, इन सब
जटिलताओ को खोलकर स्पष्ट कर देगा।

प्रभावों और अनुभवों को भूलने से पता चलता है कि स्मृति से उन बातो को
दूर करने की प्रवृत्ति क्रियाशील है जो नामों को भूलने की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप
और सदा अप्रिय है। ये सारी की सारी बातें निस्सदेह गलतियों की श्रेणी मे
नही आती, गलतियों की श्रेणी मे ये वहीं तक आती हैं, जहा तक सामान्य
अनुभव के पैमाने से नापने पर, ये हमे विशिष्ट और अनुचित प्रतीत होती हैं, जैसे,
उदाहरण के लिए वहा, जहा हाल के या महत्वपूर्ण प्रभाव भूल जाते हैं, या जहा
सारे अच्छी तरह याद सिलसिले मे से एक घटना भूल जाती है। यह एक बिलकुल
जुदा समस्या है कि हममे भूलने की सामान्य क्षमता कैसे और क्यो होती है, और
विशेष रूप से हम उन अनुभवों को कैसे भूल जाते हैं जिनकी निश्चित रूप से हम-
पर बहुत गहरी छाप पडी थी, जैसे कि हमारे बचपन की घटनाएं, इसमे कष्टकारक
साहचर्यों के विरुद्ध कही जानेवाली बातों का कुछ महत्व है, पर उससे सारी समस्या
की कुछ भी व्याख्या नहीं होती। यह तो असदिग्ध तथ्य है कि नापसन्द प्रभाव
आसानी से भूल जाते हैं। अनेक मनोविज्ञान-विशारदों ने इसपर विचार किया
है; और महान डारविन तो इस बात से इतनी अच्छी तरह परिचित था कि उसने
अपने लिए यह सुनहरा नियम बना लिया था कि जो प्रेक्षण उसे अपने सिद्धात के
लिए प्रतिकूल प्रतीत होते थे, उन्हें वह बड़ी सावधानी से लिख लेता था, क्योंकि

१. Inhibition

आसानी होगी कि मनुष्यों में ऐसी प्रवृत्तियों का वास है जिनसे परिणाम तो पैदा होते हैं, पर मनुष्य उन्हें जानता नहीं; परन्तु ऐसा कहकर हम अपने-आपको जीवन में, और मनोविज्ञान में प्रचलित सब विचारों के विरोध में खड़ा कर लेते हैं।

व्यक्तिवाचक नामों और विदेशी नामों तथा शब्दों को भूलने का कारण भी इस तरह एक ऐसी विरोधी प्रवृत्ति में पाया जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से हो या परोक्ष रूप में, पर प्रस्तुत नाम की विरोधी है। इस तरह के प्रत्यक्ष विरोध के अनेक उदाहरण मैं पहले आपको दे चुका हूं। यहां परोक्ष कारण विशेष रूप से अधिक दिखाई देता है, और आम तौर से इसपर रोशनी डालने के लिए सावधानी से जांच करना आवश्यक होता है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, इस युद्धकाल में, जिसने हमें अपने बहुत सारे पहले के सुख छोड़ने को मजबूर कर दिया है, व्यक्तिवाचक नामों को याद रखने की हमारी योग्यता को बड़े-बड़े दूर के सबंधों के कारण बड़ी हानि पहुंची है। कुछ समय पहले ऐसा हुआ कि मुझे मोराविया के सीधे-सादे नगर बिसेन्ज का नाम याद न आया, और विश्लेषण से पता चला कि इस मामले में मैं प्रत्यक्ष विरोध का दोषी नहीं था, बल्कि इसका कारण यह था कि यह नाम ओरविएटो के प्लाजो विसेन्जी के नाम से मिलता हुआ था, जहां मैंने पहले बहुत समय सुख से बिताया था। इस नाम के याद आने का विरोध करने वाली प्रवृत्ति के प्रवर्तक कारण के रूप में, यहां पहली बार, हमारे सामने एक सिद्धान्त आ रहा है जो बाद में स्नायु-लक्षणों के पैदा करने में बहुत महत्त्वपूर्ण बनकर सामने आएगा, वह यह है कि स्मृति-शक्ति कष्टकारक भावनाओं से सम्बन्धित किसी बात को, जिसके याद आने से कष्ट फिर जाग उठेगा, याद नहीं करना चाहती। स्मरण द्वारा या अन्य मानसिक प्रक्रमों द्वारा कष्ट से बचने की ओर होने वाली इस प्रवृत्ति में, कष्टकर बातों से मन के इस पलायन में, शायद हम वह अन्तिम प्रयोजन देख सकें जो न केवल नामों को भूलने के पीछे, बल्कि और बहुत-सी गलतियों, भूलों और चूकों के पीछे भी क्रियाशील है।

पर नामों को भूलने की व्याख्या मनोशारीरिक दृष्टि से विशेष आसानी से हो जाती प्रतीत होती है, और इसलिए नाम भूलने की घटना वहां भी प्रायः होती है जहां अप्रियतानिरोधक का होना नहीं सिद्ध किया जा सकता। जब किसी आदमी में नाम भूल जाने की प्रवृत्ति होती है, तब विश्लेषण द्वारा जांच करके इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि उसके मन से नाम सिर्फ इसलिए नहीं गायब हो जाते कि वह उन्हें पसंद नहीं करता, या वे उसे किसी अप्रिय बात की याद दिला देते हैं, बल्कि इसलिए भी गायब हो जाते हैं क्योंकि वह विशेष नाम अधिक घनिष्ठ या गहरे प्रकार के साहचर्यों की किसी और शृंखला में जुड़ा होता है। वह नाम

करें तो आप कुछ आश्चर्य के साथ यह महसूस करेंगे कि जो साहचर्य नामों को भूल जाने से रोकने के लिए वहां कृत्रिम रूप से प्रविष्ट कराए जाते हैं, उन्हीं के कारण वे नाम भूल जाते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण व्यक्तियों के नाम हैं, जिनके मान स्वभावतः व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बहुत भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, एक पहला नाम लें, जैसे थियोडोर। आपमें से कुछ के लिए इसका कोई खास अर्थ नहीं होगा, कुछ के लिए यह पिता, भाई, या मित्र का, या अपना ही नाम होगा। विश्लेषण के अनुभव से पता चलेगा कि आपमें से पहले वर्ग के लोगों को यह भूलने का कोई खतरा नहीं होगा कि यह किसी अजनबी का नाम है, पर शेष लोगों को यह बात लगातार चुभती-सी रहेगी कि एक ऐसा नाम, जो आपको अपने किसी निकट संबंधी के लिए ही सुरक्षित रखा हुआ मालूम होता है, किसी अजनबी का भी हो। अब यह कल्पना करें कि साहचर्यों के कारण उत्पन्न यह निरोध 'कष्ट'-सिद्धान्त के क्रियाशील होने के समय ही होता है, और इसके अतिरिक्त परोक्ष प्रक्रिया में होता है, तब आपको कार्य-कारण सम्बन्ध की दृष्टि से इस तरह नाम अस्थायी रूप से भूलने की प्रक्रिया की जटिलता ठीक-ठीक समझ में आ सकेगी। परन्तु पर्याप्त विश्लेषण, जिसमें तथ्यों का पूरा ध्यान रखा जाए, इन सब जटिलताओं को खोलकर स्पष्ट कर देगा।

प्रभावों और अनुभवों को भूलने से पता चलता है कि स्मृति से उन बातों को दूर करने की प्रवृत्ति क्रियाशील है जो नामों को भूलने की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप और सदा अप्रिय है। ये सारी की सारी बातें निस्सदेह गलतियों की श्रेणी में नहीं आतीं; गलतियों की श्रेणी में ये वहीं तक आती हैं, जहां तक सामान्य अनुभव के पैमाने से नापने पर, ये हमें विशिष्ट और अनुचित प्रतीत होती हैं, जैसे, उदाहरण के लिए वहां, जहां हाल के या महत्वपूर्ण प्रभाव भूल जाते हैं, या जहां सारे अच्छी तरह याद सिलसिले में से एक घटना भूल जाती है। यह एक बिलकुल जुदा समस्या है कि हममें भूलने की सामान्य क्षमता कैसे और क्यों होती है, और विशेष रूप से हम उन अनुभवों को कैसे भूल जाते हैं जिनकी निश्चित रूप से हम-पर बहुत गहरी छाप पड़ी थी, जैसे कि हमारे बचपन की घटनाएं, इसमें कष्टकारक साहचर्यों के विरुद्ध कही जानेवाली बातों का कुछ महत्त्व है, पर उससे सारी समस्या की कुछ भी व्याख्या नहीं होती। यह तो असंदिग्ध तथ्य है कि नापसन्द प्रभाव आसानी से भूल जाते हैं। अनेक मनोविज्ञान-विशारदों ने इसपर विचार किया है; और महान डारविन तो इस बात से इतनी अच्छी तरह परिचित था कि उसने अपने लिए यह सुनहरा नियम बना लिया था कि जो प्रेक्षण उसे अपने सिद्धांत के लिए प्रतिकूल प्रतीत होते थे, उन्हें वह बड़ी सावधानी से लिख लेता था, क्योंकि

बार यह सुनते हैं कि अप्रिय स्मृति पैदा करनेवाली बात
एतराज जरूर उठाते हैं कि असल में बात इससे उल्टी है
को भूलना ही सबसे कठिन होता है, क्योंकि वे बातें आदमी को
की इच्छा के विरुद्ध बार-बार उसके मन में आती हैं; जैसे उदा-
तो या अपमानो की याद। यह तथ्य बिलकुल सही है पर
र नही। यह समझने के लिए कि मन परस्पर विरोधी
लिए एक अखाड़ा है, एक रणक्षेत्र है, कुछ और पहले से विचार
है, इस बात को निर्जीव क्रियाओं के रूपों में यों कह सकते
और विरोधी वस्तुओं की जोड़ियों का बना हुआ है। किसी
देने का यह अर्थ नहीं कि इसकी विरोधी प्रवृत्ति नहीं हो
ों के रहने के लिए काफी गुंजायश है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न ये
याँ एक-दूसरे के साथ किस तरह मौजूद हैं, और उनमें से
पैदा होते हैं और दूसरी से क्या परिणाम पैदा होते हैं?
या कही रखकर भूल जाना विशेष दिलचस्पी की बातें हैं,
र्थ हो सकते हैं, और ऐसी अनेक प्रवृत्तियां हो सकती हैं जो
ोती हो। इन सब उदाहरणों में साझी बात 'कोई चीज खोने की
ता पैदा करनेवाली बात इच्छा का कारण और उसका ध्येय
देता है यदि वह खराब हो गई हो, या उसमें उसके स्थान पर
ी का आवेग हो, या आदमी ने उसकी परवाह करनी छोड़ दी
ऐसे व्यक्ति से मिली हो जिसके साथ अप्रियता पैदा हो गई है,
क्तियों में प्राप्त की गई है जिन्हें आदमी अब नहीं याद करना
देने, बिगड़ने, या तोड़ने में भी वही प्रवृत्ति दिखाई देती है।
ह कहा जाता है कि अनचाहे और नाजायज बच्चे उन बच्चों
गए हैं जो अधिक सुखद परिस्थितियों में पैदा हुए हैं। इस
नहीं है कि पेशेवर शिशु-पालकों के भद्दे तरीके काम लाए
ध्यान में थोड़ी लापरवाही ही काफी कारण है। वस्तुओं का
र बिगाड़ना या खोना भी बच्चों के ढंग से ही हो सकता है।
ी हो सकता है कि कोई वस्तु पहले की तरह मूल्यवान रहती
नी हो, अर्थात् जब किसी आशंकित बड़ी हानि से बचने के
स्य पर बलिदान करने का आवेग मन में हो। विश्लेषणों से
स तरह भाग्य को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति भी अभी हमारे
है, जिसका अर्थ यह है कि हमारी हानियां प्राय स्वेच्छा से
त होती हैं। इसी तरह खोने से विद्वेष के, या आत्मपीड़न

अर्थात् स्वयं अपने को दण्ड देने के आवेगों का पता चलता है। सक्षेप में, कोई चीज़ खोकर उससे पिंड छुड़ाने के आवेग के पीछे जो दूरवर्ती प्रेरणाएं हो सकती हैं उनका आसानी से कहीं अन्त नहीं ढूढा जा सकता।

दूसरी गलतियों की तरह, गलत वस्तु उठा लेने या गलत रीति से कार्य करने के द्वारा भी रोकी जानेवाली इच्छा को प्राय. पूरा किया जाता है, असली आशय आकस्मिक मौके के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार, जैसाकि एक बार एक मित्र के साथ हुआ भी था। आपको किसी उपनगर में किसी जगह जाना है, और बड़ी अनिच्छा से आप गाड़ी पकड़ते हैं, और फिर किसी जंक्शन पर गाड़ी बदलते समय आप, भूल से, शहर लौटनेवाली गाड़ी में बैठ जाते हैं, या किसी यात्रा में आप किसी जगह उतरने की बड़ी तीव्र इच्छा रखते हैं, पर और जगह पहुंचने के समय दूसरों के साथ पहले ही नियत कर चुकने के कारण आप वहां नहीं उतर सकते, और इसपर आप जंक्शन पर गलती से असली गाड़ी छोड़ देते हैं, या किसी गलत गाड़ी में बैठ जाते हैं, जिससे आप जो देर लगाना चाहते थे, वह मजबूरन लग जाती है। या, जैसाकि मेरे एक मरीज़ के साथ हुआ, जिसे मैंने अपनी प्रेमिका को टेलीफोन करने से मना कर दिया था; उसने मुझे टेलीफोन करते समय 'भूल से' और 'बिना विचारे' गलत नम्बर बोल दिया जिससे उसका टेलीफोन एकाएक उसकी प्रेमिका के टेलीफोन से मिल गया। एक इंजीनियर द्वारा बताया गया निम्नलिखित वृत्तांत इस बात का अच्छा उदाहरण है कि किन अवस्थाओं में भौतिक पदार्थों को बिगाड़ा जाता है; इससे प्रत्यक्षतः दोषपूर्ण कार्यों का व्यावहारिक महत्त्व भी स्पष्ट होता है।

'कुछ समय पहले मैंने एक हाई स्कूल की प्रयोगशाला में अनेक सहयोगियों के साथ प्रत्यास्थता[1] के संबंध में कुछ उलझनदार परीक्षणों में हिस्सा लिया, और यह काम हमने अपनी इच्छा से अपने ऊपर लिया था, पर इसमें हमें आशा से अधिक समय लग रहा था। एक दिन जब मैं अपने मित्र फ के साथ प्रयोगशाला में गया, तब उसने कहा कि आज इतना समय बर्बाद करना कितना परेशानी का काम है जबकि उसे घर पर बहुत-सा काम करना है।—मुझे उससे सहमत होना ही था, और मैंने उससे कुछ मज़ाक में, पिछले सप्ताह की घटना की चर्चा करते हुए कहा—भगवान से मनाओ कि मशीन फिर बिगड़ जाए, और हम काम बंद करके जल्दी घर लौट सकें। काम बांटते समय ऐसा हुआ कि फ को प्रेस या दाबक का वाल्व खोलने, बंद करने का काम सौंपा गया, मतलब यह कि उसको सावधानी से वाल्व खोलकर, द्रव के दाब को संचायक या एक्युमुलेटर में से, धीरे-धीरे, जल-दाबक या हाइड्रॉलिक प्रेस के सिलिंडर में आने देना था। परीक्षण अध्यक्ष दाब-प्रमापी (प्रेशर गेज) पर खड़ा था और जब ठीक दाब आ गया, तब

1. Elasticity

दूसरा भाग

स्वप्न

कठिनाइयां और विषय पर आरंभिक विचार

एक दिन यह खोज हुई कि कुछ स्नायुरोगियों में दिखाई देनेवाले रोग के लक्षणों का अर्थ होता है[1]। इसी खोज पर इलाज का मनोविश्लेषण वाला तरीका आधारित किया गया। इस इलाज में यह देखा गया कि रोगी अपने लक्षण बताते हुए अपने स्वप्नों की भी चर्चा करते हैं। इसपर यह सन्देह पैदा हुआ कि इन स्वप्नों का भी अर्थ होता है।

पर हम इस ऐतिहासिक रास्ते पर न जाएंगे, और इससे ठीक उल्टी दिशा में चलेंगे। हमारा ध्येय यह है कि स्नायुरोगों के अध्ययन की तैयारी के सिलसिले में स्वप्नों का अर्थ समझा जाए। उल्टी प्रक्रिया अपनाने का कारण यह है कि स्वप्नों पर विचार करने से न केवल स्नायुरोगों पर विचार करने की सबसे अच्छी तैयारी हो सकती है, बल्कि स्वप्न अपने-आपमें स्नायुरोग का एक लक्षण है, और इसके अलावा, इसमें एक यह बड़ी भारी सुविधा है कि यह सब स्वस्थ मनुष्यों में होता है। सच तो यह है कि यदि सब मनुष्य स्वस्थ होते और सिर्फ स्वप्न देखते तो हम उनके स्वप्नों से प्रायः वह सारा ज्ञान इकट्ठा कर सकते थे जो हमें स्नायुरोगों के अध्ययन से प्राप्त हुआ है।

और महत्त्वपूर्ण बातें तो हैं, पर संभव है, इसका भी कुछ नतीजा निकल सके। परन्तु स्वप्नों पर विचार करना न केवल अव्यावहारिक तथा अनावश्यक है, बल्कि निश्चित रूप से कलंककारक है। इसके साथ अवैज्ञानिक होने का कलंक लगा हुआ है, और संदेह होने लगता है कि खोज करनेवाला रहस्यवाद की ओर झुकाव रखता है। कोई डाक्टरी का विद्यार्थी स्वप्नों में सिर क्यों खपाए, जबकि स्नायुरोगशास्त्र और मनश्चिकित्सा में इतनी सारी गंभीर बातें मौजूद हैं—सेब जितनी बड़ी-बड़ी गांठें मन के यंत्र को दबा रही हैं, रक्तस्राव है, जीर्ण प्रदाहात्मक अवस्थाएं हैं, जिनमें ऊतकों[1] में होनेवाले परिवर्तन सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखाए जा सकते हैं! नहीं, स्वप्न वैज्ञानिक गवेषणा के विषय होने की दृष्टि से बिलकुल बेकार और तुच्छ हैं।

एक और भी बात है जिसके कारण ठीक-ठीक जांच के लिए आवश्यक परिस्थितियां नहीं मिल सकतीं। स्वप्नों की जांच-पड़ताल में गवेषणा का विषय, अर्थात् स्वयं स्वप्न भी अनिश्चित है। उदाहरण के लिए, भ्रम में स्पष्ट और निश्चित रूपरेखा होती है। मानस रोगी साफ शब्दों में कहता है, "मैं चीन का सम्राट् हूं।" पर स्वप्न ? इसका अधिकतर हिस्सा तो कहकर बताया ही नहीं जा सकता। जब कोई आदमी किसीको स्वप्न सुनाता है तब इस बात की क्या गारंटी है कि उसने सही रूप में सुनाया है, और उसे सुनाते हुए कुछ बदल नहीं दिया है, या अपनी याददाश्त धुंधली होने के कारण उसका कुछ हिस्सा अपनी कल्पना से जोड़ने के लिए वह मजबूर नहीं हुआ है? अधिकतर स्वप्न जरा भी याद नहीं रहते, और उनके छोटे-मोटे हिस्सों को छोड़कर, बाकी सब कुछ भूल जाता है। और क्या कोई वैज्ञानिक मनोविज्ञान या रोगियों के इलाज का तरीका ऐसी सामग्री की बुनियाद पर खड़ा किया जा सकता है ?

किसी आलोचना में कुछ अतिरंजित देखकर हमें संदेह पैदा हो जाता है। स्वप्न को वैज्ञानिक गवेषणा का विषय बनाने के विरोध में पेश की गई दलीलें [illegible] सीमा तक पहुंचती हैं। [illegible]

---

१ Tissues [illegible]

बहुत-से प्रसिद्ध और अनुभवी मनश्चिकित्सकों ने उनके अध्ययन में समय लगाया। मैं आपके सामने इस तरह का वह 'केस' रखूंगा जो डाक्टरी की दुकान करते हुए मेरे पास सबसे अन्त में आया था। रोगिणी ने अपनी अवस्था इन शब्दों में पेश की, 'मुझे कुछ ऐसा महसूस होता है जैसे मैंने किसी जीवित प्राणी को, शायद किसी बच्चे को, नहीं, नहीं,—शायद कुत्ते को, घायल कर दिया है, या घायल करने की इच्छा की है, जैसे शायद मैंने उसे पुल से नीचे धकेल दिया या कुछ और किया है।' स्वप्न की अनिश्चित याद से जो असुविधा होती है, उसे यह तय करके दूर किया जा सकता है कि जो कुछ स्वप्न देखनेवाला सुनाता है, ठीक वही स्वप्न माना जाए, और जो कुछ वह भूल गया है या याद करने के बीच में बदल गया है, उसे छोड़ दिया जाए। अन्त में आप इतनी आसानी से यह बात नहीं कह सकते कि स्वप्न महत्त्वहीन चीज़ है। हम अपने निजी अनुभव से जानते हैं कि स्वप्न से हम जिस मानसिक अवस्था में जागते हैं, वह सारे दिन बनी रहती है, और डाक्टरों ने ऐसे रोगी देखे हैं, जिनमें मानसिक रोग स्वप्न से शुरू हुआ—स्वप्न से उत्पन्न भ्रम जम गया। इसके अलावा, ऐतिहासिक व्यक्तियों के बारे में कहा जाता है कि उनमें महत्त्वपूर्ण कार्य करने के आवेग उनके स्वप्नों से ही पैदा हुए। इसलिए हम यह पूछना चाहते हैं : वैज्ञानिक क्षेत्रों में स्वप्नों को हल्की नज़र से देखने का असली कारण क्या है? मेरी राय में, पहले उनका जो बहुत अधिक मूल्य आंका जाता था, उसकी यह प्रतिक्रिया है। यह बात सब जानते हैं कि गुज़रे हुए समय की घटनाओं को फिर से जोड़कर तैयार करना आसान काम नहीं है, पर हम यह निश्चिन्त होकर मान सकते हैं (मज़ाक के लिए माफ करें,) कि तीन हज़ार वर्ष और उससे भी अधिक समय पहले हमारे पूर्वज उसी तरह स्वप्न देखते थे, जैसे हम आज देखते हैं। जहां तक हम जानते हैं, सब प्राचीन जातियां स्वप्नों को बहुत महत्त्व देती थीं, और उनका व्यावहारिक मूल्य समझती थीं। उन्हें उनसे भविष्य के लिए सूचनाएं मिलती थीं, और शकुन दिखाई देते थे। यूनानियों और पूर्वी देशों के अन्य निवासियों में उस ज़माने में स्वप्न का अर्थ पढ़नेवाले के बिना कोई युद्ध करना उसी तरह असम्भव था, जैसे जासूसी के लिए शत्रुपक्ष में उतरनेवाले सैनिकों के बिना आज यह असम्भव है। जब सिकन्दर महान ने अपनी दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया था, तब सबसे प्रसिद्ध स्वप्नशास्त्री उसके साथ थे। टायर नगर ने, जो उस समय द्वीप पर ही था, उसका इतना प्रबल मुकाबला किया कि वह घेरा उठा लेने का विचार करने लगा। पर उसे एक रात एक सेटायर (एक यूनानी देवता, जिसके पूंछ और लंबे कान होते हैं) विजय-हर्ष से नाचता दिखाई दिया और जब उसने स्वप्नशास्त्रियों को अपना स्वप्न सुनाया, तब उन्होंने बताया कि यह नगर पर आपकी विजय का सूचक है। उसने हमले का हुक्म दे दिया और वह तूफान की तरह टायर पर टूट पड़ा। ऐट्रस्कनों और रोमनों में भविष्य की

। हम किमी निश्चित उत्तर पर नही पहुच सकते । पर मैं समझता हू कि हम
नीद की एक मनोवैज्ञानिक विशेषता बताने की कोशिश कर सकते हैं । नीद एक
ऐसी अवस्था है जिसमे मैं बाहर की दुनिया से कोई वास्ता नही रखता, और मैंने
उसमे सारी दिलचस्पी हटा ली है । मैं बाहरी दुनिया से हटकर और उससे पैदा
होनेवाले सब उद्दीपको से विमुख होकर सोता हू । इसी तरह, जब मैं इस दुनिया
से थक जाता हू, तब सो जाता हू । जब मैं सोने लगता हू, तब इससे कहता हू,
'मुझे शाति से रहने दो, क्योंकि मैं सोना चाहता हू ।' बच्चा इसमे ठीक उल्टी
बात कहता है, 'मैं अभी नही सोऊगा, मैं थका नही हू । मैं और खेलना चाहता
हू ।' इस तरह नीद का जैविकीय उद्देश्य स्वास्थ्य-लाभ या ताजगी प्रतीत होता है
और इसकी मनोवैज्ञानिक विशेषता बाहरी दुनिया मे दिलचस्पी न रखना प्रतीत
होता है । मालूम होता है कि जिस दुनिया मे हम इतनी अनिच्छा से आए थे, उससे
हमारा सबध तभी सहने योग्य होता है, जब बीच-बीच मे हम उससे अलग होते
रहे , इसलिए हम कुछ-कुछ समय बाद उस अवस्था मे चले जाते हैं, जिसमें
हम दुनिया मे आने से पहले थे, अर्थात् हम गर्भावस्था के जीवन मे आ जाते हैं।
चाहे जैसे कहिए, पर हम बिलकुल वैसी ही अवस्थाए—गर्मी, अधेरा और उद्दीपन
का अभाव, जो उस अवस्था की विशेषताए हैं—लाना चाहते हैं । हममे से कुछ
लोग सिकुडकर वैसे ही गेंद की तरह लुढकते हैं, जैसे गर्भावस्था मे । ऐसा मालूम
होता है कि जैसे हम लोग पूरी तरह इस दुनिया के नही हैं, बल्कि सिर्फ दो-तिहाई
अश मे इसके है । हमारा एक-तिहाई भाग अभी बिलकुल पैदा ही नही हुआ ।
सवेरे हर बार जागने के समय मानो हम नया जन्म लेते हैं । सच बात तो यह
है कि हम नीद से जागने की अवस्था की चर्चा इन्ही शब्दो मे करते हैं । हम
अनुभव करते हैं, 'मानो हमारा नया जन्म हुआ है ।' और ऐसा कहते हुए नवजा
शिशु के सामान्य सवेदनो के बारे मे हमारा विचार शायद बिलकुल गलत हो
है । इसके विपरीत यह माना जा सकता है कि वह बहुत बेचैनी अनुभव कर
है । फिर जन्म का उल्लेख करते हुए कहा करते हैं कि 'दिन का प्रक
देखना ।'

यदि नीद का यही स्वरूप है, तब तो स्वप्न इसके अन्तर्गत जरा भी नही
बल्कि वे इसमें अप्रिय मेहमान-से प्रतीत होते हैं, और सचमुच ही हम यह म
है कि बिना स्वप्नों की नींद सबसे अच्छी और एकमात्र ठीक नींद है । नी
कोई मानसिक कार्य नही होना चाहिए । यदि ऐसा कोई कार्य होता रहत
उतनी मात्रा तक हम प्रसव से पहले वाली सच्ची शान्ति की अवस्था
पहुंच सके हैं । हम मानसिक व्यापार के कुछ अशो से पूरी तरह नहीं बच
को ही सूचित करती है । इस अवस्था मे
कोई अर्थ होना आवश्यक नहीं है ।
की [illegible]
ना

बारे में स्थिति कुछ और थी, क्योंकि वे कम से कम जागने के जीवन में दिखाई देनेवाली क्रियाएं तो थीं ; पर यदि मैं सो जाता हूं और मैंने मानसिक व्यापार को पूरी तरह बन्द कर दिया है (सिवाय उन अंशों के जिन्हें मैं नहीं दबा सका) तो कुछ आवश्यक बात नहीं कि उनका कोई अर्थ हो । सच तो यह है कि ऐसे किसी अर्थ का मैं उपयोग भी नहीं कर सकता, क्योंकि मेरा बाकी मन सोया पड़ा है । तब यह वस्तुतः सिर्फ बीच-बीच में प्रबल हो जानेवाली प्रतिक्रियाओं का, ऐसी मानसिक घटनाओं का ही मामला रह जाता है, जो शारीरिक उद्दीपन से पैदा होती है । इसलिए स्वप्न जागते हुए जीवन के मानसिक व्यापार के अवशेष हैं जो नींद को भंग करते हैं, और हमें इस तरह के विषय को, जो मनोविश्लेषण के काम के लिए बिलकुल बेकार है, तुरन्त छोड़ देने का पक्का इरादा कर लेना चाहिए ।

परन्तु अनावश्यक या बेकार होने हुए भी स्वप्न होते तो हैं ही, और हम उनके अस्तित्व के कारण ढूंढने की कोशिश कर सकते हैं । मानसिक जीवन नींद में क्यों नहीं चला जाता ? शायद इस कारण कि कोई ऐसी चीज़ और मौजूद है जो मन को शान्ति से नहीं रहने देती । उद्दीपक उसपर क्रिया कर रहे हैं और उनमें वह अवश्य प्रतिक्रिया करेगा । इसलिए स्वप्न नींद में मन पर क्रिया करनेवाले उद्दीपकों पर मन की प्रतिक्रिया का प्रकार है । यहां हमें स्वप्नों को समझने के मार्ग की एक संभावना दिखाई देती है । अब हम विभिन्न स्वप्नों से यह ढूंढने की कोशिश कर सकते हैं कि नींद भंग करने का यत्न करनेवाले उद्दीपक कौन-से हैं, जिनपर होनेवाली प्रतिक्रिया स्वप्नों का रूप लेती है । ऐसा करने पर सब स्वप्नों की पहली सामान्य विशेषता हमारे हाथ में आ जाएगी ।

क्या उनकी कोई और सामान्य विशेषता है ? हां, एक और असंदिग्ध विशेषता है, पर फिर भी उसे पकड़ना और उसका वर्णन करना कठिन है । नींद में मानसिक प्रक्रमों का स्वरूप जागने समय के प्रक्रमों से बिलकुल भिन्न होता है । स्वप्नों में हम बहुत-से अनुभवों में से गुज़रते हैं, जिनपर हम पूरा विश्वास करते हैं जबकि वास्तव में हम शायद एक ही नींद का बाधक उद्दीपक अनुभव करते हैं । हमारे अनुभव अधिकतर नेत्रगोचर या आंख से दीखनेवाले प्रतिबिम्बों के रूप में होते हैं । उनके साथ भावना और विचार भी मिले हो सकते हैं, और अन्य ज्ञानेन्द्रियां भी अपना कार्य करती हो सकती हैं, किन्तु स्वप्नों का अधिकांश नेत्रगोचर-प्रतिबिंबों का ही बना होता है । कोई स्वप्न सुनाने में कठिनाई का एक कारण यही होता है कि हमें इन प्रतिबिंबों को शब्दों के रूप में बदलना होता है । स्वप्न देखनेवाला हमसे बहुत बार कहता है, 'मैं उसकी तस्वीर बना सकता हूं, पर उसे शब्दों में कहना नहीं जानता ।' यह यथार्थतः मानसिक क्षमता में कमी नहीं है, जैसी कि किसी दुर्बल मन वाले व्यक्ति और प्रतिभाशाली व्यक्ती के अन्तर में दिखाई देती

है—यह म्रतर कुछ गुणात्मक[1] म्रतर है, परतु ठीक-ठीक यह कहना कठिन है कि क्या म्रतर है। जी० टी० फेकनर ने एक बार यह सुझाव रखा था कि जिस रगमच पर (मस्तिष्क के भीतर) स्वप्न का नाटक खेला जाता है वह जागते समय के विचारो के जीवन के रगमच से भिन्न होता है। यह ऐसा कथन है जो सचमुच हमारी समझ मे नहीं म्राता ; न हमें यह पता चलता है कि यह हमे क्या जतलाना चाहता है। पर इससे विचित्रता का प्रभाव सचमुच सूचित हो जाता है जो म्रधिकतर स्वप्नो से हमारे ऊपर पडता है। दूसरे, स्वप्न की क्रिया म्रौर सगीत से म्रनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा वादन की तुलना यहा व्यर्थ हो जाती है क्योंकि पियानो पर म्रकस्मात् उगली लगाने पर भी निश्चित रूप से वही स्वर बजेंगे, चाहे लयें वे नही होंगी। स्वप्नो की इस दूसरी सामान्य विशेषता को हम सावधानी से म्रपने ध्यान मे रखेगे, चाहे हम इसे समझ न सकें।

क्या कोई म्रौर भी गुण सभी स्वप्नो मे सामान्य रूप से होते हैं ? मेरी सम मे, कोई नही होता। जिधर देखता हू उधर ही मुझे उनमे म्रतर दिखाई देते म्रौर म्रन्तर भी हर बात में प्रतीत होनेवाली म्रवधि मे, सुनिश्चितता में, भाव कार्य में, मन मे, उनके स्थायित्व में इत्यादि। पर किसी उद्दीपक को दूर रख लिए किए जाने वाले बाध्यताकारक प्रयत्न में, जो मामूली भी है म्रौर बीच-बी प्रबल हो उठता है, हमें स्वभावत जिस चीज की म्राशा करनी चाहिए, वास्तव में वह चीज नहीं है। लम्बाई की दृष्टि से कुछ स्वप्न बहुत ही छोटे हैं, जिसमें सिर्फ एक ही प्रतिबिंब या बहुत थोड़े या एक ही विचार, म्रौर कभी तो एक ही शब्द, होता है। कुछ स्वप्नो में वस्तु विशेष रूप से म्रधिक होत एक पूरी की पूरी कथा उनमें प्रदर्शित होती है, म्रौर बहुत म्रधिक देर तक रही मालूम होती है। कुछ स्वप्न इतने स्पष्ट होते हैं जितने कि वास्तविक यहा तक कि जागने के कुछ समय बाद तक हमें यह स्पष्ट नहीं होता कि ही थे, म्रौर कुछ स्वप्न बहुत ही हल्के, धुधले म्रौर म्रस्पष्ट होते हैं। एक में कुछ हिस्से बहुत म्रधिक सजीव होते हैं, म्रौर उनके बीच-बीच में ऐसे म्रंश म्राते-जाते हैं कि वह सारा ही प्राय धोखा मालूम होता है। फिर, कु सर्वथा सुसगत या कम से कम सुसम्बद्ध या समझदारी से भरे हुए या म्रधिक सुन्दर होते हैं। कुछ स्वप्न मिले-जुले, म्रसम्बद्ध, कमजोर दिखाई बेहूदे या प्राय बिलकुल पागलपन के होते हैं। कुछ स्वप्नों का हमारे नहीं मालूम होता, म्रौर कुछ स्वप्नों में प्रत्येक भाव म्रनुभव होता है, होता है कि म्रासू म्रा जाते हैं, इतना डर लगता है कि हम जा म्राश्चर्य होता है, म्रानन्द होता है इत्यादि। बहुत-से स्वप्न जागने

1. Qualitative

समय के बाद भूल जाते हैं, और कुछ सारे दिन याद रहते हैं, और धीरे-धीरे उनकी याद हल्की और अस्पष्ट होती जाती है। कुछ स्वप्न ऐसे सजीव रहते हैं (जैसे बचपन के स्वप्न) कि तीस साल बाद भी वे हमें इतने साफ रूप में याद रहते हैं जैसे वे हाल के ही अनुभव हैं। हो सकता है कि स्वप्न आदमियों की ही तरह, एक बार दिखाई दें और फिर कभी नहीं लौटें; या कोई आदमी एक ही बात स्वप्न में उसी रूप या थोड़े-बहुत भिन्न रूप में बार-बार देखता रहे। संक्षेप में, मानसिक व्यापार के ये अवशेष रात के समय अनन्त घटनाओं के अधीश्वर होते हैं, और ऐसी हर चीज पैदा कर सकते हैं जो दिन में मन पैदा कर सकता है—बस इतना ही है कि ये कभी भी उनके समान यथार्थ नहीं होती।

स्वप्नों की इन विविधताओं का कारण तलाश करने के लिए हम यह कल्पना कर सकते हैं कि वे सोने और जागने के बीच की विभिन्न अवस्थाओं, अधूरी नींद के विविध स्तरों, के सूचक हैं। ठीक है, पर तब, मन जागने की अवस्था के जितना-जितना पास पहुंचता जाए, उतना-उतना ही, न केवल स्वप्न-कृति के मूल्य, वस्तु और स्पष्टता में वृद्धि होनी चाहिए, बल्कि यह बोध भी बढ़ते जाना चाहिए कि यह एक स्वप्न है, और ऐसा न होना चाहिए कि स्वप्न में एक स्पष्ट और समझ में आनेवाले अंश के साथ-साथ एक समझ में न आनेवाला या अस्पष्ट अंश हो, और उसके बाद फिर कोई अच्छा अंश आ जाए। यह निश्चित है कि मन अपनी नींद की गहराई इतनी तेजी से नहीं बदल सकता। इसलिए यह व्याख्या कुछ सहायक नहीं होती। सच बात तो यह है कि जवाब पाने का कोई छोटा रास्ता नहीं है।

फिलहाल हम स्वप्न के 'अर्थ' को छोड़ देंगे, और इसके बदले स्वप्नों के साधारण अंश पर विचार करके उनके स्वरूप को अधिक अच्छी तरह समझने का मार्ग प्रशस्त करने की कोशिश करेंगे। स्वप्नों का नींद से जो संबंध है, उससे हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि स्वप्न नींद खराब करनेवाले उद्दीपनों की प्रतिक्रिया है। जैसाकि मैं बता चुका हूं, एकमात्र इसी प्रश्न पर यथार्थ प्रायोगिक मनोविज्ञान हमारी मदद कर सकता है। यह इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि नींद के समय जो उद्दीपक प्रभाव डालते हैं, वे स्वप्नों में दिखाई देते हैं। इस विषय में बहुत-सी जांच-पड़ताल की गई है, और उसकी पराकाष्ठा मोर्ली वोल्ड की जांच-पड़ताल में हुई, जिसका मैंने पहले जिक्र किया है। हम लोग अपने कभी-कभी के परीक्षणों से उनके परिणामों की पुष्टि कर सकते हैं। मैं आपको उनमें से शुरू के कुछ परीक्षण बताऊंगा। मॉरी ने ये परीक्षण स्वयं अपने ऊपर किए थे। स्वप्न देखते हुए उसे कुछ यूडीकोलोन सुंघा दिया गया, जिसपर उसने स्वप्न में देखा कि वह काहिरा में जोहन मैरिया फैरिना की दुकान में है, और इसके बाद उसने कुछ पागलपन के साहसी कार्य किए; फिर किसीने उसकी गर्दन पर ज़रा-

पाणित करने मे सफलता हुई थी, पर उसका कारण उसकी विशेष परिस्थितियां थी। एक बार मैं टाइरोलीज पर्वत के किसी स्थान पर सबेरे जागा तो मुझे यह ध्यान था कि मैंने स्वप्न में पोप के मर जाने की घटना देखी है। मैं अपने स्वप्न की कुछ भी व्याख्या न कर सका पर बाद में मेरी पत्नी ने मुझसे पूछा, 'क्या आपने आज बहुत सबेरे सब चर्चों और उपासनागृहों में बजते हुए घंटों का भयंकर शोर सुना था?' नहीं, मैंने कुछ नहीं सुना था। मेरी नींद बहुत गहरी होती है, पर उसके यह बताने से मैं अपना स्वप्न समझ गया। क्या यह हो सकता है कि इस तरह के उद्दीपक सोनेवाले में स्वप्न पैदा कर दें और बाद में सोनेवाले को सुनाई भी न दें? हां, बहुत बार कर सकते हैं और बहुत बार नहीं भी कर सकते। यदि हमें उद्दीपक की कोई जानकारी न मिल सके तो हम इस विषय में निश्चित नहीं हो सकते। और इसके अलावा भी, हमने नींद बिगाड़नेवाले बाहरी उद्दीपकों का कोई मूल्यांकन करना छोड़ दिया है, क्योंकि हम जानते हैं कि उनसे स्वप्न के एक बहुत छोटे-से हिस्से की ही व्याख्या होती है, सारी स्वप्न-प्रतिक्रिया की नहीं।

इस कारण हमें इस सिद्धांत को पूरी तरह छोड़ देने की आवश्यकता नहीं। इसकी जांच करने का एक और भी तरीका हो सकता है। स्पष्ट है कि यह बात महत्त्वहीन है कि किस चीज से नींद बिगड़ती है और मन में स्वप्न पैदा होता है। यदि हमेशा यह जरूरी नहीं कि यह कोई बाहरी चीज ही हो जो किसी ज्ञानेन्द्रिय पर उद्दीपन के रूप में क्रिया करती है, तो यह संभव है कि इसके बदले भीतरी अंगों में से कोई उद्दीपक क्रिया करता हो, जिसे कायिक[1] उद्दीपक कहते हैं। यह कल्पना सत्य के बहुत नजदीक मालूम होती है, और साथ ही स्वप्नों के पैदा होने के बारे में प्रचलित आम विचार से भी मेल खाती है, क्योंकि आम तौर से कहा जाता है कि स्वप्न पेट से पैदा होते हैं। बदकिस्मती से यहां फिर हमें मानना होगा कि बहुत सारे उदाहरणों में रात के समय क्रियाशील कायिक उद्दीपन के विषय में जागने के बाद जानकारी नहीं मिल सकती, और इस कारण इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। पर हम इस तथ्य को आंख से ओझल नहीं करेंगे कि बहुत-से विश्वसनीय अनुभवों से इस विचार की पुष्टि होती है कि स्वप्न कायिक उद्दीपनों से उत्पन्न हो सकते हैं। कुल मिलाकर, इसमें कोई शक नहीं कि भीतरी अंगों की अवस्था का स्वप्नों पर प्रभाव पड़ता है। बहुत-से स्वप्नों की वस्तु का मूत्राशय के भर जाने, या जननेन्द्रियों के उत्तेजन की अवस्था से संबंध इतना स्पष्ट है कि इसमें गलती की गुंजायश नहीं हो सकती। इन स्पष्ट उदाहरणों के बाद हम दूसरे उदाहरणों पर आते हैं, जिनमें, यदि स्वप्नों की वस्तु के आधार पर फैसला कि जाए तो कम से कम हमारा यह संदेह करना उचित है कि ऐसे कुछ कायिक उद्दी

1. Somatic

कार्य करते रहे हैं, क्योंकि इस वस्तु मे कुछ ऐसी चीज है जिसे इन उद्दीपनो का स्पष्ट रूप या निरूपण या निर्वचन माना जा सकता है। शरनर ने, जिसने स्वप्नो के बारे मे खोज की थी (१८६१), इस विचार का प्रबल समर्थन किया है। वह स्वप्नो का जन्म शारीरिक उद्दीपनो से मानता आया है, और उसने इसके कुछ उत्तम उदाहरण दिए हैं। उदाहरण के लिए, वह एक स्वप्न मे देखता है कि 'दो पक्तियो मे सुन्दर लडके खडे हैं, जिनके बाल सुन्दर हैं और चेहरे नाजुक है; वे एक-दूसरे को ललकार रहे हैं, आपस मे लड रहे हैं, एक-दूसरे को पकड रहे हैं, और फिर छोडकर अपने पहले वाले स्थानो मे पहुच जाते हैं, और फिर वही सारा क्रम शुरू हो जाता है।' लडकों की दो कतारो का अर्थ उसने दातो की पक्तिया बताया था जो अपने-आपमे तर्कसगत है, और तब इसकी पूरी तरह पुष्टि हुई मालूम होती है जब इस दृश्य के बाद स्वप्न देखने वाला 'अपने जबडे मे से एक लंबा दांत खींच लेता है।' इसी प्रकार 'लबे, सकरे, घुमावदार मार्गों' का यह अर्थ, कि वे आतों मे उत्पन्न उद्दीपन से पैदा हुए हैं, ठीक मालूम होता है, और शरनर के इस कथन की पुष्टि करता है कि स्वप्न मुख्यत उस अग का रूप उस जैसे पदार्थों द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं, जिससे उद्दीपन पैदा होता है।

इसलिए हमें यह मानने के लिए तैयार रहना चाहिए कि स्वप्नो मे भीतरी उद्दीपक वही कार्य कर सकते हैं जो बाहरी उद्दीपक। बदकिस्मती से इस तथ्य के महत्त्व पर भी ये ही एतराज किए जा सकते है। बहुत सारे उदाहरणों मे, कायिक उद्दीपनों के कारण, स्वप्न होने की बात अनिश्चित ही रहेगी या प्रमाणित नही की जा सकेगी। कुछ स्वप्नों मे ही यह सदेह पैदा होता है, सबसे नही, कि भीतरी अगो से आनेवाले उद्दीपनो का उन स्वप्नो के पैदा होने से कुछ सबध है, और अतिम बात यह है कि जैसे बाहरी संवेदनात्मक उद्दीपन से स्वप्न पर होनेवाली उसकी सीधी प्रतिक्रिया की ही व्याख्या होती है, उसके और किसी अश की नही, वैसे ही भीतरी कायिक उद्दीपन से भी और किसी बात की व्याख्या नही होती। स्वप्न के शेष सारे हिस्से के उद्गम का कुछ भी पता नहीं चलता।

पर अब हमें स्वप्न-जीवन की एक ऐसी विशेषता की ओर ध्यान देना है जो इन उद्दीपनों की क्रिया पर विचार करते समय सामने आती है। स्वप्न उद्दीपन को फिर वैसे का वैसा पेश नही कर देता, बल्कि उसे स्पष्ट करता है, बदलता है, एक सिलसिले मे जमा देता है, या उसके स्थान पर कोई और चीज ला रखता है। स्वप्न-तंत्र का यह पहलू हमे अवश्य दिलचस्प लगेगा, क्योंकि सभव है कि यह हमे स्वप्न के सच्चे स्वरूप के अधिक नजदीक पहुंचा दे। मनुष्य के उत्पादन का क्षेत्र जरूरी तौर से उस वातावरण तक सीमित नहीं होता, जिसमें वह किया जाता है। उदाहरण के लिए, शेक्सपियर का 'मैकबेथ' उस राजा के गद्दी पर बैठने पर एक सामयिक नाटक के रूप में लिखा गया था, जिसने तीन राज्यों के ...

को एकसाथ धारण किया था, पर क्या यह ऐतिहासिक अवसर नाटक की सारी कथावस्तु मे व्यापक है, या उसकी भव्यता और रहस्यमयता की व्याख्या करता है ? शायद इसी तरह, सोनेवाले मे क्रिया कर रहे बाहरी और भीतरी उद्दीपन स्वप्न के अवसर-मात्र हैं और उनके हमे इसके सच्चे स्वरूप का दर्शन नही होता।

सब स्वप्नो मे मिलनेवाली दूसरी बात, अर्थात् मानसिक जीवन मे उनकी विशेषता या विलक्षणता को, एक ओर तो, पकडना बडा कठिन है और दूसरी ओर, इससे आगे जाच-पडताल के लिए कोई रास्ता मिलता नही मालूम होता। स्वप्नो मे हमारे अधिकतर अनुभव नेत्रगोचर प्रतिबिम्बो के रूप होते हैं। क्या उद्दीपको से इनकी व्याख्या की जा सकती है ? क्या वास्तव मे हम उद्दीपको को ही अनुभव करते हैं ? यदि ऐसा है तो अनुभव नेत्रगोचर अर्थात् आख से ग्रहण किया जानेवाला क्यो होता है ? जबकि ऐसा बहुत ही कम उदाहरणो मे हो सकता है कि हमारी आख पर किसी उद्दीपक ने क्रिया की हो ? अथवा, क्या यह सिद्ध किया जा सकता है कि जब हम बोलने का स्वप्न देखते हैं, तब कोई बातचीत या बातचीत से मिलती-जुलती ध्वनि हमारे कानो मे पडी होती है ? मैं बिना किसी दुविधा के इसे असम्भव कहता हू।

अब, यदि हम स्वप्नो की सामान्य विशेषताओं मे विचार शुरू करके और आगे नही बढ़ सकते, तो आइए, अब उनकी भिन्नताओ पर विचार करने की कोशिश करें। प्राय स्वप्न अर्थहीन, मिले-जुले, खिचडी-से और बेतुके होते हैं, पर फिर भी कुछ स्वप्न समझदारी वाले, सयत और तर्कसगत होते हैं। यह देखना चाहिए कि ये समझदारी वाले स्वप्न उन स्वप्नो को स्पष्ट करने मे हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं या नही जो अर्थहीन हैं। मैं आपको सबसे ताजा तर्कसगत स्वप्न सुनाऊगा, जो मुझे एक नौजवान ने सुनाया है, 'मैं कार्टनरस्ट्रासे मे घूमने गया और वहा एक चायघर मे गया। …स महाशय से मिला। कुछ देर उसका साथ देने के बाद मैं … पहले मैं परेशान हुआ, दो महिलाए और एक सज्जन और मेरी मेज पर बैठ गए। … और मैंने उनकी ओर न देखा, पर बाद मे मैंने उनकी ओर नजर डाली और देखा वे बहुत अच्छे थे।' इसपर स्वप्न देखनेवाले ने यह बताया कि पिछली शाम को वह सचमुच कार्टनरस्ट्रासे मे, जो उसका आम तौर से जाने का रास्ता है, घूम रहा था, और वहा वह … महाशय से मिला था। स्वप्न का दूसरा हिस्सा किसी बात का सीधा स्मरण नही था, पर कुछ समय पहले की एक घटना से थोडा मिलता-जुलता था। अब एक और सादा स्वप्न देखिए, जो एक महिला का है। उसका पति उससे कहता है, 'क्या तुम्हारी राय मे हमे पियानो की 'ट्यूनिंग' (समस्वरण) नही करा लेना चाहिए ?' और वह उत्तर देती है … 'बिलकुल बेकार है, क्योंकि चाबियों' पर नया चमडा मढ़ना जरूरी है।' …

१. Hammers

स्वप्न उस बातचीत की आवृत्ति है, जो उसमे और उसके पति मे स्वप्न से पहले दिन लगभग इन्हीं शब्दो मे हुई थी। तो इन दो भावनाहीन स्वप्नों से हमें क्या पता चलता है ? सिर्फ इतना ही, कि उनमे दैनिक जीवन की या उससे संबंधित बातों की स्मृतियां होती हैं। यदि यह बात निरपवाद रूप से सब स्वप्नों के बारे मे कही जा सकती, तो यह भी कुछ महत्त्व की होती, पर उसका कोई सवाल ही नही है। यह विशेषता भी बहुत ही थोड़े स्वप्नों मे होती है। अधिकतर स्वप्नो मे पहले दिन की बातो से कोई सम्बन्ध नही होता, और अर्थहीन तथा बेतुके स्वप्नो पर भी इससे कोई रोशनी नही पड़ती। हम इतना ही जानते हैं कि हमारे सामने एक नई समस्या आ गई है। इतना ही नही कि हम स्वप्न का अर्थ जानना चाहते हैं, बल्कि *यदि यह स्पष्ट हो, जैसाकि हमारे उदाहरणो मे है, तो हम यह भी जानना चाहते* हैं कि जो बात हमे मालूम है और हाल मे ही हमारे साथ हुई है, उसे हम किस कारण और किस उद्देश्य से स्वप्न मे दोहराते हैं।

मैं समझता हूं कि यहां तक हमने जिस तरह की कोशिशें की हैं, उन्हें आगे जारी रखने से जैसे मैं ऊब गया हूं वैसे ही आप भी ऊब गए होंगे। इससे यही प्रकट होता है कि अधिक से अधिक दिलचस्पी होने पर भी हम किसी समस्या को तब तक हल नही कर सकते, जब तक हमारे सामने समाधान पर पहुंचने के लिए अपनाए जानेवाले रास्ते की भी कुछ कल्पना न हो। अब तक हमे वह रास्ता नही मिला। प्रायोगिक मनोविज्ञान ने इस दिशा में सिर्फ इतना ही किया है कि स्वप्न के पैदा होने में उद्दीपनो के महत्त्व के विषय में कुछ बहुत कीमती जानकारी दी। दर्शन से हम कुछ आशा नहीं कर सकते, वह तो बड़प्पन दिखाता हुआ यही बात दोहरा सकता है कि हमारा उद्देश्य बौद्धिक दृष्टि से तिरस्कार योग्य है, और रहस्यमय विज्ञानों से हम कोई बात लेना ही नहीं चाहते। इतिहास और जनता के फैसले से हमें पता चलता है कि स्वप्नों का अर्थ और महत्त्व होता है, और वे भविष्य के सूचक होते हैं। पर इस बात को स्वीकार करना कठिन है, और निश्चित ही, इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। तो इस प्रकार, हमारे पहले प्रयत्न पूरी तरह विफल हो जाते हैं।

पर अचानक ही ऐसी दिशा से एक संकेत मिलता है जिसकी ओर हमने आज तक ध्यान नही दिया। बोलचाल की भाषा, जो निश्चित रूप से अचानक नही बन गई है, बल्कि मानो प्राचीन ज्ञान का खजाना है—पर इस बात को बहुत तूल न देना चाहिए—हमारी भाषा एक ऐसी चीज का अस्तित्व मानती है, जिसे हमने 'दिवास्वप्नों' का नाम दे रखा है; यह नाम भी विचित्र ही है। दिवास्वप्न कल्पना होते हैं (कल्पना से उत्पन्न होते हैं)। वे आम तौर से होते रहते हैं, और रोगियों की तरह स्वस्थ व्यक्तियों में भी दिखाई देते हैं, और उनका अध्ययन भी माध्यम (पात्र) द्वारा स्वयं आसानी से किया जा सकता है। इन कल्पना से उत्पन्न सृष्टियों के बारे में

सबसे विचित्र बात यह है कि उन्हें 'दिवास्वप्नों' का नाम दिया गया है, क्योंकि उनमें स्वप्न की दो व्यापक विशेषताओं में से कोई भी बात नहीं है। उनके नाम से ही स्पष्ट है कि नींद से उनका कोई संबंध नहीं, और जहां तक दूसरी व्यापक विशेषता का संबंध है, उनमें कोई अनुभव या मतिभ्रम[१] भी नहीं होता; सिर्फ इतना होता है कि हम कुछ बातों की कल्पना कर लेते हैं। हम जानते हैं कि वे कल्पना से पैदा होते हैं, कि हम देख नहीं रहे, बल्कि सोच रहे हैं। वे दिवास्वप्न वय सन्धि, अर्थात् जवानी के शुरू में या बचपन के अंत में दिखाई देते हैं, और पक्की उम्र होने तक बने रहते हैं। पक्की उम्र में या तो वे छूट जाते हैं या जीवन-भर साथ रहते हैं। इन कल्पनासृष्टियों की वस्तु एक बहुत सूक्ष्म प्रेरक कारण से उत्पन्न होती है। ऐसे दृश्य या घटनाएं इनकी प्रेरक होती हैं जो या तो आकांक्षा की अहंकारमूलक लालसाओं को, या सत्ता की लिप्सा को, अथवा पात्र की कामुक इच्छाओं को तृप्त करती हैं। नौजवानों में आकांक्षा से पूर्ण कल्पनाएं मुख्य होती हैं, स्त्रियों में, जिनकी आकांक्षा प्रेम-संबंधी सफलता पर केंद्रित होती है, कामुक कल्पनाएं मुख्य होती हैं, पर पुरुषों में भी कामुक भावना प्राय: छिपी हुई देखी जा सकती है। वास्तव में, उनके सारे वीरता के कार्यों और सफलताओं का एकमात्र आशय स्त्रियों का हृदय जीतना होता है। अन्य दृष्टियों से इन दिवास्वप्नों में बड़ी भिन्नता होती है, और उनका अन्त भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। या तो वे सब कुछ समय बाद छूट जाते हैं, और उनके स्थान पर कोई नया स्वप्न आ जाता है, अथवा वे बने रहते हैं, और उनके चारों ओर लम्बी-लम्बी कहानियां लिपट जाती हैं और उन्हें जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया जाता है। वे जमाने के साथ आगे बढ़ते हैं, और उनपर मानो डेट-स्टाम्प या तारीख की मोहरें लगती जाती हैं, जिनसे नई-नई स्थिति के असर का पता चलता है। वे काव्य-रचना का उपादान बन जाते हैं, क्योंकि लेखक अपने दिवास्वप्नों का रूप बदलकर या उन्हें छोटा-बड़ा करके उनमें से ही वे स्थितियां पैदा करता है, जो वह अपनी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों के रूप में पेश करता है; पर दिवास्वप्न का नायक सदा माध्यम (पात्र) स्वयं होता है—वह या तो प्रत्यक्ष रूप में कल्पित होता है, और या किसी और के साथ प्राय: एकरूप हो जाता है।

शायद दिवास्वप्नों का यह नाम पड़ने का कारण उनका यथार्थता से स्वप्न जैसा संबंध होना है। इससे यह बात सूचित होती है कि उनकी वस्तु को उसी तरह यथार्थ नहीं माना जा सकता, जिस तरह स्वप्न की वस्तु को, पर यह भी संभव है कि उन्हें स्वप्न की किसी ऐसी मानसिक विशेषता के कारण 'स्वप्न'

---

१. Hallucination

शब्द से पुकारा गया हो जिसे हम अभी नही जानते, पर जिसे खोजने की हम कोशिश कर रहे हैं। दूसरी ओर, यह भी हो सकता है कि नाम के सादृश्य को हमारा महत्वपूर्ण समझना बिलकुल गलत हो। इस प्रश्न का उत्तर बाद मे ही दिया जा सकता है।

आरम्भिक परिकल्पनाएं* और निर्वचन की

इस प्रकार हमने समझ लिया कि यदि हमें स्वप्नों के बारे में अपनी
को आगे बढ़ाना है तो हमें एक नये रास्ते, और एक सुनिश्चित विधि
होगा। अब मैं एक सरल-सा सुझाव पेश करूंगा। हमें आगे की सारी
परिकल्पना के आधार पर करनी चाहिए कि स्वप्न कायिक घटना नहीं
मानसिक घटना है। आप इसका अर्थ जानते हैं, पर ऐसी कल्पना करने का आ
क्या है ? हमारे पास कोई औचित्य नहीं, पर दूसरी ओर हमें इससे रोका भी तो
नहीं जा सकता। स्थिति यह है यदि स्वप्न कायिक घटना है तो इसका हमसे कुछ
वास्ता नहीं। इस परिकल्पना के आधार पर ही हमें इसमें दिलचस्पी हो सकती
कि यह एक मानसिक घटना है। इसलिए यह देखने के लिए कि इस परिकल्पना
को सत्य मान लिया जाए तो क्या होता है, हम इसे सत्य मान लेंगे। हमारे कार्य
परिणामों से यह होगा कि हम इस परिकल्पना पर कायम रह सकते हैं और
उचित रीति से निकाले गए अनुमान के रूप में सिद्ध कर सकते हैं या नहीं
पर हमारी इस जांच-पड़ताल का उद्देश्य ठीक-ठीक क्या है, या हमारे प्रयत्नों
लक्ष्य क्या है ? हमारा उद्देश्य वही है जो सभी वैज्ञानिक प्रयासों का होता
अर्थात् घटनाओं को समझना, उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना और
में जहां कहीं सम्भव हो उनपर अपना अधिकार बढ़ाना।

इस प्रकार हम यह मानकर आगे बढ़ते हैं कि स्वप्न एक मानसिक घटन
उस हालत में वे स्वप्न देखनेवाले की कृति और वचन हैं, पर उस प्रका
कृति और वचन हैं, जिनसे हमें कुछ अर्थ पता नहीं चलता और जिन्हें हम स
नहीं। अब मान लीजिए कि मैं कोई ऐसी बात कहता हूं जो आपकी समझ
आती, तो आप क्या करते हैं ? आप मुझसे स्पष्टीकरण करने को कहते हैं।
तो फिर यही बात क्यों न की जाए—स्वप्न देखनेवाले से ही उसके स्व

*Hypotheses

अर्थ क्यों न पूछा जाए ?

आपको याद होगा कि हम पहले भी ऐसी स्थिति में आ चुके हैं। उस समय हम कुछ गलतियों के बारे में जांच-पड़ताल कर रहे थे, और हमने बोलने की गलती का उदाहरण लिया था। किसीने कहा था, 'तब कुछ वस्तुएं रिफिल्ड (Refilled) थीं' और इसपर हमने पूछा था, नहीं, नहीं, खुशकिस्मती से, पूछनेवाले हम नहीं थे, बल्कि दूसरे लोग थे जिनका मनोविश्लेषण से कोई वास्ता नहीं था, तो, उन्होंने पूछा था कि आपके इस अजीब शब्द-प्रयोग का क्या अर्थ है ? उसने तुरन्त उत्तर दिया कि मैं यह कहना चाहता था, 'वह एक फिल्दी (filthy) कारबार है,' पर उसने अपने-आपको रोका, और उन शब्दों की जगह कुछ नये शब्द प्रयुक्त किए, "चीज़ वहां 'रिवील्ड' (Revealed) थी।" मैंने तब आपको बताया था कि यह पूछ-ताछ मनोविश्लेषण-सम्बन्धी प्रत्येक जांच-पड़ताल का आदर्श या नमूना है, और अब आप जानते हैं कि मनोविश्लेषण की विधि यह यत्न करती है कि जहां तक हो सके, वहां तक उन व्यक्तियों को अपनी समस्याओं का स्वयं उत्तर देने का मौका दिया जाए, जिनका विश्लेषण किया जा रहा है। अतः स्वप्न देखनेवाले को स्वयं अपने स्वप्न का निर्वचन हमारे सामने पेश करना चाहिए।

परन्तु, जैसाकि हम जानते हैं, स्वप्नों के मामले में यह काम इतना सीधा नहीं है! गलतियों के सिलसिले में यह विधि बहुत-से उदाहरणों में सम्भव सिद्ध हुई। जहां पूछने पर व्यक्ति ने कुछ भी बताने से इनकार कर दिया और अपने सामने पेश किए गए उत्तर का गुस्से से खंडन भी किया, वहां दूसरी विधियां थीं। स्वप्नों में पहले प्रकार के उदाहरणों का बिलकुल अभाव है। स्वप्न देखनेवाला सदा यह कहता है कि मैं उसके बारे में कुछ नहीं जानता। वह हमारे निर्वचन का खंडन भी नहीं कर सकता, क्योंकि हमारे पास उसके सामने पेश करने के लिए कोई निर्वचन ही नहीं है। तो क्या हम अपनी कोशिश छोड़ देंगे, क्योंकि वह कुछ नहीं जानता और हम कुछ नहीं जानते और तीसरा व्यक्ति तो निश्चित ही कुछ नहीं जान सकता, इसलिए उत्तर मिलने की कोई संभावना हो ही नहीं सकती ? इसलिए यदि आप चाहें तो कोशिश छोड़ दीजिए, पर यदि आपका ऐसा विचार नहीं है तो आप मेरे साथ आगे चल सकते हैं, क्योंकि मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि न केवल यह बिलकुल संभव है, बल्कि बहुत अधिक संभाव्य भी है कि स्वप्न देखनेवाला वास्तव में अपने स्वप्न का अर्थ ज़रूर जानता है; हां, वह यह नहीं जानता कि वह जानता है, और इसलिए सोचता है कि वह नहीं जानता।

यहां पहुंचने पर शायद आप मेरा ध्यान इस बात की ओर खींचेंगे कि मैं फिर एक कल्पना को बीच में ला रहा हूं, जो इस छोटे-से प्रकरण में दूसरी कल्पना है, और ऐसा करके मैं अपने इस दावे को बहुत कमज़ोर कर रहा हूं कि हमारे पास

आगे बढ़ने की एक विश्वसनीय विधि है। पहले यह परिकल्पना मान लें कि स्वप्न मानसिक घटनाएं हैं, और फिर यह परिकल्पना मान लें कि मनुष्यों के मन में कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिन्हें वे जानते हैं, पर यह नहीं जानते कि वे इन्हें जानते हैं—और इसी तरह परिकल्पनाएं करते जाइए। आपको इन दोनों परिकल्पनाओं की अपनी भीतरी असंभाव्यता का ध्यान रहेगा और आप इनसे निकाले जानेवाले निष्कर्षों में सारी दिलचस्पी छोड़ बैठेंगे।

बात यह है कि मैं आपको किसी भी भ्रम में डालने के लिए या कोई बात आपसे छिपाने के लिए यहां नहीं लाया हूं। सच है कि मैंने यह कहा था कि मैं 'मनोविश्लेषण पर परिचयात्मक व्याख्यान' शीर्षक से कुछ व्याख्यान दूंगा, पर मेरा यह प्रयोजन नहीं था कि मैं आपके सामने चमत्कार-भरी बातें पेश करूं, और यह जाहिर करूं कि तथ्य कितनी आसानी से एक-दूसरे के पीछे जुड़े हुए हैं, और सभी तरह की कठिनाइयों को सावधानी के साथ आपसे छिपाता चलूं, बीच की खाली जगहों को भरता चलूं और संदिग्ध प्रश्नों पर बढ़ा-चढ़ाकर बातें करता चलूं, ताकि आप सहूलियत से इस विश्वास का आनंद ले सकें कि आपने कोई नई चीज़ सीख ली है। असल में इस तथ्य के कारण ही, कि आप लोग इस विषय में नये हैं, मुझे यह उचित लगा है कि मैं अपने विज्ञान का वही रूप आपके सामने रखूं जो असल में है, जिसमें इसकी सब अड़चनें और विषमताएं भी आपके सामने आएं और आपको यह भी पता चले कि यह कौन-कौन-से दावे करता है, और इसकी क्या-क्या आलोचना की जा सकती है। मैं निस्संदेह जानता हूं कि प्रत्येक विज्ञान में यही बात होती है, और विशेष रूप से शुरू में, इसके अलावा और कुछ बात हो भी नहीं सकती। मैं यह भी जानता हूं कि दूसरे विज्ञान पढ़ाते हुए नये सीखनेवाले से शुरू में इन कठिनाइयों और

के भीतर हैं; और जिन्हें यह सब काम बहुत मेहनत का या बहुत अनिश्चित मालूम होता है, या जिन्हें अधिक निश्चितता की या अधिक साफ निष्कर्षों की आदत पड़ी हुई है, उन्हें मेरे साथ आगे चलने की ज़रूरत नहीं है। उन्हें मैं यही सलाह दूंगा कि वे मनोवैज्ञानिक समस्याओं को बिलकुल हाथ न लगाएं, क्योंकि यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें उन्हें उतने यथार्थ और निश्चित मार्गों पर चलने का मौका नहीं मिलेगा, जिनपर चलने को वे तैयार हैं। और फिर किसी भी ऐसे विज्ञान के लिए, जो ज्ञान में कोई वास्तविक अभिवृद्धि कर सकता है, अपने अनुयायी हासिल करने की कोशिश करना और अपना प्रचार करने की कोशिश करना बिलकुल गैरज़रूरी है। इसका स्वागत इसके परिणामों के आधार पर होना चाहिए, और जब तक

पर आपमें से जो लोग इस तरह रुकनेवाले नहीं हैं, उन्हें मैं यह चेतावनी पहले ही दे देना चाहता हूं कि मेरी दोनों परिकल्पनाओं का बराबर महत्त्व नहीं है। पहली परिकल्पना, कि स्वप्न मानसिक घटनाएं हैं, को हम अपनी गवेषणा के परिणामों में सिद्ध कर देने की आशा करते हैं। दूसरी परिकल्पना एक और क्षेत्र में पहले ही सिद्ध की जा चुकी है, और मैंने इतना ही किया है कि उसे अपनी समस्याओं पर लागू कर लिया है।

यह परिकल्पना कि मनुष्य में ऐसा ज्ञान हो सकता है, जिसके बारे में वह यह न जानता हो कि उसमें है, कहां और किस प्रसंग में सिद्ध की गई है? निश्चित रूप से यह एक बड़ा विलक्षण और आश्चर्यजनक तथ्य होगा जो मानसिक जीवन की हमारी अवधारणा को बदल देगा, और जिसके कारण छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। प्रसंगतः यह कहा जा सकता है कि यह ऐसा तथ्य होगा जो अपने निरूपण में ही असत्य है पर फिर भी अक्षरशः सत्य होना चाहता है। यह एक विरोधाभास है, पर छिपाने की यहां कोशिश नहीं है। लोग इसे नहीं जानते या इसमें दिलचस्पी नहीं रखते तो इसमें इस तथ्य का उतना ही दोष है जितना कि हमारा, क्योंकि इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर ऐसे लोगों ने फैसले दे रखे हैं जिन्होंने कभी एक भी प्रेक्षण या परीक्षण नहीं किया जबकि प्रेक्षण और परीक्षण ही वास्तव में किसी निश्चित परिणाम पर पहुंच सकते हैं।

जिस प्रमाण की मैं चर्चा कर रहा हूं, वह सम्मोहन-सबंधी या हिप्नोटिक घटनाओं के क्षेत्र में प्राप्त हुआ था। १८८६ में नान्सी में लीबोल्ट और बर्नहीम द्वारा किए गए विशेष रूप से प्रभावोत्पादक प्रदर्शनों में मैं उपस्थित था और वहां मैंने निम्नलिखित परीक्षण देखा। एक आदमी को निद्रावस्था[1] में लाया गया और इसके बाद उसे सब तरह के मतिभ्रमों के अनुभवों में से ले जाया गया। जगाए जाने पर पहले तो ऐसा मालूम हुआ कि सम्मोहन की नींद में जो कुछ हुआ था, उसका उसे कुछ पता ही नहीं था। तब बर्नहीम ने उसे सीधे शब्दों में कहा कि तुम्हारे सम्मोहित अवस्था में होने पर जो कुछ हुआ था, वह बताओ। उस आदमी ने कहा कि मुझे कुछ याद नहीं आता। परन्तु बर्नहीम ने इस बात पर ज़ोर दिया, उससे आग्रह किया और उसे विश्वास दिलाया कि वह अवश्य जानता है, और उसे अवश्य याद होगा; और तमाशा देखिए कि वह आदमी सकुचाया, सोचने लगा, और फिर जो घटनाएं उसके मन में आदेशित[2] की गई थीं, उनमें से पहली धुंधले रूप में उसे याद आ गई। उसके बाद कई और बातें याद आईं, और धीरे-धीरे उसकी स्मृति अधिकाधिक स्पष्ट और पूर्ण होती गई और अंत में उसने सारी बातें बता दीं—एक भी नहीं छोड़ी। बीच में उसे कहीं से कुछ पता नहीं चला था, लेकिन आखिरकार

[1] Somnambulism [2] Suggested

बिलकुल अवैज्ञानिक है, और इसे नियतिवाद[1] के, जो मानसिक जीवन को भी शासित करता है, दावों के सामने मैदान छोड़ना ही पड़ेगा। मैं आपसे कहता हूं कि इस तथ्य की कुछ तो इज्जत कीजिए कि जब स्वप्न देखने वाले से पूछा जाता है, तब उसके मन में एक वही साहचर्य आता है, और कोई नहीं आता। मैं एक विश्वास के विरोध में दूसरे विश्वास की स्थापना भी नहीं कर रहा हूं। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इस प्रकार बताया गया साहचर्य उसकी मर्जी का मामला नहीं है, वह अनियत नहीं है और वह उससे असंबंधित भी नहीं है जिसे हम खोज रहे हैं। असल में, मुझे हाल में ही पता चला है—पर इसका यह अर्थ नहीं कि मैं इसे कोई खास महत्त्व देता हूं—कि स्वयं प्रायोगिक मनोविज्ञान ने भी ऐसे ही प्रमाण पेश किए हैं।

यह मामला महत्त्वपूर्ण होने के कारण मैं आपसे इसपर विशेष ध्यान देने के लिए कहता हूं। जब मैं किसी आदमी से यह पूछता हूं कि स्वप्न के अमुक अवयव के बारे में उसके मन में क्या बात आती है तब मैं यह आशा करता हूं कि वह मुक्त साहचर्य के प्रक्रम में अपने-आपको शिथिल छोड़ दे, और यह तब होता है जब वह मूल आरंभिक विचार अपने मन में रखता है। इसके लिए एक विशेष प्रकार से ध्यान देने की जरूरत होती है। यह चीज अनुचिंतन या निदिध्यासन[2] से बिलकुल भिन्न है, बल्कि वह तो इसमें हो ही नहीं सकता। कुछ लोग बिना किसी मुश्किल के ऐसी अवस्था बना लेते हैं, पर कुछ लोग जब ऐसा करने की कोशिश करते हैं, तब उनमें एक अविश्वसनीय अरुचि दिखाई देती है। जो साहचर्य उस समय दिखाई देता है जब मैं किसी खास उद्दीपन-बिंब[3] या उद्दीपन-विचार के बिना काम चलाता हूं, और अपने अभीप्ट साहचर्य के आकार-प्रकार का शायद वर्णन-मात्र कर देता हूं, तब साहचर्य में और भी अधिक स्वतन्त्रता होती है, उदाहरण के लिए, किसी आदमी से कहिए कि वह कोई व्यक्तिवाचक नाम या कोई संख्या सोचे। आप कहेंगे कि इस तरह का साहचर्य, हमारी विधि में प्रयुक्त साहचर्य की अपेक्षा अपनी पसंद के और भी अधिक अनुकूल होगा और इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकेगा। तो भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह मन की महत्त्वपूर्ण भीतरी अभिवृत्तियों[4] के ही ठीक-ठीक अनुसार होगा—ये अभिवृत्तियां क्रियाशील होने के समय हमारे लिए उतनी ही अज्ञात हैं, जितनी अज्ञात गलतियां पैदा करने वाली विघातक प्रवृत्तियां और वे प्रवृत्तियां वही हैं जो 'संयोगवश उत्पन्न' कहलाने वाली क्रियाएं पैदा करती हैं।

मैंने, और मेरे बाद अनेक व्यक्तियों ने बिना किसी विचार के पुकारे गए

---

१ Determinism 	२. Reflection 	३. Stimulus-idea
४. Attitudes

चीज नहीं है; वह बहुत-से अवयवों का बना हुआ होता है। ऐसी अवस्था में हम किस साहचर्य पर भरोसा करें ?'

सारे अनावश्यक अंशों में आपकी बात सही है। यह सच है कि बोलने की गलती और स्वप्न में कई भेद हैं, जिनमें से एक यह है कि स्वप्न बहुत-से अवयवों से बना हुआ होता है। हमें अपनी विधि में उसका ध्यान रखना होगा। इसलिए मैं यह सुझाव रखता हूं कि हम स्वप्न को उसके अनेक अवयवों में बांट दें, और प्रत्येक अवयव पर अलग-अलग विचार करें। तब इसका और बोलने की गलती का फिर सादृश्य स्थापित हो जाएगा। आपका यह कहना भी सही है कि स्वप्न के एक-एक अवयव के बारे में पूछने पर स्वप्न देखनेवाला यह जवाब दे सकता है कि उसे उनके बारे में कुछ ध्यान नहीं है। कुछ उदाहरणों में हम यह उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, और मैं आगे चलकर आपको यह बताऊंगा कि वे कौन-से उदाहरण हैं। विचित्र बात यह है कि ये उदाहरण वे हैं जिनके बारे में हमारे अपने शायद कुछ सुनिश्चित विचार हैं, परंतु साधारणतया जब स्वप्न देखनेवाला यह कहता है कि उसका कोई विचार नहीं है, तब हम उसकी बात का विरोध करेंगे, जवाब देने के लिए उसपर जोर डालेंगे, उसे यह विश्वास दिलाएंगे कि उसके मन में अवश्य कुछ विचार हैं और हम देखेंगे कि हम सही कहते थे—वह कोई न कोई साहचर्य पेश करेगा। वह क्या है इससे हमें विशेष मतलब नहीं है। विशेष रूप से वह हमें ऐसी जानकारी देगा जिसे हम ऐतिहासिक कह सकते हैं। वह कहेगा, 'यह कुछ वैसी बात है जैसी कल हुई थी,' (जैसाकि ऊपर बताए गए दो 'भाव-हीन' स्वप्नों के उदाहरण में था) या 'इससे मुझे किसी ऐसी चीज का ध्यान आता है जो हाल में ही हुई थी,' और इस तरह हम यह देखेंगे कि अधिकतर स्वप्नों का संबंध उन प्रभावों से है जो एक दिन पहले के हैं। अंत में स्वप्न से [illegible] को दोहराएगा जो कुछ और पहले हुई थीं, और [illegible] की हैं।

बिलकुल अवैज्ञानिक है, और इसे नियतिवाद[1] के, जो मानसिक जीवन को भी शासित करता है, दावों के सामने मैदान छोड़ना ही पड़ेगा। मैं आपसे कहता हूं कि इस तथ्य की कुछ तो इज्जत कीजिए कि जब स्वप्न देखने वाले से पूछा जाता है, तब उसके मन में एक वही साहचर्य आता है, और कोई नहीं आता। मैं एक विश्वास के विरोध में दूसरे विश्वास की स्थापना भी नहीं कर रहा हूं। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इस प्रकार बताया गया साहचर्य उसकी मर्जी का मामला नहीं है, वह अनियत नहीं है और वह उससे असंबंधित भी नहीं है जिसे हम खोज रहे हैं। प्रसंग से, मुझे हाल में ही पता चला है—पर इसका यह अर्थ नहीं कि मैं इसे कोई खास महत्त्व देता हूं—कि स्वयं प्रायोगिक मनोविज्ञान ने भी ऐसे ही प्रमाण पेश किए हैं।

यह मामला महत्त्वपूर्ण होने के कारण मैं आपसे इसपर विशेष ध्यान देने के लिए कहता हूं। जब मैं किसी आदमी से यह पूछता हूं कि स्वप्न के अमुक अवयव के बारे में उसके मन में क्या बात आती है तब मैं यह आशा करता हूं कि वह मुक्त साहचर्य के प्रक्रम में अपने-आपको शिथिल छोड़ दे, और यह तब होता है जब वह मूल प्रारंभिक विचार अपने मन में रखता है। इसके लिए एक विशेष प्रकार से ध्यान देने की जरूरत होती है। यह चीज अनुचिंतन या निदिध्यासन[2] से बिलकुल भिन्न है, बल्कि वह तो इसमें हो ही नहीं सकता। कुछ लोग बिना किसी मुश्किल के ऐसी अवस्था बना लेते हैं, पर कुछ लोग जब ऐसा करने की कोशिश करते हैं, तब उनमें एक अविश्वसनीय अरुचि दिखाई देती है। जो साहचर्य उस समय दिखाई देता है जब मैं किसी खास उद्दीपन-बिंब[3] या उद्दीपन-विचार के बिना काम चलाता हूं, और अपने अभीष्ट साहचर्य के आकार-प्रकार का शायद वर्णन-मात्र कर देता हूं, तब साहचर्य में और भी अधिक स्वतन्त्रता होती है, उदाहरण के लिए, किसी आदमी से कहिए कि वह कोई व्यक्तिवाचक नाम या कोई संख्या सोचे। आप कहेंगे कि इस तरह का साहचर्य, हमारी विधि में प्रयुक्त साहचर्य की अपेक्षा अपनी पसंद के और भी अधिक अनुकूल होगा और इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकेगा। तो भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह मन की महत्त्वपूर्ण भीतरी अभिवृत्तियों[4] के ही ठीक-ठीक अनुसार होगा—ये अभिवृत्तियां क्रियाशील होने के समय हमारे लिए उतनी ही अज्ञात हैं, जितनी अज्ञात गलतियां पैदा करने वाली विघातक प्रवृत्तियां और वे प्रवृत्तियां वही हैं जो 'संयोगवश उत्पन्न' कहलाने वाली क्रियाएं पैदा करती हैं।

मैंने, और मेरे बाद अनेक व्यक्तियों ने बिना किसी विचार के पुकारे गए

१. Determinism २. Reflection ३. Stimulus-idea
४. Attitudes

चीज नहीं है; वह बहुत-से अवयवों का बना हुआ होता है । ऐसी अवस्था में हम किस साहचर्य पर भरोसा करें ?'

सारे अनावश्यक प्रश्नों में आपकी बात सही है । यह सच है कि बोलने की गलती और स्वप्न में कई भेद हैं, जिनमें से एक यह है कि स्वप्न बहुत-से अवयवों से बना हुआ होता है । हमें अपनी विधि में उसका ध्यान रखना होगा। इसलिए मैं यह सुझाव रखता हूं कि हम स्वप्न को उसके अनेक अवयवों में बांट दें, और प्रत्येक अवयव पर अलग-अलग विचार करें । तब इसका और बोलने की गलती का फिर सादृश्य स्थापित हो जाएगा । आपका यह कहना भी सही है कि स्वप्न के एक-एक अवयव के बारे में पूछने पर स्वप्न देखनेवाला यह जवाब दे सकता है कि उसे उनके बारे में कुछ ध्यान नहीं है। कुछ उदाहरणों में हम यह उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, और मैं आगे चलकर आपको यह बताऊंगा कि वे कौन-से उदाहरण हैं । विचित्र बात यह है कि ये उदाहरण वे हैं जिनके बारे में हमारे अपने शायद कुछ सुनिश्चित विचार हैं, परन्तु साधारणतया जब स्वप्न देखनेवाला यह कहता है कि उसका कोई विचार नहीं है, तब हम उसकी बात का विरोध करेंगे, जवाब देने के लिए उसपर जोर डालेंगे, उसे यह विश्वास दिलाएंगे कि उसके मन में अवश्य कुछ विचार हैं और हम देखेंगे कि हम सही कहते थे—वह कोई न कोई साहचर्य पेश करेगा । वह क्या है इससे हमें विशेष मतलब नहीं है। विशेष रूप से वह हमें ऐसी जानकारी देगा जिसे हम ऐतिहासिक कह सकते हैं । वह कहे 'यह कुछ वैसी बात है जैसी कल हुई थी,' (जैसाकि ऊपर बताए गए दो 'भाव-हीन' स्वप्नों के उदाहरण में था) या 'इससे मुझे किसी ऐसी चीज का ध्यान आता है जो हाल में ही हुई थी,' और इस तरह हम यह देखेंगे कि अधिकतर स्वप्नों का संबंध उन प्रभावों से है जो एक दिन पहले के हैं । अंत में स्वप्न से शुरू करके वह उन घटनाओं को दोहराएगा जो कुछ और पहले हुई थीं, और अन्त में ऐसी घटनाएं भी बताएगा जो बहुत पहले की हैं ।

परन्तु मुख्य प्रश्न के बारे में आपका विचार गलत है। जब आप यह समझते हैं कि यह मनमानी कल्पना है कि स्वप्न देखनेवाले का पहला साहचर्य हमें वही बात प्रकट कर देगा जिसकी हम तलाश में हैं, या कम से कम, हमें उसकी ओर ले जाएगा; साथ ही यह कल्पना भी, कि अधिक संभवतः साहचर्य बिल्कुल मनमाना होगा, और उसका उस चीज से कोई संबंध नहीं होगा जिसकी हम तलाश कर रहे हैं, और यदि मैं किसी और बात की आशा करता हूं तो इसमें भाग्य में मेरा अंध-विश्वास ही अधिक होता है—तो आप बहुत भारी गलती करते हैं । मैं पहले ही यह संकेत कर चुका हूं कि मन की स्वतन्त्रता और चुनाव-क्षमता का गहरा [illegible] हुआ विश्वास आपके मन में मौजूद है; मैं यह भी कह चुका हूं कि यह [illegible]

बिलकुल अवैज्ञानिक है, और इसे नियतिवाद[1] के, जो मानसिक जीवन को भी शासित करता है, दावों के सामने मैदान छोड़ना ही पड़ेगा। मैं आपसे कहता हूं कि इस तथ्य की कुछ तो इज्जत कीजिए कि जब स्वप्न देखने वाले से पूछा जाता है, तब उसके मन में एक वही साहचर्य आता है, और कोई नहीं आता। मैं एक विश्वास के विरोध में दूसरे विश्वास की स्थापना भी नहीं कर रहा हूं। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इस प्रकार बताया गया साहचर्य उसकी मर्जी का मामला नहीं है, वह अनियत नहीं है और वह उससे असम्बन्धित भी नहीं है जिसे हम खोज रहे हैं। असल में, मुझे हाल में ही पता चला है—पर इसका यह अर्थ नहीं कि मैं इसे कोई खास महत्त्व देता हूं—कि स्वयं प्रायोगिक मनोविज्ञान ने भी ऐसे ही प्रमाण पेश किए हैं।

यह मामला महत्त्वपूर्ण होने के कारण मैं आपसे इसपर विशेष ध्यान देने के लिए कहता हूं। जब मैं किसी आदमी से यह पूछता हूं कि स्वप्न के अमुक अवयव के बारे में उसके मन में क्या बात आती है तब मैं यह आशा करता हूं कि वह मुक्त साहचर्य के प्रक्रम में अपने-आपको शिथिल छोड़ दे, और यह तब होता है जब वह मूल आरम्भिक विचार अपने मन में रखता है। इसके लिए एक विशेष प्रकार से ध्यान देने की जरूरत होती है। यह चीज अनुचिंतन या निदिध्यासन[2] से बिलकुल भिन्न है, बल्कि वह तो इसमें हो ही नहीं सकता। कुछ लोग बिना किसी मुश्किल के ऐसी अवस्था बना लेते हैं, पर कुछ लोग जब ऐसा करने की कोशिश करते हैं, तब उनमें एक अविश्वसनीय अरुचि दिखाई देती है। जो साहचर्य उस समय दिखाई देता है जब मैं किसी खास उद्दीपन-बिंब[3] या उद्दीपन-विचार के बिना काम चलाता हूं, और अपने अभीष्ट साहचर्य के आकार-प्रकार का शायद वर्णन-मात्र कर देता हूं, तब साहचर्य में और भी अधिक स्वतन्त्रता होती है, उदाहरण के लिए, किसी आदमी से कहिए कि वह कोई व्यक्तिवाचक नाम या कोई संख्या सोचे। आप कहेंगे कि इस तरह का साहचर्य, हमारी विधि में प्रयुक्त साहचर्य की अपेक्षा अपनी पसंद के और भी अधिक अनुकूल होगा और इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकेगा। तो भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह मन की महत्त्वपूर्ण भीतरी अभिवृत्तियों[4] के ही ठीक-ठीक अनुसार होगा—ये अभिवृत्तियां क्रियाशील होने के समय हमारे लिए उतनी ही अज्ञात हैं, जितनी अज्ञात गलतियां पैदा करने वाली विघातक प्रवृत्तियां और वे प्रवृत्तियां वही हैं जो 'संयोगवश उत्पन्न' कहलाने वाली क्रियाएं पैदा करती हैं।

मैंने, और मेरे बाद अनेक व्यक्तियों ने बिना किसी विचार के पुकारे गए

---

१. Determinism २. Reflection ३. Stumulus-idea
४. Attitudes

चीज नहीं है; यह बहुत-से अवयवों का बना हुआ होता है। ऐसी अवस्था में हम किस साहचर्य पर भरोसा करें?'

सारे अनावश्यक पक्षों में आपकी बात सही है। यह सच है कि बोलने की गलती और स्वप्न में कई भेद हैं, जिनमें से एक यह है कि स्वप्न बहुत-से अवयवों से बना हुआ होता है। हमें अपनी विधि में उसका ध्यान रखना होगा। इसलिए मैं यह सुझाव रखता हूं कि हम स्वप्न को उसके अनेक अवयवों में बांट दें, और प्रत्येक अवयव पर अलग-अलग विचार करें। तब इसका और बोलने की गलती का फिर सादृश्य स्थापित हो जाएगा। आपका यह कहना भी सही है कि स्वप्न के एक-एक अवयव के बारे में पूछने पर स्वप्न देखनेवाला यह जवाब दे सकता है कि उसे उनके बारे में कुछ ध्यान नहीं है। कुछ उदाहरणों में हम यह उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, और मैं आगे चलकर आपको यह बताऊंगा कि वे कौन-से उदाहरण हैं। विचित्र बात यह है कि ये उदाहरण वे हैं जिनके बारे में हमारे अपने शायद कुछ सुनिश्चित विचार हैं, परंतु साधारणतया जब स्वप्न देखनेवाला यह कहता है कि उसका कोई विचार नहीं है, तब हम उसकी बात का विरोध करेंगे, जवाब देने के लिए उसपर जोर डालेंगे, उसे यह विश्वास दिलाएंगे कि उसके मन में अवश्य कुछ विचार हैं और हम देखेंगे कि हम सही कहते थे—वह कोई न कोई साहचर्य पेश करेगा। वह क्या है इससे हमें विशेष मतलब नहीं है। विशेष रूप से वह हमें ऐसी जानकारी देगा जिसे हम ऐतिहासिक कह सकते हैं। वह कहेगा, 'यह कुछ वैसी बात है जैसी कल हुई थी,' (जैसाकि ऊपर बताए गए दो 'भाव-हीन' स्वप्नों के उदाहरण में था) या 'इससे मुझे किसी ऐसी च
आता है जो हाल में ही हुई थी,' और इस तरह हम यह देख
स्वप्नों का संबंध उन प्रभावों से है जो एक दिन पहले के हैं
शुरू करके वह उन घटनाओं को दोहराएगा जो कुछ और
अंत में ऐसी घटनाएं भी बताएगा जो बहुत पहले की हैं।

परंतु मुख्य प्रश्न के बारे में आपका विचार गलत है।
कि यह मनमानी कल्पना है कि स्वप्न देखनेवाले का पहला
प्रकट कर देगा जिसकी हम तलाश में हैं, या कम से
जाएगा; साथ ही यह कल्पना भी, कि अधिक संभवत.
होगा, और उसका उस चीज से कोई संबंध नहीं होगा
हैं, और यदि मैं किसी और बात की आशा करता हूं
विश्वास ही अधिक होता है—तो आप बहुत भारी
यह संकेत कर चुका हूं कि मन की स्वतन्त्रता
हुआ विश्वास आपके मन में मौजूद है; मैं यह

...ीर संस्थाओं की परीक्षा की है। इनमें से कुछ परीक्षण प्रकाशित हुए हैं।
विधि यह है . जो नाम आया है, उससे साहचर्यों या संबंधों की एक शृंखला
हो जाती है, और अब ये साहचर्य, जैसाकि आप देखते हैं, सर्वथा मुक्त या
नहीं होते, बल्कि ठीक उतनी दूर तक जुड़े रहते हैं जितनी दूर तक साहचर्य
के विभिन्न अवयवों से जुड़े रहते हैं, अब यह साहचर्य-शृंखला तब तक कायम
जाती है जब तक आवेग से उत्पन्न विचार समाप्त न हो जाए। पर तब तक
किसी नाम के साथ होने वाले मुक्त साहचर्य के प्रेरक कारण और सार्थकता
स्पष्ट कर चुके होंगे। इन परीक्षणों से बार-बार वही परिणाम आता है; वे
सूचना देते हैं, उनमें प्रायः बहुत सारी सामग्री होती है, और इनमें इसके
भिन्न रूपों पर विचार के लिए दूर-दूर तक जाना पड़ता है। संख्याओं के स्वत
दा होने वाले साहचर्य शायद सबसे अधिक स्पष्ट प्रदर्शित होते हैं, वे एक-दूसरे
बाद इतनी तेज़ी से आते हैं, और एक छिपे हुए ध्येय की ओर इतनी आश्चर्य-
जनक निश्चलता से चलते हैं कि आदमी सचमुच हक्का-बक्का रह जाता है। मैं
आपको इस तरह के नाम-विश्लेषण का सिर्फ एक उदाहरण दूंगा, क्योंकि य:
ऐसा उदाहरण है जिसमें बहुत सारी सामग्री के झगड़े में नहीं पड़ना पड़ता।

एक बार मैं एक नौजवान का इलाज कर रहा था। तब मैंने इस विषय पर
बलपूर्वक यह कहा कि यद्यपि ऐसे मामलों में हमें पसंद या चुनाव की स्वतंत्रता
दिखाई देती है, तो भी तथ्यतः हम कोई ऐसा नाम नहीं सोच सकते जिसके बारे
में यह सिद्ध न किया जा सकता हो कि वह परीक्षण के पात्र व्यक्ति की तात्कालिक
परिस्थितियों, उसकी विलक्षणताओं, और उसकी उस क्षण की स्थिति से
निर्धारित है—उन मानसिक और बाहरी परिस्थितियों में यही नाम आना
है। उसे इस बात में संदेह था, इसलिए मैंने कहा कि तुम अभी स्वयं
करो। मैं जानता था कि स्त्रियों और लड़कियों के साथ वह अनेक
बंध रखता था; इसलिए मैंने उससे कहा कि मेरे ख्याल में, यदि आप
किसी स्त्री का नाम सोचेंगे तो आपको चुनाव करने के लिए बहुत
सकेंगे। उसने स्वीकार किया। मुझे और शायद स्वयं उसे भी
उसने स्त्रियों के नामों की झड़ी नहीं लगाई, बल्कि कुछ देर चुप
बाद उसने स्वीकार किया कि उसके मन में एक ही नाम आया
। "कैसी अजीब बात है! इस नाम से आप किस तरह संबद्ध
'अलवाइनों' को जानते हैं?" विचित्र बात थी कि वह अलवाइन
व्यक्ति को भी नहीं जानता था, और उस नाम से उसे कोई
सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता था। आप यह परिणाम निकालेंगे कि
विफल रहा; पर नहीं, यह पहले ही पूरा हो चुका है, और किसी अन्य
की आवश्यकता नहीं रह गई है। वह आदमी असाधारण रूप से गोरा

र सुन्दर था, और विश्लेषण में उससे बातचीत करते हुए मैंने हमी मे उसे
लविनो (महाश्वेत) कहा था; इसके अलावा हम उसके स्वभाव में स्त्रैण तत्त्व
ोजने में लगे हुए थे। इस प्रकार, यह स्त्री अलविनो वह स्वय ही था—उस
मय यही 'स्त्री' उसकी सबसे अधिक दिलचस्पी का विषय थी।

इसी प्रकार किसी आदमी के मन में एकाएक जो गाने की तर्जें आ जाती हैं
नके विषय मे यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी विचार-शृखला के कारण,
ो किसी अज्ञात कारण से उस समय उसके मन मे बिना उसके जानते हुए चल रही
ती है, वही तर्जें आनी अनिवार्य थी। यह प्रदर्शित करना आसान है कि तर्ज के
ाथ सम्बन्ध या तो गीत के शब्दों के कारण होता है, और या उसे पैदा करनेवाले
ोत के कारण। पर इतनी बात और कहना चाहता हू कि यह बात उन वस्तुत
गीतप्रेमी लोगों के बारे मे मैं ठीक नहीं मानता जिनके बारे में मुझे कोई विशेष
नुभव नहीं है; उनकी चेतना मे धुनों के एकाएक आने का कारण उनका संगीता-
त्मक महत्त्व हो सकता है। निश्चित रूप से पहली अवस्था अधिक आम होती है। मैं
क ऐसे नौजवान को जानता हू जिसके मन मे कुछ समय मे हेलन आफ ट्राय के
रिस के गीत की धुन (मानता हू कि वह मोहक थी) ही घूम रही थी; अन्त मे
श्लेषण में उसका ध्यान इस तथ्य की ओर खीचा गया कि उस समय उसकी
दिलचस्पी मे कोई 'ईडा' और कोई 'हेलेन' प्रतिद्वन्द्विता कर रही थी।

तो, यदि बिलकुल मुक्त या स्वतन्त्र रूप से पैदा होने वाले साहचर्य भी इस
कार नियत या निर्धारित होते हैं और किसी सुनिश्चित सिलसिले में बधे होते हैं,
ो हमारा यह नतीजा निकालना निश्चित रूप से उचित है कि एक ही उद्दीपन-
बिम्ब से जुड़े हुए साहचर्य भी इतने ही निश्चित रूप मे नियत होगे। जाच से यह
ता चलता है कि वे केवल उस उद्दीपन-बिम्ब से ही जुड़े हुए नहीं हैं जो हमने उनके
ामने रखा है, बल्कि वे प्रबल भावनायुक्त विचारों और अभिरुचियों के दायरों
र निर्भर भी हैं (इन दायरों को हम ग्रंथियां[1] कहते हैं) और इस समय इन दायरो,
अर्थात् अचेतन व्यापारों, के बारे मे कुछ भी ज्ञात नहीं है।

इस प्रकार जुड़े हुए साहचर्यों पर बड़े शिक्षाप्रद परीक्षण किए गए हैं जिन्होंने
नोविश्लेषण के इतिहास पर बड़ा उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। वुण्ट के विचार-
सम्प्रदाय वालों ने तथाकथित 'साहचर्य-परीक्षण' को जन्म दिया, जिसमे परीक्षण
े आश्रयभूत व्यक्ति से यह कहा जाता है कि वह दिए हुए 'उद्दीपन-शब्द' का,
जल्दी से जल्दी जो भी 'प्रतिक्रिया-शब्द' उसके मन में आए उससे, उत्तर दे। तब
निम्नलिखित बातें नोट करनी चाहिए: उद्दीपन-शब्द के कथन और प्रतिक्रिया-
शब्द के कथन के बीच कितना समय बीता; प्रतिक्रिया-शब्द की प्रकृति; और यही

1. Complexes

परीक्षण बाद में दोहराने पर उसमें दिखलाई पड़ी कोई भूल इत्यादि। ब्लूलर और युग के नेतृत्व में ज़्यूरिच सम्प्रदाय साहचर्य-परीक्षण की प्रतिक्रियाओं की व्याख्या पर पहुंचने के लिए परीक्षण के अधीन व्यक्ति से यह कहता था कि जो साहचर्य उसे ज़रा भी विशेषतायुक्त मालूम हों उनपर वह रोशनी डाले, अर्थात् यह बाद के साहचर्यों से प्रतिक्रियाओं की व्याख्या पर पहुंचता था। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो गया कि ये असामान्य प्रतिक्रियाएं पूरी तरह उस व्यक्ति की ग्रंथियों अर्थात् भावना-ग्रंथियों के अनुसार ही होती थीं। इस खोज द्वारा ब्लूलर और युग ने प्रायोगिक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के बीच पहला सम्बन्ध स्थापित किया।

यह सुन लेने के बाद आप कह सकते हैं, 'हम मानते हैं कि मुक्त या स्वतंत्र साहचर्य नियत होते हैं, और वे पसंद या चुनाव का विषय नहीं हैं, जैसाकि हमने पहले समझा था, और हम यह बात स्वप्न-अवयवों के साहचर्यों के बारे में भी स्वीकार करते हैं, पर हम इस चीज़ के बारे में परेशान नहीं हैं। आप कहते हैं कि स्वप्न के प्रत्येक अवयव का साहचर्य इस विशेष अवयव की किसी मानसिक पृष्ठभूमि द्वारा नियत किया हुआ है, और उस पृष्ठभूमि के बारे में हम कुछ नहीं जानते। हमें इसका कोई प्रमाण नहीं मिल सकता। स्वभावतः हम यह आशा करते हैं कि यह सिद्ध किया जा सकेगा कि स्वप्न-अवयव का साहचर्य स्वप्न देखने वाले की किसी भाव-ग्रन्थि के अनुसार नियत है, पर उसमें हमें क्या लाभ? उससे हमें स्वप्न को समझने में कोई मदद नहीं मिलती—उसमें हमें इन तथाकथित भाव-ग्रन्थियों की अवश्य जानकारी हो जाती है, जैसे साहचर्य-परीक्षण से हुई, पर इनका स्वप्न से क्या वास्ता है?'

आपका कहना सही है, पर आप एक महत्वपूर्ण बात पर नज़र नहीं डाल रहे हैं। यह वही बात है जिसके कारण मैंने इस बातचीत को साहचर्य-परीक्षण से शुरू नहीं किया। इस परीक्षण में उद्दीपक-शब्द जो प्रतिक्रिया को नियत करने वाली एकमात्र बात है, हम अपनी मर्ज़ी से चुनते हैं, और प्रतिक्रिया इस उद्दीपक-शब्द तथा परीक्षित व्यक्ति में उद्बोधित भाव-ग्रन्थि के बीच में रहती है। स्वप्न में, उद्दीपक शब्द के स्थान पर, स्वप्न देखने वाले के मानसिक जीवन से, अज्ञात स्रोतों से उत्पन्न हुई वस्तु आ जाती है, और इसलिए बहुत सम्भव है कि वह स्वयं-स्वयमेव किसी भाव-ग्रन्थि से उत्पन्न वस्तु हो। इसलिए यह कल्पना करना बिल्कुल निराधार नहीं है कि स्वप्न के अवयवों से सम्बन्धित अन्य साहचर्य उस [illegible] के अलावा और किसी द्वारा नियत नहीं किए जाते जिससे वह विशेष हुआ है, और उन अवयवों में उस भाव-ग्रन्थि की खोज की

और जिससे यह सिद्ध हो सकता है कि स्वप्नों के

दाहरणो मे तथ्यों से हमारी आशाओ की पुष्टि होती है। स्वप्न-विश्लेषण मे ो कुछ होता है, उसका सचमुच बडा उत्तम प्रतिरूप है व्यक्तिवाचक नामो को भूलना—अन्तर इतना है कि व्यक्तिवाचक नामो को भूलने में सिर्फ एक ही व्यक्ति से सबध होता है, जबकि स्वप्नो का अर्थ लगाने मे दो व्यक्ति होते हैं। जब मैं कुछ समय के लिए कोई नाम भूल जाता हू, तब भी मुझे यह निश्चय होता है कि मैं इसे जानता हू। बर्नहीम के परीक्षण के बाद, अब हम स्वप्न देखने वाले के मामले मे भी इतने ही निश्चित हो सकते हैं। जो नाम मैं भूल गया हू, पर असल मे जानता हू, वह मेरी पकड मे नहीं आता। अनुभव से मुझे जल्दी ही पता चल जाता है कि मैं इसके बारे मे कितना ही और कितने ही प्रयत्न से सोचू, पर कोई लाभ नहीं। परन्तु मैं भूले हुए नाम के स्थान पर कोई और या अनेक अन्य नाम सदा सोच सकता हू। जब कोई ऐसा स्थानापन्न नाम आपसे-आप मेरे मन में आता है, तभी इस स्थिति और स्वप्न-विश्लेषण की स्थिति के बीच समानता स्पष्ट होती है। जो चीज़ मैं वास्तव मे तलाश कर रहा हू, वह स्वप्न-अवयव भी नहीं है ; वह किसी और चीज़ की, उस यथार्थ चीज़ की, जिसे मैं नहीं जानता और जिसे मैं स्वप्न-विश्लेषण द्वारा खोजने की कोशिश कर रहा हू, स्थानापन्न-मात्र है। फिर, यह अन्तर है कि जब मैं कोई नाम भूल जाता हू, तब बिलकुल अच्छी तरह यह जानता हू कि स्थानापन्न नाम सही नाम नहीं है, जबकि स्वप्न-अवयव के इस रूप पर पहुचने मे हमे लम्बी जाच-पडताल करनी पडी। तो, ऐसा भी एक तरीका है जिसमे कोई नाम भूल जाने पर हम उसके स्थानापन्न से शुरू करके उस पदार्थ वस्तु पर पहुच सकते हैं जो उस समय हमारी चेतना की पकड मे नहीं आ रही थी, अर्थात् हम भूले हुए नाम का पता लगा सकते हैं। यदि मैं इन स्थानापन्न नामो की ओर ध्यान दू और साहचर्य अपने मन मे आने दू तो थोडी या अधिक देर मे मैं भूले हुए नाम पर पहुच जाता हू, और ऐसा करते हुए मैं देखता हू कि मैंने जो स्थानापन्न आपसे-आप पेश किए हैं, उनका भूले हुए नाम से सुनिश्चित सम्बन्ध था, और उस भूले हुए नाम ने ही ये स्थानापन्न नियत या निश्चित किए थे।

मैं आपको इस तरह के विश्लेषण का एक उदाहरण दूगा। एक दिन मैंने यह देखा कि मुझे रिविएरा पर बसे हुए उस छोटे-से देश का नाम याद नहीं आ रहा था जिसकी राजधानी मोण्ट कार्लो है। मैं बड़ा परेशान हुआ, पर उपाय क्या था ? मैंने उस देश के विषय में अपनी सारी जानकारी मे गोता लगाया। मैंने लुसिगनान घराने के प्रिंस एल्बर्ट की, उसके विवाहो की, और गहरे समुद्र की खोज में उसकी विशेष दिलचस्पी की, यहा तक कि जो कुछ मेरे दिमाग में आ सका उस सबकी बात सोची, पर सब बेकार रहा। अब मैंने सोचने की कोशिश करना छोड़ दिया और जो नाम मैं सोच रहा था, उसके बजाय मैंने

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो परिणाम प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-निर्वचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है : यह अपने-आपमें कोई मूल और सारभूत चीज नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी और चीज की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की तरह, अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज का स्थानापन्न है जिसका ज्ञान स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस ज्ञान तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें ऐसे कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन में। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में खास स्वप्न-अवयवों

---

१. Substitute-ideas २ Precise ३. Unconscious यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व आश्रयभूत व्यक्ति को भी अज्ञात है।

नापन्न नाम अपने मन मे आने दिए । ये जल्दी-जल्दी आते गए। स्वयं मो
र्लो, फिर पीडमोण्ट, अलबानिया, मोण्टीवीडियो, कोलिको । सबसे पहले अल-
बानिया की ओर मेरा ध्यान गया, फिर तुरन्त इसके स्थान पर मोण्टीनीग्रो आ
गया । सम्भवत इसका कारण काले और सफेद का वैषम्य था । तब मैंने देखा
कि स्थानापन्न नामो में से चार में एक ही अक्षर 'मोन' है और मुझे तुरन्त भूला
हुआ नाम याद आ गया और मैं चिल्ला पड़ा, 'मोनाको !' आप देख रहे हैं कि
स्थानापन्नो का जन्म वास्तव मे उस भूले हुए नाम से ही हुआ था—पहले चार शब्द
उसके पहले अक्षर से बने थे, और अंतिम शब्द मे अक्षरो का क्रम था और पूरे
का पूरा अंतिम अक्षर । प्रसगत, यह भी बता दू कि मुझे बडी आसानी से यह
समझ में आ गया कि मैं वह नाम क्यो भूला था । मोनाको म्युनिख का इटालियन
नाम है, और इस नगर के साथ सम्बन्धित कुछ विचारो ने ही निरोधक का कार्य
किया था ।

यह बडा सुन्दर उदाहरण है, और बहुत सादा व सरल है । और उदाहरणों
में आपको स्थानापन्न नाम के साहचर्यों की अधिक लम्बी श्रेणी लेनी पड़ सकती
है, और तब स्वप्न-विश्लेषण से इसका सादृश्य स्पष्ट हो जाएगा। मुझे इस तर
के भी कुछ अनुभव हो चुके हैं । एक बार एक अपरिचित व्यक्ति ने मुझे अपने
साथ इटालियन शराब पीने के लिए कहा और शराबघर में पहुचने पर उसने
देखा कि वह जिस शराब को बड़ी सुखद स्मृतियो के कारण उसका आर्डर देना
चाहता था, उसका नाम वह भूल गया है । उसके मन में कुछ असदृश स्थानापन्न
नाम आए, और इनसे मैं यह अनुमान लगा सका कि हेडविग नामक किसी व्यक्ति
के विचार ने उसे शराब का नाम भुला दिया है । अब उसने मुझे न केवल यह
ही बताया कि जब उसने पहली बार वह शराब चखी थी, तब हेडविग नाम का
व्यक्ति उसके साथ था, बल्कि इस ज्ञान ने उसे अपना अभीष्ट नाम भी फिर
याद दिला दिया । अब वह विवाह करके सुख से रह रहा था । हेडविग उसके
पुराने दिनो से सबध रखता था, जिन्हे अब वह याद नही करना चाहता ।

जो बात भूले हुए नामो के बारे मे सम्भव है, वह स्वप्नो के अर्थ लगाने में
भी सम्भव होनी चाहिए । स्थानापन्न से शुरू करके हमे साहचर्यों की शृखला
द्वारा अपनी खोज के पदार्थ उद्देश्य पर भी पहुंच सकना चाहिए । और भूले
हुए नामों में जो कुछ हुआ उसीको युक्ति बनाकर आगे बढ़ें तो हम यह मा
सकते हैं कि स्वप्न-अवयवो के साहचर्य सिर्फ उस अवयव द्वारा ही नियत न
होने, बल्कि उस यथार्थ विचार द्वारा भी नियत होते हैं जो चेतना में नहीं है
यदि हम यह कर सकते तो अपनी विधि का औचित्य सिद्ध करने की दिशा
कुछ आगे बढ गए होते ।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो परिणाम प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-निर्वचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है : यह अपने-आपमें कोई मूल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी और चीज़ की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की तरह, अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका ज्ञान स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप में मौजूद है पर वह उस ज्ञान तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें ऐसे कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनमें हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन में। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में खास स्वप्न-अवयवों

---

१. Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious. यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व अप्रमुख व्यक्ति को भी अज्ञात है।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

ाप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है।
ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो
र प्राप्त हुए हैं : स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-
ा की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है : यह अपने-आपमें
ल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी
ीज़ को, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की
अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका
स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस
क पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें
ई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि
स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं,
न अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।
अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार
के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच
हर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन
चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के
', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले
ब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय
न में। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में साम स्वप्न-अवयवों

---

१ Substitute-ideas २. Precise ३ Unconscious. यहां अचेतन शब्द
में है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व
भूत व्यक्ति को भी अज्ञात है।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो ˆ गम प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-ˈवेचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है यह अपने-आपमें ˢ मूल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी चीज़ को, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की , अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका । स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस न तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें ,से कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन में। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में सारे स्वप्न-अवयवों

---

१. Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious. यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व आत्मप्रभूत चेतन को भी अज्ञात है।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमे, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो [illegible]म प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-[illegible]वेचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है. यह अपने-आपमें [illegible] मूल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी चीज़ की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की [illegible], अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका [illegible] स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस [illegible]न तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमे [illegible]से कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनमे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच से बाहर' या 'स्वय विचार' शब्दों के स्थान पर हमे अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इसमे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन मे। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले मे खास स्वप्न-अवयवों

---

१ Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious. यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व आत्मभूत व्यक्ति को भी अज्ञात है।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो परिणाम प्राप्त हुए हैं . स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-र्वचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है · यह अपने-आपमे मूल और सारभूत चीज नही है, यह 'स्वय विचार' नही है बल्कि किसी चीज की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की , अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज का स्थानापन्न है जिसका । स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस न तक पहुच नही पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमे से कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवो के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हू कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमे अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन मे। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले मे खास स्वप्न-अवयवो

---

१ Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious यहा अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व आश्रयभूत व्यक्ति को भी अज्ञात है।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो नियम प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-व्याख्यान की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है यह अपने-आपमें मूल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वय विचार' नही है बल्कि किसी चीज़ की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की भांति अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि इन स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, मूल अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन में। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में खास स्वप्न-अवयवों

---

१ Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व स्वप्नद्रष्टा व्यक्ति को भी अज्ञात है।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो परिणाम प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-र्वचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है यह अपने-आपमें ई मूल और सारभूत चीज नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी चीज की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की , अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज का स्थानापन्न है जिसका । स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस न तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें से कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन में। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में सारे स्वप्न-अवयवों

---

१. Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व आधारभूत व्यक्ति को भी अज्ञात है।

व्याख्यान ७

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो ... प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-... की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है : यह अपने-आपमें मूल और सारभूत चीज नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी चीज की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की ... अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज का स्थानापन्न है जिसका ... स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस ... न तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें ... से कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुंच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन में। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में खास स्वप्न-अवयवों

---

१. Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व ... व्यक्ति को भी अज्ञात है।

स्थानापन्न नाम अपने मन में आने दिए । ये जल्दी-जल्दी आते गए । स्वयं मोण्ट कार्लो, फिर पीडमौण्ट, अलबानिया, मोण्टीवीडियो, कोलिको । सबसे पहले अल-बानिया की ओर मेरा ध्यान गया, फिर तुरन्त इसके स्थान पर मोण्टीनीग्रो आ गया । सम्भवत इसका कारण काले और सफेद का वैषम्य था । तब मैंने देखा कि स्थानापन्न नामों में से चार में एक ही अक्षर 'मोन' है और मुझे तुरन्त भूला हुआ नाम याद आ गया और मैं चिल्ला पडा, 'मोनाको !' आप देख रहे हैं कि स्थानापन्नो का जन्म वास्तव मे उस भूले हुए नाम से ही हुआ था—पहले चार शब्द उसके पहले अक्षर से बने थे, और अंतिम शब्द में अक्षरो का क्रम था और पूरे का पूरा अंतिम अक्षर । प्रसगत, यह भी बता दू कि मुझे बडी आसानी से यह समझ मे आ गया कि मै वह नाम क्यो भूला था । मोनाको म
नाम है, और इस नगर के साथ सम्बन्धित कुछ विचारो
किया था ।

यह बडा सुन्दर उदाहरण है, और बहुत सादा
मे आपको स्थानापन्न नाम के साहचर्यों की अधिक
है, और तब स्वप्न-विश्लेषण से इसका सादृश्य
के भी कुछ अनुभव हो चुके हैं । एक बार एक अर्पा
साथ इटालियन शराब पीने के लिए कहा और
देखा कि वह जिस शराब को बडी सुखद स्मृतियो के क
चाहता था, उसका नाम वह भूल गया है । उसके मन मे कुछ नाम आए, और इनमे मैं यह अनुमान लगा सका कि हेडविग नामक के विचार ने उसे शराब का नाम भुला दिया है । अब उसने मुझे न केवल यह ही बताया कि जब उसने पहली बार वह शराब चखी थी, तब हेडविग नाम का व्यक्ति उसके साथ था, बल्कि इस ज्ञान ने उसे अपना अभीष्ट नाम भी फिर याद दिला दिया । अब वह विवाह करके सुख से रह रहा था । हेडविग उसके पुराने दिनो से सबध रखता था, जिन्हे अब वह याद नही करना चाहता ।

जो बात भूले हुए नामो के बारे में सम्भव है, वह स्वप्नो के अर्थ लगाने में भी सम्भव होनी चाहिए । स्थानापन्न से शुरू करके हमें साहचर्यों की शृंखला द्वारा अपनी खोज के पदार्थ उद्देश्य पर भी पहुच सकना चाहिए । और भूले हुए नामो में जो कुछ हुआ उसीको युक्ति बनाकर आगे बढें तो हम यह मान सकते हैं कि स्वप्न-अवयवो के साहचर्य सिर्फ उस अवयव द्वारा ही नियत नहीं होते, बल्कि उस यथार्थ विचार द्वारा भी नियत होते हैं जो चेतना में नहीं है। यदि हम यह कर सकते तो अपनी विधि का औचित्य सिद्ध करने की दिशा में कुछ आगे बढ गए होते ।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो परिणाम प्राप्त हुए हैं : स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-विवेचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है : यह अपने-आपमें मूल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी चीज़ की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की भाँति, अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका ज्ञान स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस ज्ञान तक पहुँच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें ऐसे कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते है, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ', 'पहुँच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुँच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या गलतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् उस समय अचेतन से। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में खास स्वप्न-अवयवों

---

१. Substitute-ideas २ Precise ३ Unconscious. यहाँ अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व व्यक्ति को भी अज्ञात है।

स्थानापन्न नाम अपने मन में आने दिए। वे जल्दी-जल्दी आते गए। स्वयं मोण्ट कार्लो, फिर पीडमौण्ट, अलबानिया, मोण्टीवीडियो, कोलिको। सबसे पहले अलबानिया की ओर मेरा ध्यान गया, फिर तुरन्त इसके स्थान पर मोण्टीनीग्रो आ गया। सम्भवत इसका कारण काले और सफेद का वैषम्य था। तब मैंने देखा कि स्थानापन्न नामों में से चार में एक ही अक्षर 'मोन' है और मुझे तुरन्त भूला हुआ नाम याद आ गया और मैं चिल्ला पड़ा, 'मोनाको!' आप देख रहे हैं कि स्थानापन्नों का जन्म वास्तव में उस भूले हुए नाम से ही हुआ था—पहले चार शब्द उसके पहले अक्षर से बने थे, और अंतिम शब्द में अक्षरों का क्रम था और पूरे का पूरा अंतिम अक्षर। प्रसंगत, यह भी बता दू कि मुझे बड़ी आसानी से यह समझ में आ गया कि मैं वह नाम क्यों भूला था। मोनाको म
नाम है, और इस नगर के साथ सम्बन्धित कुछ विचारों
किया था।

यह बड़ा सुन्दर उदाहरण है, और बहुत सादा
में आपको स्थानापन्न नाम के साहचर्यों की अधिक
है, और तब स्वप्न-विश्लेषण से इसका साहश्य
के भी कुछ अनुभव हो चुके हैं। एक बार एक अपर्
साथ इटालियन शराब पीने के लिए कहा और
देखा कि वह जिस शराब को बड़ी सुखद स्मृतियों के
चाहता था, उसका नाम वह भूल गया है। उसके मन में कुछ
नाम आए, और इनसे मैं यह अनुमान लगा सका कि हेडविग नामक
के विचार ने उसे शराब का नाम भुला दिया है। अब उसने मुझे न केवल यह ही बताया कि जब उसने पहली बार वह शराब चखी थी, तब हेडविग नाम का व्यक्ति उसके साथ था, बल्कि इस ज्ञान ने उसे अपना अभीष्ट नाम भी फि याद दिला दिया। अब वह विवाह करके सुख से रह रहा था। हेडविग उसके पुराने दिनों से सबध रखता था, जिन्हें अब वह याद नहीं करना चाहता।

जो बात भूले हुए नामों के बारे में सम्भव है, वह स्वप्नों के अर्थ लगाने में भी सम्भव होनी चाहिए। स्थानापन्न से शुरू करके हमें साहचर्यों की शृंखला द्वारा अपनी खोज के पदार्थ उद्देश्य पर भी पहुंच सकना चाहिए। और भूले हुए नामों में जो कुछ हुआ उसीको युक्ति बनाकर आगे बढ़ें तो हम यह मान सकते हैं कि स्वप्न-अवयवों के साहचर्य सिर्फ उस अवयव द्वारा ही नियत नहीं होते, बल्कि उस यथार्थ विचार द्वारा भी नियत होते हैं जो चेतना में नहीं है। यदि हम यह कर सकते तो अपनी विधि का औचित्य सिद्ध करने की दिशा में कुछ आगे बढ़ गए होते।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो परिणाम प्राप्त हुए हैं स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-निर्वचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है: यह अपने-आपमें कोई मूल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी और चीज़ की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, गलती के पीछे छिपे हुए आशय की तरह, अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका ज्ञान स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस ज्ञान तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें ऐसे कई अवयव होते हैं, लागू करने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि

है,

को और साहचर्य के प्रक्रम से प्राप्त स्थानापन्न-मनोबिंबों को चेतन कह सकते हैं। इन शब्दों में अभी तक कोई और सिद्धान्त-सम्बन्धी विशेष ध्वनि नहीं है। 'अचेतन' शब्द का प्रयोग करने पर, जो वर्णन की दृष्टि से उपयुक्त भी है और समझने में भी आसान है, कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

अब अपने अवधारण को एक अवयव से पूरे स्वप्न पर लाने पर यह बात निकलती है कि पूरा स्वप्न किसी और चीज़ का, किसी अज्ञात या अचेतन वस्तु का, विपर्यस्त अर्थात् बिगड़ा हुआ स्थानापन्न है, और कि स्वप्न का अर्थ लगाने में हमें इन अचेतन या अज्ञात विचारों को खोजना है। इससे तीन महत्वपूर्ण नियम निकलते हैं, जिनका स्वप्न का अर्थ लगाते हुए पालन करना चाहिए :

१ *हमें स्वप्न के ऊपरी अर्थ से नहीं उलझना है*, चाहे वह तर्कसंगत हो या बेतुका, स्पष्ट हो या मिला-जुला अस्पष्ट। किसी भी सूरत में उन्हें वे अचेतन विचार नहीं समझा जा सकता जिन्हें हम खोज रहे हैं। इस नियम की एक स्पष्ट समझने में आने वाली सीमा आगे स्वयं हमारी समझ में आ जाएगी।

२ हमें सिर्फ इतना ही करना है कि प्रत्येक अवयव के लिए स्थानापन्न मनोबिम्ब लाएं, या आने दें; हमें उनपर विचार नहीं करना है और न यह देखने की कोशिश करनी है कि उनमें कोई जंचने वाली चीज़ है या नहीं, और न इस *झगड़े में पड़ना है कि वे हमें स्वप्न-अवयव से कितनी दूर ले जा रहे हैं।*

३ हमें तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक छिपे हुए अचेतन विचार, जिन्हें हम खोज रहे हैं, आपसे-आप न प्रकट हो जाएं, जैसा कि ऊपर बताए गए परीक्षण में भूले हुए शब्द 'मोनाको' के बारे में हुआ था।

अब हम यह भी समझते हैं कि यह बात कितनी महत्वहीन है कि हमें स्वप्न के बारे में कम याद है या अधिक, और उससे भी बढ़कर यह कि हमें वह ठीक-ठीक याद है या नहीं। स्वप्न जिस रूप में याद है, उस रूप में वह बिलकुल ही यथार्थ चीज़ नहीं है, बल्कि एक विपर्यस्त स्थानापन्न है, अर्थात् उसके स्थान पर बिगड़े हुए रूप में मौजूद कोई और चीज़ है जो दूसरे स्थानापन्न मनोबिम्बों को वहां लाकर हमें असली विचार के पास पहुंचाने का एक साधन बनती है, स्वप्न के पीछे मौजूद अचेतन विचारों को चेतना में लाने का एक उपाय बनती है। अगर हमारा स्मरण दोषपूर्ण था तो इतना ही हुआ है कि *स्थानापन्न* और विपर्यस्त हो गया है और यह विपर्यास भी बिना किसी प्रेरक कारण के नहीं हो सकता।

हम दूसरों के स्वप्नों की तरह अपने स्वप्नों का भी अर्थ लगा सकते हैं। असल में तो, हम अपने स्वप्नों से अधिक सीख सकते हैं, और उससे हमें अधिक पक्का निश्चय होता है। अब, यदि हम इस दिशा में परीक्षण करें तो हम देखते हैं कि कोई चीज़ हमारे विरुद्ध कार्य कर रही है। यह सच है कि साहचर्य आते हैं, पर

म उन सबको ग्रहण नहीं करते। हम उनकी आलोचना करके छटाई कर देते हैं। म एक साहचर्य के बारे में अपने-आपसे कहते हैं, 'नहीं, यह यहां नहीं जचता, ह अप्रासंगिक है,' और दूसरे के बारे में कहते हैं, 'यह बिल्कुल बेतुका है,' और तीसरे के बारे में कहते हैं, 'यह असली बात से बिल्कुल मेल नहीं खाता।' और तब हम यह भी देख सकते हैं कि ऐसे एतराज करने में हम साहचर्यों के री तरह स्पष्ट होने से पहले ही उनका गला घोट देते हैं और अन्त में उन्हें बिलकुल आने से ही रोक देते हैं। इस ओर तो हम आरम्भिक मनोबिम्ब को अर्थात् स्वय स्वप्न-अवयव को, कसकर पकड़े रहने की ओर झुकते हैं, और दूसरी ओर छटाई करके हम मुक्त या स्वतन्त्र साहचर्य के प्रक्रम के परिणामों को दूषित कर देते हैं। यदि हम स्वय अर्थ लगाने की कोशिश नहीं कर रहे हैं, बल्कि किसी और को अर्थ लगाने का मौका दे रहे हैं, तो हमें स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि इस छटाई के लिए हमें प्रेरित करने वाला एक और प्रेरक कारण है क्योंकि हम जानते हैं कि इसमें छटाई पर रोक है। कभी-कभी हम अपने को यह सोचता हुआ पाते हैं, 'नहीं, यह साहचर्य बहुत अप्रिय है, यह मैं उसे नहीं बता सकता, या नहीं बताऊंगा।'

स्पष्ट है कि इन आक्षेपों से हमारे काम की सफलता सदिग्ध हो जाने का खतरा है। हमें अपने स्वप्नों का अर्थ लगाते हुए इनसे बचे रहना चाहिए और इनके सामने न झुकने का पक्का इरादा कर लेना चाहिए, और किसी दूसरे के स्वप्नों का अर्थ लगाते हुए यह निश्चित नियम लागू करके उनसे वचना चाहिए कि वे किसी साहचर्य को न रोकें, चाहे उसके विरुद्ध ऊपर बताई गई चार आपत्तियों में से कोई भी पैदा होती हो, अर्थात् कि यह बिलकुल महत्त्वहीन है, बहुत बेतुका है, बिलकुल अप्रासंगिक है या बड़ा अप्रिय है। वह इस नियम का पालन करने का वचन देता है। पर, फिर भी, हमें यह देखकर परेशानी हो सकती है कि वह अपने वचन को बाद में कितने अधूरे ढंग से पूरा करता है। पहले तो हम इसका कारण यह समझते हैं कि हमारे पक्के आश्वासन के बाद भी उसे यह भरोसा नहीं है कि मुक्त या स्वतन्त्र साहचर्य के प्रक्रम से होने वाले परिणाम मुक्त साहचर्य को उचित सिद्ध कर सकेंगे, और शायद हमारा अगला विचार यह होगा कि पहले उसे अपने सिद्धान्त का पक्षपाती बनाएं, उसे पढ़ने के लिए पुस्तकें दें या व्याख्यानों में भेजें जिससे वह इस विषय पर हमारे विचारों का हो जाए। पर हम देखेंगे कि कुछ साहचर्यों के विरुद्ध वही आलोचना-भरे आक्षेप हमारे अपने अन्दर भी आएंगे जिनपर हम निश्चय ही, अश्रद्धालु होने का सन्देह नहीं कर सकते, और वे आक्षेप बाद में ही, मानो पुनर्विचार करने पर, हट जाते हैं और इस तरह हम कोई गलत कदम उठाने से बच जाएंगे।

की और साहचर्य के प्रक्रम से प्राप्त स्थानापन्न-मनोबिंबों को चेतन बह सकते हैं। इन शब्दों में अभी तक कोई और सिद्धान्त-सम्बन्धी विशेष ध्वनि नहीं है। 'अचेतन' शब्द का प्रयोग करने पर, जो *वर्णन की दृष्टि से उपयुक्त भी है* और समझने में भी आसान है, कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

अब अपने अवधारण को एक अवयव से पूरे स्वप्न पर लाने पर यह बात निकलती है कि पूरा स्वप्न किसी और चीज का, किसी अज्ञात या अचेतन वस्तु का, विपर्यस्त अर्थात् *बिगड़ा हुआ स्थानापन्न है,* और *कि स्वप्न का अर्थ लगाने* में हमें इन अचेतन या अज्ञात विचारों को खोजना है। इससे तीन महत्वपूर्ण नियम निकलते हैं, जिनका स्वप्न का अर्थ लगाते हुए पालन करना चाहिए

१. हमें स्वप्न के ऊपरी अर्थ से नहीं उलझना है, चाहे वह तर्कसंगत हो या बेतुका, स्पष्ट हो या मिला-जुला अस्पष्ट। किसी भी सूरत में उन्हें वे अचेतन विचार नहीं समझा जा सकता जिन्हें हम खोज रहे हैं। इस नियम की एक स्पष्ट समझने में आने वाली सीमा आगे स्वयं हमारी समझ में आ जाएगी।

२. हमें सिर्फ इतना ही करना है कि प्रत्येक अवयव के लिए स्थानापन्न मनोबिम्ब लाएं, या आने दें; हमें उनपर विचार नहीं करना है और न यह देखने की कोशिश करनी है कि उनमें कोई जंचने वाली चीज है या नहीं, और न इस झगड़े में पड़ना है कि वे हमें स्वप्न-अवयव से कितनी दूर ले जा रहे हैं।

३. हमें तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक छिपे हुए अचेतन विचार, जिन्हें हम खोज रहे हैं, आपसे-आप न प्रकट हो जाएं, जैसाकि ऊपर बताए गए परीक्षण में भूले हुए शब्द 'मोनाको' के बारे में हुआ था।

अब हम यह भी समझते हैं कि यह बात कितनी महत्वहीन है कि हमें स्वप्न के बारे में कम याद है या अधिक, और उससे भी बढ़कर यह कि हमें वह ठीक-ठीक याद है या नहीं। स्वप्न जिस रूप में याद है, उस रूप में वह बिलकुल ही यथार्थ चीज नहीं है, बल्कि एक विपर्यस्त स्थानापन्न है, अर्थात् उस स्थान पर बिगड़े हुए रूप में मौजूद कोई और चीज है जो दूसरे मनोबिम्बों को वहां लाकर हमें असली विचार के पास पहुंचाने का एक बनती है, स्वप्न के पीछे मौजूद अचेतन विचारों को चेतना में लाने उपाय बनती है। अगर हमारा स्मरण दोषपूर्ण था तो इतना ही हु स्थानापन्न और विपर्यस्त हो गया है और यह विपर्यास भी बिना कारण के नहीं हो सकता।

हम दूसरों के स्वप्नों की तरह अपने स्वप्नों का भी अर्थ अमल में तो, इन अपने स्वप्नों में अधिक चीज मिलते हैं, परा निश्चय होता है। अब, यदि हम इस दिशा में पर कि कोई चीज हमारे विरुद्ध कार्य कर रही है। यह सच है

अर्थ यह है कि मैं फ्रांस को भव्य और इग्लैंड को हास्यास्पद समझता हूं। निस्सन्देह 'पा-द-कैले' एक नहर है, अर्थात् कनाल ला माच (Canal-la-Manche) अर्थात् इगलिश चैनल। अब आप पूछेंगे कि क्या मेरे ख्याल में इस साहचर्य का स्वप्न से कोई सम्बन्ध है। निश्चित रूप से मेरा यही ख्याल है। इससे उस स्वप्न-अवयव की पहेली का सच्चा अर्थ पता चल जाता है। या आप इस बात पर सन्देह करते हैं कि वह मज़ाक स्वप्न से पहले मौजूद था और यही नहर-अवयव के पीछे मौजूद अचेतन विचार था, और यह मानते हैं कि यह बाद में गढ़ा गया ? यह साहचर्य अतिरंजित प्रशंसा के पीछे छिपी हुई सन्देहवृत्ति को प्रकट करता है, और निस्सन्देह प्रतिरोध के कारण ही मैं यह साहचर्य इतनी देर बाद ध्यान आया, तथा सम्बन्धित स्वप्न-अवयव अस्पष्ट दिखाई दिया। यहां स्वप्न-अवयव और उसके पीछे मौजूद अचेतन विचार के सम्बन्ध को देखिए—यह मानो उस विचार का एक टुकड़ा ही है, उसका ही निर्देश है। उस तरह बिलकुल अलग हो जाने पर यह बिलकुल समझ में आने लायक नहीं रहा था।

(ग) एक मरीज़ को काफी लम्बा स्वप्न आया जिसका कुछ हिस्सा इस तरह था : उसके परिवार के कई लोग एक खास शक्ल की मेज़ पर बैठे थे" इत्यादि। इस मेज़ ने स्वप्न देखने वाले को उसी तरह की एक मेज़ की याद दिलाई जो उसने किसी दूसरे परिवार में देखी थी। उससे उसके विचार इस तरह दौड़ने लगे : उसके परिवार में पिता और पुत्र का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार का था और रोगी ने तभी यह भी कहा कि अपने पिता के साथ मेरे सम्बन्ध भी उसी तरह के थे। इस प्रकार स्वप्न में मेज़ यह सादृश्य दिखाने के लिए आई थी।

बात यह थी कि इस स्वप्नद्रष्टा को स्वप्न-निर्वचन की अपेक्षाओं का बहुत समय से परिचय था, अन्यथा वह मेज़ की शक्ल जैसी तुच्छ बात पूछे जाने पर एतराज़ करने लगता। हम इस बात से पूरी तरह इन्कार करते हैं कि स्वप्न में कोई चीज़ अप्रधान या बेमतलब होती है, और ऐसी तुच्छ और (ऊपर से देखने में) कारणहीन बारीकियों की पूछताछ करके ही हम अपने नतीजे पर पहुंचने की आशा करते हैं। आप शायद अब भी आश्चर्य करेंगे कि स्वप्न ने यह विचार प्रकट करने के लिए कि 'हमारा सम्बन्ध ठीक उनके सम्बन्ध जैसा है,' मेज़ को चुना। इसकी भी तब व्याख्या हो सकती है जब आपको यह पता चले कि इस परिवार का नाम 'टिशलर' था (टिश—मेज़, शाब्दिक रूपान्तर 'मेज़िए' अर्थात् मेज़ वाले हो सकता है)। अपने रिश्तेदारों को मेज़ पर बिठाने में स्वप्न-द्रष्टा का आशय यह था कि वे भी टिशलर या मेज़िए थे। एक बात और देखिए कि इस तरह के स्वप्न-निर्वचन सुनाने में आदमी को विवेक छोड़ना पड़ता है। यह उसी तरह की कठिनाई है जिसका मैंने उदाहरण छांटने के सामने में ज़िक्र किया था। मैं आपको इसकी जगह कोई और उदाहरण आसानी से दे

कोशिश की जाए, हम सिर्फ एक स्वप्न-अवयव पर विचार करें और कई उदाह
लेकर यह पता लगाएं कि हमारी विधि के प्रयोग से उनकी व्याख्या कैसे होती

(क) एक महिला ने बताया कि बचपन में उसे यह स्वप्न बहुत बार आ
कि ईश्वर अपने सिर पर कागज की नोकदार टोपी पहने हुए है। आप इसे
देखने वाले की मदद के बिना कैसे समझेंगे ? यह बिलकुल अर्थहीन बात
होती है। पर यह महिला यह बताती है कि बचपन में भोजन के समय मैं
पर वैसी ही टोपी रखा करती थी क्योंकि मेरी यह आदत नहीं छूटी थी
अपने भाइयों और बहनों की थालियों में यह देखने के लिए ताकती रही
से किसी को मुझसे अधिक तो नहीं मिला। स्पष्ट है कि उस टोपी का प्रयो
बन्द करना था। यह ऐतिहासिक जानकारी बिना किसी कठिनाई के हासि
है। इस अवयव का और इसके साथ सारे छोटे-से स्वप्न का अर्थ स्वप्न
और साहचर्य की मदद से बिलकुल आसान हो जाता है, 'मुझे बता
कि ईश्वर सब कुछ जानता है और सब कुछ देखता है; इसलिए स्वप्न
हो सकता था कि उनके रोकने की कोशिश के बावजूद मैं भी ईश्वर
कुछ जानती और देखती हूं।' शायद यह उदाहरण बहुत सरल है

(ख) एक सन्देही रोगिणी को एक लम्बा स्वप्न आया जिसमें
मेरी बुद्धि या सूझ (Wit) सम्बन्धी पुस्तक के बारे में बता रहे
बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। इसके बाद कोई और चीज नहर के
शायद यह कोई और पुस्तक हो जिसमें नहर शब्द आया है
चीज हो जिसका नहर से सम्बन्ध हो—उसे मालूम नहीं
अस्पष्ट था।

अब आप निश्चित रूप से यह कल्पना करने लगेंगे कि
वाली नहर का अस्पष्टता के कारण अर्थ लगाना बड़ा कठि
होने के बारे में तो आपका विचार ठीक है, पर कठिनाई
नहीं पैदा हुई है, इसके विपरीत, अर्थ लगाने की कठिना
है—यह ... अवयव को अ
... था

पर पढ़ने के बारे में कुछ याद नहीं है। इसके बजाय, उसके
कि उसका कोई परिचित व्यक्ति धरती के सबसे अधिक दूर
सम्बन्धों के विषय मे एक समीक्षा (Rundschau) प्रकाशि
लिए गुप्त विचार यह है जिसमें स्वप्न देखने वाला स्वयं
अच्छी तरह देखने वाला) बन जाता है।

यहां आपको स्वप्न के व्यक्त और गुप्त अवयव के बीच
सम्बन्ध का पता चलता है। व्यक्त अवयव गुप्त अवयव का वि
बल्कि उसका निरूपण है—यह कल्पना का एक वैसा ही ठोस चित्र
शब्द की ध्वनि से पैदा होता है। यह सच है कि यह फलत. विपर्यास
हम बहुत पहले यह भूल चुके हैं कि यह शब्द किस मूर्त प्रतिबिम्ब
और इसलिए जब इसके स्थान पर यह प्रतिबिम्ब आ जाता है,
चान नहीं पाते। जब आप यह विचार करते हैं कि अधिकतर
न मे दृष्टिगम्य प्रतिबिम्ब ही होते हैं, और विचार तथा शब्द बहुत
ब आप आसानी से यह समझ जाएंगे कि स्वप्न के ढांचे मे व्यक्त और
रह के सम्बन्ध का कुछ विशेष अर्थ है। आप यह भी देखते हैं कि इ
ी अमूर्त विचारों की लम्बी श्रेणी के लिए व्यक्त स्वप्न मे स्थानापन्न
ला सम्भव हो जाता है जो सचमुच छिपाने का प्रयोजन पूरा करते
चित्र-पहेलियां इसी तरह की होती हैं। इस तरह के निरूपण मे जो मूर्
चीज दिखाई देती है, वह कहां से पैदा होती है, यह एक विशेष प्रश्न
े यहां विचार करने की जरूरत नहीं।

और गुप्त अवयवों के बीच एक चौथा सम्बन्ध भी है, जिसके बारे
पि के वर्णन मे उसके उपयुक्त समय आने तक कुछ नहीं कहूंगा। फिर
व सम्बन्धों की पूरी सूची आपके सामने नहीं आई है, पर हमारे
ए काफी चीज आ चुकी है।

आप एक पूरे स्वप्न का अर्थ लगाने की हिम्मत कर सकते हैं?
चाहिए कि हमारे पास इनके लिए पर्याप्त तैयारी या साधन हो
यदि मैं सबसे अधिक स्पष्ट स्वप्न नहीं चुनूंगा, तो भी ऐसा स्वप्न
साफ तौर से स्वप्न की मुख्य विशेषताओं को प्रकट करे।

एक नौजवान स्त्री को, जिसका कई वर्ष पूर्व विवाह हो चुका था, यह स्वप्न
आया : वह अपने पति के साथ थियेटर गई। वहां एक तरफ की कुर्सियां बिलकुल
खाली थीं। उसके पति ने उसे बताया कि एलिस एल० और उसका भावी पति
(जिससे उसकी सगाई हुई है) भी आना चाहते थे, पर उन्हें डेढ़ फ्लोरिन में तीन
वाली रद्दी कुर्सियां ही मिल सकीं, और निश्चित ही वे कुर्सियां नहीं ले सकते
थे। उसने उत्तर दिया कि मेरी राय में इससे उन्हें विशेष नुकसान नहीं हुआ।

करता था। पर शायद इस अविवेक से बचकर इसके स्थान पर मैं दूसरा अविवेक कर रहा होता।

यहां मैं दो नये शब्द आपको बताना चाहता हूं जिनका प्रयोग हमने सम्भवतः पहले भी किया है। स्वप्न जिस रूप में सुनाया गया है, उसे हम व्यक्त स्वप्न-वस्तु कहेंगे, और उसके छिपे हुए अर्थ को जो हमें साहचर्यों का अनुसरण करने से पता चलेगा, हम गुप्त स्वप्न-विचार कहेंगे। तब हमें व्यक्त वस्तु और गुप्त विचारों के सम्बन्ध पर, जैसेकि वह ऊपर के उदाहरणों में दिखाया गया है, विचार करना होगा। इन सम्बन्धों की बहुत-सी किस्में हैं। उदाहरण (क) और (ख) में व्यक्त स्वप्न-अवयव भी गुप्त विचारों का एक अखण्ड भाग है, परन्तु वह उनका सिर्फ एक छोटा-सा अंश है। अचेतन स्वप्न-विचारों के एक बड़े, मिश्रित, मानसिक ढांचे का एक छोटा-सा टुकड़ा—एक अंश के रूप में या दूसरे उदाहरणों में, एक अवान्तर निर्देश के रूप में—जैसेकि तार-संकेतों में कोई बंधे-बंधाए शब्द या संक्षेप होते हैं वैसे, व्यक्त स्वप्न में भी घुस आया है। निर्वचन को उस समष्टि को पूरा करना है, जिसका एक भाग यह अंश या भ्रम[1] है, जैसेकि उदाहरण (ख) में इसने बहुत सफलता से किया था। इसलिए स्वप्नतंत्र का विपर्यस्त करने का एक तरीका तो यह है कि वह किसी चीज़ के स्थान पर उसका कोई अंश या भ्रम ला देता है। उदाहरण (ग) में हम व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार में एक और सम्भव सम्बन्ध देखते हैं। यह सम्बन्ध निम्नलिखित उदाहरणों में और भी स्पष्ट रूप से प्रकट होता है

(घ) स्वप्न देखने वाला व्यक्ति अपनी परिचित एक महिला को खाई में से ऊपर खींच रहा था। उसने अपने पहले साहचर्य के द्वारा अपने स्वप्न-अवयव का अर्थ स्वयं मालूम किया। इसका अर्थ था : उसने 'उसे खींच लिया' अर्थात् उसे पसन्द किया।

(ङ) एक और आदमी ने स्वप्न देखा कि उसका भाई अपने सारे बाग में सफाई कर रहा है। पहला साहचर्य यह था कि पौधों की अनावश्यक शाखें हटा रहा था। दूसरे ने अर्थ सूचित किया भाई अपने खर्चों को कम कर रहा है।

(च) स्वप्न देखने वाला एक पर्वत पर चढ़ रहा था जिससे उसे बड़ा विस्तृत दृश्य दिखाई देता था। यह बिलकुल तर्कसंगत मालूम होता है। शायद इसका कोई अर्थ लगाने की आवश्यकता ही नहीं है, और हमें सिर्फ यह देखना है कि स्वप्न में उसे कौन-सी बात स्मरण आ रही है। नहीं; आप भूल कर रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि इस स्वप्न का उसी तरह अर्थ लगाने की आवश्यकता है जैसे किसी दूसरे अधिक उलझे हुए स्वप्न का, क्योंकि स्वप्न देखने वाले को स्वयं पहाड़

---

१. Illusion

र चढ़ने के बारे में कुछ याद नहीं है। इसके बजाय, उसके मन में यह आता है कि उसका कोई परिचित व्यक्ति धरती के सबसे अधिक दूर वाले हिस्सों में हमारे सम्बन्धों के विषय में एक समीक्षा (Rundschau) प्रकाशित कर रहा है। इसलिए गुप्त विचार वह है जिसमें स्वप्न देखने वाला स्वयं समीक्षक (शब्दार्थ अच्छी तरह देखने वाला) बन जाता है।

यहां आपको स्वप्न के व्यक्त और गुप्त अवयव के बीच एक नये प्रकार के सम्बन्ध का पता चलता है। व्यक्त अवयव गुप्त अवयव का विपर्यास नहीं है, बल्कि उसका निरूपण है—यह कल्पना का एक वैसा ही ठोस चित्र है जैसा किसी शब्द की ध्वनि से पैदा होता है। यह सच है कि यह फलत विपर्यास ही है, क्योंकि हम बहुत पहले यह भूल चुके हैं कि वह शब्द किस मूर्त प्रतिबिम्ब से पैदा हुआ, और इसलिए जब इसके स्थान पर यह प्रतिबिम्ब आ जाता है, तब हम इसे पहचान नहीं पाते। जब आप यह विचार करते हैं कि अधिकतर उदाहरणों में व्यक्त स्वप्न में दृष्टिगम्य प्रतिबिम्ब ही होते हैं, और विचार तथा शब्द बहुत कम होते हैं, तब आप आसानी से यह समझ जाएंगे कि स्वप्न के ढांचे में व्यक्त और गुप्त के इस तरह के सम्बन्ध का कुछ विशेष अर्थ है। आप यह भी देखते हैं कि इस तरह बहुत-से अमूर्त विचारों की लम्बी श्रेणी के लिए व्यक्त स्वप्न में स्थानापन्न बिम्ब पैदा करना सम्भव हो जाता है जो सचमुच छिपाने का प्रयोजन पूरा करते हैं। हमारी चित्र-पहेलियां इसी तरह की होती हैं। इस तरह के निरूपण में जो सूझ या बुद्धि जैसी चीज दिखाई देती है, वह कहां से पैदा होती है, यह एक विशेष प्रश्न है, जिसपर हमें यहां विचार करने की जरूरत नहीं।

व्यक्त और गुप्त अवयवों के बीच एक चौथा सम्बन्ध भी है, जिसके बारे में मैं हमारी विधि के वर्णन में उसके उपयुक्त समय आने तक कुछ नहीं कहूंगा। फिर भी इन सम्भव सम्बन्धों की पूरी सूची आपके सामने नहीं आई है, पर हमारे प्रयोजन के लिए काफी चीज आ चुकी है।

क्या अब आप एक पूरे स्वप्न का अर्थ लगाने की हिम्मत कर सकते हैं? पहले यह देखना चाहिए कि हमारे पास इनके लिए पर्याप्त तैयारी या साधन हो गए या नहीं। यद्यपि मैं सबसे अधिक स्पष्ट स्वप्न नहीं चुनूंगा, तो भी ऐसा स्वप्न चुनूंगा जो साफ तौर से स्वप्न की मुख्य विशेषताओं को प्रकट करे।

एक नौजवान स्त्री को, जिसका कई वर्ष पूर्व विवाह हो चुका था, यह स्वप्न आया: वह अपने पति के साथ थियेटर गई। वहां एक तरफ की कुर्सियां बिलकुल खाली थीं। उसके पति ने उसे बताया कि एलिस एल० और उसका भावी पति (जिससे उसकी सगाई हुई है) भी आना चाहते थे, पर उन्हें डेढ़ फ्लोरिन में तीन खाली रद्दी कुर्सियां ही मिल सकीं, और निश्चित ही वे कुर्सियां नहीं ले सकते थे। उसने उत्तर दिया कि मेरी राय में इससे उन्हें विशेष नुकसान नहीं हुआ।

स्वप्न देखने वाली ने जो इतनी बात बताई, वह यह है कि स्वप्न देता है
के बराबर का ... में निर्देश है । उसके पति ने उसे सचमुच बताया था
कि उसकी एक परिचित लड़की एलिस एल० की, जो लगभग उसकी ही उम्
की थी, सगाई हो गई थी और यह स्वप्न उसी समाचार की प्रतिक्रिया है। इस
पहले ही जाना है कि बहुत-से स्वप्नों में पिछले दिन हुए किसी ऐसे अवसर का
संबंध पकड़ना आसान होता है, और स्वप्न देखने वाला बिना कठिनाई के उसका
पहुंच जाता है। यह स्वप्न देखने वाला हमें स्वप्न के अन्य अवसरों
बारे में उसी तरह की और जानकारी देता है। एक तरफ की कुर्सियां खा
थी। इससे वह किस बात पर पहुंची ? यह पिछले सप्ताह की एक वास्त
घटना का निर्देश था, जब उसने एक नाटक देखने का विचार किया था
इसलिए इतनी जल्दी सीटें बुक करा ली थी कि उसे टिकटों के लिए अतिरिक्त
देने पड़े थे। थियेटर में घुसने पर यह स्पष्ट था कि उसकी चिन्ता बिलकुल
बेकार थी, क्योंकि एक तरफ की कुर्सियां प्रायः खाली थीं। यदि वह ना
दिन ही टिकट खरीदती तो भी काफी समय होता और उसका पति उसे यह
से न चूका कि तुमने बहुत जल्दबाजी की। इसके बाद डेढ़ फ्लोरिन का
हुआ ? इसका सम्बन्ध एक बिलकुल दूसरे प्रसंग से था, जिसका पहले
कुछ मेल नहीं था। पर यह भी पिछले दिन मिले किसी समाचार के बा
उसकी ननद के पास अपने पति से डेढ़सौ फ्लोरिन आए थे और वह मूर्ख
जल्दी से एक गहने वाले की दुकान पर पहुंची और एक गहने पर उसने ब
कर दिया। तीन संख्या का क्या अर्थ था ? उसे इसके बारे में कुछ मालू
पर शायद आप इस विचार को साहचर्य मान सकें कि सगाई वाली ल
एल० इससे सिर्फ तीन महीने छोटी थी जबकि इसकी शादी हुए दस
थे। और दो आदमियों के लिए तीन टिकट लेने की बेतुकी बात का
था ? उसने इस बारे में कुछ नहीं कहा और कोई अन्य साहचर्य
बताने से इन्कार कर दिया।

तो भी उसके थोड़े-से साहचर्यों ने हमें इतनी सामग्री दे दी है कि
स्वप्न-विचार का पता लगाया जा सकता है। यह तथ्य विशेष
सामने आता है कि उसके बयानों में समय का उल्लेख कई जगह
और यह इस सामग्री के भिन्न-भिन्न भागों का सामान्य आधार
उसने थियेटर के टिकट बहुत जल्दी खरीद लिए थे, उन्हें बहुत
लिया था, जिसके कारण उसे अतिरिक्त पैसे देने पड़े थे, इसी तरह
बहुत जल्दी में सर्राफ की दुकान पर जेवर खरीदने चली गई थी
कोई चीज खो जाएगी। यदि उन बातों को, जिनपर खास बल दिया
जल्दी', 'बहुत जल्दी में'—स्वप्न के मौके (अर्थात् यह खबर कि

मेरे तीन महीने छोटी सहेली को अब आखिर में एक अच्छा पति मिल गया है) से, और उस आलोचना से, जो उसने अपनी ननद के बारे में क्रोध से की थी, कि 'इतनी जल्दबाजी करना बेवकूफी है,' जोड़ दिया जाए तो प्राय अपने-आप ही गुप्त स्वप्न-विचारों की निम्नलिखित अन्विति या तात्पर्य आता है जिसका बहुत अधिक विपर्यस्त स्थानापन्न यह स्वप्न है

'मेरा विवाह के लिए इतनी जल्दी करना सचमुच बेवकूफी थी। एलिस के उदाहरण से मुझे पता चलता है कि मुझे भी बाद में पति मिल सकता था।' (यहां बहुत जल्दबाजी उसके अपने टिकट खरीदने के काम में, और उसकी ननद के जेवर खरीदने के रूप में प्रकट हुई, विवाहित होने के स्थान पर थियेटर जाना आ गया।) प्रधान विचार यह होगा; शायद हम आगे भी बढ़ सकते हैं, परन्तु उतने निश्चय से नहीं, क्योंकि इन बातों में प्रस्तुत विश्लेषण स्वप्नद्रष्टा के बयानों से अवश्य समर्थित ही होना चाहिए 'और मैं उतने ही रुपयों से सौ गुना अच्छा पा सकती थी।' (डेढ़ सौ फ्लोरिन डेढ़ फ्लोरिन का सौ गुना है।) यदि हम धन के स्थान पर दहेज रख दें तो इसका अर्थ यह होगा कि पति दहेज से खरीदा जाता है-जेवर और खराब सीटें, ये दोनों चीजें पति की निरूपक होंगी। यदि हम 'तीन टिकट' और एक पति वाले अवयव में भी कोई सम्बन्ध-सूत्र देख सकें तो और भी अच्छा होगा, पर अब तक का हमारा ज्ञान इतनी दूर तक नहीं पहुंचता। हम इतना ही पता लगा सकते हैं कि यह स्वप्न यह प्रकट करता है कि वह अपने पति को हीन समझती है और इतनी जल्दी विवाह कर लेने पर उसे खेद है।

मेरी राय में स्वप्न का अर्थ लगाने की हमारी इस पहली कोशिश का जो परिणाम हुआ है, उससे हम सन्तुष्ट कम और चकित तथा विभ्रान्त अधिक होंगे। हमारे मन में चारों ओर से एकसाथ इतने सारे विचार आ रहे हैं कि हम उन्हें नियन्त्रित ही नहीं कर पा रहे हैं। हम पहले ही देख रहे हैं कि इस स्वप्न के निर्वचन से हम जो कुछ जान पाएंगे, उसमें किसी उद्देश्य पर नहीं पहुंचेंगे। उन बातों को फौरन अलग-अलग कर लिया जाए जिनमें हमें निश्चित रूप से कोई नया ज्ञान दिखाई देता है।

पहली बात - हम देखते हैं कि गुप्त विचारों में मुख्य बल जल्दी के अवयव पर है, व्यक्त स्वप्न में यह एक ऐसी चीज है जिसके बारे में हमें कुछ नहीं मिलता। विश्लेषण के बिना हमें यह सन्देह भी न होता कि यह विचार मन में कभी आया था। इसलिए यह सम्भव मालूम होता है कि वह मुख्य बात, जो अचेतन विचारों का केन्द्र है, व्यक्त स्वप्न में बिलकुल दिखाई ही नहीं दी। इस तथ्य से वह सारा प्रभाव ऊपर से नीचे तक बदल जाता है, जो इस सारे स्वप्न से हमारे ऊपर पड़ा था। दूसरी बात: स्वप्न में विचारों का अर्थहीन संयोग है (डेढ़ फ्लोरिन में तीन); स्वप्न-विचारों में हमें यह राय दिखाई देती है ' '(इतनी जल्दी विवाह) यह

बेवकूफी थी ।' क्या हम इस निष्कर्ष को अस्वीकार कर सकते हैं कि यह
'यह बेवकूफी थी' व्यक्त स्वप्न मे एक बेतुका अवयव लाकर प्रकट हुआ
तीसरी बात तुलना से पता चलता है कि व्यक्त और गुप्त अवयवो का
सरल और सीधा नही होता । निश्चित ही वह इस तरह का नही होता
गुप्त अवयव के स्थान पर सदा एक व्यक्त अवयव आ जाता हो । इन दो
सम्बन्ध दो विभिन्न समूहो मे होने वाले सम्बन्ध जैसा है, अर्थात् एक
अवयव कई गुप्त विचारो को निरूपित कर सकता है, या एक गुप्त वि
स्थान पर कई अवयव आ सकते हैं।

अब स्वप्न के अर्थ का, और इसके प्रति स्वप्न देखने वाले के रवैये
रह जाता है ' इसमे भी हमे बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें दिखाई दे सकती है
महिला ने इस अर्थ को स्वीकार तो अवश्य किया, पर उसे इसपर आश्चर्य
उसे इस बात का ध्यान नहीं था कि वह अपने पति के बारे मे ऐसे हीन
रखती है । उसे यह भी मालूम नही था कि वह उसे इस तरह हीन क्यों
इस प्रकार, इसके बारे मे अब भी बहुत-सी बातें समझ मे नही आती । असल
यह सोच रहा हू कि अभी स्वप्न का अर्थ लगाने के लिए हमारी उचित
नहीं हुई, और हमे पहले और अधिक शिक्षा तथा तैयारी की आवश्यकता

बच्चों के स्वप्न

हमें यह महसूस हुआ था कि हम बहुत तेज चल आए हैं ; इसलिए आइए थोड़ा-सा पीछे लौटा जाए। अपना पिछला परीक्षण करने से पहले, जिसमें हमने अपनी विधि द्वारा स्वप्न-विपर्यास की कठिनाई से बचने की कोशिश की थी, हमने यह कहा था कि यदि कोई ऐसे स्वप्न हों जिनमें विपर्यास बिलकुल नहीं होता या बहुत थोड़ा होता है तो उन्हीं तक अपना ध्यान सीमित रखकर विपर्यास के प्रश्न को छोड़ जाना सबसे अच्छा रहेगा। ऐसा करते हुए भी हम अपने ज्ञान के परिवर्धन का असली मार्ग छोड़ रहे हैं, क्योंकि वास्तव में जिन स्वप्नों में विपर्यास होता है, उनमें अर्थ लगाने की अपनी विधि का लगातार प्रयोग करने के बाद और उनका पूरा विश्लेषण करने के बाद हमें उन स्वप्नों के अस्तित्व का पता चला था, जिनमें विपर्यास नहीं होता।

जिन स्वप्नों को हम खोज रहे हैं वे बच्चों में मिलते हैं। वे छोटे, स्पष्ट, सुसम्बद्ध और समझने में आसान तथा असंदिग्ध होते हैं, फिर भी निश्चित रूप से होते स्वप्न ही हैं। पर आप यह न समझिए कि बच्चों के सब स्वप्न इस तरह के होते हैं। बचपन में बहुत जल्दी स्वप्नों में विपर्यास दीखने लगता है। और हमारे रिकार्ड में पांच और चार वर्ष के बीच के बच्चों के ऐसे स्वप्न हैं, जिनमें बाद के जीवन के सब स्वप्नों की विशेषताएं दिखाई देती हैं। पर यदि आप उन स्वप्नों पर ही विचार करें जो पहचानने योग्य मानसिक क्रिया आरम्भ होने के और चौथे या पांचवें वर्ष के बीच में होते हैं तो आपको एक ऐसी श्रेणी दिखाई देगी जिसे हम शैशवीय, अर्थात् शैशव में होने वाली स्वप्न-श्रेणी कह सकते हैं, और बचपन के बाद के वर्षों में आपको उसी तरह के अकेले स्वप्न मिल सकते हैं। सच तो यह है कि बड़े आदमियों में भी कुछ अवस्थाओं में ऐसे स्वप्न दिखाई देते हैं जो शैशवीय स्वप्नों से भिन्न नहीं होते।

बच्चों के इन स्वप्नों से स्वप्नों की असली प्रकृति के बारे में, बिना कठिनाई के, भरोसे की जानकारी मिल सकती है, । और हमें आशा है कि यह जानकारी

निर्णायक और सर्वमान्य सिद्ध होगी।

१ इन स्वप्नों को समझाने के लिए न किसी विश्लेषण की आवश्यकता है और न कोई विधि प्रयोग मे लाने की। जो बच्चा स्वप्न बतलाता है, उससे सवाल पूछने की भी आवश्यकता नही, पर हमे उसके जीवन के बारे मे कुछ पता होना चाहिए; प्रत्येक उदाहरण मे पिछले दिन का कोई ऐसा अनुभव होता है जो स्वप्न की व्याख्या करता है। स्वप्न पिछले दिन के अनुभव पर, नींद में, मन की प्रतिक्रिया है। अब हम कुछ उदाहरण लेंगे जिनके आधार पर हम आगे निष्कर्ष निकाल सकेंगे :

(क) एक वर्ष दस महीने आयु के किसी लड़के को, किसीको जन्मदिवस के उपहार के रूप मे एक टोकरी जामुन देने थे। उसने स्पष्टतः बड़ी अनिच्छा से यह उपहार दिया, यद्यपि उसे भी उनमें से कुछ देने का वायदा किया गया था। सवेरे उसने अपना स्वप्न बताया, 'हरमैन ने सारे के सारे जामुन खा लिए।'

(ख) सवा तीन साल की एक लड़की पहली बार एक झील पर सैर करने गई। जब वे जमीन के पास पहुंचे तब वह नाव से उतरना ही नहीं चाहती थी, और जोर से रोने लगी। स्पष्ट है कि झील पर उसका समय बहुत तेजी से गुजरा था। सवेरे उसने कहा, 'रात मैं झील पर सैर कर रही थी।' हम समझ यह अनुमान कर सकते हैं कि यह सैर ज्यादा देर रही होगी।

(ग) सवा पांच साल के एक लड़के को हालस्टाट के पास ऐसकर्टल घुमाने ले जाया गया। उसने सुना था कि हालस्टाट डाकस्टीन की तलहटी में है और उस पर्वत में उसने बड़ी दिलचस्पी दिखाई थी। औसी में बने हुए मकान से डाक-स्टीन का दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता था, और दूरबीन से उसकी चोटी पर बनी हुई साइमनी हट या कुटिया देखी जा सकती थी। बच्चे ने बार-बार दूरबीन से कुटिया देखने की कोशिश की थी, पर किसीको मालूम नहीं कि उसे सफलता मिली या नहीं। यह यात्रा हर्षपूर्ण आशाएं लेकर शुरू हुई थी। जब कोई नया पहाड़ दिखाई देता था, तभी यह बच्चा पूछता था, 'क्या यह डाकस्टीन है?' हर बार उसके प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होता था। हौसला छोड़कर वह बिलकुल चुप हो गया और उसने औरों के साथ चलकर जलप्रपात तक पहुंचने से भी इनकार कर दिया। लोगों ने समझा कि वह बहुत थक गया है, पर अगले दिन सवेरे उसने बड़ी खुशी से कहा, 'रात हमने यह स्वप्न देखा कि हम साइमनी हट में हैं—' तो उसने इस आशय से यात्रा में हिस्सा लिया था। वह एक ही ब्यौरा बता सका जो उसने पहले सुना था, 'छः घंटे तक सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं।'

इस बात पर हमें किसी

२ हम देखते हैं कि बचपन के स्वप्न अर्थहीन नही होते। वे पूर्ण और समझ मे आने योग्य मानसिक कार्य होते हैं। स्वप्नो के बारे मे डाक्टरी विज्ञान की जो राय मैंने आपको बताई थी, वह याद करिए, और पियानो की कुंजियो पर चलने वाली अकुशल उंगलियो की तुलना भी याद रखिए। आपको अवश्य दिखाई देगा कि बच्चों के जो स्वप्न मैंने आपको बताए हैं उनसे इस धारणा का कितना प्रबल खण्डन हो जाता है, पर यह बात बड़ी असामान्य होगी कि कोई बच्चा नींद मे पूर्ण मानसिक कार्य कर सके और बड़ा आदमी उस स्थिति मे सिर्फ बीच-बीच में प्रबल होने वाली प्रतिक्रियाएं ही कर सके। इसके अतिरिक्त, हमे यह बात युक्तियुक्त मालूम होती है कि बच्चे की नीद अधिक अच्छी और अधिक गहरी होती है।

३ इन स्वप्नो मे कोई विपर्यास नही है, और इसलिए इनका अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता नही है। यहां व्यक्त और गुप्त वस्तु मे भिन्नता नही है। इससे हम यह नतीजा निकालते हैं कि विपर्यास स्वप्न की प्रकृति का सर्वथा आवश्यक हिस्सा नहीं है। मुझे आशा है कि यह बात सुनकर आपके दिमाग से एक बोझ हट जाएगा। तो भी बारीकी से विचार करने पर हमें यह मानना पडता है कि इन स्वप्नों मे भी विपर्यास यद्यपि बहुत ही कम मात्रा मे होता है, और गुप्त स्वप्न-विचार मे थोडा अन्तर होता है।

४. बच्चे का स्वप्न पिछले दिन के अनुभव की एक प्रतिक्रिया है। वह अनुभव कोई अफसोस, कोई चाह, या कोई अधूरी इच्छा पीछे छोड गया है। स्वप्न में हम इस इच्छा की सीधी और प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति करते हैं। अब उन बातो पर विचार कीजिए जो हमने पहले पेश की थी, और जिनमे यह बताया था कि बाहरी या भीतरी कायिक उद्दीपन नीद के विघातक और स्वप्न के जनक के रूप मे क्या कार्य करते हैं। इस प्रश्न पर हमने कुछ निश्चित तथ्य प्राप्त किए थे, पर यह व्याख्या सिर्फ थोड़े-से स्वप्नो के बारे मे सही उतरती थी। बच्चो के इन स्वप्नों मे ऐसे कायिक उद्दीपनो के प्रभाव का कोई सकेत नहीं मिलता, इस विषय में हमारी कोई भूल नही हो सकती, क्योकि ये स्वप्न पूरी तरह समझ मे आ जाने वाले हैं और प्रत्येक स्वप्न, पूरे का पूरा आसानी से समझा जा सकता है। पर इस कारण हमे यह विचार नहीं छोड़ देना चाहिए कि यह उद्दीपन स्वप्न पैदा करता है। हम सिर्फ यह पूछ सकते हैं कि शुरू से ही हम यह क्यो भूल जाते हैं कि शारीरिक नीद-विघातक उद्दीपनो के अलावा मानसिक नींद-विघातक उद्दीपन भी होते हैं। निश्चय ही हम जानते हैं कि वयस्कों की नीद मे मुख्यतः इन्हीके कारण बाधा होती है। ये नींद के लिए आवश्यक मानसिक अवस्था अर्थात् बाहरी दुनिया से दिलचस्पी के खिचाव को रोकते हैं। आदमी चाहता है कि मेरे जीवन मे कोई व्याघात न आए ; वह जो कुछ कर रहा है,

२ हम देखते हैं कि बचपन के स्वप्न अर्थहीन नहीं होते । वे पूर्ण और समझ में आने योग्य मानसिक कार्य होते हैं। स्वप्नों के बारे में डाक्टरी विज्ञान की जो राय मैंने आपको बताई थी, वह याद करिए, और पियानो की कुंजियों पर चलने वाली अनुदात्त उंगलियों की तुलना भी याद रखिए । आपको अवश्य दिखाई देगा कि बच्चों के जो स्वप्न मैंने आपको बताए हैं उनसे इस धारणा का कितना प्रबल खण्डन हो जाता है, पर यह बात बड़ी असामान्य होगी कि कोई बच्चा नींद में पूर्ण मानसिक कार्य कर सके और बड़ा आदमी उस स्थिति में सिर्फ बीच-बीच में प्रबल होने वाली प्रतिक्रियाएं ही कर सके । इसके अतिरिक्त, हमें यह बात युक्तियुक्त मालूम होती है कि बच्चे की नींद अधिक अच्छी और अधिक गहरी होती है ।

३ इन स्वप्नों में कोई विपर्यास नहीं है, और इसलिए इनका अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है । यहां व्यक्त और गुप्त वस्तु में भिन्नता नहीं है। इससे हम यह नतीजा निकालते हैं कि विपर्यास स्वप्न की प्रकृति का सर्वथा आवश्यक हिस्सा नहीं है । मुझे आशा है कि यह बात सुनकर आपके दिमाग से एक बोझ हट जाएगा । तो भी बारीकी से विचार करने पर हमें यह मानना पड़ता है कि इन स्वप्नों में भी विपर्यास यद्यपि बहुत ही कम मात्रा में होता है, और गुप्त स्वप्न-विचार में थोड़ा अन्तर होता है ।

४. बच्चे का स्वप्न पिछले दिन के अनुभव की एक प्रतिक्रिया है । यह अनुभव कोई अफसोस, कोई चाह, या कोई अधूरी इच्छा पीछे छोड़ गया है । स्वप्न में हम इस इच्छा की सीधी और प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति करते हैं । अब उन बातों पर विचार कीजिए जो हमने पहले पेश की थीं, और जिनमें यह बताया था कि बाहरी या भीतरी कायिक उद्दीपन नींद के विघातक और स्वप्न के जनक के रूप में क्या कार्य करते हैं । इस प्रश्न पर हमने कुछ निश्चित तथ्य प्राप्त किए थे, पर यह व्याख्या सिर्फ थोड़े-से स्वप्नों के बारे में सही उतरती थी । बच्चों के इन स्वप्नों में ऐसे कायिक उद्दीपनों के प्रभाव का कोई संकेत नहीं मिलता, इस विषय में हमारी कोई भूल नहीं हो सकती, क्योंकि ये स्वप्न पूरी तरह समझ में आ जाने वाले हैं और प्रत्येक स्वप्न, पूरे का पूरा आसानी से समझा जा सकता है । पर इस कारण हमें यह विचार नहीं छोड़ देना चाहिए कि यह उद्दीपन स्वप्न पैदा करता है । हम सिर्फ यह पूछ सकते हैं कि शुरू से ही हम यह क्यों भूल जाते हैं कि शारीरिक नींद-विघातक उद्दीपनों के अलावा मानसिक नींद-विघातक उद्दीपन भी होते हैं । निश्चय ही हम जानते हैं कि वयस्कों की नींद में मुख्यत. इन्हींके कारण बाधा होती है । ये नींद के लिए आवश्यक मानसिक अवस्था अर्थात् बाहरी दुनिया से दिलचस्पी के खिंचाव को रोकते हैं । आदमी चाहता है कि मेरे जीवन में कोई व्याघात न आए ; वह जो कुछ कर रहा है,

वही करते रहना चाहता है, और उसके न सोने का यही कारण है। इसलिए,
बच्चे के लिए नीद खराब करने वाला मानसिक उद्दीपन उसकी अधूरी इच्छा
है, और इस पर बच्चे की प्रतिक्रिया ही स्वप्न है।

५ इससे जरा-सा आगे बढते ही हम स्वप्नो के कार्य के बारे मे एक
नतीजे पर आ जाते हैं। यदि स्वप्न एक मानसिक उद्दीपन की प्रतिक्रिया है, तो
उनका महत्त्व इस बात मे होना चाहिए कि वे उत्तेजन का आवेश (चार्ज)
खत्म कर दें, जिससे उद्दीपन हट जाए, और नीद जारी रह सके। हम अभी यह
नही जानते कि स्वप्न के द्वारा यह निरावेश या विसर्जन (डिस्चार्ज) गतिकीय
दृष्टि से कैसे होता है, पर यह हम पहले ही देख चुके हैं कि स्वप्न नीद के
विघातक नही हैं (जैसाकि उन्हे आम तौर से कहा जाता है), बल्कि विघातक
प्रभावो से इसकी रक्षा करने वाले हैं। यह सच है कि हम यह सोचते हैं कि
स्वप्न न आए होते तो हम अच्छी नीद सोए होते, पर हमारा ख्याल गलत है।
सचाई यह है कि स्वप्न की सहायता के बिना हम जरा भी न सो पाते, और
हम स्वप्न के कारण ही ज्यादा से ज्यादा अच्छी तरह सो सके। ये थोड़ी-
बहुत हमारी नीद बिगाड़ते जरूर है, पर यह तो ठीक वैसे ही है जैसे पुलिस वाला
शान्ति भग करने वालो को भगाते हुए प्राय. शोर करके हमे जगा दिया करता है।

६ स्वप्न किसी इच्छा के कारण पैदा होते है और स्वप्न की वस्तु उस
इच्छा को प्रकट करती है—यह स्वप्नो की एक मुख्य विशेषता है। दूसरी इतनी
ही स्थिर विशेषता यह है कि स्वप्न विचार को केवल व्यक्त ही नही करता,
बल्कि इस इच्छा को एक मतिभ्रमात्मक अनुभव के रूप मे पूर्ण हुआ दिखाता
है। 'मैं झील पर सैर करना चाहता हू,' इस इच्छा से एक स्वप्न पैदा होता
है जिसकी वस्तु यह है, 'मैं झील पर सैर कर रहा हूं।' इस प्रकार बचपन
के इन सरल स्वप्नो मे भी गुप्त और व्यक्त स्वप्नो का अन्तर है और गुप्त
स्वप्न-विचार मे यह विपर्यास भी है कि विचार अनुभव के रूप मे आ गया है,
किसी स्वप्न का अर्थ लगाने मे सबसे पहले हमे इस परिवर्तन के प्रक्रम को
हटाना होगा। यदि इसे सब स्वप्नों की सबसे व्यापक विशेषताओ मे से एक
मान लिया जाए तो हमे पता चलता है कि ऊपर बताए गए स्वप्न-अवयव क
कैसे अनुवादित या रूपान्तरित किया जा सकता है, 'मैं अपने भाई को नला
करते देखता हू' का यह अर्थ नही कि 'मेरा भाई घास हटा रहा है,' बल्कि
कि मेरा भाई खर्च कम करे, बल्कि उसे खर्च कम करना ही पड़ेगा। इ
विशेषताएं बनाई हैं, उनमे से पहली की अपेक्षा दूसरी को स्पष्ट
स्वीकार कर लिए जाने की अधिक सम्भावना है।
जाच-पड़ताल मे ही हम यह निश्चय कर सकते हैं कि स्वप्न
कारण सदा कोई इच्छा ही होती है, और वह कभी भी कोई भाव

कार्य या प्रयोजन या कोई डाट-फटकार नहीं हो सकती; परन्तु दूसरी विशेषता जैसी की तैसी रहती है, अर्थात् यह कि स्वप्न इस उद्दीपन को सिर्फ पुनः प्रस्तुत ही नहीं करता, बल्कि एक तरह से 'इसको जीकर' इसे हटा देता है, दूर कर देता है, शांत कर देता है।

७. स्वप्नों की इन विशेषताओं के प्रसंग में हम अपनी स्वप्नों और गलतियों की तुलना पर फिर विचार कर सकते हैं। गलतियों पर विचार करते हुए हमने बाधक प्रवृत्ति और बाधित प्रवृत्ति में भेद दिखाया था, जिन दोनों के समझौते के रूप में गलती पैदा हुई। स्वप्न भी उसी श्रेणी में आते हैं; बाधित प्रवृत्ति सोने की ही प्रवृत्ति हो सकती है और बाधक प्रवृत्ति मानसिक उद्दीपन के रूप में आ जाती है, जिसे हम 'इच्छा' कह सकते हैं (जो पूर्ति या तृप्ति के लिए शोर मचा रही है), क्योंकि इस समय हम नींद के बाधक और किसी मानसिक उद्दीपन को नहीं जानते। यहां भी स्वप्न एक समझौते का परिणाम है; हम सोते हैं, पर फिर भी एक इच्छा की तृप्ति अनुभव करते हैं; एक इच्छा की तृप्ति करते हैं और साथ ही सोते भी रहते हैं। प्रत्येक को आंशिक सफलता और आंशिक विफलता मिलती है।

८. आपको याद होगा कि एक स्थान पर हमने यह आशा की थी कि स्वप्नों की समस्या को समझने का रास्ता इस तथ्य से निकल आएगा कि कुछ बड़े स्पष्ट कल्पना-जाल 'दिवास्वप्न' कहलाते हैं। ये दिवास्वप्न तो सचमुच इच्छाओं की पूर्ति ही है। ये आकांक्षापूर्ति या कामुक इच्छाओं की पूर्ति है, जिन्हें हम इस रूप में पहचानते हैं, पर वे विचार में पहुंच जाती हैं और उनकी चाहे कितनी ही सजीव कल्पना की जाए, पर वे कभी भी मतिभ्रमात्मक अनुभवों का रूप नहीं लेती। इसलिए यहां स्वप्न की दो मुख्य विशेषताओं में से कम निश्चित विशेषता कायम रहती है, और दूसरी विशेषता जिसके लिए नींद की अवस्था आवश्यक है, और जो जाग्रत् जीवन में नहीं अनुभव की जा सकती, सर्वथा अनुपस्थित है। इसलिए भाषा में हमें यह संकेत मिलता है कि इच्छापूर्ति स्वप्नों की मुख्य विशेषता है, और फिर यदि स्वप्नों में होने वाला अनुभव कल्पनात्मक निरूपण का ही दूसरा रूप है (यह रूप नींद की विशेष अवस्थाओं में सम्भव हो जाता है और इसे हम 'रात का दिवास्वप्न' कह सकते हैं) तो हम तुरन्त समझ जाते हैं कि स्वप्न-निर्माण का प्रक्रम किस तरह रात में क्रियाशील उद्दीपन को प्रभावहीन कर सकता है; और तृप्ति करा सकता है। कारण यह है कि दिवास्वप्न भी तृप्ति से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई क्रिया-व्यापार की एक रीति ही है, और असल में, तृप्ति के लिए ही हम लोग इसे प्रयोग में लाते हैं।

भाषा में इसके अलावा कई और भी ऐसे प्रयोग हैं जिनसे यही ध्वनि निकलती है। हम इस कहावत से परिचित हैं, 'सूअर को स्वप्न में भी आम की गुठली

दीखती है और मुर्गी को अनाज के दाने।' आगे देखते हैं कि यह कहावत और भी नीचे, बच्चो से भी परे, पशु-पक्षियों पर पहुंचती है, और यही कहती है कि स्वप्नों की वस्तु किसी अभाव की पूर्ति है। हम कहा करते हैं, 'मैंने सपने में भी नहीं सोचा,' 'स्वप्न के समान सुन्दर,' 'यह मन के स्वप्न देखता रहता है,' 'सारे स्वप्न धूल में मिल गए,' 'स्वप्न साकार हो गए'। यहां बोलचाल की भाषा में स्पष्टतः अभाव की पूर्ति के लिए स्वप्न का प्रयोग किया जाता है। यह ठीक है कि चिन्ताओं और कष्टों के भी स्वप्न आते हैं, पर 'स्वप्न' शब्द का सामान्य प्रयोग हमेशा किसी बढ़िया इच्छापूर्ति के लिए होता है, और ऐसी कोई कहावत नहीं है जो यह कहती हो कि सूअर और मुर्गियां जिबह किए जाने का स्वप्न देखती हैं।

निस्सन्देह यह बात समझ में आने वाली नहीं है कि स्वप्नो का इच्छापूर्ति का यह गुण इस विषय पर पहले के लेखकों की नजर से बच गया हो। सच तो यह है कि उन्होने इसका बहुत बार उल्लेख किया है, पर उनमें से किसीके मन में यह बात नहीं आई कि इस विशेषता को व्यापक विशेषता के रूप में पहचान लें और इसे स्वप्नो की व्याख्या की कुञ्जी समझें। इसमें उन्हें जो रुकावट पड़ी होगी, उसकी हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं। हम बाद में इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

अब जरा यह सोचिए कि हमें बच्चो के स्वप्नो पर विचार करने से कितनी सारी जानकारी प्राप्त हो गई, और वह भी बिना किसी विशेष परेशानी के! हमने जाना कि स्वप्नो का कार्य नींद की रक्षा करना है, कि वे दो विरोधी प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप पैदा होते हैं, जिनमे से एक, अर्थात् नींद की अभिलाषा अप्रवर्तित रहती है, और दूसरी किसी मानसिक उद्दीपन को तृप्त करने की कोशिश करती है, कि स्वप्न मानसिक व्यापार सिद्ध हुए हैं जो अर्थपूर्ण होते हैं; कि उनकी दो मुख्य विशेषताएं हैं, अर्थात् वे इच्छापूर्ति हैं और मतिभ्रमात्मक अनुभव हैं। और इस बीच हम यह प्राय भूल ही गए हैं कि हम मनोविश्लेषण का अध्ययन कर रहे थे। स्वप्नो और गलतियो मे सम्बन्ध-सूत्र बांधने के अलावा हमारे काम का और कोई विशेष नतीजा नही हुआ। मनोविश्लेषण की मान्यताओं से बिलकुल अपरिचित भी कोई मनोवैज्ञानिक यह व्याख्या कर सकता था। फिर किसी ने ऐसा क्यों नही किया?

यदि सब स्वप्न शैशवीय रूप के भी होते तो समस्या सुलझ गई होती, हमारा उद्देश्य पूरा हो गया होता और वह भी स्वप्न देखने वाले से बिना पूछे, अचेतन से बिना कुछ कहे, या मुक्त साहचर्य के प्रक्रम का बिना उपयोग किए ... कि हमें इसी दिशा में अपना काम जारी रखना है ... सर्वत्र मान्य बताई जाने वाली विशेषता ...
हो

सिर्फ एक तरह के और थोड़े-से स्वप्नों के लिए ही ठीक सिद्ध हुई। इस प्रकार, हमें अब जो प्रश्न तय करना है वह यह है कि क्या बच्चों के स्वप्नों से प्रकट हुई सामान्य विशेषताएं इनसे अधिक स्थायी होती हैं, और क्या वे उन स्वप्नों के लिए भी ठीक उतरती हैं जिनका अर्थ सीधा नहीं है और जिनकी व्यक्त वस्तु में हमें पिछले दिन की बची हुई इच्छा का कोई निर्देश नहीं मिलता। हमारा ख्याल यह है कि इन दूसरे स्वप्नों में बहुत अधिक विपर्यास हो गया और इसलिए हमें फौरन कोई फैसला नहीं करना चाहिए। हमें यह भी सन्देह है कि इस विपर्यास को हटाने के लिए हमें मनोविश्लेषण की विधि की आवश्यकता होगी ; जिसे हम अभी, इस विषय को सीखते समय, अलग रख देना चाहते हैं , और जैसे हमने अभी बच्चों के स्वप्नों का अर्थ लगाते हुए किया है, वैसे ही उसके बिना काम चलाना चाहते हैं ।

कम से कम एक और तरह के स्वप्न भी ऐसे होते हैं जिनमें कोई विपर्यास नहीं होता, और जिन्हें बच्चों के स्वप्नों की तरह हम आसानी से पहचान सकते हैं कि वे इच्छापूर्ति हैं । ये वे स्वप्न हैं जो भूख, प्यास और कामुक इच्छा—इन अनिवार्य शारीरिक आवश्यकताओं के कारण जीवन-भर आते रहते हैं और इस अर्थ में वे इच्छापूर्ति हैं कि भीतरी कायिक उद्दीपनों की प्रतिक्रिया हैं । इस प्रकार मेरे रिकार्ड में एक साल सात महीने की एक छोटी लड़की का स्वप्न है जिसमें भोजन की वस्तुएं तथा उसका नाम लिखा था (अन्ना एफ० "स्ट्राबेरी, बिलबेरी, अंडा, फल) । यह स्वप्न एक दिन के उपवास की प्रतिक्रियास्वरूप आया था, और स्वप्न में दो बार वही फल दिखाई पड़े जिन्हें खाने से उसे अपच की शिकायत हो गई थी और जिसके कारण उसे उपवास करना पड़ा था । साथ ही उसकी दादी को—उन दोनों की आयुओं का जोड़ सत्तर वर्ष था—गुर्दे में तकलीफ के कारण एक दिन उपवास करना पड़ा और उसे रात को यह स्वप्न आया कि वह कहीं दावत में गई हुई है और उसके आगे बड़ी स्वादिष्ट रसीली वस्तुएं रखी गई हैं । जिन कैदियों को भूखा छोड़ दिया जाता है और जिन लोगों को सफर में या साहसिक यात्राओं में भूखे रहना पड़ता है, उनपर की गई जांच से पता चलता है कि इन परिस्थितियों में उन्हें नियमित रूप से अपने अभावों की पूर्ति का स्वप्न आता है । ओटो नोर्डेन्सकोल्ड ने दक्षिणी ध्रुव सम्बन्धी अपनी पुस्तक (१९०४) में उस टोली की चर्चा इस प्रकार की है, जिसके साथ उसने जाड़ा गुजारा था (जिल्द १, पृष्ठ ३३६), 'हमारे स्वप्नों से हमारे विचारों के चलने की दिशा का बहुत स्पष्ट रूप से पता चलता था । जितने अधिक और जितने सजीव स्वप्न हमें उस समय आए उतने कभी नहीं आए थे । हमारे जिन साथियों को आम तौर से बहुत ही कम स्वप्न आते थे, वे भी सवेरे इस कल्पनालोक के ताज़े अनुभवों पर होने वाली गोष्ठी में अब लम्बे-लम्बे किस्से सुनाने थे । सब स्वप्न उस बाहरी दुनिया के बारे में होते थे जो हमसे दूर छूट गई थी, पर प्राय उनमें हमारी उस

समय की अवस्था का निर्देश भी होता था''' खाने और पीने को केन्द्र बनाकर
ही हमारे स्वप्न अधिकतर चलते थे। हममे से एक आदमी, जो नींद मे बड़ी-बड़ी
दावतो मे जाया करता था, सवेरे हमे यह बताकर बड़ा प्रसन्न होता था कि स्वप्न
मे उसने तीन 'कोर्स' वाला शानदार भोजन किया। एक और को तम्बाकू का स्वप्न
आया करता था, तम्बाकू के पहाड़ के पहाड दिखाई पडते थे उसे, तीसरे को एक
जहाज दीखता था जो पानी पर पूरी तरह तैरता हुआ आ रहा था, और पानी से बर्फ
साफ हो गया था। एक और स्वप्न उल्लेख योग्य है. डाकिया चिट्ठियां लेकर आया
और उसने उनके देर के आने की बडी लम्बी सफाई पेश की। उसने कहा कि मैंने
वे एक गलत जगह पहुंचा दी थी जिन्हे वापस लेने मे मुझे बडी परेशानी हुई। इससे
भी असम्भव बाते नींद मे हमारे मनो मे घूमती रही। पर जो स्वप्न मैंने देखे या
दूसरो से सुने, उसमे एक बात विशेष रूप से महसूस हुई, कि प्रायः सब स्वप्नो मे
कल्पना का अभाव था। यदि हम इन सब स्वप्नो का लेखा रख पाते तो निश्चय ही
वह बडी मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी की चीज होती। आप कल्पना कर सकते हैं कि
हम नींद के लिए कितने उत्सुक रहते होगे जो हममे से हरएक को वह चीज देती
थी जिसके लिए वह सबसे अधिक उत्सुक था।' एक और उदाहरण लीजिए जो
डू प्रेल का है, 'मंगोपार्क को अफ्रीका मे यात्रा करते हुए प्यास के मारे मरा हुआ
सा हो जाने पर लगातार अपने देश के जलमय पहाडो और घाटियो के स्वप्न आते
रहे। इसी तरह ट्रेंक जब मैगडेबुर्ग के गढ मे भूख की यन्त्रणा से परेशान था, तब
उसने स्वप्न मे अपने को बढ़िया भोजनो से घिरा हुआ देखा, और जार्ज बैक,
जिसने फ्रैंकलिन की पहली यात्रा मे हिस्सा लिया था, जब अपने भयकर अभावो
के कारण भूख के मारे मरणासन्न था, तब उसे नियमित रूप से प्रचुर भोजन का
स्वप्न आता था।'

यदि कोई आदमी शाम को बहुत अधिक तली हुई चीजें खाकर प्यास अनुभव
करने लगे तो उसे पानी पीने का स्वप्न आने की सम्भावना है, पर तीव्र भूख या प्यास
को दूर नही किया जा सकता। उस अवस्था मे हम प्यासे जाग उठते हैं, और हमें
असली पानी पीना पडता है। यहां स्वप्न का कार्य व्यावहारिक महत्व का नहीं है,
पर तो भी इतना स्पष्ट है कि यह हमारी नींद को उस उद्दीपन से बचाने के लिए
आया था जो हमें जागने और कार्य करने के लिए प्रेरणा दे रहा था। जहां इच्छा
की तीव्रता कम होती है वहां 'सन्तुष्टि'-स्वप्नो से प्राय: प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।
इसी प्रकार जब उद्दीपन कामुक इच्छा का होता है, तब स्वप्न उसकी सन्तुष्टि
करता है, पर इस सन्तुष्टि मे कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं दिखाई देती है। क्योंकि
काम-प्रवेग की यह विशेषता होती है कि वह अपने आलबन पर भूख और प्यास
की अपेक्षा कुछ कम निर्भर होता है, इसलिए स्वप्नदोष मे सन्तुष्टि वास्तविक
हो सकती है, और आलबन की दृष्टि से कुछ कठिनाइयां होने के कारण (जिनका

ाद में विचार किया जाएगा) प्राय ऐसा होता है कि वास्तविक सन्तुष्टि तब भी क धुधली या विपर्यस्त स्वप्नवस्तु से जुडी रहती है। स्वप्नदोषों की इस विशेषता कारण वे, जैसाकि प्रो० रैंक ने कहा है, स्वप्न-विपर्यास के अध्ययन के लिए पयुक्त वस्तु हैं। इसके अलावा वयस्कों में इच्छा के स्वप्नों में सन्तुष्टि के अलावा ाय' कुछ और चीजें भी होती हैं जो शुद्ध रूप से मानसिक स्रोत से पैदा होती हैं, ौर इन्हें समझने के लिए इनके निर्वचन की आवश्यकता होगी।

प्रसगवश मैं यह कह दू कि हमारी यह मान्यता नही है कि शैशवीय प्रकार के इच्छापूर्ति-स्वप्न वयस्को के ऊपर बताई गई अनिवार्य इच्छाओ की प्रतिक्रियाओ े रूप में ही होते है। हम इस तरह के छोटे स्पष्ट स्वप्नों से भी उतने ही परिचित हैं—ये स्वप्न कुछ अभिभूत करने वाली स्थितियो के कारण आते हैं, और निश्चित रूप से मानसिक उद्दीपनो से पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ 'अधैर्य-स्वप्न' होते हैं, जिनमें कोई आदमी किसी यात्रा की तैयारी कर रहा है, या किसी व्याख्यान में या किसीसे मिलने जाने की तैयारी कर रहा है। उसकी आशाए स्वप्न मे समय से पहले ही पूरी हो जाती हैं और वह असली यात्रा से पहली रात को ही अपनी यात्रा खतम कर लेता है, या थियेटर पहुंच जाता है या उस मित्र से बात कर लेता है जिससे मिलने वह जाने वाला है। फिर 'आराम स्वप्न' हैं जिनका यह नाम ठीक ही है, जिनमें कोई आदमी, जो सोता रहना चाहता है, यह स्वप्न देखता है कि मैं उठ गया हू, नहाकर स्कूल पहुच गया हू, जबकि असल मे वह सारे समय सो रहा है; जिसका अर्थ यह है कि वह सचमुच उठने के बजाय उठने का स्वप्न ही देखना पसन्द करेगा। इन स्वप्नों में नींद की इच्छा, जिसे हमने स्वप्न-निर्माण मे नियमित रूप से हिस्सा लेने वाली मान लिया है, साफ रूप मे अपने-आपको प्रकट करती है, और उनके असली उत्पादक के रूप मे सामने आती है। नींद की आवश्यकता दूसरी बडी शारीरिक आवश्यकताओं के बराबर महत्त्व की है, और यह उचित ही है।

यहां मैं आपसे म्युनिख की शैंक गैलरी मे श्विड द्वारा बनाए गए एक चित्र की प्रतिलिपि की चर्चा करना चाहता हू। आप ध्यान से देखिए कि दिमाग पर छाई हुई परिस्थितियो के कारण जन्म लेते स्वप्नो का अनुभव कलाकार ने कितने सही रूप मे किया है! चित्र का शीर्षक है कैदी का स्वप्न और स्वप्न का विषय निश्चित रूप से उसका कैद से भाग निकलना होगा। यह बडा सुखदायी विचार है कि कैदी को खिडकी के रास्ते भागना है क्योंकि खिडकी मे होकर ही प्रकाश की किरण अन्दर आई है और उसने उसे नींद से जगाया है। एक-दूसरे के ऊपर जो बौने खड़े है, वे उन उत्तरोत्तर स्थितियों को सूचित करते हैं जिनपर उसे खिडकी पर चढ़ने के लिए पहुचना होगा, और यदि मैं गलती नहीं करता और कलाकार के आशय को समझने मे भ्रांति नही कर रहा तो सबसे ऊपर वाले बौने का रूप,

जो जालियो को बीच से पकड रहा है (कैदी भी स्वय यही कार्य करना चाहेगा), मनुष्य के रूप के समान ही हैं।

मैं कह चुका हू कि बच्चो के स्वप्नो तथा दीदावीय स्वप्नो के अनुरूप स्वप्नों को छोडकर और सब स्वप्नो मे विपर्यास की बाधा पार करनी पडती है। हम तुरन्त यह नही कह सकते कि वे भी इच्छापूर्तिया ही हैं, जैसाकि हम उन्हें मानना चाहते हैं, या कुछ और, तथा उनकी व्यक्त वस्तु से हम यह अन्दाजा भी नही कर सकते कि वे किस मानसिक उद्दीपन से पैदा होते हैं, अथवा यह भी सिद्ध नहीं कर सकते कि वे दूसरे स्वप्नों की तरह उद्दीपन को दूर करने या शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। सचाई यह है कि उनका निर्वचन करना होगा, अर्थात् उन्हें अनुवादित या रूपान्तरित करना होगा, विपर्यास के प्रक्रम को उलटना होगा, और व्यक्त वस्तु के स्थान पर गुप्त को लाना होगा। इसके बाद ही हम इसके बारे में कोई सुनिश्चित घोषणा कर सकते हैं कि बच्चो के स्वप्नो के बारे मे हमने जो बात पता लगाई है, वह सब स्वप्नो पर एक जैसी सही बैठ सकती है या नहीं।

व्याख्यान | ९

स्वप्न-सेन्सर

बच्चों के स्वप्नों पर विचार करने से हमें यह पता चल गया कि वे कैसे पैदा होते हैं, उनका सारभूत रूप क्या है और वे क्या काम करते हैं। स्वप्न नींद में बाधा डालने वाले मानसिक उद्दीपनों को मतिभ्रमात्मक सन्तुष्टि द्वारा हटाने के साधन हैं। यह ठीक है कि वयस्कों के बारे में हम सिर्फ एक समूह की व्याख्या कर सके हैं, जिन्हें हमने शैशवीय प्रकार के स्वप्न कहा था। अभी हमें यह मालूम नहीं है कि दूसरे स्वप्नों में यह बात ठीक होगी या नहीं, और उन्हें हम समझते भी नहीं। परन्तु जिस परिणाम पर हम पहुंच चुके हैं, उसके महत्त्व को कम न समझना चाहिए। जब कभी हम किसी स्वप्न को पूरी तरह समझते हैं, तब वह एक इच्छापूर्ति सिद्ध होता है, और सदा ऐसा होना आकस्मिक या महत्त्वहीन नहीं हो सकता।

दूसरे प्रकार के स्वप्नों को हमने एक अज्ञात वस्तु के विपर्यस्त स्थानापन्न माना है, इनकी अज्ञात वस्तु का ही सबसे पहले पता लगाना है। इस मान्यता के लिए हमारे पास बहुत-से आधार हैं जिनमें से एक हमारी गलतियों की अवधारणा से इसका सादृश्य है। हमारा अगला काम इस स्वप्न-विपर्यास की जांच-परख करना और उसे समझना है।

स्वप्न-विपर्यास के कारण ही स्वप्न विचित्र लगते हैं, और समझ में नहीं आते। इनके बारे में हम कई बातें जानना चाहते हैं। पहली बात, यह कहां से आता है (इसकी गतिकी), दूसरी, यह क्या करता है, और अन्त में, यह यह काम कैसे करता है। आगे हम कह सकते हैं कि विपर्यास स्वप्नतन्त्र[1] से पैदा होता है। अब हम स्वप्नतन्त्र का वर्णन करेंगे और इसके अन्दर मौजूद बलों की खोज करेंगे।

अब मैं आपको एक ऐसा स्वप्न बताता हूं जो मनोविश्लेषण के क्षेत्र में प्रसिद्ध एक महिला ने दर्ज किया था। उसने यह भी बताया था कि वह स्वप्न देखने वाली

१. Dream-work

एक बुजुर्ग, बहुत सुसस्कृत और बडी सम्मानित स्त्री थी। इस स्वप्न का विश्लेषण
नही किया गया था, और दर्ज करने वाली महिला ने यह कहा था कि मनोविश्लेषक
को इसका अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता नही। स्वप्न देखने वाली ने स्वय
भी इसका अर्थ नही लगाया, पर उसने इसकी आलोचना की; और इसकी इस
तरह निन्दा की, मानो उसे मालूम हो कि इसका क्या अर्थ है। उसने कहा,
'अजीब बात है कि एक पचास वर्ष की औरत, जिसके मन मे दिन-रात अपने बच्चे
की ही चिन्ता रहती है, ऐसी घृणित बेहूदी बात का स्वप्न देखती है।'

अब मैं आपको वह स्वप्न बताऊगा, जो युद्धकाल मे 'प्रेमसेवा' (अर्थात्
सैनिको की कामसतुष्टि का कार्य) के बारे में है। वह पहले सैनिक अस्पताल गई
और दरवाजे के सन्तरी से उसने कहा कि वह मुख्य डाक्टर (उसने एक नाम बोला
जो उसे याद नही था) से बातचीत करना चाहती है क्योंकि वह अस्पताल मे काम
करने के लिए अपनी सेवाए पेश करना चाहती है। ऐसा कहते हुए उसने 'सेवा' शब्द
पर इस तरह जोर दिया कि सारजेण्ट ने तुरन्त समझ लिया कि वह 'प्रेमसेवा' के
बारे मे कह रही है। क्योंकि वह वृद्ध महिला थी, इसलिए कुछ दुविधा के बाद
उसने उसे जाने दिया, पर मुख्य डाक्टर को ढूढने के बजाय वह एक बडे अन्धेरे
कमरे मे पहुची जहा कई अफसर, और सेना के डाक्टर एक लम्बी मेज के चारों
ओर खड़े या बैठे थे। वह एक डाक्टर की ओर मुडी और उसे उसने अपना प्रस्ताव
बताया। वह जल्दी ही उसका मतलब समझ गया। उसने स्वप्न मे ये शब्द कहे
थे, 'मैं और वियेना की असख्य दूसरी स्त्रिया और लडकिया योद्धाओं के लिए,
चाहे वे अफसर हो या साधारण सैनिक,···को तैयार हैं'—यह कथन अन्त में अस्पष्ट
बुदबुदाहट मे समाप्त हो गया। पर उसने अफसरो के कुछ परेशान और कुछ
दुर्भावनापूर्ण भावों से यह समझ लिया कि उन्होने उसका मतलब समझ लिया है।
महिला ने आगे कहा, 'मैं जानती हूं कि हमारा फैसला अजीब मालूम होता है, पर
हमारा विचार पक्का है। रणक्षेत्र मे सैनिक से यह नही पूछा जाता कि वह मरना
चाहता है या नही।' इसके बाद एक मिनट तक कष्टकारी चुप्पी रही; तब
स्टाफ डाक्टर ने अपनी बाह उसकी कमर मे डाल दी और कहा, 'श्रीमतीजी,
मान लो कि सचमुच यहा तक नौबत आ जाए कि···(अस्पष्ट ध्वनि)।' उसने
अपने को उसकी बाह से छुड़ा लिया और सोचा, 'वे सब एक-से होते हैं,' और
उत्तर दिया, 'हे भगवान, मैं तो बुढिया औरत हू और शायद मेरे साथ यह नहीं
होगा, और एक शर्त अवश्य माननी होगी, उमर का अवश्य ध्यान रखना होगा।
जिसमे कोई बुढ़िया स्त्री और जवान लड़का नही···(अस्पष्ट ध्वनि), यह बड़ी
भयकर बात होगी।' स्टाफ डाक्टर ने कहा, 'मैं बिलकुल समझता हू।' पर कुछ
अफसर, जिनमे एक वह भी था जिसने अपनी जवानी मे उससे प्रेम किया था, जोर
से हसे और महिला ने कहा कि मुझे डाक्टर के पास ले चलो जिसे वह जानती

थी ताकि सारी बात सीधी पेश की जा सके। तब उसे यह ध्यान आया और इससे उसे बड़ी चिन्ता हुई, कि उसे उसका नाम मालूम नहीं था, पर स्टाफ डाक्टर ने बहुत आदर और विनय के साथ एक संकरी, घुमावदार लोहे की सीढ़ी से, जो उस कमरे से, जिसमें वे थे, सीधी ऊपर की मंजिलों को जाती थी, उसे तीसरी मंजिल का रास्ता दिखाया। जब वह ऊपर पहुंची तब उसने एक अफसर को यह कहते सुना, 'वह जवान हो या बूढ़ी, पर यह एक महान निश्चय है; वह सम्मान का पात्र है!' इस भावना के साथ कि वह तो सिर्फ अपना कर्तव्य कर रही है, वह अन्तहीन सीढ़ी पर चढ़ गई।

यह स्वप्न कुछ ही सप्ताहों के भीतर दो बार आया, इसमें कहीं-कहीं मामूली हेर-फेर थे, पर वे, जैसाकि महिला ने कहा, बिलकुल महत्त्वहीन और निरर्थक थे।

यह स्वप्न दिवास्वप्न की तरह ही आगे बढ़ता है; सिर्फ कुछ स्थानों पर रुकावट आ जाती है और इसकी वस्तु में मौजूद बहुत-से व्यक्तिगत प्रश्न पूछताछ से हल हो जाते हैं। परन्तु, जैसाकि आप जानते हैं, यह पूछताछ नहीं की गई। पर इसमें सबसे अधिक ध्यान खींचने वाली और हमारे लिए सबसे दिलचस्प चीज यह है कि वस्तु में, न कि स्मरण में, बहुत-से खाली स्थान आते हैं। तीन स्थानों पर वस्तु मानो काट दी गई है। जहां ये खाली स्थान आते हैं, वहां भाषणों के बीच में अस्पष्ट बुदबुदाहट आ जाती है।

हमने इस स्वप्न का विश्लेषण नहीं किया, इसलिए यदि ठीक-ठीक देखा जाए तो हमें इसके अर्थ के बारे में कुछ कहने का अधिकार नहीं है, परन्तु कुछ ऐसे संकेत हैं जिनसे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं; उदाहरण के लिए, 'प्रेमसेवा' शब्द; और सबसे बढ़कर बात यह है कि अस्पष्ट ध्वनि से पहले टूटे हुए भाषणों को पूरा करने के लिए जिस तरह की चीज चाहिए, उसका एक ही तात्पर्य हो सकता है। यदि हम उन्हें वैसे पूरा कर दें तो एक ऐसी कल्पना बन जाती है जिसमें वस्तु यह है कि स्वप्न देखने वाला अपना कर्तव्य समझकर छोटे-बड़े सब तरह के सैनिकों की यौन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए तैयार है। यह निश्चित रूप से बड़ी आश्चर्यजनक बात है, बेशर्मी-भरी कामुकतापूर्ण कल्पना है; पर स्वप्न इसके बारे में कुछ नहीं कहता। जहां प्रसंग से यह स्वीकृत होनी चाहिए थी ठीक वहीं व्यक्त स्वप्न में अस्पष्ट ध्वनि है; कोई चीज छोड़ दी गई है या दबा दी गई है।

मुझे आशा है कि आप यह अनुभव करेंगे कि यह अनुमान कितना स्वाभाविक है कि ये वाक्य चोट पहुंचाने वाले होने के कारण ही दबाए गए हैं। अब बताइए कि इस तरह की चीज और कहां होती है। आजकल के जमाने में इसे खोजने आपको दूर नहीं जाना होगा। किसी भी राजनीतिक अखबार को ले लीजिए, और आप देखेंगे कि जगह-जगह कोई चीज गायब है, और इसके स्थान पर सफेद खाली कागज दिखाई दे रहा है। आप जानते हैं कि यह प्रेस-सेन्सर का काम है। जहां-जहां जगह

ती है वहां-वहां शुरू में जो चीज लिखी हुई थी, उसे सेन्सरशिप अधिकारियों
नापसन्द किया और इस कारण उसे हटा दिया गया। आप शायद इसे तो
प्रयोग की बात समझेंगे, क्योंकि यही समाचार का सबसे महत्वपूर्ण
सारभूत भाग होता है।

कुछ अगर सेन्सरशिप ने पूरे वाक्य को नहीं छुआ है क्योंकि लेखक ने पहले ही
यह अनुमान करके कि सेन्सर को किन वाक्यों पर आपत्ति हो सकती है, उन्हें हल्का
करके, थोड़ा-सा बदलकर या जो कुछ वह वास्तव में लिखना चाहता है, उसके
संकेतों से ही सन्तुष्ट होकर सेंसर की पेशबन्दी कर दी है। इस अवस्था में कोई जगह
खाली नहीं है, पर बात कहने के घुमावदार और स्पष्ट तरीके से आपको इस तथ्य
का पता चल सकता है कि लिखने के समय लेखक को सेन्सरशिप का ध्यान था।

अब इस सादृश्य के अनुसार चलते हुए हम कहते हैं कि स्वप्न में जो बातें छोड़
दी गई हैं या बुदबुदाहट के रूप में आई हैं वे भी किसी सेन्सरशिप की काट-छांट का
नतीजा है। हम सचमुच 'स्वप्न-सेन्सरशिप' या 'स्वप्नगत काट-छांट' शब्दों का
प्रयोग करते हैं और स्वप्न के विपर्यास का आंशिक कारण इसीको समझते हैं।
व्यक्त स्वप्न में जहां कहीं खाली स्थान है, वहां हम जानते हैं कि यह सेंसरशिप के
कारण है, और इससे भी आगे बढ़कर हमें यह समझ लेना चाहिए कि दूसरे अधिक
प्रमुख रूप से निर्दिष्ट अवयव में जहां कहीं कोई ऐसा अवयव है जिसकी याद धुंधली,
अनिश्चित या संदिग्ध है, वहां वह सेन्सरशिप के काम का ही सबूत है; पर सेन्सर-
शिप इतना छिपा हुआ या चतुराई-भरा रूप बहुत कम ग्रहण करती है जितना
इसने 'प्रेमसेवा' वाले स्वप्न में ग्रहण किया। प्रायः सेन्सरशिप ऊपर बताए गए
दूसरे तरीके से अपने होने का आभास देती है अर्थात् सच्चे अर्थ के स्थान पर
उसके रूप-भेद, संकेत और अस्पष्ट निर्देश पेश करती है।

स्वप्न-सेन्सरशिप के कार्य करने का एक तीसरा तरीका भी है, जो प्रेस-सेन्सरशिप
के नियमों से नहीं मिलता, पर बात यह है कि मैं आपको स्वप्न-सेन्सरशिप के
कार्य करने की यह विशेष रीति उस स्वप्न में ही दिखा सकता हूं जिसका अब तक
हमने विश्लेषण किया है। आपको 'डेढ़ फ्लोरिन के तीन खराब थियेटर-टिकटों'
वाला स्वप्न याद होगा। इस स्वप्न के पीछे मौजूद गुप्त विचारों में, 'बहुत जल्द-
बाजी' का तथ्य मुख्य था। उसका अर्थ यह था 'इतनी जल्दी विवाह करना बेव-
कूफी थी, इतनी जल्दी टिकट लेना भी बेवकूफी थी, ननद का इतनी जल्दबाजी
में एक जेवर पर अपने रुपये खर्च कर डालना हास्यास्पद था'। स्वप्न-विचारों के
इस केन्द्रीय तत्त्व की कोई भी चीज व्यक्त वस्तु में नहीं दिखाई दी। उसमें हर चीज
का केन्द्र थियेटर जाना और टिकट लेना ही था, बल्कि स्थान-परिवर्तन और स्वप्न-
अवयवों की नई जोड़-तोड़ से व्यक्त वस्तु गुप्त विचारों से इतनी भिन्न हो गई कि
कोई भी उसके पीछे इसके होने का सन्देह नहीं करेगा। यह बलाघात का

स्थापन या परिवर्तन विपर्यास मे काम आने वाला एक प्रधान साधन है और सीके कारण स्वप्न मे ऐसी विचित्रता आ जाती है जो स्वप्न देखने वाले को यह नने से रोकती है कि यह स्वप्न उसके अपने मन से पैदा हुआ है।

तो, विलोपन या किसी चीज का छूट जाना, रूप-भेद, और सामग्री की नई जोड-ड़—इन तीन प्रकार से स्वप्न-सेन्सरशिप का कार्य होता है और विपर्यास मे युक्त साधन यही है। सेन्सरशिप स्वय विपर्यास की, जो इस समय हमारी खोज ा विषय है, जन्मदाता या जन्मदाताओ मे से एक है। रूप-भेद और विन्यास की दल-बदल को आम तौर से विस्थापन[1] शब्द के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

स्वप्न-सेन्सरशिप के कार्यों पर इतना विचार करने के बाद अब हमे इसकी तिको पर ध्यान देना चाहिए। मुझे आशा है कि आप सेन्सरशिप शब्द का अर्थ लकुल मनुष्य के रूप मे नही ले रहे। आप यह मत समझिए कि सेन्सर कोई छोटा-ा मनुष्य या आत्मिक सत्ता है जो मस्तिष्क की छोटी-सी कोठरी मे रहती है और हा से सीमित कर्तव्य पूरे करती है और न आप इसे किसी छोटे-से स्थान मे सीमित रके यह कल्पना कर सकते हैं कि यह कोई ऐसा 'मस्तिष्क-केन्द्र' है जहा से सेन्सर-ारी असर किया करता है और उस केन्द्र को चोट पहुचाने, या उसके निकल जाने । सेन्सर का प्रभाव खत्म हो जाएगा। फिलहाल हम इसे गतिकीय सम्बन्ध का ावट करने वाला एक उपयोगी शब्द-मात्र मान सकते हैं। इसके कारण हमे यह पूछने ा कोई बाधा नहीं होनी चाहिए कि किस प्रकार की प्रवृत्तियां यह प्रभाव पैदा रती हैं और किस प्रकार की प्रवृत्तियों पर इसका प्रभाव पडता है, और फिर मे यह जानने पर आश्चर्य न होना चाहिए कि हम शायद सेन्सरशिप को बिना हचाने उससे मिल चुके हैं।

असल मे ऐसा सचमुच हुआ है। जब हमने अपनी मुक्त साहचर्य की विधि लागू करनी शुरू की थी, उस समय के आश्चर्यजनक अनुभव को याद कीजिए। हमने देखा था कि जब हमने स्वप्न-अवयव से अचेतन विचार मे, जो उसका स्थानापन्न है, जाने की कोशिश की थी, तब हमें कुछ प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था। हमने कहा था कि उस प्रतिरोध की शक्ति बदलती रहती है। कभी बहुत अधिक होती है, और कभी बहुत हल्की। जब वह हल्की होती है, तब हमें निर्वचन के काम के लिए बहुत थोड़ी संयोजक कड़ियों की जरूरत पडती है, पर जहां प्रतिरोध अधिक होता है, वहां हमें साहचर्यों की लम्बी शृखलाओं मे से गुजरना पड़ता है जो हमें शुरू के विचार से बहुत दूर ले जाती हैं, और रास्ते में हमें, साहचर्यों पर होने वाले और ऊपर से गम्भीर दीखने वाले आक्षेपों की सब कठिनाइयों को पार करना पड़ता है। हमने निर्वचन के काम मे, जिसे प्रतिरोध के रूप में देखा था,

१. Displacement

खाली है वहा-वहा शुरू मे जो चीज लिखी हुई थी, उसे सेन्सरशिप अधिकारियों
ने नापसन्द किया और इस कारण उसे हटा दिया गया । आप शायद इसे बड़े
अफसोस की बात समझेंगे, क्योंकि वही समाचार का सबसे महत्वपूर्ण या
सारभूत भाग होता है ।

कुछ जगह सेन्सरशिप ने पूरे वाक्य को नही छुआ है क्योंकि लेखक ने पहले ही
यह अनुमान करके कि सेन्सर को किन वाक्यो पर आपत्ति हो सकती है, उन्हें हल्का
करके, थोड़ा-सा बदलकर या जो कुछ वह वास्तव मे लिखना चाहता है, उसके
सकेतो से ही सन्तुष्ट होकर सेंसर की पेशबन्दी कर दी है । इस अवस्था मे कोई जगह
खाली नही है, पर बात कहने के घुमावदार और स्पष्ट तरीके से आपको इस तथ्य
का पता चल सकता है कि लिखने के समय लेखक को सेन्सरशिप का ध्यान था ।

अब इस सादृश्य के अनुसार चलते हुए हम कहते हैं कि स्वप्न मे जो बातें छोड़
दी गई हैं या बुदबुदाहट के रूप मे आई हैं वे भी किसी सेन्सरशिप की काट-छाट का
नतीजा है । हम सचमुच 'स्वप्न-सेन्सरशिप' या 'स्वप्नगत काट-छाट' शब्दों का
प्रयोग करते हैं और स्वप्न के विपर्यास का आशिक कारण इसीको समझते हैं
व्यक्त स्वप्न मे जहा कही खाली स्थान है, वहा हम जानते हैं कि यह सेंसरशिप
कारण है, और इससे भी आगे बढ़कर हमें यह समझ लेना चाहिए कि दूसरे
प्रमुख रूप से निर्दिष्ट अवयव मे जहा कही कोई ऐसा अवयव है जिसकी याद
अनिश्चित या सदिग्ध है, वहा वह सेन्सरशिप के काम का ही सबूत है, पर
शिप इतना छिपा हुआ या चतुराई-भरा रूप बहुत कम ग्रहण करती है
हमने 'प्रेमसेवा' वाले स्वप्न मे ग्रहण किया । प्राय सेन्सरशिप ऊपर बताए
दूसरे तरीके से अपने होने का आभास देती है अर्थात् सच्चे अर्थ के स्थान पर
उसके रूप-भेद, सकेत और अस्पष्ट निर्देश पेश करती है ।

स्वप्न-सेन्सरशिप के कार्य करने का एक तीसरा तरीका भी है, जो प्रेस-सेन्सरशिप
के नियमों से नही मिलता ; पर बात यह है कि मैं आपको स्वप्न-सेन्सरशिप
कार्य करने की यह विशेष रीति उस स्वप्न मे ही दिखा सकता हूं जिसका
हमने विश्लेषण किया है । आपको 'डेढ़ फ्लोरिन के तीन खराब थियेटर-टिकटों
वाला स्वप्न याद होगा । इस स्वप्न के पीछे मौजूद गुप्त विचारों मे, 'बहुत
जल्दी' का तथ्य मुख्य था । उसका अर्थ यह था 'इतनी जल्दी विवाह
करना बेवकूफी थी, इतनी जल्दी टिकट लेना भी बेवकूफी थी, ननद का इतनी
जल्दी
मे एक जेवर पर अपने रुपये खर्च कर डालना हास्यास्पद था' ।
इस केन्द्रीय तत्व की कोई भी चीज व्यक्त वस्तु मे नहीं दिखाई दी
का केन्द्र थियेटर जाना और टिकट लेना ही था, बल्कि स्थान-
अवयवों की नई जोड़-तोड़ से व्यक्त वस्तु गुप्त विचारों से
के पीछे इसके होने का सन्देह नहीं

उससे अब स्वप्नतत्व में सेन्सरशिप के रूप में फिर भेंट होती है। प्रतिरोध वस्तुत: मे सेन्सरशिप का ही नाम है। इससे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि सेन्स की शक्ति विपर्यास पैदा करके ही समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि वह सेन्सरशि स्थायी संस्था के रूप में रहती है, जिसका उद्देश्य उस विपर्यास को कायम र जो इसने एक बार पैदा किया है। इसके अलावा, जैसे निर्वचन में प्रत्येक अव साथ आने वाले प्रतिरोध की शक्ति भिन्न-भिन्न होती है, ठीक उसी तरह वि पूरे स्वप्न के प्रत्येक अवयव के लिए सेन्सरशिप द्वारा किए गए विपर्यास की म भी भिन्न-भिन्न होती है। व्यक्त और गुप्त स्वप्न की तुलना करने से पता च है कि कुछ गुप्त अवयव पूरी तरह लुप्त हो जाते हैं, कुछ अवयव थोड़ा-बहुत बदल लेते हैं, और कुछ अवयव व्यक्त स्वप्नवस्तु में परिवर्तित हो जाते हैं शायद तीव्रतर रूप में दिखाई देते हैं।

परन्तु हमारा प्रयोजन तो यह जानना था कि सेन्सरशिप कौन-सी प्रवृ करती हैं और कौन-सी प्रवृत्तियों पर यह की जाती है। स्वप्नों और शायद मानव जीवन को समझने के लिए आधारभूत इस प्रश्न का उत्तर उन स्वप्न फिर से नज़र डालकर, जिनका अर्थ लगाने में हमें सफलता मिली है, आसा दिया जा सकता है। सेन्सरशिप करने वाली प्रवृत्तियां वे हैं जिन्हें स्वप्न देखने या जाग्रत् अवस्था का विवेक स्वीकार करता है और जिनके साथ वह अपनी समता अनुभव करता है। निश्चित समझिए कि जब आप अपने किसी स्वप्न के निकाले हुए अर्थ को अस्वीकार करते हैं, तब आप भी उन्हीं प्रेरक कारणों से करते हैं जिनसे सेन्सरशिप की जाती है, और विपर्यास पैदा किया जाता है। निर्वचन या अर्थ लगाना जरूरी हो जाता है। हमारी पचास-वर्षीय महिला के पर विचार कीजिए। उसका स्वप्न उसे चोट पहुंचाने वाला लगा, यद्यपि निर्वचन नहीं किया गया था और यदि डाक्टर वॉन हग-हैलमथ ने उसे इसका असदिग्ध अर्थ बता दिया होता तो वह और भी पीड़ित हुई होती। बुरा समझ निन्दा करने के उस रवैये के कारण ही स्वप्न में बुरे लगने वाले वाक्यों के पर अस्पष्ट ध्वनि आ गई।

जिन प्रवृत्तियों के विरुद्ध स्वप्न-सेन्सरशिप कार्य कर रही है, अब उनक भीतरी आलोचनात्मक मानदंड की दृष्टि से वर्णन करना होगा। जब हम करते हैं, तब इतना ही कह सकते हैं कि वे सदा से आचार, सौंदर्य या समाज के कोण से आपत्ति योग्य और भद्दे होते हैं। वे ऐसी वस्तुएं होती हैं, जिनके हम जरा सोचने का भी हौसला नहीं कर सकते या फिर उन्हें घृणा से ही हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि ये सेन्सर की हुई अर्थात् कटी-छटी इच्छा स्वप्नों में विपर्यस्त रूप में प्रकट होती हैं सीमाहीन और निष्ठुर अहंकार की व्यक्त होती है, क्योंकि प्रत्येक ... अपना अहं

प्रकट होता है, और मुख्य कार्य करता है, यद्यपि वह यह जानता है कि व्यक्त वस्तु मे वह अपने-आपको कैसे पूरी तरह छिपा सकता है। स्वप्नो का यह पवित्र अहंकार[1] निश्चित रूप से नींद के लिए आवश्यक मानसिक रवैये से असम्बद्ध नहीं होता—नींद के लिए आवश्यक बात है सारी बाहरी दुनिया से दिलचस्पी हटा लेना।

जिस अहम् (ईगो) ने सब नैतिक बन्धनों को दूर कर दिया, वह यौन आवेग की सब आवश्यकताओं से अपनी एकात्मता अनुभव करता है—यौन आवेग की ये आवश्यकताएं ऐसी है जिन्हें हमारा सौंदर्य-विषयक अभ्यास बहुत समय से बुरा समझता रहा है, और जो नैतिकता द्वारा लगाए गए सब संयमों के विपरीत हैं। आनन्दप्राप्ति का प्रयत्न जिसे हम लिबिडो या राग कहते हैं—किसी भी निरोध[2] के काबू में न रहता हुआ, बल्कि निषेधात्मक वस्तुओं को ही पसन्द करता हुआ, अपनी तृप्ति के आलम्बन चुन लेता है। वह न केवल दूसरे आदमी की पत्नी को चुन लेता है, बल्कि सबसे बढ़कर बात यह है कि वह ऐसे निषिद्ध सम्भोग[3] के आलंबन चुन लेता है जिन्हें मानव जाति ने एकमत से पूज्य माना है—पुरुषों के लिए माता और बहन, स्त्रियों के लिए पिता और भाई। (हमारी पचास-वर्षीय महिला का स्वप्न भी निषिद्ध सभोग वाला है; उसमे लिबिडो या राग निश्चित रूप से पुत्र के प्रति प्रवृत्त है। जिन इच्छाओं को हम मनुष्य स्वभाव के लिए अपरिचित मानते हैं वे इतनी शक्तिशाली होती हैं कि स्वप्नो को जन्म देती हैं। घृणा भी बड़े प्रबल रूप मे प्रवर्तित होती है। जो लोग जीवन में अपने बहुत निकट के और प्रिय हैं, जैसे माता, पिता, भाई, बहन, पति या पत्नी, और स्वप्न देखने वाले के अपने बच्चे, इनके विरुद्ध बदले की इच्छा और इनकी मौत की अभिलाषा भी बहुत असामान्य चीज नहीं है। ये सेन्सर या काट-छाट की हुई इच्छाएं बिलकुल नरक से उठी मालूम होती हैं; जब हम उनका अर्थ जानते हैं तब अपने जाग्रत् क्षणो में हमें यह मालूम होता है कि उनकी काट-छाट सख्ती से नहीं हुई, पर इस दूषित वस्तु का दोष स्वयं स्वप्नों पर नहीं है; निश्चय ही आप यह भूले नहीं होंगे कि उनका न केवल हानि-रहित बल्कि उपयोगी काम नींद को भग होने से बचाना है। पतित या नीतिभ्रष्ट होना स्वप्नों का स्वभाव नहीं है। सच तो यह है, जैसाकि आप जानते हैं, कि ऐसे स्वप्न भी होते हैं जो उचित इच्छाओं को और तात्कालिक शारीरिक ज़रूरतों को पूरा करते हैं। यह सच है कि इन स्वप्नों मे विपर्यास नहीं होता, पर इनमे उसकी आवश्यकता भी नहीं होती। ये ईगो या अहम् की नैतिक और सौंदर्य सम्बन्धी प्रवृत्तियों को बिना चोट पहुंचाए अपना कार्य पूरा कर सकते हैं। यह भी याद रखिए कि विपर्यास की मात्रा दो बातों को समानुपाती होती है, एक तो जिस इच्छा को सेन्सर करना है वह जितनी अधिक आघातकारक या चौंकाने वाली

---

१. Sacroegoismo २. Inhibition ३. Incestuous objects

होगे, उतना ही अधिक विरूपण होगा, पर यदि सेन्सरशिप अर्थात् काट-छांट कराने वाली प्रवृत्ति सख्त है तो भी विरूपण अधिक होगा। इसलिए किसी बहुत सयम के वातावरण मे पाली गई और अति लज्जाशील नौजवान लड़की मे कठोर सेन्सर-शिप स्वप्न-उत्तेजनो को ऐसे रूप मे विपर्यस्त कर देगी, जिन्हे हम डाक्टर लोग हानिरहित कामुक इच्छाए मानते हैं, और जिन्हे स्वप्नद्रष्टा भी दस वर्ष बाद इसी रूप मे मानेगी।

इसके अतिरिक्त, हम अभी इतना अधिक आगे नही बढ़े हैं कि अपने अर्थ लगाने के काम के परिणामो पर परेशानी अनुभव करने लगें। मेरा ख्याल है कि अब भी हम इसे ठीक तरह नही समझते। पर सबसे पहले हमारा कर्तव्य यह है कि हम इस पर हो सकने वाली आलोचनाओ से इसको सुरक्षित कर दें। कमजोर पहलू ढूढ लेना कुछ भी कठिन नही है। हमारे निर्वचन उन परिकल्पनाओं के आधार पर थे, जो हमने पहले मान ली थी, कि स्वप्नो का सचमुच कुछ अर्थ होता है। यह विचार कि मानसिक प्रक्रम कुछ समय के लिए अचेतन होते हैं, जो पहले सम्मोहन-निद्रा के द्वारा पता चला था, सामान्य नीद पर भी लागू किया जा सकता है; और सब माह-चर्य नियति के अधीन, अर्थात् कार्य-कारण सम्बन्ध मे अनिवार्यत बधे होते हैं। अब यदि इन परिकल्पनाओ से आगे तर्क करते हुए हमे अपने स्वप्न-निर्वचन मे तर्क-सगत दीखने वाले परिणाम प्राप्त हो जाते तो हम यह नतीजा निकालकर उचित ही करते कि ये परिकल्पनाए सही हैं। पर यदि ये खोजें वैसी हो जैसी मैंने बताई हैं, तो तब क्या स्थिति होगी? उस अवस्था मे निश्चित रूप से यही कहना स्वाभाविक लगता है, 'ये परिणाम अशक्य, बेहूदे, और बहुत अधिक असम्भाव्य हैं। इसलिए परिकल्पनाओ मे कुछ न कुछ गलती रही होगी। या तो स्वप्न मानसिक घटना नही हैं, और या वे ऐसी कोई चीज नही हैं जो हमारी सामान्य अवस्था में अचेतन हो, अथवा हमारी विधि मे कही कमजोरी है। क्या ये सब घृणा योग्य निष्कर्ष मान लेने की अपेक्षा, जिन्हे हम अपनी परिकल्पनाओ मे निकाला गया बताते हैं, यह मान लेना अधिक सीधा और सन्तोषजनक नही होगा?'

निस्सदेह यह अधिक आसान भी होगा और अधिक सतोषजनक भी, पर इसी कारण यह आवश्यक नही कि यह अधिक सही भी होगा। थोड़ी देर इतजार कीजिए। अभी यह मामला फैसला करने लायक हालत मे नही पहुचा। अव्वल तो हम अपने निर्वचनो के विरुद्ध पक्ष को अधिक प्रबल बना सकते हैं। शायद इस तथ्य का हमारे लिए बहुत महत्त्व न हो कि हमारे परिणाम इतने अप्रिय और घृणा पैदा करने वाले हैं। इसमे भी जबर्दस्त दलील यह है कि जब हम इन स्वप्नो का निर्वचन करने के बाद स्वप्न देखने वालो पर कुछ इच्छा-प्रवृत्तिया लादने की कोशिश करते हैं, तब उनको बलपूर्वक और अच्छे आधार पेश करके अस्वीकार करते हैं। 'लो,' एक आदमी कहता है, 'आप मेरे स्वप्न मे मेरे आगे यह सिद्ध करना चाहते हैं

मैंने अपनी बहन के दहेज पर और अपने भाई की शिक्षा पर जो पैसा खर्च किया उसपर मेरे मन मे असन्तोष है, पर यह बिलकुल बेकार बात है, मैं अपना सारा य अपने भाई और बहनो के लिए काम करता हुआ बिता देता हू और सबमे होने के कारण जीवन मे मेरी एक यही दिलचस्पी है कि उनके प्रति अपने व्य का पालन करू, जैसा करने की मैंने अपनी स्वर्गीय माता से प्रतिज्ञा की थी।' कोई औरत कहती है, 'लोग कहते हैं कि मैं अपने पति की मौत चाहती हू। ल मे यह तो बडी कष्टकारक बेहूदगी है। इतना ही नही कि हमारा वैवाहिक वन सुखी है, यद्यपि शायद आप इसपर विश्वास नही करेंगे, बल्कि यह बात भी कि यदि वह मर जाए तो मेरे पास दुनिया मे जो कुछ है वह सब चला जाएगा।' कोई और यह उत्तर देगा, 'क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं अपनी बहन प्रति कामुकता की इच्छाएं रखता हू? यह बात उपहास योग्य है। यह मेरे लिए छ भी नहीं। हमारे आपस मे अच्छे सम्बन्ध नही हैं और वर्षों से मैं उससे एक ब्द भी नही बोला।' यदि ये स्वप्न देखने वाले उन प्रवृत्तियों को स्वीकार भी न रें और अस्वीकार भी न करें, जो हमने उनके अन्दर मौजूद बताई हैं, तो भी हम-र विशेष असर नहीं पड़ेगा। हम यह कह सकते हैं कि ये वही चीजें हैं जिनका न्हें बिलकुल ज्ञान नहीं है, पर जब वे अपने मन में उससे बिलकुल उलटी इच्छा खते हैं जो उनके मन मे बताई गई हैं, और जब वे जीवन के अपने सारे आचरण ारा हमारे सामने यह सिद्ध कर सकते हैं कि वह विपरीत इच्छा ही प्रधान रही , तब निश्चित रूप से हमे अवाक् रह जाना पडता है। क्या यहा पहुचकर हमे वप्न-निर्वचन के सारे कार्य को ही नहीं छोड देना चाहिए, क्योंकि इसमे हम बडी हूदी हालत मे पहुच गए हैं?

नहीं, अब भी नही। इस ज़ोरदार दलील की आलोचना की दृष्टि से देखने पर यह भी टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। यह मान लेने पर कि मानसिक जीवन मे अचेतन प्रवृत्तिया रहती हैं, यह तथ्य कुछ भी सिद्ध नही करता कि चेतन जीवन मे विरोधी प्रवृत्तिया प्रधान होती हैं। शायद मन में विरोधी प्रवृत्तियो, परस्पर-विरुद्ध बातो, के एकसाथ रहने की गुजाइश होती है। असल मे, सम्भवतः एक प्रवृत्ति की प्रधानता ही उसकी विरोधी प्रवृत्ति के अचेतन होने का कारण है। इस तरह पहले उठाई गई आपत्तियो का मतलब इतना ही हुआ कि स्वप्न-निर्वचन के परिणाम सरल नही होते, और बहुत अरुचिकर होते हैं। पहले आरोप के [illegible] कहना है, कि आप सरलता के चाहे जितने प्रेमी हो, पर उसमे आप [illegible] शुरू में ही आपको अपना मन ऐसा [illegible] स्वीकार करें। दूसरी बात के बारे [illegible] वैज्ञानिक निर्णय के लिए प्रेरक [illegible] है, साफ तौर

से गलत है। क्या हुआ यदि स्वप्न-निर्वचन के परिणाम आपको अप्रिय या
और घृणा पैदा करने वाले लगते हैं। जब मैं नया-नया डाक्टर बन
एक ऐसे ही मामले मे मेरे गुरु चारकोट ने ये शब्द कहे थे :

यदि हम ससार मे यथार्थता को जानने का तरीका सीखना चाह
विनयशील होना चाहिए और अपनी सहानुभूतियो तथा घृणाओ को भ
से गौण बनाए रखना चाहिए। यदि कोई भौतिक विज्ञान विशारद आ
यह सिद्ध कर सके कि धरती का प्राणि-जीवन कुछ ही समय बाद वि
हो जाने वाला है, तो क्या आप उससे भी यह कह सकेंगे, 'ऐसा नहीं है
मैं इस सम्भावना को बहुत नापसन्द करता हू।' मेरा ख्याल है कि आ
कुछ नही कहेगे जब तक कोई दूसरा भौतिकीवेत्ता आगे आकर पहले भौ
के साध्यावयवों[1] या गणनाओ मे भूल दिखाकर उसका खण्डन नही
यदि आप पसन्द न आने वाली हर चीज को अस्वीकार करते हैं तो
के ढाचे की प्रक्रिया को दोहरा रहे हैं, उसे समझ और सीख नहीं रहे

शायद तब आप काट-छाट की गई स्वप्न-इच्छाओं के भद्देपन को नज
दें, और फिर इस दलील पर आए कि यह बात बडी असम्भाव्य है कि
के ढाचे का इतना बडा भाग दोषमय मान लें। पर क्या आपके अपने अनु
इस कथन को उचित ठहराते हैं ? आप अपनी नजरो मे कैसे मालूम हो
बात को छोडिए। पर क्या आपने अपने से बडो और अपने प्रतिस्पर्धियो
सद्भावना देखी है, अपने दुश्मनों मे इतनी वीरता देखी है और अपने प
इतनी कम ईर्ष्या देखी है कि आपको यह आवश्यक मालूम होता है कि
प्रकृति की अहकारमय क्षुद्रता के कार्यों सम्बन्धी विचार का विरोध क
आप यह नही जानते कि औसत मनुष्य यौन जीवन सम्बन्धी सब बातों मे
अनियन्त्रित और अविश्वसनीय है ? या आप इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि
हम जो अतिया और पाप स्वप्न मे देखते हैं, वे सब अच्छी तरह जाग्र
द्वारा सचमुच किए जाने वाले जुर्म हैं ? मनोविश्लेषण इस सिलसिले मे
तो करता है कि प्लेटो के इस पुराने कथन की पुष्टि कर दे कि अच्छे ल
कामों का स्वप्न देखकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं जिन्हें बुरे लोग सचमुच क

और अब व्यक्तियों को छोड़कर इस महायुद्ध को लीजिए, जो आज भ
का विध्वंस कर रहा है, सोचिए कि कितनी विराट क्रूरता, पाशविक
मिथ्यावादिता सभ्य ससार के ऊपर फैलाई जा रही है। क्या आप सच
मानते हैं कि मुट्ठी-भर सिद्धान्तहीन, पदलोलुप और लोगों को बिगाड़
आदमी इस तमाम छिपे हुए अपगत्व को फैलाने मे सफल हो सकते थे, यदि

लो अनुयायी भी दोषी न होते ? क्या इन परिस्थितियों में भी आप बुराई को नुष्य जाति के मानसिक गठन में अलग रखने के पक्ष में खड़े होने का साहस रेंगे ?

आप मुझपर यह दोषारोपण करेंगे कि मैंने युद्ध का एकांगी दृष्टिकोण पेश किया है और मुझसे कहेंगे कि इसने मनुष्य जाति के सर्वोत्तम और उदात्ततम गुणों—वीरता, बलिदान और लोकमंगल की भावना—को भी सामने आने का मौका दिया है। यह सच है, पर अब यह अन्याय न कीजिए जोकि मनोविश्लेषण को इतनी बार सहना पड़ा है, अर्थात् यह कहकर इसकी निंदा न कीजिए कि यह इसलिए एक चीज़ का निषेध करता है क्योंकि एक और चीज की पुष्टि करता है। हमारा यह प्रयोजन नहीं है कि मनुष्य-स्वभाव में मौजूद उदात्तता का निषेध करें, और न हमने कभी इसके महत्त्व को गिराने की कोई चेष्टा की है। इसके विपरीत, मैं आपको न केवल वे दुष्ट इच्छाएं दिखा रहा हूं, जो सेन्सर की जाती हैं, बल्कि वह सेन्सरशिप भी दिखा रहा हूं जो उन्हें दबाती है, और उन्हें पहचान में आने के अयोग्य बना देती है। हम मनुष्य की बुराई पर अधिक बल इसलिए देते हैं कि दूसरे लोग इसका निषेध करते हैं और इस तरह वे मनुष्य जाति के मानसिक जीवन को अच्छे के बजाय दुर्बोध बना देते हैं। यदि हम एकांगी आचार सम्बन्धी मूल्यांकन छोड़ दें तो मनुष्य-प्रकृति में बुरे और अच्छे के आपसी सम्बन्ध का अधिक सही सूत्र हमें प्राप्त होगा।

बस, इतनी ही बात है। हमें अपने स्वप्न-निर्वचन के काम के परिणामों को छोड़ना नहीं है, चाहे वे हमें जितने अजीब लगें। शायद बाद में हम दूसरे रास्ते से उन्हें समझने के अधिक निकट पहुंच जाएं। फिलहाल हमें इस बात को पकड़े रहना चाहिए कि स्वप्न-विपर्यास का कारण यह है कि अहम् या ईगो की बुध पहचानी हुई प्रवृत्तियां नींद में रात के समय हमारे अन्दर उठ पड़ने वाली भद्दे प्रकार की [illegible]

स्वप्नों में प्रतीकात्मकता*

हमने देखा था कि स्वप्नों में विपर्यास, जो हम उन्हें समझने से रोकता है,
र्शन या काट-छांट की प्रवृत्ति की क्रिया के कारण होता है—यह क्रिया
वीकार्य अचेतन इच्छा-आवेगों के विरुद्ध चलती है। पर हमने यह नहीं कहा
5 विपर्यास का एकमात्र कारण सेन्सरशिप या काट-छांट ही है, और सच तो
है कि स्वप्नों का और आगे अध्ययन करने से यह पता चलता है कि इस
काम में सहायता देने वाले कुछ और भी कारण हैं। कहने का आशय यह
। कि यदि सेन्सरशिप न रहे तो भी हम स्वप्नों को समझने में असमर्थ रहेंगे,
। व्यक्त स्वप्न और गुप्त स्वप्न-विचार अभिन्न नहीं होंगे।

स्वप्नों की अस्पष्टता का यह दूसरा कारण, विपर्यास का यह एक और सहायक,
' हमारे सामने आता है जब हमें अपनी विधि में एक कमी या खाली जगह
पता चलता है। मैं आपसे पहले ही कह चुका हूं कि कई बार विश्लेषण के
ीन व्यक्तियों का अपने स्वप्नों के एक-एक पृथक् अवयव से सचमुच कोई साहचर्य
ीं होता, पर यह बात जितनी बार वे कहते हैं उतनी बार सच नहीं होती।
त-से उदाहरणों में धीरज और परिश्रम से यह साहचर्य प्रेरित करके निकाला
' सकता है, पर फिर भी कुछ उदाहरण ऐसे रह जाते हैं जिनमें साहचर्य बिलकुल
ीं मिलता; अथवा यदि अन्त में कोई चीज़ जबर्दस्ती करने पर निकल भी आई
यह वह नहीं होती जिसकी हमें आवश्यकता है। यदि यह बात मनोविश्लेषण
रा किए जा रहे इलाज में होती है तो इसका एक विशेष अर्थ होता है जिसका
हां कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह सामान्य लोगों के स्वप्नों के निर्वचन में, या तब
। होती है जब हम स्वयं अपने स्वप्नों का निर्वचन करते हैं। इन परिस्थितियों
जब हमें यह निश्चय हो जाए कि कितना भी जोर डालने से कोई लाभ नहीं,
ं अन्त में हमें यह पता चलता है कि जहां विशेष स्वप्न-अवयवों का सवाल होता
वहां यह अप्रिय स्थिति नियमित रूप से सामने आती है; और अब हम किसी
ये सिद्धांत को कार्य करता हुआ देखने लगते हैं, जबकि पहले हमने सोचा था

* Symbolism

याद करते है, एक तो यह कि प्रतीकात्मकता स्वप्नो मे नही होती, और न उसकी अनन्य विशेषता है, और दूसरी यह कि स्वप्नो मे प्रतीकात्मकता का प्रयोग मनो-विश्लेषण का आविष्कार नही है, यद्यपि इस विज्ञान ने और बहुत-से आश्चर्य में डालने वाले आविष्कार किए हैं। यदि आधुनिक काल मे इस क्षेत्र मे सबसे पहले आविष्कारक को ढूढना हो तो दार्शनिक के० ए० शरनर (१८६१) को इसका आविष्कारक मानना चाहिए। मनोविश्लेषण ने उसके आविष्कार की पुष्टि की है यद्यपि कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टियो से इसमे सशोधन भी किए हैं।

अब आप स्वप्न-प्रतीकात्मकता की प्रकृति के बारे मे कुछ सुनना, और उसके कुछ उदाहरणो पर विचार करना चाहेगे। मैं जो कुछ जानता हू, वह खुशी से आपको बताऊगा, पर इस विषय मे हमारी जानकारी बहुत अधिक नहीं है।

प्रतीकात्मक सम्बन्ध सारभूत रूप मे तुलना का सम्बन्ध है, पर वह किसी भी प्रकार की तुलना नही है। हमारा ख्याल है कि यह तुलना कुछ विशेष अवस्थाओं मे ही हो सकती होगी, यद्यपि हम नही बता सकते कि वे अवस्थाए कौन सी हैं। किसी वस्तु या घटना की जिस-जिस चीज से तुलना की जा सकती है, वह प्रत्येक चीज स्वप्नो मे उसका प्रतीक बनकर नही आती, और दूसरी ओर, स्वप्न प्रत्येक चीज के लिए प्रतीकात्मकता का प्रयोग न करके गुप्त स्वप्न-विचारो के खास अवयवों के लिए ही इसका प्रयोग करते है। इस प्रकार दोनो दिशाओ मे कुछ सीमाए हैं। हमे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अभी हम बिलकुल निश्चित रूप से यह नहीं बता सकते कि हमारी प्रतीक की अवधारणा की सीमा कहां तक है क्योंकि स्थानापन्नता, निरूपण आदि मे विलीन होने लगता है और अस्पष्ट निर्देश के निकट भी जा पहुचता है। प्रतीकों के एक समुदाय मे तुलना आसानी से दिखाई दे सकती है, पर कुछ प्रतीको मे सामान्य अश खोजना पडता है। हो सकता है कि अधिक विचार करने से हमे यह पता चल जाए, पर यह भी हो सकता है कि यह हमसे सदा छिपा ही रहे। फिर, यदि प्रतीक वस्तुत तुलना ही है तो यह बात उल्लेखनीय है कि यह तुलना मुक्त साहचर्य के प्रक्रम से सामने नही आती, और स्वप्नद्रष्टा को भी इसके विषय मे कुछ पता नही होता, पर वह बिना जाने इसका प्रयोग करता है। इतना ही नही, वह तो उसके सामने पेश किए जाने पर इसे पहचानने को भी तैयार नही। इस प्रकार आप देखते हैं कि प्रतीकात्मक सम्बन्ध एक बिलकुल अनोखे किस्म की तुलना है, जिसकी प्रकृति अभी तक हम पूरी तरह नहीं जानते। शायद बाद मे कोई ऐसा सकेत मिल जाए जो इस प्रश्न

...ओ के रूप में दिखाई देती हैं, उनकी सख्या अधिक ...
-पिता, बच्चे, भाई और बहनें, जन्म, मृ...
का रूप नियमित रूप से मकान ...

एक अपवाद है जिसमे हमारी विधि विफल हो गई है।
हम इन 'न बोलने वाले' अवयवों का अर्थ लगाने की कोशिश
अपने साधनों का उपयोग करके उन्हें अनुवादित करने का यत्न
यह बात हमे महसूस हुए बिना नही रह सकती कि जिस किसी उदाहरण
करके यह स्थानापन्नता कर देते हैं, उसमे ही हम सन्तोषजनक
जाते हैं; परन्तु जब तक हम इस विधि का प्रयोग नहीं करते तब
अर्थहीन और टूटा-फूटा बना रहता है। तब बहुत-से बिलकुल एकसे
इकट्ठे हो जाने पर हम अपने परिणाम के बारे में आवश्यक
है जबकि शुरू मे हमने बड़े अविश्वास के साथ अपने परीक्षण
सब बात मैं रूपरेखा के रूप मे बता रहा हूं, पर शिक्षा-कार्य के लिए
रूप से ऐसा करना उचित है, और ऐसा करने से यह गलत भी नही
बल्कि सिर्फ सरल रूप मे आ जाती है।
प्रकार हम स्वप्न-अवयवो की एक श्रेणी का नियत अनुवाद करते हैं,
स्वप्न-सम्बन्धी लोकोपयोगी पुस्तकों मे स्वप्न मे होने वाली प्रत्येक बात
अनुवाद दिए होते हैं। आप भूले नही होगे कि जब हम मुक्त साहचर्य
विधि का प्रयोग करते हैं तब स्वप्न-अवयवो की स्थानापन्नताएं कभी नहीं
देती।
अब आप तुरन्त कहेंगे कि निर्वचन की यह रीति आपको पहली मुक्त साहचर्य
की अपेक्षा भी अधिक अनिश्चित और आक्षेप योग्य मालूम होती है।
कुछ बात अभी बाकी है। जब हमने वास्तविक अनुभव से ऐसे नियत अनु-
की श्रेणी जमा कर ली हो, तब हम अन्त मे यह अनुभव करते हैं कि
वचन के इन अशो मे हम अपने निजी ज्ञान से खाली स्थानो को भर सकते
और वे स्वप्नद्रष्टा के साहचर्यों का उपयोग किए बिना ही सचमुच समझे
सकते थे। यह कैसे होता है कि हमे उनका अर्थ अवश्य पता होता है?—
प्रश्न पर हम अपनी बातचीत के पिछले आधे हिस्से मे विचार करेंगे।
किसी स्वप्न-अवयव और उसके अनुवाद मे जो नियत, अर्थात् न बदलने वाला
सम्बन्ध होता है, उसे हम प्रतीकात्मक सम्बन्ध कहते हैं और स्वय स्वप्न-अवयव
अचेतन स्वप्न-विचार का प्रतीक या सकेत कहते हैं। आपको याद होगा कि
कुछ समय पहले, जब हम स्वप्न-अवयवो और उनके पीछे मौजूद विचारों के
विभिन्न सम्बन्धों पर विचार कर रहे थे, तब मैंने तीन सम्बन्ध बनाए थे—सारे के
स्थान पर एक भाग का आ जाना, अस्पष्ट निर्देश[1] और कल्पनाचित्र[2]। तब मैंने
आपसे कहा था कि एक चौथा सम्बन्ध भी हो सकता है, पर मैं नही [illegible] था

---

१. Allusion २. Imagery

कि वह क्या हो सकता है। यह चौथा सम्बन्ध सांकेतिक या प्रतीकात्मक है जो मैं अब बता रहा हूं। इसके साथ कुछ मनोरंजक विचारणीय प्रश्न जुड़े हुए हैं जिनपर विचार करने के बाद हम इस विषय पर अपने विशेष विचार पेश करेंगे। प्रतीकात्मकता हमारे स्वप्न-सिद्धान्त का शायद सबसे अधिक विशिष्ट भाग है।

पहली बात: किसी प्रतीक और उससे निर्दिष्ट मनोबिम्ब का सम्बन्ध नियत, अर्थात् न बदलने वाला, होता है—मनोबिम्ब प्रतीक का मानो अनुवाद ही होता है, इसलिए प्रतीकवाद कुछ मात्रा में प्राचीन और प्रचलित दोनों प्रकार के स्वप्न-निर्वचन के आदर्श को मूर्त कर देता है जिससे अपनी विधि में हम बहुत दूर हट आए हैं। प्रतीकों के द्वारा हम कुछ परिस्थितियों में स्वप्नद्रष्टा से बिना प्रश्न किए स्वप्न का निर्वचन कर सकते हैं पर स्वप्नद्रष्टा प्रतीकों के बारे में हमें कुछ नहीं बता सकता। यदि स्वप्नों में आम तौर से दिखाई देने वाले प्रतीक ज्ञात हों और स्वप्न देखने वाले के व्यक्तित्व का, उसके रहन-सहन की अवस्थाओं का और उसे स्वप्न आने से पहले उसके मन पर पड़े हुए प्रभावों का हमें पता हो तो प्राय हम सीधे ही उसका अर्थ लगा सकते हैं, मानो उसे देखते ही उसका भाषान्तर या अनुवाद कर सकते हैं। इस तरह के कौशल से निर्वचनकर्ता के अहंकार की संतुष्टि होती है और स्वप्नद्रष्टा प्रभावित हो जाता है। यह स्वप्नद्रष्टा से प्रश्न पूछने की श्रमपूर्ण रीति से बिलकुल उल्टी, और इसीलिए अच्छी लगने वाली विधि है, पर इसे अपनाकर भटक न जाइए। हमारा काम ऐसे कौशल दिखाना नहीं है, और प्रतीकात्मकता के ज्ञान के आधार पर अर्थ लगाने की विधि मुक्त साहचर्य की विधि का स्थान नहीं ले सकती, और न ही उसके बराबर हो सकती है। यह मुक्त साहचर्य की विधि का पूरक है, और इससे प्राप्त परिणाम तभी उपयोगी होते हैं जब उन्हें मुक्त साहचर्य की विधि के साथ काम में लाया जाए। इसके अलावा जहां तक स्वप्नद्रष्टा की मानसिक स्थिति के बारे में हमारी जानकारी का प्रश्न है, आपको सोचना चाहिए कि आपको उन्हीं व्यक्तियों के स्वप्नों का अर्थ नहीं लगाना है जिन्हें आप अच्छी तरह जानते हैं; कि सामान्यत. आपको पिछले दिन की उन घटनाओं

करते हैं, एक तो यह कि प्रतीकात्मकता स्वप्नों में नहीं होती, और न उसकी
न्य विशेषता है, और दूसरी यह कि स्वप्नों में प्रतीकात्मकता का प्रयोग मनो-
श्लेषण का आविष्कार नहीं है, यद्यपि इस विज्ञान ने और बहुत-से आश्चर्य में
ालने वाले आविष्कार किए हैं। यदि आधुनिक काल में इस क्षेत्र में सबसे पहले
आविष्कारक को ढूंढना हो तो दार्शनिक के० ए० शरनर (१८६१) को इसका
आविष्कारक मानना चाहिए। मनोविश्लेषण ने उसके आविष्कार की पुष्टि की है,
यद्यपि कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टियों से इसमें संशोधन भी किए हैं।

अब आप स्वप्न-प्रतीकात्मकता की प्रकृति के बारे में कुछ सुनना, और उसके
कुछ उदाहरणों पर विचार करना चाहेंगे। मैं जो कुछ जानता हूं, वह सुनी
आपको बताऊंगा, पर इस विषय में हमारी जानकारी बहुत अधिक नहीं है।

प्रतीकात्मक सम्बन्ध सारभूत रूप में तुलना का सम्बन्ध है, पर वह किसी भी
प्रकार की तुलना नहीं है। हमारा ख्याल है कि यह तुलना कुछ विशेष अवस्थाओं में
ही हो सकती होगी, यद्यपि हम नहीं बता सकते कि वे अवस्थाएं कौन-सी हैं। किसी
वस्तु या घटना की जिस-जिस चीज़ से तुलना की जा सकती है, वह प्रत्येक चीज़
स्वप्नों में उसका प्रतीक बनकर नहीं आती, और दूसरी ओर, स्वप्न प्रत्येक चीज़
के लिए प्रतीकात्मकता का प्रयोग न करके गुप्त स्वप्न-विचारों के खास अवयवों के
लिए ही इसका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार दोनों दिशाओं में कुछ सीमाएं हैं
हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अभी हम बिलकुल निश्चित रूप से यह न
बता सकते कि हमारी प्रतीक की अवधारणा की सीमा कहां तक है क्योंकि
स्थानापन्नता, निरूपण आदि में विलीन होने लगता है और अस्पष्ट निर्देश के निकट
तक भी जा पहुंचता है। प्रतीकों के एक समुदाय में तुलना आसानी से दिखाई दे
वाली हो सकती है, पर कुछ प्रतीकों में सामान्य अंश खोजना पड़ता है। हो सकता
है, अधिक विचार करने से हमें यह पता चल जाए, पर यह भी हो सकता है कि
हमसे सदा छिपा ही रहे। फिर, यदि प्रतीक वस्तुतः तुलना ही है तो यह ब.
उल्लेखनीय है कि यह तुलना मुक्त साहचर्य के प्रक्रम से सामने नहीं आती, और
स्वप्नद्रष्टा को भी इसके विषय में कुछ पता नहीं होता, पर वह बिना जाने
इसका प्रयोग करता है। इतना ही नहीं, वह तो उसके सामने पेश किए जाने पर
इसे पहचानने को भी तैयार नहीं। इस प्रकार आप देखते हैं कि प्रतीकात्मक
सम्बन्ध एक बिलकुल अनोखे किस्म की तुलना है, जिसकी प्रकृति अभी तक हम
पूर्णतया नहीं जानते। शायद बाद में कोई ऐसा संकेत मिल जाए जो इस अज्ञात
राशि पर कुछ प्रकाश डाले।

स्वप्नों में जो वस्तुएं प्रतीकों के रूप में दिखाई देती हैं, उनकी संख्या अधिक
नहीं है। मनुष्य का सारा शरीर, माता-पिता, बच्चे, भाई और बहनें, जन्म, मृत्यु
नग्नता तथा एक चीज़ और। मनुष्य का रूप नियमित रूप से मकान द्वा

दिखाई देना है, जैसाकि शरनर ने पहचाना था, और वह तो इस प्रतीक को इतना अधिक सार्थक बनाता था जितना यह वास्तव में नहीं है। लोगों को किसी मकान के सामने के हिस्से पर कभी आनन्द की भावना से और कभी भय की भावना से चढने के स्वप्न आते हैं। जब दीवारें बिलकुल चिकनी होती हैं, तब मकान का अर्थ है पुरुष, जब उसमें छज्जे और जालियां हों जिन्हें पकड़ा जा सकता है, तब अर्थ है स्त्री। स्वप्नों में माता-पिता सम्राट और सम्राज्ञी, राजा और रानी या अन्य ऊंचे व्यक्तियों के रूप में दिखाई देते हैं। इस मामले में स्वप्न का ढंग बड़ा पितृभक्ति से पूर्ण है। बच्चों और भाइयों तथा बहनों के साथ कुछ मस्ती बरती गई है; उनके प्रतीक हैं छोटे पशु या कीड़े। जन्म प्राय सदा पानी के रूप में होता है। या तो हम पानी में गिर रहे हैं या इसमें से निकल रहे हैं या इसमें से किसीको बचा रहे हैं; या कोई हमें बचा रहा है, अर्थात् माता और बच्चे का सम्बन्ध प्रतीक रूप में होता है। मरने के लिए हम किसी यात्रा पर गाड़ी से सफर पर रवाना हुए हैं, और मृत्यु की अवस्था बहुत-से धुंधले और मानो डरते हुए अस्पष्ट संकेतों से सूचित होती है। कपड़े या वर्दियां नंगेपन को सूचित करती हैं। आप देखते हैं कि यहां प्रतीकात्मक

ई देता है, जैसाकि शरनर ने पहचाना था, और वह तो इस प्रतीक को इतना
क सार्थक बताता था जितना यह वास्तव मे नहीं है। लोगों को किसी मकान
ामने के हिस्से पर कभी आनन्द की भावना से और कभी भय की भावना से
 के स्वप्न आते हैं। जब दीवारें बिलकुल चिकनी होती हैं, तब मकान का अर्थ
रुप, जब उसमे छज्जे और जालिया हों जिन्हें पकड़ा जा सकता है, तब अर्थ है
। स्वप्नो मे माता-पिता सम्राट और सम्राज्ञी, राजा और रानी या अन्य ऊंचे
क्तियो के रूप मे दिखाई देते हैं। इस मामले मे स्वप्न का ढंग बड़ा पितृभक्ति
पूर्ण है। बच्चों और भाइयो तथा बहनों के साथ कुछ सख्ती बरती गई है, उनके
क हैं छोटे पशु या कीड़े। जन्म प्राय: सदा पानी के रूप मे होता है। या तो हम
ी मे गिर रहे हैं या इसमें से निकल रहे हैं या इसमे से किसीको बचा रहे हैं;
कोई हमे बचा रहा है, अर्थात् माता और बच्चे का सम्बन्ध प्रतीक रूप मे होना
मरने के लिए हम किसी यात्रा पर गाड़ी से सफर पर रवाना हुए हैं, और मृत्यु
अवस्था बहुत-से धुधले और मानो डरते हुए अस्पष्ट संकेतों से सूचित होती है।
ड़े या वर्दियां [illegible] हैं। आप देखते हैं कि यहां प्रतीकात्मक

याद करते हैं, एक तो यह कि प्रतीकात्मकता स्वप्नों में नहीं होती, और न उसकी अनन्य विशेषता है, और दूसरी यह कि स्वप्नों में प्रतीकात्मकता का प्रयोग मनोविश्लेषण का आविष्कार नहीं है, यद्यपि इस विज्ञान ने और बहुत-से आश्चर्य में डालने वाले आविष्कार किए हैं। यदि आधुनिक काल में इस क्षेत्र में सबसे पहले आविष्कारक को ढूंढना हो तो दार्शनिक के० ए० शर्नर (१८६१) को इसका आविष्कारक मानना चाहिए। मनोविश्लेषण ने उसके आविष्कार की पुष्टि की है, यद्यपि कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टियों से इसमें संशोधन भी किए हैं।

अब आप स्वप्न-प्रतीकात्मकता की प्रकृति के बारे में कुछ सुनना, और उसके कुछ उदाहरणों पर विचार करना चाहेंगे। मैं जो कुछ जानता हूं, वह खुशी से आपको बताऊंगा, पर इस विषय में हमारी जानकारी बहुत अधिक नहीं है।

प्रतीकात्मक सम्बन्ध सारभूत रूप में तुलना का सम्बन्ध है, पर वह किसी भी प्रकार की तुलना नहीं है। हमारा ख्याल है कि यह तुलना कुछ विशेष अवस्थाओं में ही हो सकती होगी, यद्यपि हम नहीं बता सकते कि वे अवस्थाएं कौन-सी हैं। किसी वस्तु या घटना की जिस-जिस चीज़ से तुलना की जा सकती है, वह प्रत्येक चीज़ स्वप्नों में उसका प्रतीक बनकर नहीं आती, और दूसरी ओर, स्वप्न प्रत्येक चीज़ के लिए प्रतीकात्मकता का प्रयोग न करके गुप्त स्वप्न-विचारों के खास अवयवों के लिए ही इसका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार दोनों दिशाओं में कुछ सीमाएं हैं। हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अभी हम बिलकुल निश्चित रूप से यह नहीं बता सकते कि हमारी प्रतीक की अवधारणा की सीमा कहां तक है क्योंकि यह स्थानापन्नता, निरूपण आदि में विलीन होने लगता है और अस्पष्ट निर्देश के निकट तक भी जा पहुंचता है। प्रतीकों के एक समुदाय में तुलना आसानी से दिखाई देने वाली हो सकती है, पर कुछ प्रतीकों में सामान्य अंश खोजना पड़ता है। हो सकता है, अधिक विचार करने से हमें यह पता चल जाए, पर यह भी हो सकता है कि हमसे सदा छिपा ही रहे। फिर, यदि प्रतीक वस्तुतः तुलना ही है तो यह बात उल्लेखनीय है कि यह तुलना मुक्त साहचर्य के प्रक्रम से सामने नहीं आती, और स्वप्नद्रष्टा को भी इसके विषय में कुछ पता नहीं होता, पर वह बिना जाने इसका प्रयोग करता है। इतना ही नहीं, वह तो उसके सामने पेश किए जाने पर इसे पहचानने को भी तैयार नहीं। इस प्रकार आप देखते हैं कि प्रतीकात्मक सम्बन्ध एक बिलकुल अनोखे किस्म की तुलना है, जिसकी प्रकृति अभी तक हम पूर्णतया नहीं जानते। शायद बाद में कोई ऐसा संकेत मिल जाए जो इस अज्ञात राशि पर कुछ प्रकाश डाले।

स्वप्नों में जो वस्तुएं प्रतीकों के रूप में दिखाई देती हैं, उनकी संख्या अधिक नहीं है। मनुष्य का सारा शरीर, माता-पिता, बच्चे, भाई और बहनें, जन्म, मृत्यु, नंगापन तथा एक चीज़ और। मनुष्य का रूप नियमित रूप से मकान द्वार

दखाई देता है, जैसाकि शरनर ने पहचाना था, और वह तो इस प्रतीक को इतना धिक सार्थक बताता था जितना यह वास्तव मे नही है। लोगों को किसी मकान सामने के हिस्से पर कभी आनन्द की भावना से और कभी भय की भावना से ढ़ने के स्वप्न आते हैं। जब दीवारें बिलकुल चिकनी होती हैं, तब मकान का अर्थ पुरुष, जब उसमे छज्जे और जालिया हो जिन्हें पकडा जा सकता है, तब अर्थ है त्री। स्वप्नों मे माता-पिता सम्राट और सम्राज्ञी, राजा और रानी या अन्य ऊंचे व्यक्तियो के रूप में दिखाई देते हैं। इस मामले मे स्वप्न का ढग बडा पितृभक्ति से पूर्ण है। बच्चो और भाइयो तथा बहनो के साथ कुछ सख्ती बरती गई है, उनके प्रतीक हैं छोटे पशु या कीड़े। जन्म प्राय सदा पानी के रूप मे होता है। या तो हम पानी में गिर रहे हैं या इसमे से निकल रहे हैं या इसमे से किसी को बचा रहे हैं, या कोई हमें बचा रहा है, अर्थात् माता और बच्चे का सम्बन्ध प्रतीक रूप मे होना है। मरने के लिए हम किसी यात्रा पर गाडी से सफर पर रवाना हुए हैं, और मृत्यु की अवस्था बहुत-से धुंधले और मानो डरते हुए अस्पष्ट संकेतो से सूचित होती है। कपड़े या वर्दियां नगेपन को सूचित करती हैं। आप देखते हैं कि यहां प्रतीकात्मक और अस्पष्ट निर्देशात्मक निरूपणों की विभाजक रेखा मिटने लगती है।

इन थोड़ी-सी चीजों की तुलना मे यह बात हमें विशेष रूप मे प्रभावित किए बिना नही रह सकती कि एक और क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएं और मामले बहुत सारे प्रतीकों से सूचित होते हैं। मेरा मतलब यौन जीवन के क्षेत्र से है, अर्थात् जननेंद्रिया, लैंगिक कार्य और सभोग। स्वप्नो मे अधिकतर प्रतीक लैंगिक या यौन प्रतीक होते हैं। इस प्रकार यह स्थिति होती है कि बहुत-सी कम काम में आने वाली बातो के लिए बहुत-से प्रतीक होते हैं, और इनमे से प्रत्येक चीज प्राय समानार्थक बहुत-से प्रतीकों से प्रकट की जा सकती है। इसलिए जब उनका अर्थ लगाया जाता है, तब इस विचित्रता के कारण वह सबको बुरा लगता है क्योंकि स्वप्नों मे तो यह अनेक रूपो में दिखाई देता है। पर प्रतीकों का निर्वचन बडा नीरस काम है; जिसे इसका पता चलता है उसे ही यह बुरा लगता है, पर हम कर ही क्या सकते हैं!

इन व्याख्यानों मे यह पहला ही मौका है कि मैंने लैंगिक जीवन या यौन जीवन का उल्लेख किया है। इसलिए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि इस विषय को मैं किस तरह पेश करूंगा। मनोविश्लेषण छिपाने या परोक्ष निर्देशन करने की कोई जरूरत नहीं समझता और ऐसी महत्त्वपूर्ण सामग्री से अपने सम्बध पर शर्म महसूस करना आवश्यक नहीं समझता। इसकी सम्मति में प्रत्येक वस्तु को इसके ठीक नाम से ही पुकारना उचित है, और इस तरह वह विक्षोभजनक सांकेतिक शब्दों मे आसानी से बच जाने की आशा रखता है। इसमे इस बात से कोई फर्क नहीं पड सकता कि मेरे श्रोताओं में लडके और लड़कियां दोनों हैं। कोई भी विज्ञान इस

जो गम्भीर निर्णय-बुद्धि के लिए बहुत प्रसिद्ध है और जिसने बाहों और टांगों की कृत्रिम स्थितियों से परीक्षण किए थे और जिसके सिद्धांत असल में मनोविश्लेषण से बहुत दूर थे (हो सकता है कि उसे इसके बारे में बिलकुल भी पता न हो), अपनी खोजों से इसी नतीजे पर पहुंचा था। इसपर आपको इस आधार पर आक्षेप नहीं करना चाहिए कि स्त्रियों को भी उड़ने के स्वप्न आ सकते हैं; बल्कि आपको यह याद करना चाहिए कि स्वप्नों का प्रयोजन इच्छापूर्ति है, और स्त्रियों में पुरुष बनने की इच्छा बहुत बार होती है, चाहे उन्हें इसका ज्ञान हो या न हो। इसके अलावा, शरीर से परिचित कोई भी आदमी इस भ्रम में नहीं पड़ेगा कि स्त्रियों के लिए पुरुष के जैसे संवेदनों द्वारा इस इच्छा को पूरा करना असंभव है, क्योंकि स्त्री के यौन अंगों में शिश्न से मिलता-जुलता एक छोटा-सा अंग भी होता है और यह छोटा अंग भगनासा[1] बचपन में लैंगिक संभोग से पहले के वर्षों में सचमुच वही कार्य करता है जो पुरुष का बड़ा लिंग करता है।

पुरुष-लिंग के कम आसानी से समझने में आने वाले प्रतीक कुछ रेंगने वाले कीड़े और मछलियां हैं; सबसे विचित्र प्रसिद्ध प्रतीक है सांप। टोप और चोगा इस तरह क्यों प्रयोग में आते हैं, यह समझ में आना निश्चय ही कठिन है, पर उनका प्रतीकात्मक अर्थ बिलकुल असंदिग्ध है। अंत में यह पूछा जा सकता है कि क्या पुरुष-लिंग का किसी अन्य अंग, जैसे हाथ और पैर, द्वारा निरूपण प्रतीकात्मक कहा जा सकता है। मैं समझता हूं कि जिस प्रसंग में यह हुआ करता है, और साथ ही स्त्री के जो अंग दिखाई देते हैं, उनसे हम मजबूरन इसी नतीजे पर पहुंचते हैं।

स्त्री-जननेन्द्रियों का प्रतीकात्मक निरूपण ऐसी सब वस्तुओं से होता है जिनमें उनकी तरह स्थान को चारों ओर से घेरने का गुण होता है, या जो पात्र के रूप में प्रयोग में आ सकते हैं, जैसे गड्ढे, खोखली जगह और गुफा तथा मर्तबान और बोतलें, और सब तरह की और आकारों की पेटियां, तिजोरियां, जेब इत्यादि। जहाज भी इसी वर्ग में आते हैं। बहुत-से प्रतीक दूसरी जननेंद्रियों के बजाय गर्भाशय का संकेत करते हैं। इस प्रकार अलमारियां, स्टोव और इन सबसे बढ़कर, कमरे। कमरे की प्रतीकात्मकता यहां मकान के प्रतीक से जुड़ जाती है और दरवाजे तथा किवाड़ जननेंद्रिय के द्वार के प्रतीक हैं। इसके अलावा, विभिन्न तरह की सामग्री स्त्री की प्रतीक है, जैसे लकड़ी, कागज और इनसे बनी हुई वस्तुएं, जैसे मेज और पुस्तकें। अन्य प्राणियों में से घोंघे और सीपी असंदिग्ध रूप से स्त्री के प्रतीक हैं। शरीर के अंगों में से मुख योनिद्वार का प्रतीक है, और मकानों में चर्च तथा चैपल (उपासनागृह) स्त्री के प्रतीक हैं। स्पष्ट है कि ये सब प्रतीक उतनी ही आसानी से समझ में नहीं आते जितनी आसानी से पुरुष-जननेंद्रिय के प्रतीक आ जाते हैं।

---

१. Clitoris

छातियों को भी यौन अंगों में शामिल करना चाहिए। इनके तथा स्त्री के शरीर के नितंबों के प्रतीक सेब, आड़ू और सामान्यतः फल होते हैं। दोनों लिंगों के व्यक्तियों में जननेन्द्रियों के बाल स्वप्नों में जंगलों और झाड़ियों से सूचित होते हैं। स्त्री की जननेन्द्रियों का स्थान जटिल होने के कारण प्राकृतिक दृश्य उनके प्रतीक होते हैं, जिनमें शिलाएं, जंगल और पानी दिखाई देते हैं। उधर पुरुष-जननेन्द्रिय की शानदार कार्य-प्रणाली का निरूपण सब तरह की जटिल और अवर्णनीय मशीनों द्वारा होता है।

स्त्री-जननेन्द्रिय का एक और उल्लेखनीय प्रतीक जेवर का डिब्बा होता है, पर जेवर और सोना-चांदी स्वप्न में प्रिय व्यक्ति के सूचक भी होते हैं, और मिठाइयां प्रायः कामुक आनन्द की प्रतीक होती हैं। किसी व्यक्ति को अपनी जननेन्द्रियों से प्राप्त संतुष्टि किसी भी तरह के खेल से सूचित होती है, जिसमें पियानो बजाना भी शामिल है। स्वयंरति[1] के प्रतीक सरकना या चलना और कोई टहनी तोड़ना भी होते हैं। एक विशेष उल्लेखनीय स्वप्न-प्रतीक दांतों का गिरना या निकालना है। इसका मुख्य अर्थ निश्चित रूप से—स्वयंरति का दंड देने के लिए बधिया करना है। मैथुन या संभोग का विशेष निरूपण स्वप्नों में उतना नहीं होता, जितना इन सब बातों के बाद हमें आशा करनी चाहिए, पर इस सिलसिले में हम नाचना, सवारी करना और (ऊंचाई पर) चढ़ना जैसी तालबद्ध क्रियाओं का और किसी प्रकार की चोट अनुभव करने का, उदाहरण के लिए, कुचले जाने का, उल्लेख कर सकते हैं। इनके अलावा, कुछ हाथ के धंधे, और हथियारों से घायल किए जाने का भय भी इसके प्रतीक होते हैं।

आप यह मत समझिए कि इन प्रतीकों का उपयोग या अनुवाद अर्थात् भाषान्तर बिलकुल सीधे तौर से हो जाता है। चारों ओर ऐसी चीजें होती हैं, जिनकी हम आशा नहीं करते। उदाहरण के लिए, यह बात विश्वसनीय नहीं जंचती कि इन प्रतीकात्मक निरूपणों में प्रायः स्त्री-पुरुषों के लिंगों का अंतर नहीं होता। बहुत-से प्रतीक सामान्यतः जननेन्द्रियों के सूचक होते हैं चाहे वे पुरुष की हों या स्त्री की। उदाहरण के लिए, छोटा बालक या छोटा पुत्र या पुत्री कभी-कभी, सामान्यतः पुल्लिंग का प्रतीक, स्त्री-जननेन्द्रिय को निर्दिष्ट करता है और इसी तरह इसका उल्टा भी होता है। यह बात तब तक पूरी समझ में नहीं आ सकती जब तक हम मनुष्यों में मैथुन या कामुकता सम्बन्धी विचारों के परिवर्धन की कुछ जानकारी प्राप्त न कर लें। बहुत-से उदाहरणों में प्रतीकों की यह अस्पष्टता ऊपरी होती है वास्तविक नहीं, और उनमें से सबसे विशेष प्रतीक, जैसे हथियार, जेब और तिजोरी, इन दोनों लिंगों के लिए कभी प्रयोग में नहीं आते।

---

१. *Onanism*

अब मैं प्रतीकों से सूचित वस्तुओं के बजाय स्वयं प्रतीकों से शुरू करके संक्षेप मे यह बताऊंगा कि मैथुन सम्बन्धी प्रतीक अधिकतर किन क्षेत्रों से आए हैं, और विशेष रूप से उनपर थोड़ी-सी टिप्पणी करूंगा जिनमें प्रतीक से सूचित वस्तु का गुण प्रतीक मे खोज पाना कठिन है। इस तरह के अस्पष्ट प्रतीक का एक उदाहरण टोप या शायद सिर ढकने की सभी चीजें हैं; टोप आम तौर से पुल्लिंग का सूचक है पर कभी-कभी स्त्रीलिंग को भी सूचित करता है। इसी प्रकार चोगा पुरुष को सूचित करता है, पर शायद कभी-कभी उसका जननेन्द्रियो की ओर विशेष निर्देश नहीं होता; आप पूछेंगे कि ऐसा क्यों होता है। टाई जो नीचे लटकने वाली वस्तु है और जिसे स्त्रियां नहीं धारण करती, स्पष्टतः पुल्लिंग प्रतीक है, और अण्डरलिनन या सामान्य रूप में लिनन, अर्थात् रेशमी वस्त्र, स्त्रीलिंग का प्रतीक होता है। कपड़े और वर्दियां, जैसाकि हम देख चुके हैं, नगेपन या मनुष्य की आकृति की प्रतीक होती हैं, जूते और स्लीपर स्त्री-जननेन्द्रियो के प्रतीक होते हैं। हम कह चुके हैं कि मेज और लकडी कुछ उलझनदार चीजें हैं, पर फिर भी वे निश्चित रूप में स्त्रीलिंग की प्रतीक हैं। नसैनियॉं, सीधे खड़े स्थानो और सीढ़ियो पर चढ़ने का कार्य असदिग्ध रूप से मैथुन का प्रतीक है। बारीकी से विचार करने पर हमे यह पता चलता है कि इस चढ़ने की तालबद्धता अर्थात् नियमित उतार-चढ़ाव का गुण और शायद इसके साथ होने वाली उत्तेजना-वृद्धि—चढ़ते-चढ़ते चढ़ने वाले का सास जल्दी-जल्दी लेने लगना, दोनों मे सामान्य विशेषता है।

हम पहले यह देख चुके हैं कि प्राकृतिक दृश्य स्त्री-जननेन्द्रिय के सूचक हैं, पर्वत और चट्टानें पुरुषेन्द्रिय की प्रतीक हैं; बाग स्त्री-जननेन्द्रिय का बहुत बार दीखने वाला प्रतीक है; फल स्तनो का प्रतीक है, बच्चे का नहीं। जंगली पशु मनुष्य की उत्तेजित अवस्था, और इसीलिए दुष्ट आवेगों या प्रबल वासना के आवेगों के प्रतीक हैं। कलियां और फूल स्त्री जननेन्द्रियो के प्रतीक हैं, विशेष रूप से कुमारावस्था में। इस सिलसिले में आपको स्मरण होगा कि कलिया वास्तव मे वनस्पतियों की जननेन्द्रिय ही हैं।

हम यह देख चुके हैं कि कमरों का प्रतीकों के रूप में कैसे उपयोग होता है। इन प्रतीकों का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है, जिसमे खिड़कियां और दरवाजे (कमरों मे घुसने और उनसे निकलने के रास्ते) शरीर के द्वारो को सूचित करते हैं; कमरों के खुला या बन्द होने का तथ्य भी इस प्रतीक से मेल खाता है; चाबी, जिससे ये खोले जाते हैं, निश्चित ही पुल्लिंग प्रतीक है।

इस थोड़ी-सी सामग्री से स्वप्न-प्रतीकात्मकता का कुछ अध्ययन किया जा सकता है। पर यह सामग्री इतनी ही नहीं है, तथा इसे विस्तृत भी किया जा सकता है और गहरा भी; पर मैं समझता हू कि यह आपको काफी से ज्यादा मालूम होगी। शायद आप इसे नापसन्द करें। आप पूछेंगे, 'तो क्या मैं सचमुच मैथुन-सम्बन्धी प्रतीकों

के बीच में ही रहता हूँ? क्या मेरे सारी ... और कुछ ...
मेरे पकड़ने की सब चीज़ें, सदा मैथुन-सम्बन्धी प्रतीक ही हैं, और इनमें से पहला प्रश्न ...
सचमुच ये आश्चर्यमय प्रश्न करना युक्तिसंगत है और इनमें से पहला प्रश्न यह
होगा : इन स्वप्न-प्रतीकों के अर्थ पर पहुंचने का दावा हम कैसे करते हैं जबकि
स्वप्न देखने वाला स्वयं हमें इस बारे में कुछ भी जानकारी नहीं दे सकता।

मेरा उत्तर यह है कि हम भिन्न-भिन्न स्रोतों से यह ज्ञान प्राप्त करते हैं।
परियों की कहानियों और पुराणकथाओं से, मज़ाकों और विनोद के चुटकुलों से,
लोककथाओं से, अर्थात् ऐसी हर चीज़ से, जिससे हमें विभिन्न जातियों के रीति-
रिवाजों, कहावतों और गीतों का पता चलता है, और भाषा के काव्यमय तथा
ग्राम्य बोल-चाल के प्रयोग से हम यह ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन विभिन्न क्षेत्रों में
सब जगह एक ही प्रतीकात्मकता मिलती है, और उनमें से बहुतों में इसके बारे में
बिना कुछ सिखाए हम इसे समझ सकते हैं। यदि इन विभिन्न क्षेत्रों पर हम अलग-
अलग विचार करें तो हमें स्वप्न-प्रतीकात्मकता के इतने सारे मिलते-जुलते रूप
दिखाई देंगे कि हमको इन निर्वचनों के सही होने का विश्वास करना ही पड़ेगा।

हमने बताया है कि शरनर के अनुसार मनुष्य का शरीर स्वप्न में बहु...
बार मकान से सूचित होता है। इस प्रतीकात्मकता को और बढ़ाने पर खि...
किया, दरवाज़े और किवाड़ शरीर के द्वारों में प्रवेश-स्थान को सूचित करने ...
और मकान का सामना या तो चिकना होता है और या उसपर पकड़ने के लि...
छज्जे, और झंझरियां होती हैं। यही प्रतीकात्मकता बोलचाल के प्रयोग...
मिलती है। उदाहरण के लिए, हम कहते हैं बालों का 'छप्पर' या 'टाइ...
या किसीके बारे में हम कहते हैं कि उसकी 'ऊपर की मंजिल'[1] ठीक न...
शरीर में भी हम शरीर के छिद्रों को इसके 'पोर्टल'[2] या द्वार कहते हैं।

शुरू में हमें यह बात आश्चर्यजनक लगेगी कि स्वप्नों में हमें अपने माता...
राजा-रानियों के रूप में दिखाई देते हैं, पर इसी तरह की चीज़ें परियों की ...
नियों में होती हैं। क्या हमें यह नहीं लगने लगता कि बहुत-सी परियों की ...
नियों का, जो 'एक था राजा, एक थी रानी' से शुरू होती हैं, अर्थ सिर्फ य...

---

१. जर्मन भाषा में पुराने परिचित को प्रायः 'पुराना मकान' (Altes Haus...
पुकारा जाता है; 'उसे छत पर एक दे दो' (Einem eins aufs Dachlge...
अर्थ है 'उसके सिर पर मारो'।

२ पोर्टल शिरा आंतों से पोषण, जिगर के रास्ते, शरीर को पहुंचाती है। ...
vAn (पारन) द्वार से बना है} छोटी आंत का प्रवेशद्वार होता है। जर्मन भा...
के ... Leibespforten (शरीर के द्वार) कहलाते हैं।

है कि एक बार एक पिता था और एक माता थी। परिवार मे बच्चों को इसी में कभी-कभी राजा बेटा कहा जाता है, और सबसे बड़े पुत्र को युवराज कहा जाता है। स्वयं राजा जनता का पिता कहलाता है।[1] फिर कुछ स्थानों में छोटे बच्चे प्रायः खेल में छोटे जानवर कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, कार्नवाल में 'छोटा मेढक', या जर्मनी में 'छोटा कीड़ा', और बच्चे से सहानुभूति दिखाते हुए कहते हैं, 'बिचारा छोटा कीड़ा'। (हिन्दीभाषी प्रदेश में बच्चे को 'बंदर', बच्ची को 'चिड़िया' और सामान्यतः बच्चे को 'चूहा' या 'चुहिया' कहते हैं।)

अब फिर मकान के प्रतीक पर विचार करेंगे। जब हम अपने स्वप्नों में मकानों के छज्जों को पकड़ते हैं, तब क्या हमारे मन में विशेष रूप से उभरी हुई छातियों वाली स्त्री के सम्बन्ध में जर्मन भाषा की यह प्रसिद्ध और प्रचलित कहावत नहीं आती—'उसके पास किसीके पकड़ रखने योग्य चीज़ है (Die hat etwas zum Anhalten)।' इसी तरह का एक और बोलचाल का प्रयोग है—'उसके मकान के सामने बहुत-सी लकड़ी है (Die hat viel Holz vor dem Hause)।' मानो इस तरह जब हम यह कहते हैं कि लकड़ी स्त्री का मातृ-रूप प्रतीक है, तब इससे हमारे निर्वचन की पुष्टि हो जाती है।

लकड़ी के विषय पर अभी कुछ और कहना पड़ेगा। आसानी से समझ में नहीं आता कि लकड़ी स्त्री और माता का प्रतीक क्यों है पर इसमें विभिन्न भाषाओं की तुलना हमारे लिए उपयोगी हो सकती है। जर्मन शब्द Holz (लकड़ी) उसी धातु से निकला हुआ बताया जाता है जिससे ग्रीक Uλη, जिसका अर्थ है सामग्री या कच्चा सामान। यह उस प्रकार का उदाहरण है जिसमें एक सामान्य नाम अन्त में एक विशेष वस्तु का वाचक हो जाता है, और यह क्रम बहुत जगह दिखाई देता है। एटलांटिक महासागर में मैडीरा नामक एक द्वीप है, और यह नाम इसे तब दिया गया था जब पुर्तगालियों ने इसे ढूंढ़ा था, क्योंकि उस समय इसमें घने जंगल थे और पुर्तगाली भाषा में जंगल या लकड़ी के लिए 'मैडीरा' शब्द है। पर आप देखेंगे कि यह मैडीरा शब्द लैटिन के 'मैटीरिया' शब्द का ही रूपान्तर है, और 'मैटीरिया' शब्द सामान्य रूप से वस्तु का वाचक है पर मैटीरिया शब्द 'मैटर' (माता) शब्द से निकला है, और जिस सामान में से कोई चीज़ बनती है उसे उस चीज़ का जन्मदाता माना जा सकता है। इस प्रकार स्त्री या माता के प्रतीक के रूप में लकड़ी या जंगल का प्रयोग इस पुराने विचार का अवशेष भी है।

जन्म सदा पानी से कुछ सम्बन्ध रखता हुआ दिखाई देता है। या तो हम पानी में गोता लगा रहे हैं, या उसमें निकल रहे हैं, अर्थात् हम जन्म ले रहे हैं, या पैदा होने

१. रूसी भाषा में 'छोटा पिता' (देखिए [illegible]—[illegible] [illegible]—अनुवादक)

है। यह नहीं भूलना चाहिए कि विकास[1] के वास्तविक तथ्यों की ओर यह प्रतीक दो निर्देश करता है। धरती पर रहने वाले सब स्तन्यपायी[2] जिनसे मनुष्य भी पैदा हुआ है, उन प्राणियों के वशज हैं जो पानी में रहते थे—यह दोनों दें से दूर वाला संकेत है—पर प्रत्येक स्तन्यपायी व्यक्ति अर्थात् प्रत्येक मनुष्य भी पानी में रहने की पहली अवस्था में से गुजरा है, अर्थात् वह भ्रूण[3] के रूप में माता के गर्भ के एमनियोटिक तरल में रहा है और इस प्रकार जन्म के समय पानी से निकला है। मैं यह नहीं कहता कि स्वप्नद्रष्टा यह बात जानता है, इसके विपरीत, मेरा यह कहना है कि उसे यह जानने की कोई आवश्यकता ही नहीं। शायद वह बचपन से सुनता हुआ कुछ और बात जानता है, पर मैं यह कहता हूं कि इससे भी प्रतीक बनने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बच्चे को कुछ में कहा जाता है, सारस पक्षी बच्चे दे जाते हैं। पर फिर उन्हें बच्चे मिलते कहां से हैं? किसी तालाब या कुएं में से, अर्थात् पानी से। मेरा एक रोगी, जिसे बचपन में जब वह बहुत छोटा ही था यह बात बताई गई थी, एक दिन तीस पहर कहीं गायब हो गया और अन्त में एक झील के किनारे लेटा हुआ मि उसने अपना छोटा-सा मुंह निर्मल जल की ओर कर रखा था और वह उत्सुकतापूर्व ताक रहा था कि झील के तले में वह बच्चों को देख सकेगा।

वीर पुरुषों के जन्मों की पौराणिक कहानियों में, जिनका प्रो० रैंक ने तुलनात्मक अध्ययन किया है—इनमें सबसे प्राचीन, लगभग ईस्वी पूर्व अट्ठाईस सौ का अक्कड़ का राजा सारगोन है—पानी में पड़े होने और उसमें से बचाए जाने का उल्लेख प्रमुख होता है। रैंक ने देखा कि यह उसी प्रकार जन्म का प्रतीक है जैसे स्वप्नों में होता है। स्वप्न में कोई आदमी किसीको पानी में से बचाता है तब वह उस व्यक्ति को अपनी माता बना लेता है या कम से कम एक माता बना ही लेता है; और पुराणकथाओं में जो कोई किसी बच्चे को पानी में से बचाती है, वह स्वयं को उसकी सगी माता बताती है। एक प्रसिद्ध मजाक है जिसमें एक तीव्रबुद्धि यहूदी लड़का, यह पूछने पर कि मूसा की माता कौन थी, तुरन्त उत्तर देता है, 'राजकुमारी।' हम उससे कहते हैं, 'नहीं, उसने तो उसे सिर्फ पानी में से निकाला था।' 'यह तो वह कहती थी!' वह उत्तर देता है, और इस तरह प्रकट करता है कि उसने पौराणिक कथा का सही अर्थ समझ लिया है।

यात्रा पर जाना स्वप्नों में मरने का प्रतीक होता है; इसी प्रकार जब कोई बालक किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछता है जो मर गया है और जिसका अभाव उसे अनुभव हो रहा है, तब उससे कह दिया जाता है कि 'वह परदेस गया है।' यहां

3 Embry

भी मैं इस विचार को नापसन्द करता हूं कि इस स्वप्न-प्रतीक का मूल बच्चे को दिए गए टालू जवाब में है। कवि जब परलोक के लिए यह कहता है कि 'वह अज्ञात देश जहां से कोई पथिक वापस नहीं लौटता,' तब वह इसी प्रतीक का प्रयोग करता है। इसी तरह रोज की बातचीत में हम 'अन्तिम यात्रा' (महाप्रयाण या गंगायात्रा) शब्दों का प्रयोग करते हैं, और प्राचीन कर्मकाण्ड से परिचित लोग अच्छी तरह जानते हैं कि मृतों के देश में यात्रा का विचार, उदाहरण के लिए, प्राचीन मिस्रवासियों में कितनी गम्भीरता से माना जाता था। बहुत जगह 'मृत का लेखा' (Book of the Dead) देने की पद्धति अब भी कायम है—यह लेखा ममी अर्थात् सरक्षित शव को अपनी अन्तिम यात्रा पर ले जाने के लिए दे दिया जाता था। कब्रिस्तान बस्ती से दूर होते हैं, इसीलिए मृत व्यक्ति की अन्तिम यात्रा एक वास्तविकता बन गई है।

यौन प्रतीक सिर्फ स्वप्नों से ही सम्बन्ध नहीं रखते। 'सामान' शब्द से आप सब परिचित होंगे, जो स्त्री का तिरस्कार के साथ उल्लेख करने में प्रयुक्त होता है। पर शायद लोगों को पता नहीं है कि वे जननेन्द्रिय के एक प्रतीक का प्रयोग कर रहे हैं। नये अहदनामे (New Testament) में लिखा है, 'औरत कमजोर जहाज है।' यहूदियों के धर्मलेखों में, जिनकी शैली कविता से बहुत मिलती-जुलती है, यौन प्रतीकों वाली बहुत-सी पदावलियां हैं, जिनका बहुत बार ठीक-ठीक अर्थ नहीं लगाया गया है और जिनके भाष्य ने, उदाहरण के लिए, सौंग ऑफ सोलोमन में बड़ी गलतफहमी पैदा हुई है।[1] बाद के हिब्रू साहित्य में स्त्री को बहुत बार मकान द्वारा निरूपित किया गया है, जिसमें दरवाजा योनिद्वार का प्रतीक है। इस प्रकार, जब पुरुष यह देखता है कि कोई स्त्री अब कुमारी या अक्षतयोनि नहीं है, तब वह कहता है कि 'मैंने दरवाजा खुला पाया है।' इस साहित्य में स्त्री के लिए 'मेज' का प्रतीक भी आता है; स्त्री अपने पति के विषय में कहती है, 'मैंने उसके लिए मेज लगाई, पर उसने इसे उल्टा कर दिया।' लगड़े बच्चों की दुर्बलता का कारण इस तथ्य को बताया जाता है, 'पुरुष ने मेज को उल्टा कर दिया।' यहां मैं एल० लेवी के एक ग्रंथ से एक उदाहरण देता हूं। वह ग्रंथ है 'सेक्सुअल सिम्बोलिज्म इन द बाइबल एण्ड द तालमद' (अर्थात् बाइबल और तालमद में मैथुन-विषयक प्रतीक)।

स्वप्नों में जहाज स्त्री का वाचक होता है, जिसका समर्थन व्युत्पत्तिशास्त्री भी करते हैं। उनका कहना है कि जहाज (Schiff) शब्द पहले मिट्टी के बर्तन का नाम था, और यह शब्द Schaff (टब या कठौता) ही है। चूल्हा स्त्री या माता के

---

१. 'मैं एक दीवार हूं और मेरे स्तन बुर्जों के समान हैं : तब मैं उसकी नजरों में बच गयी थी।'—Cant. viii 10

गर्भ का प्रतीक है—इस बात की पुष्टि कोरिन्थ के पेरिएण्डर और उसकी पत्नी मलिसा की यूनानी कहानी से भी होता है। हैरोडोटस के लेख के अनुसार, उस जालिम ने अपनी पत्नी को, जिसे वह बहुत प्रेम करता था, ईर्ष्या के कारण मार दिया था; अब इसने उसकी छाया (अथवा प्रेत) से सौगन्ध देकर उसके बारे में बताने को कुछ कहा। इसपर मृत स्त्री ने अपना परिचय स्पष्ट करने के लिए उसे यह स्मरण कराया कि 'तूने (अर्थात् पेरिएण्डर ने) अपनी रोटी एक ठंडे चूल्हे में रख दी थी,' और इस प्रकार छिपे रूप में एक ऐसी परिस्थिति जाहिर की जिसमें और कोई परिचित नहीं था। एफ० एस० क्राउस द्वारा संपादित एन्थ्रोपोफाइटिया नामक ग्रंथ में, जो विभिन्न जातियों के यौन जीवन सम्बन्धी प्रत्येक बात के विषय में एक अपरिहार्य पुस्तक है, लिखा है कि जर्मनी के एक हिस्से में लोग प्रसूता स्त्री के बारे में कहते हैं कि 'उसका चूल्हा गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया है।' आग जलाना और इससे जुड़ी हुई हर बात मैथुन सम्बन्धी प्रतीकों की सूचक है। ज्वाला सदा पुरुषेन्द्रिय की प्रतीक होती है, और अंगीठी स्त्री के गर्भ की।

अगर आपको इस बात पर आश्चर्य हुआ हो कि स्वप्न में स्त्री के लिंगों के प्रतीक के रूप में धरती के दृश्य क्यों इतनी अधिक बार दिखाई देते हैं तो इसका उत्तर आपको पुराणविद्या के विद्वानों से मिल सकता है। वे आपको बताएंगे कि पुराने जमाने के विचारों और पन्थों में 'धरती माता' का कितना महत्वपूर्ण कार्य रहा है, और किस तरह खेती का सारा अवधारण इस प्रतीक के अनुसार ही निश्चित है। स्वप्न में कमरा स्त्री का प्रतीक होता है। इस तथ्य के मूल जर्मन बोलचाल के फ्राउएनजिमर = Frauenzimmer (शब्दार्थ 'स्त्री का कमरा') शब्द में फ्राउ = Frau (स्त्री) के लिए प्रयोग में आता है, अर्थात् स्त्री को उसके रहने के कमरे से निरूपित किया जाता है। इसी प्रकार सुलतान और उसकी सरकार के अर्थ में हम दरबार का प्रयोग करते हैं, और पुराने मिस्र के राजा के नाम 'फेराओ' शब्द का अर्थ सिर्फ 'बड़ा दरबार' है (पुराने जमाने में पूर्वी देशों में नगर के दोहरे द्वारों के बीच के आंगनों में दरबार होते थे, जैसे बाद में बाजार होने लगे); पर मैं समझता हूं कि यह व्युत्पत्ति बिलकुल ऊपरी है, और मुझे यह ज्यादा सम्भाव्य लगता है कि कमरा स्त्री का प्रतीक इस कारण हुआ कि वह पुरुष को अपने अन्दर बन्द कर सकती है। इस अर्थ में हम मकान को पहले देख चुके हैं; पुराणकथाओं और काव्य से हमें पता चलता है कि नगर, किले, गढ़ और दुर्ग भी स्त्री के प्रतीक होते हैं। यह बात उन लोगों के स्वप्नों में आसानी से निश्चित की जा सकती है जो न जर्मन बोलते हैं, और न जर्मन समझते हैं। कुछ वर्षों से मैंने मुख्यतः विदेशी रोगियों का इलाज किया है, पर मुझे याद है कि उनके स्वप्नों में कमरा उसी तरह स्त्री का प्रतीक होता है जैसे हमारे यहां, हालांकि उनकी भाषा में फ्राउएनजिमर = Frauenzimmer जैसा कोई शब्द नहीं। इस बात के और भी संकेत मिलते हैं।

ये प्रतीक भाषा की सीमाओं मे बंधे हुए नहीं होते—इस तथ्य की पहले ही, स्वप्नों की बहुत समय से जांच करने वाले विद्वान शूबर्ट ने १८६२ मे, स्थापना की थी। पर मेरा कोई भी रोगी जर्मन भाषा से पूरी तरह अपरिचित नहीं था, इसलिए यह प्रश्न मैं उन विश्लेषकों पर फैसले के लिए छोड़ता हूं जो दूसरे देशों में ऐसे व्यक्तियों से उदाहरण इकट्ठे कर सकते हैं जो केवल एक भाषा बोलते हैं।[1]

पुरुष के लिंग के प्रतीकों मे शायद ही कोई ऐसा हो जो मज़ाक में, गंवारू प्रयोगों में या काव्य के शब्दों में, विशेष रूप से पुराने क्लासिकल काव्यों में प्रयुक्त न हुआ हो। यहां भी हमें न केवल वे प्रतीक मिलते हैं जो स्वप्न में आते हैं, बल्कि नये प्रतीक भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार की दस्तकारियों में काम आने वाले उपकरण, जिनमें सबसे मुख्य है हल। इसके अलावा, जब हम पुल्लिंग प्रतीकों पर आते हैं, तब बड़े विस्तृत और विवादास्पद क्षेत्र में पहुंच जाते हैं, और समय बचाने की दृष्टि से मैं उसका विवेचन नहीं करना चाहता। मैं सिर्फ एक प्रतीक के बारे में दो-एक बातें कहना चाहता हूं जो अद्वितीय है। मेरा मतलब तीन संख्या से है। इस संख्या को बहुत सम्भवतः इसके प्रतीकात्मक अर्थ के कारण पवित्र नहीं माना जाता, इस प्रश्न को मैं बिना तय किए छोड़ देना चाहता हूं, पर यह बात निश्चित मालूम होती है कि बहुत-से तीन भागों वाले प्राकृतिक पदार्थ, उदाहरण के लिए, क्लोवर के पत्ते (एक तरह का पशुओं का चारा), कोट ऑफ आर्म्स (कवच के ऊपर अंकित कुल-मर्यादासूचक चित्र) और चिह्न के रूप में अपनी प्रतीकात्मकता के कारण प्रयोग में लाए जाते हैं। तथाकथित 'फ्रेंच' लिली, जिसमें तीन भाग होते हैं और 'तिपाई' (Trisceles)—वह विचित्र कवच-चिह्न जिसमें दो एक-दूसरे से काफी दूरी पर स्थित द्वीप, जैसे सिसली और आइल ऑफ मैन होते हैं (इस आकृति में एक केन्द्रीय बिन्दु से तीन मुड़ी हुई टांगें आगे को निकली हुई होती हैं), पुरुष-लिंग के छिपे हुए रूप ही माने जाते हैं, जिनके प्रतिबिम्बों को पुराने ज़माने में भूत, प्रेत आदि को भगाने का सबसे उत्तम साधन माना जाता था, इसके साथ एक यह तथ्य है कि हमारे ज़माने के सौभाग्यप्रेरक कवच को भी आसानी से जननेन्द्रिय या मैथुन सम्बन्धी प्रतीक के रूप में पहचाना जा सकता है। छोटे-छोटे चांदी के तावीज़ों के रूप में लटकने वाले ऐसे बहुत-से कवचों को देखिए, कोई चार पत्तियों वाला क्लोवर है, कोई सुअर है, कोई कुकुरमुत्ता है, कोई घोड़े की नाल है, कोई नसैनी है, और कोई चिमनी साफ करने वाली झाड़ू है। चार पत्तों वाला क्लोवर तीन पत्तों वाले स्थान पर आ गया है, पर असल में तीन पत्तों वाला प्रतीक के प्रयोजन के लिए अधिक ठीक था; सुअर सफलता का प्राचीन

---

१. अंग्रेज़ीभाषी रोगियों में निश्चित रूप से यह बात होती है।—अंग्रेज़ी अनुवादक

प्रतीक है, कुकुरमुत्ता निस्सन्देह शिश्न का प्रतीक है, कुछ कुकुरमुत्तों का नाम इस अंग से उनकी स्पष्ट समानता से ही रखा गया (फैलस इम्पुडिकस); नाल स्त्री-योनि की रूपरेखा प्रस्तुत करती है; और चिमनी साफ करने वाली झाड़ू तथा उसकी नसैनी इस समुदाय में इसलिए आती हैं क्योंकि उनके पेशे की तुलना गवारू भाषा में मैथुन से की जाती है।[1] हम उसकी नसैनी को स्वप्न में दीखने वाला यौन प्रतीक बता चुके हैं। भाषा के प्रयोगों से पता चलता है कि Steiger अर्थात् चढ़ना शब्द पूरी तरह मैथुन सम्बन्धी अर्थ प्रकट करता है जैसे इन वाक्यों में—Den Frauen nachsteigen (स्त्रियों के पीछे दौड़ना) और ein alter Steiger (एक पुराना बदमाश या व्यभिचारी)। इस प्रकार फ्रेंच में, जिसमें 'कदम' के लिए ला मर्श (La marche) है, हमें पुराने बदमाश के लिए बिलकुल इसी तरह का शब्द-प्रयोग मिलता है: आं व्यू मार्शर (Un vieux marcheur)। विचारों के इस साहचर्य से सम्भवत · इस तथ्य का कुछ सम्बन्ध है कि बहुत-से बड़े पशुओं में मैथुन के लिए मादा या स्त्री पशु पर 'चढ़ने' की आवश्यकता होती है।

स्वयरति को निरूपित करने वाला प्रतीक टहनी तोड़ना न केवल इस बात के गवारू वर्णन से मेल खाता है, बल्कि पुराणकथाओं में भी इसके बड़ी दूर तक सादृश्य मिलते हैं पर विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयंरति का स्वयरति की सजा के रूप में बधिया करने का प्रतीक दांतों का गिरना या निकलना है, क्योंकि लोककथाओं में इस जैसी एक चीज मिलती है जो बहुत ही स्वप्न देखने वालों को पता हो सकती है। मैं समझता हूं कि इसमें कोई सन्देह हो सकता कि खतना, जो इतनी सारी जातियों में प्रचलित है, बधिया करने के समान और उसके स्थान पर आया हुआ है; और हाल में ही पता चला है कि आस्ट्रेलिया की कुछ आदिम जातियों में तरुणावस्था प्राप्त करने के अवसर पर (लड़के के बालिग होने के समारोह पर) धार्मिक कृत्य के रूप में खतना किया जाता है और उनके बिलकुल पास रहने वाली दूसरी जातियों में इस प्रथा के स्थान पर एक दांत तोड़ देने की प्रथा है।

मैं अपना कथन इन उदाहरणों से खत्म करूंगा। ये सिर्फ उदाहरण हैं। हम इस विषय के बारे में और अधिक जानते हैं और आप समझ सकते हैं कि यदि हमारे जैसे अनाड़ियों के बजाय पुराणविद्या, नृतत्त्व-विज्ञान, भाषातत्त्व और लोककथाओं के सच्चे विशेषज्ञों द्वारा इस तरह की सामग्री का संग्रह किया जाए तो वह कितना अधिक विस्तृत और मनोरंजक होगा। हमें मजबूरन कुछ निष्कर्षों पर आना पड़ता है जो इस तरह सारे के सारे हमारे सामने नहीं आ सकते, पर फिर भी जो हमें सोचने के लिए बहुत कुछ मसाला दे जाएंगे।

---

१. टेंक्स-कार्लोंगेस्टर

प्रथम तो हमारे सामने यह तथ्य आता है कि स्वप्नद्रष्टा के पास अपने मन की बात कहने की प्रतीकात्मक रीति है जिसके बारे में वह जाग्रत् जीवन में कुछ नहीं जानता और जिसे वह पहचानता भी नहीं। इससे उतना ही आश्चर्य होता है जितना आपको यह पता लगने पर होगा कि आपकी नौकरानी संस्कृत भाषा जानती है, यद्यपि आपको यह मालूम है कि वह बोहेमिया के एक गांव में पैदा हुई थी और उसने वह भाषा कभी नहीं सीखी। इस तथ्य का हमारे मनोविज्ञान-विषयक विचारों से मेल बिठाना आसान काम नहीं। हम इतना ही कह सकते हैं कि स्वप्नद्रष्टा का प्रतीकात्मकता का ज्ञान अचेतन है और उसके अचेतन मानसिक जीवन में रहता है, पर यह धारणा भी हमारे लिए अधिक उपयोगी नहीं होती। अब तक हमें सिर्फ यह कल्पना करनी पड़ी थी कि अचेतन प्रवृत्तियों का अस्तित्व है, जो हमें स्थायी या अस्थायी रूप से अज्ञात होती हैं, पर अब कुछ बड़ा सवाल है और हमें ऐसी चीज़ों में सचमुच विश्वास करना है, जैसे अचेतन ज्ञान, विचार-सम्बन्ध और विभिन्न वस्तुओं में साम्य, जिनके द्वारा एक मनोबिम्ब के स्थान पर दूसरा मनोबिम्ब नियत रूप में स्थापित किया जा सकता है। ये साम्य हर बार नये सिरे से नहीं शुरू होते, बल्कि हमेशा के लिए तैयार की हुई हमारी सूची में होते हैं। यह हम विभिन्न व्यक्तियों में सम्भवतः भाषा सम्बन्धी भेदों के होते हुए भी उनके अभिन्न होने का अनुमान करते हैं।

इसी प्रतीकात्मकता का ज्ञान हमें कहां से होता है ? भाषा में प्रयुक्त शब्दों में बहुत थोड़े प्रतीक आते हैं और दूसरे क्षेत्रों से बहुत सारे सादृश्य स्वप्नद्रष्टा को अधिकतर अज्ञात होते हैं। सबसे पहले हमें स्वयं उन्हें मेहनत से क्रमबद्ध करना होगा।

दूसरी बात यह कि ये प्रतीकात्मक सम्बन्ध स्वप्नद्रष्टा के लिए अलग नहीं होते, या उसी स्वप्न-रचना के लिए अलग नहीं होते जिसमें ये प्रकट होते हैं; क्योंकि हमने देखा है कि यही प्रतीक पुराणकथाओं में और परियों की कहानियों में, आम लोगों की भाषा में और गीतों में, बोलचाल की भाषा और काव्य की कल्पना में प्रयोग में आते हैं। प्रतीकात्मकता का क्षेत्र असामान्य रूप से विस्तृत है, स्वप्न-प्रतीकात्मकता उसका एक छोटा-सा अंश-मात्र है। सारी समस्या पर स्वप्नों के पहलू से विचार करना उचित भी नहीं होगा। और जगह आम तौर से काम आनेवाले बहुत-से प्रतीक या तो स्वप्नों में बिलकुल ही नहीं आते और या बहुत कम आते हैं; दूसरी ओर, बहुत-से स्वप्न-प्रतीक दूसरे हर क्षेत्र में नहीं मिलते, बल्कि जैसा कि आप देख चुके हैं, सिर्फ कहीं-कहीं मिलते हैं। इसपर यह असर पड़ता है कि यह कोई प्राचीन, और अब अप्रचलित भाव-प्रकाशन की रीति होगी, जिसके विभिन्न टुकड़े विभिन्न क्षेत्रों में, कोई कहीं और कोई कहीं, मामूली हेर-फेर के साथ बचे हुए हैं। यहां मुझे एक बड़े मनोरञ्जक पागल रोगी की कल्पना की याद आती है

प्रतीक है, कुकुरमुत्ता निस्सन्देह लिंग का प्रतीक है, कुछ कुकुरमुत्तों का नाम इस अंग से उनकी स्पष्ट समानता से ही रखा गया (फैलस इम्पुडिकस); नाग स्त्री-योनि की रूपरेखा प्रस्तुत करती है; और चिमनी साफ करने वाले का, तथा उसकी नसैनी इस समुदाय में इसलिए आती है क्योंकि उसके पेशे की तुलना गवाह भाषा में मैथुन से की जाती है।[1] हम उसकी नसैनी को स्वप्न में दीखने वाला यौन प्रतीक बता चुके हैं। भाषा के प्रयोगों से पता चलता है कि Steigen, अर्थात् चढ़ना शब्द पूरी तरह मैथुन सम्बन्धी अर्थ प्रकट करता है जैसे इन वाक्यांशों में—Den Frauen nachsteigen (स्त्रियों के पीछे दौड़ना) और ein alter Steiger (एक पुराना बदमाश या व्यभिचारी)। इस प्रकार फ्रेंच में, जिसमें 'कदम' के लिए ला मार्श (La marche) है, हमें पुराने बदमाश के लिए बिलकुल इसी तरह का शब्द-प्रयोग मिलता है: अं व्यू मार्शोर (Un vieux marcheur)। विचारों के इस साहचर्य से सम्भवतः इस तथ्य का कुछ सम्बन्ध है कि बहुत-से बड़े पशुओं में मैथुन के लिए मादा या स्त्री पशु पर 'चढ़ने' की आवश्यकता होती है।

स्वयंरति को निरूपित करने वाला प्रतीक टहनी तोड़ना न केवल इस कार्य के गवारू वर्णन से मेल खाता है, बल्कि पुराणकथाओं में भी इसके बड़ी दूर तक सादृश्य मिलते हैं पर विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयंरति का या स्वयंरति की सजा के रूप में बधिया करने का प्रतीक दांतों का गिरना या निकलना है, क्योंकि लोककथाओं में इस जैसी एक चीज मिलती है जो बहुत ही थोड़े स्वप्न देखने वालों को पता हो सकती है। मैं समझता हूं कि इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि खतना, जो इतनी सारी जातियों में प्रचलित है, बधिया करने के समान और उसके स्थान पर आया हुआ है; और हाल में ही पता चला है कि आस्ट्रेलिया की कुछ आदिम जातियों में तरुणावस्था प्राप्त करने के अवसर पर (लड़के के बालिग होने के समारोह पर) धार्मिक कृत्य के रूप में खतना किया जाता है और उनके बिलकुल पास रहने वाली दूसरी जातियों में इस प्रथा के स्थान पर एक दांत तोड़ देने की प्रथा है।

मैं अपना कथन इन उदाहरणों से खत्म करूंगा। ये सिर्फ उदाहरण हैं। हम इस विषय के बारे में और अधिक जानते हैं और आप समझ सकते हैं कि यदि हमारे जैसे अनाड़ियों के बजाय पुराणविद्या, नृतत्त्व-विज्ञान, भाषातत्त्व और लोककथाओं के सच्चे विशेषज्ञों द्वारा इस तरह की सामग्री का संग्रह किया जाए तो वह कितना अधिक विस्तृत और मनोरंजक होगा। हमें मजबूरन कुछ निष्कर्षों पर आना पड़ता है जो इस तरह सारे के सारे हमारे सामने नहीं आ सकते, पर फिर भी जो हमें सोचने के लिए बहुत कुछ मसाला दे जाएंगे।

---

१. देखिए, एन्थ्रोपोफ्यूटेइया

हैं। तब प्रतीकात्मक सम्बन्ध इसी बात के अवशेष होंगे कि पहले दोनों के लिए एक शब्द-प्रयोग होता था। जिन वस्तुओं का वाचक पहले जननेन्द्रियवाचक शब्द था वे अब स्वप्न में जननेन्द्रिय की प्रतीक बन सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, स्वप्न-प्रतीकात्मकता से आपको यह समझने में मदद मिल सकती है कि मनोविश्लेषण क्यों इतना आम दिलचस्पी का विषय बन जाता है, जितना मनोविज्ञान और मनश्चिकित्सा नहीं बन सकते। मनोविश्लेषण-कार्य विज्ञान की और बहुत-सी शाखाओं के साथ अच्छी तरह गुथा हुआ है, और इन शाखाओं की जांच-पड़ताल करने से बहुत कीमती नतीजे निकल सकते हैं, जैसे पुराणविद्या, भाषातत्व और भाषा-विज्ञान, लोककथाएं, लोकमनोविज्ञान और धर्मशास्त्र। आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि मनोविश्लेषण के आधार पर एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ है कि जिसका एकमात्र उद्देश्य इन सबको को बढ़ाना है। मेरा संकेत ईमेगो की ओर है जो सबसे पहले १६१२ में प्रकाशित हुई थी और जिसके सम्पादक हैन्स सैक्श और ओटो रैंक थे। इन दूसरे विषयों के साथ सम्बन्ध रखते हुए मनोविश्लेषण ने इनसे जितना पाया है उससे अधिक इन्हें दिया है। यह सच है कि मनोविश्लेषण अपने ही परिणामों की पुष्टि इन दूसरे क्षेत्रों में करता है, जो बड़ी विचित्र बात मालूम होती है, पर कुल मिलाकर मनोविश्लेषण द्वारा दी हुई तकनीकी विधियों और दृष्टिकोणों का प्रयोग ही दूसरे क्षेत्रों में सफल सिद्ध होता है। मनुष्य का मानसिक जीवन मनोविश्लेषण की जांच-पड़ताल के द्वारा ऐसी व्याख्याएं पेश करता है जो मनुष्य जाति के जीवन की बहुत-सी पहेलियों को हल कर देती हैं, या कम से कम उन्हें ठीक रूप में सामने ले आती हैं।

अब तक मैंने उन परिस्थितियों के बारे में आपको कुछ नहीं बताया जिसमें हम उस परिकल्पित 'आद्य भाषा' की गहराई में पहुंच सकते हैं, या उस क्षेत्र में पहुंच सकते हैं जिसमें यह आद्य भाषा अधिकतर जैसी की तैसी मौजूद होती है। जब तक आपको यह पता न चले तब तक आप सारे विषय का वास्तविक महत्त्व नहीं समझ सकते। मेरा आशय स्नायुरोगों के क्षेत्र से है। इसकी सामग्री स्नायुरोगियों के लक्षणों और अभिव्यक्ति की दूसरी रीतियों में मिलती है—इन स्नायुरोगियों के लक्षणों की व्याख्या और इलाज के लिए ही असल में मनोविश्लेषण की रीति निकाली गई थी।

मेरा चौथा दृष्टिकोण हमें वापस वहीं ले जाता है जहां से हम चले थे, बल्कि हमें उस मार्ग पर चलाता है जो हमने पहले ही देख लिया है। हमने कहा था कि यदि स्वप्न की काट-छांट न हो, तो भी स्वप्नों का अर्थ लगाना हमारे लिए कठिन होगा क्योंकि तब हमारे सामने यह सवाल होगा कि स्वप्नों की प्रतीकात्मक भाषा का जाग्रत् जीवन की भाषा में अनुवाद किया जाए। इस प्रकार प्रतीकात्मकता स्वप्न-विपर्यास में दूसरा और स्वतन्त्र कारण है, जो सेन्सरशिप

ी कहता था कि एक 'आद्य भाषा' रही होगी जिसके अवशेष ये सब प्रतीक हैं।

तीसरी बात यह है कि आपको यह महसूस होगा कि ऊपर बताए गए स्व
ओ मे होने वाली प्रतीकात्मकता यौन विषयो तक ही सीमित नही है। पर
प्नो मे इन प्रतीको का प्रयोग सिर्फ यौन वस्तुओ और सम्बन्धो को सूचित
रने के लिए होता है। इसका कारण बताना भी कठिन है। क्या यह माना
ए कि पहले यौन या मैथुन सम्बन्धी अर्थ रखने वाले प्रतीक बाद में विभिन्न
ों मे प्रयुक्त हुए और शायद इसी कारण प्रतीकात्मक निरूपण का ह्रास हो
ा और निरूपण की दूसरी रीतिया अपना ली गई ? सिर्फ स्वप्न-प्रतीकात्मकता
विचार करके इन प्रश्नो का उत्तर देना स्पष्टत असम्भव है; हम इतना ही
सकते है कि इस कल्पना को दृढ़ता से मान रहे कि सच्चे प्रतीकों और मैथुन
विशेष रूप से नजदीकी सम्बन्ध है।

इस सिलसिले मे हमे हाल मे ही एक महत्त्वपूर्ण संकेत एक भाषातत्त्वज्ञ (अपन्ना
एच० स्पर्बर, जो मनोविश्लेषण से बिलकुल अलग कार्य करते हैं) के इस विचार
मिला है कि भाषा की उत्पत्ति और परिवर्धन मे मैथुन सम्बन्धी आवश्यकताओं
सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा है। आपने लिखा है कि जो सबसे पहली ध्वनि मनुष्य
ुख से निकली वह अपनी बात कहने का साधन और मैथुन के साथी को बुलाने
साधन थी और बाद मे भाषण के अवयवो का प्रयोग आदिमकाल के मनुष्य
किए जाने वाले विभिन्न कार्यों के साथ होने लगा। यह कार्य तालबद्ध रीति
हराए गए वचनो की ध्वनि के साथ किया जाता था और इसका असर यह
था कि मैथुन सम्बन्धी दिलचस्पी कार्य में बदल जाती थी। इस प्रकार यह
जा सकता है कि आदिमकाल के मनुष्य ने अपने कार्य को मैथुन सम्बन्धी
के समान और उनका स्थानापन्न मानकर सुखदायक बनाया। इसलिए
जिक कार्य मे प्रयुक्त शब्दों के दो अर्थ होते थे—एक तो मैथुन सम्बन्धी कार्य
ूचित करता था और दूसरा उस परिश्रम को सूचित करता था जिसके तुल्य
ान लिया गया। धीरे-धीरे उस शब्द का मैथुन सम्बन्धी अर्थ खत्म हो गया।
उनका प्रयोग सिर्फ कार्य के लिए होने लगा। अनेक पीढ़ियों बाद यही बात
ब्द के बारे में हुई—वह भी पहले मैथुन सम्बन्धी अर्थ का वाचक बना और
किसी नये तरह के कार्य के लिए प्रयोग में आने लगा। इस प्रकार अनेक मूल
न गए जो सब मैथुन सम्बन्धी प्रसग से पैदा हुए थे पर बाद में अपना मैथुन
धी अर्थ खो बैठे। यदि उपर्युक्त कथन सही है, तो स्वप्न-प्रतीकों को समझने
सम्भावना हमें दिखाई देने लगती है। हमको समझना चाहिए कि स्वप्नों
बनी उन आदिम अवस्थाओं का कुछ अश बाकी है, इतने अधिक मैथुन
ी प्रतीक क्यों होते हैं, और आम तौर से हथियार और औजार पुरुष के, तथा
वस्तुओं और सामान को बनाया-सवारा जाता है, वे स्त्री के प्रतीक क्यों होते

। तब प्रतीकात्मक सम्बन्ध इसी बात के अवशेष होंगे कि पहले दोनों के लिए एक शब्द-प्रयोग होता था। जिन वस्तुओं का वाचक पहले जननेन्द्रियवाचक शब्द था वे अब स्वप्न में जननेन्द्रिय की प्रतीक बन सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, स्वप्न-प्रतीकात्मकता से आपको यह समझने में मदद मिल सकती है कि मनोविश्लेषण क्यों इतना आम दिलचस्पी का विषय बन जाता है, जितना मनोविज्ञान और मनश्चिकित्सा नहीं बन सकते। मनोविश्लेषण-कार्य विज्ञान की और बहुत-सी शाखाओं के साथ अच्छी तरह गुथा हुआ है, और इन शाखाओं की जांच-पड़ताल करने से बहुत कीमती नतीजे निकल सकते हैं, जैसे पुराणविद्या, भाषातत्त्व और भाषा-विज्ञान, लोककथाएं, लोकमनोविज्ञान और धर्मशास्त्र। आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि मनोविश्लेषण के आधार पर एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ है कि जिसका एकमात्र उद्देश्य इन सबको बढ़ाना है। मेरा सकेत ईमेगो की ओर है जो सबसे पहले १६१२ में प्रकाशित हुई थी और जिसके सम्पादक हैन्स संक्स और ओटो रैंक थे। इन दूसरे विषयों के साथ सम्बन्ध रखते हुए मनोविश्लेषण ने इनसे जितना पाया है उससे अधिक इन्हें दिया है। यह सच है कि मनोविश्लेषण अपने ही परिणामों की पुष्टि इन दूसरे क्षेत्रों में करता है, जो बड़ी विचित्र बात मालूम होती है, पर कुल मिलाकर मनोविश्लेषण द्वारा दी हुई तकनीकी विधियों और दृष्टिकोणों का प्रयोग ही दूसरे क्षेत्रों में सफल सिद्ध होता है। मनुष्य का मानसिक जीवन मनोविश्लेषण की जांच-पड़ताल के द्वारा ऐसी व्याख्याएं पेश करता है जो मनुष्य जाति के जीवन की बहुत-सी पहेलियों को हल कर देती हैं, या कम से कम उन्हें ठीक रूप में सामने ले आती हैं।

अब तक मैंने उन परिस्थितियों के बारे में आपको कुछ नहीं बताया जिसमें हम उस परिकल्पित 'आद्य भाषा' की गहराई में पहुंच सकते हैं, या उस क्षेत्र में पहुंच सकते हैं जिसमें यह आद्य भाषा अधिकतर जैसी की तैसी मौजूद होती है। जब तक आपको यह पता न चले तब तक आप सारे विषय का वास्तविक महत्त्व नहीं समझ सकते। मेरा आशय स्नायुरोगों के क्षेत्र से है। इसकी सामग्री स्नायुरोगियों के लक्षणों और अभिव्यक्ति की दूसरी रीतियों में मिलती है—इन स्नायुरोगियों के लक्षणों की व्याख्या और इलाज के लिए ही असल में मनोविश्लेषण की रीति निकाली गई थी।

मेरा चौथा दृष्टिकोण हमें वापस वहीं ले जाता है जहां से हम चले थे, बल्कि हमें उस मार्ग पर चलाता है जो हमने पहले ही देख लिया है। हमने कहा था कि यदि स्वप्न की काट-छांट न हो, तो भी स्वप्नों का अर्थ लगाना हमारे लिए कठिन होगा क्योंकि तब हमारे सामने यह सवाल होगा कि स्वप्नों की प्रतीकात्मक भाषा का जाग्रत् जीवन की भाषा में अनुवाद किया जाए। इस प्रकार प्रतीकात्मकता स्वप्न-विपर्यास में दूसरा और स्वतन्त्र कारण है, जो सेन्सरशिप

जो कहता था कि एक 'आद्य भाषा' रही होगी जिसके अवशेष ये सब प्रतीक हैं।
तीसरी बात यह है कि आपको यह महसूस होगा कि ऊपर बताए गए अन्य क्षेत्रों में होने वाली प्रतीकात्मकता यौन विषयों तक ही सीमित नहीं है। पर स्वप्नों में इन प्रतीकों का प्रयोग सिर्फ यौन वस्तुओं और सम्बन्धों को सूचित करने के लिए होता है। इसका कारण बताना भी कठिन है। क्या यह माना जाए कि पहले यौन या मैथुन सम्बन्धी अर्थ रखने वाले प्रतीक बाद में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त हुए और शायद इसी कारण प्रतीकात्मक निरूपण का ह्रास हो गया और निरूपण की दूसरी रीतियां अपना ली गईं? सिर्फ स्वप्न-प्रतीकात्मकता पर विचार करके इन प्रश्नों का उत्तर देना स्पष्टत: असम्भव है; हम इतना ही कर सकते हैं कि इस कल्पना को दृढ़ता से मान रहें कि सच्चे प्रतीकों और मैथुन में विशेष रूप से नजदीकी सम्बन्ध है।

इस सिलसिले में हमें हाल में ही एक महत्त्वपूर्ण संकेत एक भाषातत्त्वज्ञ (भाषा के एच० स्पर्बर, जो मनोविश्लेषण से बिलकुल अलग कार्य करते हैं) के इस विचार से मिला है कि भाषा की उत्पत्ति और परिवर्धन में मैथुन सम्बन्धी आवश्यकताओं का सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा है। आपने लिखा है कि जो सबसे पहली ध्वनि मनुष्य के मुख से निकली वह अपनी बात कहने का साधन और मैथुन के साथी को बुलाने का साधन थी और बाद में भाषण के अवयवों का प्रयोग आदिमकाल के मनुष्य द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यों के साथ होने लगा। यह कार्य तालबद्ध रीति से दोहराए गए वचनों की ध्वनि के साथ किया जाता था और इसका असर यह होता था कि मैथुन सम्बन्धी दिलचस्पी कार्य में बदल जाती थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आदिमकाल के मनुष्य ने अपने कार्य को मैथुन सम्बन्धी कार्यों के समान और उनका स्थानापन्न मानकर सुखदायक बनाया। इसलिए सामाजिक कार्य में प्रयुक्त शब्दों के दो अर्थ होते थे—एक तो मैथुन सम्बन्धी का को सूचित करता था और दूसरा उस परिश्रम को सूचित करता था जिसके तु इसे मान लिया गया। धीरे-धीरे उस शब्द का मैथुन सम्बन्धी अर्थ खत्म हो
और
ये
ग सिर्फ कार्य के लिए होने लगा।
कर
में

स्वप्न-तंत्र*

स्वप्न-सैन्सरशिप और प्रतीकात्मक निरूपण को पूरी तरह समझ लेने के बाद भी आप स्वप्न-विपर्यास का रहस्य पूरी तरह नहीं समझ सके। फिर भी अब आप अधिकतर स्वप्नों को समझ सकने की स्थिति में हो गए हैं। स्वप्नों को समझने के लिए आप दो परस्पर सहायक विधियों का प्रयोग करेंगे. आप स्वप्नद्रष्टा के साहचर्यों का पता लगाते-लगाते स्थानापन्न से उस असली विचार पर पहुंचेंगे जिसका वह सूचक है, और प्रतीकों का अर्थ आप इस विषय की जानकारी से प्राप्त करेंगे। इस प्रक्रम में पैदा होने वाले कुछ संदिग्ध प्रश्नों की चर्चा हम बाद में करेंगे।

अब हम फिर उसी विषय पर आते हैं जिसे हमने स्वप्न-अवयवों और उनके आधारभूत असली विचारों के सम्बन्धों का अध्ययन करते हुए अधूरे साधनों के कारण छोड़ दिया था। तब हमने चार मुख्य सम्बन्ध बताए थे—सम्पूर्ण की जगह एक अंश का आ जाना, संकेत या अस्पष्ट निर्देश, प्रतीकात्मक सम्बन्ध, और सुघट्य[1] शब्द-निरूपण (प्रतिबिम्ब)। अब हम सारी व्यक्त स्वप्नवस्तु की तुलना अपने निर्वचन से प्रस्तुत हुए गुप्त स्वप्न से करेंगे और इस प्रकार इस विषय पर जरा बड़े पैमाने पर विचार करेंगे।

मुझे आशा है कि अब आपको इन दोनों वस्तुओं के पृथक् स्वरूपों के बारे में कोई भ्रम न होगा। यदि आप उन दोनों में भेद कर सकते हों तो स्वप्न को समझने की दिशा में आप सम्भवतः उन सब लोगों से आगे बढ़ गए हैं जिन्होंने मेरी पुस्तक इण्टरप्रेटेशन आफ ड्रीम्स (स्वप्नों का निर्वचन) पढ़ी है। मैं आपको यह फिर याद दिला देना चाहता हूं कि जिस प्रक्रम से गुप्त स्वप्न को व्यक्त स्वप्न में बदला जाता है उसे स्वप्नतन्त्र कहते हैं; और इससे उल्टे प्रक्रम को, जो व्यक्त स्वप्न से गुप्त विचार की ओर बढ़ता है, निर्वचन या अर्थ लगाना कहते हैं। इसलिए निर्वचन का उद्देश्य स्वप्नतन्त्र को खत्म करना है। ... त्र के

* Dream-work १. Plastic

या काट-छांट के साथ-साथ होता है, पर यह नतीजा तो सीधा ही है कि सेन्सरशिप को प्रतीकात्मकता का उपयोग करने में सहूलियत होती है, दोनों का एक ही प्रयोजन होता है कि स्वप्न को विचित्र और दुर्बो दिया जाए।

स्वप्न के और आगे अध्ययन से हमें विपर्यास के किसी और का पता चलेगा या नहीं यह अभी हम देखेंगे। पर स्वप्न-प्रतीकात्मकता के को छोड़ने से पहले मैं इस अजीब तथ्य का उल्लेख एक बार और कर चाहता हूं कि इसका शिक्षित व्यक्तियों में बड़ा प्रबल विरोध हुआ है, य पुराणकथाओं, धर्म, कला और भाषा में असंदिग्ध रूप से प्रतीकात्मकता मौ है। क्या यहां भी यही सम्भव नहीं है कि मैथुन से इसका सम्बन्ध ही इस कारण हो ?

स्वप्न-तंत्र*

स्वप्न-सेन्सरशिप और प्रतीकात्मक निरूपण को पूरी तरह समझ लेने के बाद भी आप स्वप्न-विपर्यास का रहस्य पूरी तरह नहीं समझ सके। फिर भी अब आप अधिकतर स्वप्नों को समझ सकने की स्थिति में हो गए हैं। स्वप्नों को समझने के लिए आप दो परस्पर सहायक विधियों का प्रयोग करेंगे . आप स्वप्नद्रष्टा के साहचर्यों का पता लगाते-लगाते स्थानापन्न से उस असली विचार पर पहुंचेंगे जिसका वह सूचक है, और प्रतीकों का अर्थ आप इस विषय की जानकारी से प्राप्त करेंगे। इस प्रक्रम में पैदा होने वाले कुछ संदिग्ध प्रश्नों की चर्चा हम बाद में करेंगे।

अब हम फिर उसी विषय पर आते हैं जिसे हमने स्वप्न-अवयवों और उनके आधारभूत असली विचारों के सम्बन्धों का अध्ययन करते हुए अधूरे साधनों के कारण छोड़ दिया था। तब हमने चार मुख्य सम्बन्ध बताए थे—सम्पूर्ण की जगह एक अंश का आ जाना, संकेत या अस्पष्ट निर्देश, प्रतीकात्मक सम्बन्ध, और सुघट्य[1] शब्द-निरूपण (प्रतिबिम्ब)। अब हम सारी व्यक्त स्वप्नवस्तु की तुलना अपने निर्वचन से प्रस्तुत हुए गुप्त स्वप्न से करेंगे और इस प्रकार इस विषय पर ज़रा बड़े पैमाने पर विचार करेंगे।

मुझे आशा है कि अब आपको इन दोनों वस्तुओं के पृथक् स्वरूपों के बारे में कोई भ्रम न होगा। यदि आप उन दोनों में भेद कर सकते हों तो स्वप्न को समझने की दिशा में आप सम्भवतः उन सब लोगों से आगे बढ़ गए हैं जिन्होंने मेरी पुस्तक इण्टरप्रेटेशन आफ ड्रीम्स (स्वप्नों का निर्वचन) पढ़ी है। मैं आपको यह फिर याद दिला देना चाहता हूं कि जिस प्रक्रम से गुप्त स्वप्न को व्यक्त स्वप्न में बदला जाता है उसे स्वप्नतन्त्र कहते हैं; और इससे उल्टे प्रक्रम को, जो व्यक्त स्वप्न से गुप्त विचार की ओर बढ़ता है, निर्वचन या अर्थ लगाना कहते हैं। इसलिए निर्वचन का उद्देश्य स्वप्नतन्त्र को खत्म करना है। शैशवीय ढंग के

* Dream-work १. Plastic

स्वप्नो मे, जिनमे स्पष्ट इच्छापूर्तियां आसानी से पहचानी जा
तन्त्र का प्रक्रम कुछ दूर तक कार्य करता रहा है, क्योंकि इ
रूपान्तरित हुई है, और आम तौर से विचार भी दृष्टिगम्य
परिवर्तित हुए हैं। यहां निर्वचन की कोई आवश्यकता नही
को पूर्वरूप मे ले आना ही हमारा काम है। स्वप्नतन्त्र के
तरह के स्वप्नो मे दिखाई देते है, स्वप्न-विपर्यास कहलाते हैं
बिम्ब या विचार हमारे निर्वचन-कार्य द्वारा ही सामने लाए

मुझे बहुत-से स्वप्न-निर्वचन की तुलना करने का मौका
आपको विस्तार से यह बता सकता हूं कि स्वप्नतन्त्र गुप्त स्वप्न-
पर किस तरह असर डालता है, पर कृपा करके बहुत कुछ स
आशा मत करिए। वर्णन के इस अश को शांति से और ध्यान

स्वप्नतन्त्र का पहला काम है सघनन'; इस शब्द से हम य
है कि व्यक्त स्वप्न की वस्तु गुप्त विचारो की अपेक्षा कम स
होती है, वह मानो गुप्त विचारो का एक तरह का सक्षिप्त अनु
कभी सघनन नही भी होगा, पर आम तौर से यह होता है, और
होता है। यह उल्टी दिशा मे कभी नही चलता, अर्थात् ऐसा
व्यक्त स्वप्न गुप्त स्वप्न की अपेक्षा अधिक सम्पन्न वस्तु वाला
क्षेत्र वाला हो। सघनन निम्नलिखित रीतियो से होता है: (१
बिलकुल गायब होते हैं, (२) गुप्त स्वप्न की बहुत-सी ग्रन्थि
खण्ड व्यक्त वस्तु मे आता है, (३) किसी सामान्य विशेषता वाले
स्वप्न मे मिलकर एक हो जाते हैं।

यदि आप चाहे तो सघनन शब्द इस अन्तिम प्रक्रम के लिए
हैं जिसके प्रभावो को विशेष आसानी से दिखाया जा सकता है
विचार करते हुए आप बड़ी आसानी से ऐसे उदाहरण याद
विभिन्न व्यक्ति मिलकर एक व्यक्ति बन गए हो। ऐसी मिली-
मे क से मिलती है, पर कपड़ों में ख से मिलती है, पेशे से ग
और फिर भी आप सारे समय यह समझते हैं कि यह घ है।
चारों व्यक्तियों की किसी सामान्य विशेषता पर विशेष बल दे
हो सकता है कि मिली-जुली तस्वीर व्यक्तियों की तरह वस्तुओ

हो। अलग-अलग भागों के एक-दूसरे के ऊपर आ जाने से प्राय एक धुधला और अस्पष्ट चित्र बनता है, जैसे एक ही प्लेट पर कई फोटो ले लिए गए हो।

ऐसी मिली-जुली आकृतियों का बनना स्वप्नतत्र में बड़े महत्त्व का है, क्योंकि हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि उनके बनने के लिए आवश्यक सामान्य गुण जान-बूझकर बनाए गए हैं, जबकि ऊपर से देखने पर वे गुण उनमें दिखाई नहीं देते, जैसे, किसी विचार के लिए कोई विशेष पदावली छाटकर। इस तरह के सघनन और मिले-जुले शब्दों के उदाहरण हम पहले देख चुके हैं। उनका बोलने को बहुत-सी गलतियां पैदा करने मे महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है। आपको उस नौजवान की बात याद होगी जो एक महिला को 'इंसौर्ट' (बेग्लीटडाइजेन) करना चाहता था (बेलीटडाइजेन=इन्सल्ट=अपमान करना, बेग्लीटन=एसकोर्ट=हिफाज़त से पहुंचाना, मिला-जुला शब्द 'बेग्लीटडाइजेन')। इसके अलावा, अनेक मज़ाकों मे इस तरह की सघनन की विधि दिखाई देती है, परन्तु इसके बाद भी हम यह कह सकते हैं कि यह प्रक्रम बिलकुल अजीब और अप्रचलित-सा है। यह सच है कि बहुत-से कल्पनाजालों की सृष्टि मे हमें अपने स्वप्नों के मिले-जुले व्यक्तियों का निर्माण करने वाले अवयव मिल जाते हैं—ये घटक अवयव यथार्थतः एक-दूसरे से सम्बन्धित नहीं होते, बल्कि कल्पनासृष्टि के द्वारा मिलकर एक पूर्ण चित्र बनाते हैं, जैसे सेंटायर, अर्थात् आधी मनुष्य की और आधी घोड़े की आकृति वाला कल्पित राक्षस और प्राचीन पौराणिक कथाओं मे आने वाले या बोकलिन की तस्वीरों में दिखाई देने वाले कल्पित पशु। असल मे 'सृजनात्मक' कल्पना कोई नई चीज़ नहीं बना सकती, यह विभिन्न वस्तुओं के अवयव जोड़ सकती है, पर स्वप्नतन्त्र की प्रक्रिया के बारे मे विशेष बात यह है कि इसकी सामग्री विचार होते हैं, जिनमे से कुछ आपत्ति योग्य और अप्रिय हो सकते हैं, पर फिर भी वे सही रूप में बनने और प्रकट होने हैं। स्वप्नतंत्र इन विचारों को दूसरे रूप मे बदल देता है और यह बात विचित्र है, और समझ नहीं आती कि इस अनुवाद के प्रक्रम मे—मानो उन्हें दूसरी लिपि या भाषा में परिवर्तित करने में—मिलाकर जोड़ देने के साधन भी काम आते हैं। दूसरी अवस्थाओं मे अनुवादक का निश्चित रूप से यह प्रयत्न होना चाहिए कि वह मूल में दिखाए गए भेदों को माने और विशेष रूप से उन वस्तुओं में भेद स्पष्ट करे जो समरूप हैं, पर अभिन्न नहीं हैं, या एक जैसी हैं पर एक नहीं हैं; इसके विपरीत, स्वप्नतंत्र घुटकुले के ढग से ऐसा संदिग्ध अर्थ छांटकर, जिसमें दोनों विभिन्न विचार ध्वनित हो सकते हैं, दोनों को संघनित करने की कोशिश करता है। हमें इस विशेषता को सीधे ही समझ लेने की आशा न करनी चाहिए, पर हमारी स्वप्नतंत्र की अवधारणा के लिए इसका बड़ा महत्त्व हो सकता है।

यद्यपि संघनन स्वप्न को अस्पष्ट कर देता है, तो भी यह स्वप्न-सेन्सरशिप का

परिणाम नही लगता। इसका कारण मात्रिक या मितव्ययिता सम्बन्धी प्रतीत होता है, तो भी इससे सेन्सरशिप की हितसिद्धि होती है।

कभी-कभी सघनन से बड़ा असाधारण काम हो जाता है। इसके द्वारा कभी-कभी दो सर्वथा भिन्न गुप्त विचार-शृंखलाएं मिलकर एक व्यक्त स्वप्न का रूप ग्रहण कर लेती हैं, जिससे हमें ऊपर से देखने पर स्वप्न का पर्याप्त निर्वचन मिल जाता है, और फिर भी, उसका जो दूसरा अर्थ हो सकता है उसे हम नजरन्दाज कर देते हैं।

इसके अलावा, व्यक्त और गुप्त स्वप्न के सम्बन्ध पर सघनन का एक प्रभाव यह होता है कि दोनों के अवयवों में कहीं भी सीधा सिलसिला नहीं रहता क्योंकि कभी तो एक व्यक्त अवयव एकसाथ कई गुप्त विचारों को निरूपित करता है और कभी एक गुप्त विचार कई व्यक्त अवयवों में मौजूद होता है। फिर जब हम स्वप्नों का निर्वचन करने लगते हैं, तब देखते हैं कि आम तौर से एक व्यक्त अवयव के साहचर्य किसी नियमित क्रम से सामने नहीं आते, हमें प्रायः सारे स्वप्न का निर्वचन होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

इस प्रकार स्वप्नतन्त्र स्वप्न-विचारों को अनुवादित या रूपांतरित करने के लिए एक बड़ी अजीब रीति अपनाता है; यह प्रत्येक शब्द का दूसरे शब्द से या प्रत्येक चिह्न का दूसरे चिह्न से अनुवाद नहीं होता, यह किसी निश्चित नियम के अनुसार छांटने का प्रक्रम भी नहीं होता; उदाहरण के लिए, शब्दों के सिर्फ व्यंजन आते हों और स्वर लुप्त हो जाते हों, न ऐसा ही होता है कि एक अवयव छांटकर उसमें कई अन्य अवयवों को निरूपित कर दिया जाए, जिसे हम निरूपण का प्रक्रम कह सकते हैं। यह बिलकुल दूसरी और उलझनदार विधि से क्रिया करता है।

स्वप्नतन्त्र का दूसरा काम है विस्थापन[1]। खुशकिस्मती से यह कोई बिलकुल नई चीज नहीं है। हम जानते हैं कि यह पूरी तरह स्वप्न-सेन्सरशिप का कार्य है। विस्थापन दो रूपों में होता है: प्रथम, किसी गुप्त अवयव के स्थान पर कोई और दूसरी चीज, जैसे कोई अस्पष्ट निर्देश, प्रतिस्थापित[2] हो जाता है—उसका ही कोई भाग प्रतिस्थापित नहीं होता; और दूसरे, बलाघात किसी महत्त्वपूर्ण अवयव से हटकर किसी महत्त्वहीन अवयव पर पहुंच जाता है, जिससे मानो स्वप्न का केन्द्र हट जाता है और इस तरह स्वप्न अपरिचित दीखने लगता है।

अस्पष्ट निर्देश से स्थानापन्नता, अर्थात् एक अवयव के स्थान पर दूसरे का आ जाना, जागते समय के विचारों में भी होता रहता है, पर दोनों में एक अन्तर है. जागते समय के विचारों में यह आवश्यक है कि अस्पष्ट निर्देश आसानी से समझ में आने वाला हो और कि स्थानापन्न वस्तु का असली विचार की वस्तु से

१ Displacement २. Replaced

साहचर्य हो। अस्पष्ट निर्देश का प्रयोग वाणी के चमत्कारों में भी बहुत किया जाता है, जिनमें वस्तु में साहचर्य की शर्त नहीं रहती और उसके स्थान पर अपरिचित बाहरी साहचर्य, जैसे ध्वनि की समानता, अर्थ की स्पष्टता, आदि आ जाते हैं, पर सुबोधता की शर्त रहती है। यदि हम मज़ाक में बिना मेहनत के यह न समझ सकें कि जिस वस्तु का निर्देश किया जा रहा है वह क्या है, तो मज़ाक का सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाएगा; पर स्वप्नों में विस्थापन द्वारा निर्देश पर दोनों में से एक भी बन्धन नहीं होता। यह जिस अवयव का सूचक है, उससे बहुत अस्पष्ट रूप से और हल्का-सा जुड़ा रहता है, और इस कारण आसानी से समझ में नहीं आता, और जब सम्बन्ध-सूत्र टूट जाता है, तब निर्वचन में वह असर पड़ता है जो किसी असफल मज़ाक का या 'जबर्दस्ती की' या खींचातानी से की गई व्याख्या का। स्वप्न-सेन्सरशिप का उद्देश्य उसी समय पूरा हो जाता है जब वह अस्पष्ट निर्देश से असली विचार का सम्बन्ध जोड़ने को असम्भव बनाने में सफल हो जाए।

यदि हमारा उद्देश्य विचार को प्रकट करना है तो बलाघात का विस्थापन, अर्थात् स्थान-परिवर्तन, उसका उचित उपाय नहीं है, यद्यपि हम हंसी पैदा करने-वाला असर लाने के लिए जाग्रत् जीवन में कभी-कभी इसे स्वीकार करते हैं। इससे कितनी गड़बड़ पैदा होती है, यह मैं उदाहरण से स्पष्ट करूंगा। किसी गांव में एक बढ़ई रहता था, जिसने हत्या का अपराध किया था। अदालत ने फैसला किया कि बढ़ई सचमुच अपराधी है, परन्तु क्योंकि वह गांव में अकेला बढ़ई था, और इसलिए उसके बिना काम नहीं चल सकता था, जबकि वहां दर्ज़ी तीन रहते थे; इसलिए उसकी जगह उन तीन में से एक को फांसी पर लटका दिया गया।

स्वप्नतंत्र का तीसरा कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सबसे अधिक मनोरंजक है। इसमें विचार दृष्टिगम्य प्रतिबिम्ब[1] में रूपान्तरित हो जाते हैं। यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि स्वप्न-विचारों की हर चीज़ इस तरह रूपान्तरित नहीं होती; बहुत-सी चीज़ें अपने मूल रूप में कायम रहती हैं और व्यक्त स्वप्न में भी स्वप्नद्रष्टा के विचार या ज्ञान के रूप में दिखाई देती हैं; दूसरी बात यह है, कि विचारों का रूपान्तर सिर्फ इसी रूप में नहीं होता कि वे दृष्टिगम्य प्रतिबिम्बों का रूप ग्रहण कर लें; पर फिर भी स्वप्नों के निर्माण में यह अनिवार्य विशेषता है, और जैसाकि हम जानते हैं, स्वप्नतन्त्र का यह भाग सिर्फ एक और अवस्था को छोड़कर, सबसे कम बदलता है। इसके अतिरिक्त, अलग-अलग स्वप्न-अवयवों के लिए सुपरूप शब्द-निरूपण के प्रक्रम से हम पहले ही परिचित हैं।

स्पष्ट है कि यह कार्य आसान नहीं, इसकी कठिनाई का कुछ अन्दाज़ा लगाने के लिए यह कल्पना कीजिए कि आपको किसी समाचारपत्र के राजनीतिक अग्रलेख

1. Visual image

के स्थान पर कुछ चित्र बनाने हैं। अब आपको चित्रलिपि ग्रहण करनी हो
और वर्णमाला वाली लिपि छोड़नी होगी। लेख मे उल्लिखित व्यक्तियों और व
वस्तुओ का निरूपण चित्र के रूप में, आसानी से, और शायद अधिक अच्छे तरी
से, किया जा सकता है, पर अमूर्त शब्दो तथा सबधवाचक शब्दो जैसे विभक्तिय
सयोजक शब्द आदि को चित्रित करने मे कठिनाई होगी। अमूर्त शब्दो को चित्रि
करने मे आप सब तरह की युक्तिया काम मे लाएगे; उदाहरण के लिए लेख के मूल
पाठ को आप ऐसे शब्दो मे बदलने की कोशिश करेंगे जो शायद परिचित तो कम
होंगे पर अधिक मूर्त, और इसलिए आसानी से निरूपण योग्य होंगे। इससे आपको
इस तथ्य का ध्यान आएगा कि अधिकतर अमूर्त शब्द शुरू मे मूर्त थे और उनका
मूल अर्थ जाता रहा है, और इसलिए जहा कहीं सम्भव होगा, आप इन शब्दो के शुरू
के मूर्त अर्थ को पकड़ेगे। इस प्रकार आपको यह सोचकर प्रसन्नता होगी कि किसी
वस्तु के 'धारण' (अर्थात् स्वामित्व) को आप उसके शब्दार्थ के अनुसार धारण
करने के रूप मे निरूपित कर सकते हैं। स्वप्नतन्त्र भी ठीक इसी तरह चलता है।
ऐसी परिस्थितियो मे आप चित्रण की बहुत यथार्थता की आशा नही कर सकते,
और न इस बात पर आपत्ति कर सकते हैं कि स्वप्नतन्त्र मे किसी ऐसे अवयव की
जगह, जिसे चित्ररूप मे लाना कठिन है, जैसे विवाह की प्रतिज्ञाओ को भग करने
का मनोबिम्ब, किसी और तरह का भग या तोड़ना, जैसे बाह या टाग का तोड़ना,
आ गया है। इस तरह आप वर्णलिपि को चित्रलिपि मे परिवर्तित करने की कठि
नाई कुछ हद तक दूर कर सकते है। (इन पृष्ठो को शुद्ध करते हुए मेरी दृष्टि
अखबार के एक अनुच्छेद पर पड़ी, जिससे उपर्युक्त बात की अचानक ही पुष्टि
होती है। वह अनुच्छेद मैं यहा प्रस्तुत करता हू):

'ईश्वरीय बदला

विवाह की प्रतिज्ञा तोड़ने पर बाह टूटी

रिजर्व फौज के एक सैनिक की पत्नी अन्ना एम० ने क्लीमेण्टाइन के० पर
पतिव्रत्य भंग करने का आरोप लगाया। उसने कहा कि क्लीमेण्टाइन के० का
अपने पति के मोर्चे पर चले जाने के दिनो में कार्ल एम० से अवैध सम्बन्ध था,
जबकि उसका पति उसे सत्तर क्राउन प्रतिमास भेज रहा था। इसके अलावा, उसको
अन्ना के पति से भी बहुत-सा धन मिला था, जबकि अन्ना और उसके बच्चों को
भूख और मुसीबत मे दिन गुजारने पड़ते थे। अन्ना ने अपने आरोप में यह भी
कहा कि मेरे पति के कुछ साथियो ने मुझे सूचना दी है कि मेरा पति और
क्लीमेण्टाइन इकट्ठे शराबघर मे गए और वहा बहुत रात तक शराब पीते रहे।
क्लीमेण्टाइन ने एक बार कई सैनिको के सामने मेरे पति से सचमुच पूछा था कि
तुम कब अपनी 'बुढ़िया औरत' को छोड़कर मेरे पास आ जाओगे या नहीं, और

जिस मकान में क्लीमेण्टाइन रहती है उसके चौकीदार ने मेरे पति को क्लीमेण्टाइन के कमरे में बिलकुल कपड़े उतारे हुए देखा है।

कल लियोपोल्डस्टैंड में क्लीमेण्टाइन ने एक मजिस्ट्रेट के सामने कहा कि मैं कार्ल एम० को बिलकुल नहीं जानती। हमारे गोपनीय सम्बन्ध का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

पर एक गवाह एलबर्टाइन ने कहा कि मैंने क्लीमेण्टाइन को अन्ना के पति को चूमते देखा है, मुझे देखकर क्लीमेण्टाइन घबरा गई थी। कार्ल ने, जिसे पहले गवाह के तौर पर बुलाया गया था और जिसने तब क्लीमेण्टाइन से अपना गोपनीय सम्बन्ध होने की बात से इनकार किया था, कल मैजिस्ट्रेट को एक पत्र दिया। इसमें गवाह ने अपने पहले के इनकार को वापस ले लिया था, और यह स्वीकार किया था कि पिछले जून तक उसका क्लीमेण्टाइन के साथ अवैध सम्बन्ध जारी था। 'पहले मैंने क्लीमेण्टाइन के साथ अपने सम्बन्ध से इस कारण इनकार किया था क्योंकि वह, मामला अदालत में आने से पहले, मेरे पास आई और उसने घुटने टेककर मुझसे कहा कि मैं कुछ न कहूं, और उसकी रक्षा करूं। 'आज,' गवाह ने लिखा था, 'मैं अदालत के सामने सारी बात सच-सच कह देने को मजबूर हो गया हूं, क्योंकि मेरी बायीं बाह टूट गई है, और इसे मैं अपने अपराध का ईश्वर द्वारा दिया गया दंड समझता हूं।'

जज ने फैसला किया की दण्डनीय अपराध हुए इतने दिन हो चुके हैं कि अब उसपर कार्यवाही नहीं हो सकती। इसपर आरोप लगाने वाली ने अपना आरोप वापस ले लिया और अभियुक्ता को बरी कर दिया गया।'

जब आपके सामने उन शब्दों के चित्र बनाने का प्रश्न आता है, जो विचार-सम्बन्धों को सूचित करते हैं, उदाहरण के लिए, 'क्योंकि', 'इसलिए', 'परन्तु' इत्यादि, तब आपके पास उस तरह के साधन नहीं होते जैसे ऊपर बताए गए हैं। और इस तरह जहां तक चित्रों के रूप में आपके अनुवाद का प्रश्न है, मूल के ये हिस्से निश्चित रूप से नष्ट हो जाएंगे। इसी प्रकार स्वप्नतंत्र स्वप्न-विचारों की वस्तु को अपनी 'कच्ची सामग्री' में परिवर्तित कर लेता है, जिसमें वस्तुएं और क्रियाएं होती हैं। यदि किसी तरह प्रतिबिम्बों को कुछ और बढ़ाकर ऐसे सम्बन्धों को सूचित करने की सम्भावना हो जो अपने-आपमें चित्रित नहीं किए जा सकते तो भी आप सन्तोष कर सकते हैं। ठीक इसी तरह स्वप्नतंत्र अधिकतर स्वप्न-विचारों की अधिकतर वस्तु को व्यक्त स्वप्न की आकृति[1] की विशेषताओं द्वारा, इसकी स्पष्टता या धुंधलेपन द्वारा, इसके अनेक भागों में विभाजन द्वारा तथा ऐसे ही उपायों में प्रकट करने में सफल होता है। साधारणतया कोई स्वप्न उतने ही

1. Form

भागो मे बाटा जाता है जितने उसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय होते हैं या जितनी [illegible]
स्वप्नो मे विचारो की क्रमिक श्रेणिया होती हैं; प्राय एक छोटा प्रारम्भिक स्[illegible]
बाद के विस्तृत मुख्य स्वप्न का भूमिकारूप होता है; पर कोई गौण स्वप्न-वि[illegible]
व्यक्त स्वप्न के बीच मे दृश्य-परिवर्तन आदि द्वारा निरूपित होता है। इस प्रका[illegible]
स्वप्नो की आकृति अपने-आपमे महत्त्वहीन चीज नहीं है, और उसका भी अ[illegible]
लगाने की आवश्यकता है। प्राय: एक ही रात मे आने वाले कई स्वप्नो का एक
ही अर्थ होता है, और वे बढ़ती हुई प्रबलता वाले किसी उद्दीपन को अधिकाधिक
पूर्णता से काबू मे करने के प्रयत्न का सकेत करते हैं। एक स्वप्न में भी कोई
विशेष रूप से कठिन अवयव 'डबलिंग' (दोहरेपन) अर्थात् एक से अधिक प्रतीकों
द्वारा निरूपित हो सकता है।

यदि हम स्वप्न-विचारो और उन्हें निरूपित करने वाले व्यक्त स्वप्नों की
तुलना जारी रखें तो सब दिशाओ मे हमे ऐसी वस्तुए दिखाई देती हैं जिनकी हमें
कभी आशा नहीं हो सकती थी। उदाहरण के लिए, यह कि स्वप्न की बेतुकी
बेतुकी बातो का भी अर्थ होता है। असल मे यहां आकर स्वप्नों के बारे मे डाक्टरी
विचार और मनोविश्लेषण सम्बन्धी विचार मे विभेद बहुत स्पष्ट हो जाता है।
डाक्टरी विचार के अनुसार, स्वप्न इसलिए बेतुका होता है क्योंकि स्वप्न देखते
समय हमारी मानसिक क्रिया ने अपना कार्य करना छोड़ दिया है; दूसरी ओर,
हमारे विचार के अनुसार, स्वप्न तब बेतुका बन जाता है जब उसमें गुप्त विचारों में
निहित आलोचना, अर्थात् यह राय कि 'यह बेतुका है' निरूपित करनी होती है।
थियेटर जाने विषयक जो स्वप्न मैंने आपको बताया था (डेढ़ फ्लोरिन के तीन
टिकट), वह इसका एक अच्छा उदाहरण है। इसमें यह राय ज़ाहिर की गई थी,
इतनी जल्दी विवाह करना बेहूदगी थी।'

इसी प्रकार जब हम स्वप्नो का अर्थ लगाते हैं, तब हमें स्वप्नद्रष्टाओं [illegible]
[illegible] प्रकट किए जाने वाले इस तरह के सन्देहों और अनिश्चयों का, कि अमुक
[illegible] स्वप्न में सचमुच दिखाई दिया था नहीं, कि वह सचमुच वैसा ही था [illegible]
[illegible] और चीज नहीं थी, असली अर्थ पता चल जाता है। आम तौर से गु[illegible]
[illegible] में इन सन्देहों और अनिश्चयों से सम्बन्धित कोई चीज नहीं होती और
[illegible] तरह सेन्सरशिप के कार्य करने से ही पैदा होते हैं, और उन्हें गुप्त
[illegible] को स्वप्न से मिटाने की अंशत: सफल कोशिश में को जाती है।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

स्वप्न के जिस अवयव का कोई विरोधी रूप हो सकता है, वह या तो सिर्फ अपना या अपने विरोधी का, और या इकट्ठे दोनों का प्रतीक हो सकता है; तात्पर्य से ही यह निश्चय करना होगा कि कौन-सा अनुवाद किया जाए। इसीलिए स्वप्नों में 'नहीं' का निरूपण नहीं होता, या स्पष्ट अर्थ वाली 'नहीं' नहीं होती।

स्वप्नतंत्र की इस विचित्रता का एक मनोरंजक सादृश्य भाषा के परिवर्धन में प्राप्त होता है। बहुत-से भाषाशास्त्रियों ने यह माना है कि सबसे पुरानी भाषाओं में विपरीतार्थक शब्द जैसे मजबूत-कमजोर; प्रकाश-अन्धकार; बड़ा-छोटा आदि, एक ही धातु से उत्पन्न शब्द में प्रकट किए जाते थे (आदिम शब्दों के परस्पर विरोधी अर्थ)। इस प्रकार प्राचीन मिस्री भाषा में 'केन' शब्द शुरू में मज़बूत और कमजोर दोनों के लिए था। बोलचाल में, ऐसे उभयक[1] (अर्थात् उभयार्थक) शब्दों के अर्थ में गलतफहमी से बचने के लिए उनका अर्थभेद काकु या लहजे, और उसके साथ होने वाली चेष्टाओं से स्पष्ट किया जाता था। लिखने में ऐसे शब्दों के साथ एक और 'निश्चायक' जोड़ दिया जाता था, जो बोलचाल में प्रयोग के लिए नहीं होता था। इस प्रकार, 'केन' शब्द जब मजबूत के अर्थ में लिखा जाता था तब इसके बाद एक सीधे खड़े हुए छोटे आदमी का चित्र बना दिया जाता था, और जब 'केन' शब्द का प्रयोग कमज़ोर के अर्थ में होता था तब इसके बाद एक कमज़ोर ढीले-ढाले आदमी की तस्वीर बना दी जाती थी। एक ही आदिम शब्द के दो विरोधी अर्थों का बहुत समय बाद, मूल में थोड़ा हेर-फेर करके, दो भिन्न रूपों में प्रकन शुरू हुआ। इस प्रकार 'मजबूत-कमज़ोर' वाचक 'केन' शब्द से दो शब्द निकले। केन=मजबूत, और कान=कमजोर। इस तरह दो विरोधी अर्थ रखने वाले शब्दों के बहुत-से अवशेष प्राचीनतम भाषाओं में ही नहीं मिलते, जो अब अपने परिवर्धन की अन्तिम मंजिलों में हैं, बल्कि यही बात नई भाषाओं में भी है, जो आज भी जीवित हैं। इसके कुछ दृष्टान्त मैं सी० एबल की पुस्तक (१८८४) से उद्धृत करता हूं।

लेटिन में ऐसे उभयक शब्द ये हैं :

एटलस=ऊंचा या गहरा; सेकर=पवित्र या अभिशप्त

मूलधातु के रूप-भेदों के उदाहरण ये हैं :

क्लेमेअर=चिल्लाना; क्लेम=शांति से, चुपचाप, गुप्त रूप से

सिकस=सूखा; सकस=रस; और जर्मन में स्टिम=वाणी, स्टम=गूंगा

सम्बन्धित भाषाओं की तुलना से ऐसे बहुत-से उदाहरण मिल जाते हैं :

अंग्रेज़ी: लौक=बन्द करना; जर्मन : लौक=छिद्र, लक=खाली स्थान

---

१. Ambivalent

अंग्रेजी : क्लीव[1], जर्मन : क्लेबेन=चिपकना

अंग्रेजी के 'विदआउट' शब्द में पहले 'साथ' और 'बिना' ये दोनों अर्थ थे, पर आज यह 'बिना' के अर्थ में ही प्रयोग होता है, पर यह बात स्पष्ट है कि 'विद' में जोड़ने के अर्थ के अलावा वंचित करने का अर्थ भी है, जैसे विद्ड्रा, विदहोल्ड (देखिए जर्मन वीडर)।

स्वप्नतंत्र की एक और विशेषता भी भाषा के परिवर्धन में दिखाई देती है। प्राचीन मिस्री भाषा में, और कुछ बाद की भाषाओं में भी, ध्वनियों का क्रम बदलने से उसी मूल विचार के लिए भिन्न-भिन्न शब्द बन जाते थे। अंग्रेजी और जर्मन शब्दों के इस तरह के कुछ सादृश्य ये हैं (जर्मन शब्द काले टाइप में हैं):

टोप (बर्तन)—पोट, बोट—(कठौता) टब; हूरी—रुह (विश्राम)—रेस्ट, बालकन (शहतीर)—बीम, क्लोबेन (डंडा)—क्लब; वेट—टोवेन (प्रतीक्षा करना)।

लैटिन और जर्मन के सादृश्य :

कैपेयर—पैकेन (पकड़ना), रेन—निएर (गुर्दा)।

यहां अकेले शब्दों में ध्वनियों का जैसा स्थान-परिवर्तन हुआ है, वैसा स्वप्नतंत्र द्वारा कई तरह से किया जाता है—अर्थ का उल्टा हो जाना, अर्थात् विरोधी अर्थ का आ जाना, हम पहले देख चुके हैं; इसके अलावा, हम स्वप्नों में देखते हैं कि स्थितियां उल्टी हो जाती हैं, या दो व्यक्तियों के सम्बन्ध उलट जाते हैं, मानो यह दृश्य किसी उल्टी दुनिया में हो रहा है। स्वप्नों में प्रायः खरगोश शिकारी का पीछा करता है। कभी-कभी घटनाओं का क्रम उलट जाता है, और इस तरह स्वप्नों में कार्य पहले और कारण पीछे हो जाता है, जिससे हमें किसी घटिया दर्जे के नाटक की बात याद आ जाती है, जिसमें नायक पहले गिर जाता है और उसे मारने वाली गोली इसके बाद में चलाई जाती है। या ऐसे स्वप्न होते हैं जिनमें अवयवों का सारा विन्यास या सिलसिला उल्टा हो जाता है। ये तब समझ में आ सकते हैं जब अन्तिम अवयव को पहले और पहले अवयव को अन्त में रखा जाए। आपको याद होगा कि स्वप्न-प्रतीकात्मकता का अध्ययन करते हुए भी हमने यही बात देखी थी। उसमें पानी में कूदने या गिरने का, या पानी में से निकलने का एक ही अर्थ है—पैदा होना या पैदा करना; और सीढ़ियों से चढ़ने या उतरने का एक ही अर्थ है। इससे हमें यह पता चलता है कि स्वप्न-विचारों को निरूपित करने में इतनी आज़ादी होने से स्वप्न-विपर्यास को कितना लाभ हो जाता है।

स्वप्नतंत्र की इन विशेषताओं को पुराने ढंग की विशेषताएं कहा जा सकता

१. अंग्रेजी में क्लीव के दोनों अर्थ अब भी मौजूद हैं : To cleave (=अलग करना) और To cleave to (=चिपकना)—अंग्रेजी अनुवादक

है। इनमें भाषाओं या लिपियों की अभिव्यक्ति की आदिम रीतियां बनी हुई हैं और उनसे वही कठिनाइयां सामने आती हैं, जिनपर हम बाद में इन विषयों की आलोचना करते हुए विचार करेंगे।

अब इस विषय के कुछ और पहलुओं पर विचार करना है। यह स्पष्ट हो चुका है कि स्वप्नतन्त्र का कार्य गुप्त विचारों के शब्दों वाले रूप को अवबोध्य रूपों[1] और अधिकतर दृष्टिगम्य प्रतिबिम्बों के रूप में बदलना है। हमारे विचार ऐसे अवबोध्य या इन्द्रियगोचर रूपों में ही पैदा हुए थे। उनकी सबसे पुरानी सामग्री और उनके परिवर्धन की सबसे पहली अवस्था इन इन्द्रिय संवेदनों[2] की, या अधिक यथार्थ रूप में कहें तो इनके स्मृतिचित्रों की ही थी। बाद में इन चित्रों में शब्द जोड़े गए और वे एक-दूसरे से इस तरह बांध दिए गए जिससे विचार बन जाएं। इस तरह स्वप्नतन्त्र हमारे विचारों पर प्रतिगामी[3] अर्थात् उल्टी ओर चलने वाला प्रक्रम करता है, और उसी रास्ते से लौटती है जिससे उनका परिवर्धन हुआ था; इस प्रतिगमन के मार्ग में वे सब नई बातें, जो स्मृतिचित्रों का विचारों में परिवर्धन होने के समय आई थीं, आवश्यक रूप से दूर हो जाती हैं।

इस प्रकार, स्वप्नतंत्र से हमारा यह अभिप्राय है। हमने इसके प्रक्रमों के बारे में जो कुछ जाना है, उसके अलावा, व्यक्त स्वप्न में हमारी दिलचस्पी अवश्य बहुत कम हो जाएगी। पर फिर भी व्यक्त स्वप्न के बारे में मैं दो-तीन बातें कहूंगा, क्योंकि आखिरकार स्वप्न के इसी हिस्से से तो हमारा सीधा परिचय होता है।

यह स्वाभाविक है कि व्यक्त स्वप्न का महत्त्व हमारी नज़रों में कुछ कम हो जाए। यह *सावधानी से बनाया हुआ है, या कई असम्बन्धित चित्रों का एक क्रम-*मात्र है, इस विषय में हमारी बहुत कुछ उपेक्षा हो जाएगी। किसी स्वप्न का बाहरी रूप ऊपर से कितना ही सार्थक दीखने पर भी हम जानते हैं कि यह रूप स्वप्न-विपर्यास के प्रक्रम द्वारा ही बना है, और इसका स्वप्न की अन्तर्वस्तु से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। पर कभी-कभी स्वप्न के इस ऊपरी रूप का अर्थ भी होता है, और यह बिना विपर्यास के, या मामूली विपर्यास करके गुप्त विचारों में एक महत्त्वपूर्ण अंश को पेश करता है; पर हम इस नतीजे पर तब तक नहीं पहुंच सकते जब तक हमने स्वप्न का अर्थ न लगा लिया हो, और इस तरह विपर्यास की मात्रा के बारे में हम किसी विचार पर पहुंच गए हों। इसी तरह का संदेह वहां होता है जहां दो अवयवों में नज़दीकी सम्बन्ध मालूम होता है, यह सम्बन्ध इस बात का मूल्य-वान संकेत भी हो सकता है कि गुप्त स्वप्न के वे अवयव इसी प्रकार जुड़े हुए हैं; पर कभी-कभी हमें यह निश्चित रूप से पता चल सकता है कि विचार जो बीच जुड़ी हुई है, वह स्वप्न में बहुत अलग-अलग हो गई है।

१. Perceptual forms २. Sense-impressions ३. Regressive

साधारणतया हमे व्यक्त स्वप्न के एक हिस्से की, दूसरे हिस्से के द्वारा, यह
कर व्याख्या करने की कोशिश करनी चाहिए कि जैसे स्वप्न एक सुस
अवधारण और वस्तुस्थिति-रूप-निरूपण है। अधिकतर अवस्थाओ में इस
तुलना किसी ब्रेकिया पत्थर के टुकडे से की जा सकती है, जिसमे विभिन्न किस्मों
पत्थरो के टुकड़े सीमेंट से जुडे रहते हैं, और उसपर दिखाई देने वाली धारियां उ
टुकडो की नही होतीं जिनसे यह बना है। सच तो यह है कि स्वप्नतंत्र मे एक
प्रक्रिया ऐसी होती है जिसे परवर्ती विशदन[1] कहते हैं; इसका उद्देश्य स्वप्न-
तंत्र के तात्कालिक परिणामो को मिलाकर एक और काफी सुसम्बद्ध समष्टि बना
देना है। इस प्रकम मे सामग्री प्रायः इस तरह सजाई जाती है जिससे वह समझ मे
आने के बिलकुल अयोग्य हो जाती है, और इसके लिए बीच मे जितनी बातें डालने
की जरूरत हो, उतनी डाल दी जाती हैं।

दूसरी ओर, हमे स्वप्नतंत्र के महत्त्व को बहुत अधिक बढ़ाकर न समझना
चाहिए, या इसमे वे बातें नही मान लेनी चाहिए जो इसमे नही हैं। इसका कार्य
उतना ही है जितना यहा बताया गया है। संघनन, विस्थापन, सुघट्य निरूपण और
सारे स्वप्न का परवर्ती विशदन, इतनी ही बातें यह कर सकता है। स्वप्नों मे निर्णय,
आलोचना, आश्चर्य या निगमनात्मक[2] तर्क दिखाई देते हैं। वे स्वप्नतंत्र से नहीं
पैदा होते, और ऐसा बहुत कम होता है कि वे स्वप्न के बारे मे बाद के चिन्तन को
प्रकट करते हो। ये अधिकतर गुप्त विचारो के खंड होते हैं, जो थोडा-बहुत परि-
वर्तित रूप मे और प्रसग के अनुकूल रूप मे व्यक्त स्वप्न मे घुस जाते हैं। दूसरे,
स्वप्नतंत्र स्वप्नों मे वार्तालाप नही पैदा कर सकता। थोड़े-से अपवादरूप
उदाहरणों को छोडकर सर्वत्र यह स्वप्नद्रष्टा द्वारा पिछले दिन सुनी गई या कही
बातों का अनुकरण होता है और उन बातो से बना हुआ होता है—ये बातें
विचारों मे स्वप्नद्रष्टा के स्वप्न की सामग्री या उसकी उत्तेजक वस्तु बनकर
जाती हैं। गणित सम्बन्धी गणनाएं भी स्वप्नतंत्र के क्षेत्र मे नहीं आतीं।
स्वप्न में इस तरह की जो चीज दिखाई देती है, वह साधारणतया संख्याओं
...स-मात्र होती है; यह गणना-सी प्रतीत होती है, परन्तु बिलकुल बेहूदी ग...
...ती है, और गुप्त विचारों मे उपस्थित किसी गणना की नकल-मात्र होती है
... परिस्थितियों में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हमे स्वप्नतंत्र मे जो दि...
...ी अनुभव हुई थी, वह शीघ्र ही गुप्त विचारों की ओर मुड़ जाती है जो...
...न स्वप्न द्वारा थोड़े या बहुत विपर्यस्त रूप में प्रकट होते हैं। परन्तु इस विष...
...सिद्धान्तरूप से विचार करते हुए यह उचित न होगा कि हमारी दिलचस्पी
...मार्गभ्रष्ट हो जाए कि हम सारे स्वप्न के स्थान पर पूरी तरह से गुप्त विचारों

1. Secondary elaboration 2. Deductive

को ही स्थापित कर दें, और स्वप्न के बारे मे कोई ऐसा विचार प्रकट करने लगें जो गुप्त विचारों के बारे मे ही सही है। यह बड़ी विचित्र बात है कि मनोविश्लेषण के परिणामों का ऐसा गलत प्रयोग किया गया है कि इन दोनो मे भ्रम होने लगा। स्वप्न शब्द का प्रयोग स्वप्नतंत्र के परिणामों, अर्थात् उस रूप के लिए ही हो सकता है जिसमे स्वप्नतंत्र ने गुप्त विचारो को परिवर्तित किया है।

यह कार्य एक अद्भुत प्रक्रम है। मानसिक जीवन में ऐसी कोई चीज अब तक ज्ञात नही थी। इस तरह सघनन, विस्थापन और मनोबिम्बों के रूप मे विचारों का प्रतिगामी अनुवाद एक नई चीज है और इसका स्वीकार कर लिया जाना ही मनोविश्लेषण के क्षेत्र मे किए गए हमारे प्रयत्नो का प्रचुर पारितोषिक है। स्वप्नतंत्र के साथ जो सादृश्य दिखाए गए हैं उनसे आप यह भी देखेंगे कि मनोविश्लेषण सम्बन्धी तथा दूसरे प्रकार की गवेषणा मे, विशेष रूप से भाषा और विचार-परिवर्धन के क्षेत्रों में क्या सम्बन्ध हैं। इस तरह प्राप्त हुए ज्ञान का और भी अधिक महत्त्व आपको तब पता चलेगा जब आपको यह मालूम होगा कि स्वप्नतंत्र की प्रक्रिया की तरह ही स्नायुरोगों के लक्षणों का निर्माण होता है।

मैं यह भी जानता हूं कि इन प्रयत्नों से मनोविज्ञान को जो नया लाभ हुआ है, उसका पूरी तरह अर्थ समझना अभी हमारे लिए सम्भव नहीं है। हम उन नये प्रमाणों का सकेत-मात्र करेंगे जो अचेतन मानसिक क्रियाओं के अस्तित्व के बारे में—असल में गुप्त स्वप्न-विचारों का यही स्वरूप है—उनसे प्राप्त हुए हैं, और यह निर्देश करेंगे कि स्वप्न-निर्वचन से मन के अचेतन जीवन के ज्ञान के लिए कितना बड़ा दरवाज़ा—इतना बड़ा कि हमने कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी—खुल जाने की आशा है।

मैं समझता हूं कि अब आपके सामने तरह-तरह के छोटे स्वप्नो के उदाहरण रखने का समय आ गया है, जिनसे ऊपर बताई गई बातों का स्पष्टीकरण हो सके।

स्वप्नों के उदाहरण और उनका विश्लेषण

आपको इस बात से निराश न होना चाहिए कि मैं आपके सामने किसी बड़े लम्बे स्वप्न का अर्थ पेश करने के बजाय फिर स्वप्न-निर्वचनों के खण्ड पेश कर रहा हूं। आप कहेंगे कि इतनी तैयारी करने के बाद हम निश्चित रूप से कोई बड़ा स्वप्न पेश किए जाने की आशा करते हैं, और आप अपना यह निश्चित विश्वास प्रकट करेंगे कि हजारों स्वप्नों का सफल निर्वचन कर लेने के बाद कुछ ऐसे स्पष्ट उदाहरण बहुत पहले जमा हो गए होंगे जिनसे स्वप्नतंत्र और स्वप्न-विचारों के बारे में हमारे सब कथनों की सचाई प्रत्यक्ष सिद्ध की जा सके। बात ठीक है, पर आपकी इस इच्छा को पूरा करने के रास्ते में बहुत-सी कठिनाइयां हैं।

प्रथम तो, मुझे यह स्वीकार करना होगा कि ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जिसने स्वप्नों के निर्वचन को अपना मुख्य व्यवसाय बनाया हो। तो फिर, हम उनका निर्वचन किन परिस्थितियों में किया करते हैं? कभी तो बिना किसी विशेष प्रयोजन के हम किसी मित्र के स्वप्नों पर विचार करने लगते हैं, या मनोविश्लेषण-कार्य के अभ्यास के लिए अपने ही स्वप्नों का अर्थ लगाते रहते हैं; परन्तु मुख्यतः हमें उन स्नायुरोगियों के स्वप्नों का अर्थ लगाना होता है जो मनोविश्लेषण से इलाज कराते हैं। इन रोगियों के स्वप्नों से बहुत अच्छी सामग्री मिलती है और वे स्वस्थ व्यक्तियों के स्वप्नों से किसी भी तरह हीन नहीं होते, पर इलाज की विधि के कारण हमें इलाज के प्रयोजन को मुख्य रखते हुए स्वप्न-निर्वचन को गौण स्थान देना पड़ता है और उनसे हमें ज्योंही इलाज के लिए कोई उपयोगी चीज मिल जाती है त्योंही बहुत सारे स्वप्नों का अर्थ लगाने की कोशिश छोड़ देनी पड़ती है। इसके अलावा, इलाज के समय आने वाले बहुत सारे स्वप्नों का पूरी तरह अर्थ नहीं लग पाता, क्योंकि उनका जन्म मन में, जो अभी हमें ज्ञात नहीं है, मौजूद प्रचुर सामग्री से होता है। इसलिए इलाज पूरा होने से पहले उन्हें समझना सम्भव नहीं। ऐसे स्वप्नों की पूरी कथा कही जाए तो स्नायुरोग के सारे रहस्य प्रकट करने होंगे; ऐसा करना हमारे लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि हमने स्नायुरोगों के अध्ययन की तैयारी करने के लिए ही स्वप्नों की समस्या उठाई है।

अब मुझे आशा है कि आप खुशी से इस सामग्री को छोड़ देंगे, और स्वस्थ व्यक्तियों के या शायद अपने ही स्वप्नों की व्याख्या सुनना पसन्द करेंगे। पर इन स्वप्नो की वस्तु के कारण ऐसा होना असम्भव है। कोई आदमी अपने-आपको, या अपने पर विश्वास करने वाले व्यक्ति को इतनी स्पष्टता से खोलकर नहीं रखेगा, जितनी स्पष्टता से स्वप्न के पूरे निर्वचन के लिए उसे खोलकर रखना आवश्यक है, क्योंकि, जैसाकि आप पहले ही जानते हैं, उनका सम्बन्ध व्यक्तित्व के सबसे अधिक घनिष्ठ प्रश्नों से होता है। स्वप्न सुनाने मे उसकी कथावस्तु के कारण होने वाली कठिनाई के अलावा एक और भी कठिनाई है। आप जानते हैं कि स्वप्न स्वयं स्वप्नद्रष्टा को अपरिचित और अजीब मालूम होता है। जिस बाहरी व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व का पता नहीं, उसे तो यह और भी अजीब लगेगा। मनोविश्लेषण के साहित्य मे अच्छे और विस्तृत स्वप्न-विश्लेषणो की कमी नही है। स्वयं मैंने कुछ ऐसे विश्लेषण प्रकाशित किए हैं जो कुछ रोगियों के इतिहास के अश थे। स्वप्न-निर्वचन का शायद सबसे अच्छा उदाहरण वह है जो प्रो० रैंक ने प्रकाशित किया है, जिसमें एक नौजवान लड़की के परस्पर सम्बन्धित दो स्वप्नों का विश्लेषण है। यह छपे हुए लगभग दो पृष्ठो पर है, पर इसका विश्लेषण ७६ पृष्ठो में है। इतने बड़े काम के लिए तो प्रायः एक पूरा सत्र चाहिए। यदि हम कुछ लम्बे और काफी विपर्यस्त स्वप्न छांट लेते तो हमे इतनी सारी व्याख्याओ मे जाना पड़ता, साहचर्यों और स्मृतियो के रूप मे इतनी सारी सामग्री पेश करनी पड़ती, और इतने अधिक नये प्रसगो में जाना पड़ता कि एक व्याख्यान इसके लिए बिलकुल अपर्याप्त रहता, और आपको इस सारे स्वप्न का कुछ भी अन्दाज न होता। इसलिए यदि मैं कम कठिनाई वाला रास्ता पकड़ूं और स्नायुरोगियो के स्वप्नो के कुछ खण्ड आपके सामने पेश करूं, जिनमे कोई एक या दूसरी विशेषता पहचानी जा सके, तो आपको सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। पेश करने के लिए प्रतीक सबसे आसान चीज हैं और उनके बाद स्वप्न-निर्वचन के प्रतिगामी स्वरूप की कुछ विशेषताओ का नम्बर है। मैं आपको यह बताऊंगा कि नीचे दिए गए स्वप्नों में से प्रत्येक स्वप्न को मैं क्यों सुनाने योग्य समझता हूं।

१ सिर्फ दो छोटे चित्रो [illegible]

कि उसका चाचा स्वप्न का कार्य कभी सचमुच करेगा, इसलिए शर्तसूचक 'यदि' शब्द लगा देने से इसका अर्थ सूझने लगेगा, 'यदि मेरा चाचा, जो इतना धार्मिक आदमी है, शनिवार को सिगरेट पीने लगे तो मुझे भी मेरी माता लाड़-प्यार कर सकती है।' स्पष्ट है कि इसका अर्थ यह हुआ कि माता द्वारा लाड़ किए जाने का उतना ही सख्त निषेध था जितना धर्मात्मा यहूदी के लिए पवित्र दिन पर सिगरेट पीने का। आपको मेरा वह कथन याद होगा कि स्वप्न-विचारों के सब आपसी सम्बन्ध लोप हो जाते हैं, विचार टूटकर मूल वस्तु के रूप में आ जाते हैं, और निर्वचन करते हुए हमारा कार्य है कि जो सम्बन्ध लुप्त हो गए हैं, उन्हें फिर से जोड़ें।

२ स्वप्नों के विषय में मैंने जो कुछ लिखा है उसके कारण मैं इस विषय में आम जनता का सलाहकार-सा हो गया हूं और बहुत वर्षों से मेरे पास बड़े दूर-दूर के स्थानों से पत्र आते हैं, जिनमें स्वप्न लिखे रहते हैं, या मेरी राय पूछी होती है। स्वभावतः मैं उन लोगों का आभारी हूं जिन्होंने मुझे अपने स्वप्नों के साथ इतनी काफी सामग्री भी दी कि उनका निर्वचन हो सके या जिन्होंने स्वयं निर्वचन पेश किए हैं। म्युनिख के एक मेडिकल विद्यार्थी का १९१० का निम्नलिखित स्वप्न इसी तरह का है, जिसे मैं आपको सुना रहा हूं, इसलिए कि आपको यह समझ में आ जाए कि साधारणतया तब तक स्वप्न को समझना कितना कठिन है जब तक स्वप्न-द्रष्टा स्वयं इसके बारे में जो कुछ बता सकता है, वह न बता दे। कारण कि मुझे शक है कि अपने मन में आप सोच रहे हैं कि प्रतीकों का अनुवाद कर देना निर्वचन का आदर्श तरीका है और मुक्त साहचर्य की विधि आप छोड़ देना पसन्द। इसलिए ऐसी घातक गलती को मैं आपके मन से निकाल देना चाहता हूं।

११ जुलाई, १९१०। सवेरे के समय मुझे यह स्वप्न आया: मैं टोबिनजेन एक गली में साइकल चलाता जा रहा था कि एक भूरा कुत्ता मेरे पीछे दौड़ता हुआ आया और उसने मेरी एक एड़ी पकड़ ली। मैं कुछ दूर और चलकर साइकल उतर गया और एक सीढ़ी पर बैठकर कुत्ते को भगाने लगा, क्योंकि उसने अपने दांत मेरी एड़ी में अच्छी तरह गड़ा लिए थे। (कुत्ते के मुझे काटने से और इस सारे दृश्य से मुझे कुछ बुरा नहीं मालूम हुआ।) दो अधिक उम्र की महिलाएं सामने बैठी हंसती हुई मेरी ओर देख रही थीं। इसके बाद मैं जाग उठा, और अक्सर पहले बहुत बार हुआ है, जाग जाने पर भी सारा स्वप्न मुझे स्पष्ट याद था।

इस उदाहरण में प्रतीकात्मकता से हमें कोई लाभ नहीं हो सकता, और स्वप्न-द्रष्टा हमें स्वयं आगे बताता है 'हाल में ही सड़क पर एक लड़की को देखने-मात्र से मेरा उसमें प्रेम हो गया था, पर मेरे पास उससे परिचय करने का कोई उपाय नहीं था। मैं उसके कुत्ते को माध्यम बनाकर उससे आसानी से परिचय प्राप्त कर सकता था, क्योंकि मैं स्वयं कुत्तों का बड़ा प्रेमी हूं और यह देखकर ही उसकी ओर आकृष्ट

हुआ था कि वह भी कुत्तों से प्रेम करती है।' आगे वह कहता है : 'मैंने कई बार लड़ते हुए कुत्तों को बड़ी चतुराई से अलग किया है, जिससे देखने वाले चकित हो जाते थे।' अब हमें पता चलता है कि जो लड़की उसकी नजरों में चढ़ी है, वह सदा इसी कुत्ते के साथ घूमती दिखाई देती थी, पर व्यक्त स्वप्न में वह नहीं है; सिर्फ उसके साहचर्य में रहने वाला कुत्ता है। शायद वे बुजुर्ग महिलाएं, जो उसकी ओर देखकर हंस रही थीं, उस लड़की को निरूपित करती हैं, पर वह और जो कुछ बताता है, उससे वह बात स्पष्ट नहीं होती। वह स्वप्न में साइकल चला रहा था—यह बात उस स्थिति को ही सूचित करती है, जो उसे याद थी, क्योंकि वह कुत्ते के साथ उस लड़की से जब मिला, तब वह साइकल ही चला रहा था।

३. जब किसी आदमी का कोई प्रिय व्यक्ति मर जाता है, तब काफी दिनों बाद उसे एक विशेष तरह का स्वप्न आता है, जिसमें उसके इस ज्ञान का कि वह व्यक्ति मर चुका है, और उसको उसे पुन: जीवित देखने की इच्छा का बड़ा अजीब मिश्रण हो जाता है। कभी-कभी मृत व्यक्ति स्वप्न में मृत और साथ ही जीवित दिखाई देता है—जीवित इसलिए क्योंकि वह यह नहीं जानता कि वह मर चुका है; मानो वह तब ही सचमुच मरेगा जब वह इस बात को जान लेगा। कभी-कभी वह आधा मरा और आधा जिन्दा होता है, और इन दोनों दशाओं के सूचक चिह्न अलग-अलग दिखाई देते हैं। आप इन स्वप्नों को निरे अर्थहीन नहीं कह सकते, क्योंकि परियों की कहानियों की तरह, जिनमें मरने के बाद फिर जिन्दा हो जाना बिलकुल आम बात है, स्वप्नों में भी यह अग्राह्य नहीं हो सकता। जहां तक मैं ऐसे स्वप्नों का विश्लेषण कर सका हूं, मुझे यह प्रतीत हुआ कि उनकी तर्कसंगत व्याख्या की जा सकती है, कि मृत व्यक्ति को वापस बुलाने की पवित्र इच्छा बड़े अजीबो-गरीब रूपों में अपने-आपको प्रकट करती है। मैं आपके सामने इस तरह का एक स्वप्न पेश करूंगा जो निश्चित ही बड़ा अजीब और बेतुका लगता है और जिसके विश्लेषण से हमारे सिद्धांत-विवेचन में पहले आई हुई बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाएंगी। स्वप्नद्रष्टा का पिता कुछ वर्ष पहले गुजर गया था :

मेरे पिता की मृत्यु हो गई थी, पर उसे जमीन में गाड़ दिया गया था और वह बीमार दिखाई देता था। वह जीवित रहा और मैंने भरसक कोशिश की कि वह यह बात न देख सके। इसके बाद स्वप्न में और बातें आ जाती हैं, जिनका कोई सीधा सम्बन्ध पहली बातों से नहीं मालूम पड़ता।

यह तथ्य, कि पिता मर गया था, हम जानते हैं . पर असल में उसे गाड़ा नहीं गया था। असल में आगे होने वाली बातों से इस प्रश्न का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है कि असली तथ्य क्या था। पर स्वप्न देखने वाले ने कहा कि अपने पिता के अन्तिम संस्कार से लौटने के बाद उसका एक दांत दर्द करने लगा। वह यहूदी धर्म-वचन, 'यदि तेरा दांत दर्द करे तो उसे निकाल दे' के अनुसार अपना दाढ़

था, और इसलिए दांत निकालने वाले के पास गया पर दांत निकालने वाले ने कहा कि ऐसे काम नहीं चलेगा, थोड़ा धीरज रखो। 'मैं इसमें,' दांत निकालने वाले ने कहा, 'कुछ लगाकर स्नायु को संज्ञाहीन कर दूंगा और तीन दिन बाद तुम आना, तब मैं इसे निकाल दूंगा।' 'यह निकालना,' स्वप्नद्रष्टा एकाएक बोला, 'ही गाड़ना है।'

क्या उसका कहना सही था ? सच है कि यहां ठीक सादृश्य नहीं है क्योंकि दांत नहीं निकाला गया, बल्कि उसका सिर्फ एक मुर्दा अंश निकाला गया है, पर अनुभव से हमें यह पता चलेगा कि इस तरह की गलतियां स्वप्नतंत्र पैदा करता है। हम यह कल्पना करते हैं कि स्वप्नद्रष्टा ने संघनन के प्रक्रम द्वारा मृत पिता और दांत को, जो मरा हुआ था पर फिर भी मौजूद था, मिलाकर एक कर लिया था, इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं कि व्यक्त स्वप्न में बेतुकापन आ गया; क्योंकि स्पष्टतः दांत के बारे में कही गई सारी बात पिता पर लागू नहीं हो सकती। तब फिर पिता और दांत दोनों में ऐसी सामान्य बात कौन-सी है जिससे इनकी तुलना हो सके।

ऐसी कोई बात अवश्य रही होगी, क्योंकि स्वप्नद्रष्टा ने आगे बताया कि मैं इस कहावत से परिचित हूं कि यदि किसीको एक दांत टूटने का स्वप्न आए तो इसका अर्थ यह है कि उसके परिवार का कोई व्यक्ति विदा होने वाला है।

हम जानते हैं कि यह आम प्रचलित निर्वचन गलत है या एक बड़े विकृत अर्थ में ही सही है। इसलिए हमें सचमुच यह पता लगने पर और भी आश्चर्य होगा कि स्वप्नवस्तु के अन्य अवयवों के पीछे इस प्रकार संकेत से सूचित की गई बात क्या है।

इसके बाद बिना किसी अनुरोध के, स्वप्नद्रष्टा अपने पिता की बीमारी और मृत्यु के, तथा अपने और अपने पिता के सम्बन्धों के बारे में बातचीत करने लगा। बीमारी बहुत लम्बी चली थी और पिता की देखभाल और इलाज में पुत्र को बहुत धन खर्च करना पड़ा था। पर उसे वह खर्च भारी नहीं मालूम हुआ न उसने कभी धीरज छोड़ा, और न उसके मन में यह इच्छा ही हुई कि पिता का अन्त जल्दी आ जाए। उसे अपनी सच्चे यहूदियों के योग्य पितृभक्ति पर और यहूदी धर्म का पूरी तरह पालन करने पर अभिमान था। क्या यहां हमें स्वप्न से सम्बन्धित विचारों में कोई परस्पर विरोध नहीं अनुभव होता ? उसने दांत और पिता को एक बताया था। वह यहूदी धर्म के अनुसार ही दांत को निकाल डालना चाहता था। यहूदी धर्म कहता है कि दर्द करने वाले दांत को भी निकाल देना चाहिए। वह अपने पिता से भी धर्म के आदेश के अनुसार ही व्यवहार करना चाहता था। यहां धर्म का आदेश यह था कि उसे खर्च और परेशानी की परवाह नहीं करनी

के कारण कोई विरुद्ध बात नहीं आने देनी चाहिए। क्या इन दोनों स्थितियों में तब अधिक अच्छा मेल न हो जाता यदि उसने अपने रोगी पिता के प्रति भी धीरे-धीरे सचमुच वे ही भावनाएं अपनाई होतीं जो उसने अपने रोगी दांत के प्रति अपनाई थीं, अर्थात् यदि उसने मृत्यु से यह चाहा होता कि वह उसके पिता के अनावश्यक, कष्टकारक और महंगे जीवन का जल्दी खात्मा कर दे ?

मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि असल में लम्बी बीमारी में अपने पिता के प्रति उसका यही रुख रहा था और दिखावटी तौर से उसका अपनी पितृभक्ति पर जोर देना इस तरह की स्मृतियों को अपने मन से दूर रखने के उद्देश्य से था। इस तरह की अवस्थाओं में पिता की मृत्यु की इच्छा पैदा हो जाना, और उसे कोई ऐसा करुण उद्गार प्रकट करके, जैसे 'इससे वह कष्ट से मुक्त हो जाएगा' छिपाना कोई असामान्य बात नहीं है। पर मैं विशेष रूप से आपको यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि यहां गुप्त विचारों में ही एक बाधा दूर हो गई है। हम निश्चित रूप से मान सकते हैं कि विचारों का पहला भाग सिर्फ अस्थायी रूप से अचेतन था, अर्थात् स्वप्न-तंत्र के वास्तविक प्रक्रम के समय वह अचेतन था। दूसरी ओर, पिता के प्रति भावनाएं सम्भाव्यतः स्थायी रूप से, और हो सकता है कि बचपन से ही, विरोधी थीं, और पिता की बीमारी के दिनों में मानो डरते-डरते और छिपे रूप में ये चेतना में घुस आई थीं। यह बात अन्य गुप्त विचारों के बारे में, जो असन्दिग्ध रूप से स्वप्न की वस्तु के सहायक हुए हैं, हम और भी अधिक निश्चय के साथ कह सकते हैं। यह सच है कि इसमें पिता के प्रति विरोधी भावनाओं के कोई संकेत नहीं हैं, पर जब हम बच्चे के जीवन में इन विरोधी भावों के उद्गम की खोज करते हैं, तब हमें यह याद आता है कि पिता का भय इस कारण उत्पन्न होता है कि जीवन के आरम्भिक वर्षों में वह ही लड़के की यौन चेष्टाओं का विरोध करता है, जैसाकि उसे पुन: जवानी आने के बाद सामाजिक दृष्टि से प्रायः मजबूरन करना पड़ता है। हमारे स्वप्नद्रष्टा का अपने पिता से यह सम्बन्ध था। उसके पितृप्रेम में आदर और भय मिले हुए थे, और इस भय का मूल यह था कि शुरू में यौन चेष्टाओं से बचने के लिए उसे डराया गया।

स्वप्न की अगली बातों की व्याख्या हम स्वयं 'ईडिपस-ग्रंथि'[1] से कर सकते हैं। 'वह बीमार लगता था', यह दांत के डाक्टर के इस कथन का कि इस जगह से दांत का हट जाना अच्छा नहीं लगता, निर्देश था; पर यह साथ ही उस 'बीमार (अर्थात् बुरा) लगने' का भी निर्देश करता है जिससे वह युवक अपनी तरुणाई के दिनों में अपनी आत्यधिक यौन चेष्टाओं को प्रदर्शित करता है, या उनके प्रदर्शित हो जाने से डरता है। स्वप्नद्रष्टा ने अपना दिल हलका करने के लिए अपना स्वप्न

1. Oedipus Complex

में बीमारी का रूप अपने ऊपर से हटाकर अपने पिता पर पहुंचा ... फ्राय
जानते ही हैं कि इस तरह का अपवर्तन[1] या विस्थापन अर्थात् कोई ब...
से हटाकर दूसरी जगह पहुंचा देना, स्वप्नतन्त्र की एक युक्ति है। य...
ज़िंदा रहा', पिता को फिर जीवित देखने की इच्छा तथा दांत-डाक...
बचाने के वायदे, इन दोनों से मेल खाती है। यह कथन कि 'मैंने भरसक
कि वह इसे न देख सके' बड़े सूक्ष्म तरीके से हमें यह बात इस तरह पूरी...
प्रेरित करता है कि 'वह मृत था।' पर उनको ऐसे ढंग से पूरा करते का...
सचमुच कुछ अर्थ बन जाए, जो एकमात्र तरीका है, वह भी हमें स्वप...
की सूचना देता है, क्योंकि यह सामान्य बात है कि वह नौजवान अपने यौ...
को अपने पिता से छिपाने की भरसक कोशिश करे। अन्त में मैं आपको...
दिखाना चाहता हूं कि तथाकथित 'दांत-दर्द के स्वप्न' सदा स्व-रति और
आशंकित सज़ा का ही निर्देश करते हैं।

आपने देखा कि किस तरह यह समझ में न आने वाला स्वप्न, एक ...
प्रकार के और भ्रम में डालने वाले सघनन द्वारा, इसमें से उन सब विचारों...
विलोप कर देता है जो गुप्त विचार-श्रेणी के असली केन्द्र से सम्बन्धित हैं, ...
जो विचार सबसे गहरे और समय की दृष्टि से सबसे दूर वाले थे, उन्हें निरू...
करने के लिए दो तरह के अर्थों वाली स्थानापन्न रचनाएं पैदा करके बना है...

४. हम उन विशेषताहीन और तुच्छ स्वप्नों की जड़ तक पहले पहुंचने की...
बार-बार कोशिश कर चुके हैं जिनमें कोई बेतुकी या अजीब बात नहीं होती बल्कि...
जिनसे यह प्रश्न पैदा होता है हमें ऐसी तुच्छ बातों का स्वप्न क्यों आता है?
इसलिए मैं इस तरह का एक नया उदाहरण दूंगा, जिसमें एक-दूसरे से जुड़े हुए
तीन स्वप्न हैं जो एक युवती महिला ने एक ही रात में देखे थे।

(क) वह अपने मकान में अपने हाल में से गुज़र रही थी कि उसका सिर
एक नीचे लटकते हुए फानूस से इतने ज़ोर से टकराया कि खून निकल आया। इस
घटना से उसे ऐसी किसी बात का ध्यान नहीं आया जो सचमुच हुई हो; उ...
कथन बिलकुल दूसरी दिशा में जाता था, 'आप देखते हैं कि मेरे बाल कितनी ...
तरह झड़ रहे हैं। कल मेरी मां ने मुझसे कहा था, बेटी, यदि ऐसे ही चलता र...
तो तेरा सिर शीघ्र ही तेरे नितम्ब की तरह केशहीन हो जायगा।' यहां हम देख...
हैं कि सिर शरीर के दूसरे सिरे का सूचक है। फानूस के प्रतीक को समझने के लि...
और किसी मदद की ज़रूरत नहीं, लम्बे हो सकने वाले सब पदार्थ पुरुष-लिंग के
प्रतीक होते हैं। इस प्रकार, स्वप्न का वास्तविक विषय शिश्न के सम्पर्क से शरीर
के निचले सिरे पर होने वाला रक्तस्राव है। इसके और भी अर्थ हो सकते हैं। स्वप्न-

[1] Inversion

द्रष्टा के और साहचर्यों से पता चलता है कि इस स्वप्न का इस धारणा से संबंध है कि मासिक धर्म पुरुष के साथ सम्भोग करने से पैदा होता है—यौन विषयों में यह धारणा कच्ची उम्र की लड़कियों में आम तौर पर मिल जाती है।

(ख) स्वप्नद्रष्टा ने देखा कि एक अंगूरों के बाग में एक गहरा गड्ढा है, जिसके बारे में वह जानती थी कि वह एक पेड़ के उखड़ने से बना है। इस मामले में उसने बताया कि 'पेड़ गायब था', जिसका अर्थ यह हुआ कि उसने स्वप्न में पेड़ नहीं देखा। परन्तु इन्हीं शब्दों से एक दूसरा विचार भी प्रकट होता है जिससे हमें इसके प्रतीकात्मक निर्वचन के बारे में कोई सन्देह नहीं रहता। यह स्वप्न यौन विषयों में एक और बालकों की सी धारणा, अर्थात् इस धारणा का निर्देश करता है कि शुरू में लड़कियों की जननेन्द्रिया लड़कों जैसी ही थीं, और इस अंग का बाद वाला रूप लिंग-विच्छेद (पेड़ उखड़ने) से बना है।

(ग) स्वप्नद्रष्टा अपनी मेज़ की दराज़ के आगे खड़ी थी जिसे वह इतनी अच्छी तरह जानती है कि यदि कोई छुए तो उसे तुरन्त पता चल जाएगा। मेज की दराज़ भी और सभी दराजों, तिजोरियों और सन्दूकों की तरह स्त्री जननेन्द्रिय की प्रतीक है। वह जानती थी कि सम्भोग (या उसके अनुसार कोई भी सस्पर्श) होने पर जननेन्द्रिय इस बात के कुछ सकेत प्रकट करती है और उसे बहुत समय से इस बात की दोषी समझे जाने का भय था। मैं समझता हू कि इन तीनों स्वप्नों मे मुख्य बल जानने पर है। उसके मन में वह समय था जब वह यौन विषयों में बालबुद्धि से खोजबीन किया करती थी, जिसके परिणामो पर उसे उस समय बड़ा अभिमान था।

५. प्रतीकात्मकता का एक और उदाहरण देखिए, पर इस बार मैं उस मानसिक स्थिति का भी संक्षेप में उल्लेख करूगा जिसमें वह स्वप्न पैदा हुआ। एक पुरुष और स्त्री ने, जो एक-दूसरे से प्रेम करते थे, एक रात इकट्ठे गुजारी; पुरुष ने उसका स्वभाव मातृत्वपूर्ण बताया। वह उन स्त्रियों मे से थी जिनकी सतान-प्राप्ति की इच्छा आलिंगनों के समय बलात् प्रकट हो जाती है, परन्तु उनकी मिलन की अवस्थाओं में यह सावधानी रखना आवश्यक था कि वीर्य को गर्भ मे जाने से रोका जाए। अगले दिन सवेरे उठने पर उसने यह स्वप्न सुनाया .

एक लाल टोपीधारी अफसर गली में उसका पीछा कर रहा था। वह उससे बचकर भागी और सीढ़ियों पर चढ़ गई और पीछे-पीछे वह भी आ गया। वह दम साधे अपने कमरे में पहुँची और उसने अपने पीछे के दरवाजे को बन्द करके ताला लगा [illegible]। वह आदमी बाहर रहा और उसने दरवाज़े के छेद से झाँक-कर [illegible] बेंच पर बैठा रो रहा था।

[illegible] अफसर का पीछा करना और इसका दम साधे हुए सीढ़ियों पर [illegible] चढ़ जाना, सम्भोग-कार्य को निरूपित करता है।

स्वप्न देखने वाली का दरवाज़ा बन्द करके अपना पीछा करने वाले को बाहर रोक देना अपरिवर्तन या विस्थापन की युक्ति का एक उदाहरण है, जिसका स्वप्नों में इतना अधिक प्रयोग होता है, क्योंकि वास्तव में पुरुष ही सम्भोग-कार्य पूरा होने से पहले हटा था। इसी प्रकार, उसने अपने मन के दुःख की भावना को अपने साथी पर डाल दिया है, क्योंकि वही स्वप्न में रोता है; साथ ही उसके आंसू वीर्य का भी निर्देश करते हैं।

आपने यह बात निश्चित ही कभी न कभी सुनी होगी कि मनोविश्लेषण के अनुसार सारे स्वप्न मैथुनार्थक होते हैं। अब आप इस निंदा के झूठ होने के बारे में स्वयं अपनी राय बना सकते हैं। आप इच्छापूर्ति-स्वप्नों के बारे में, जिनसे प्राथमिक आवश्यकताओं—भूख, प्यास और आज़ादी की चाह—की सन्तुष्टि होती है, सुविधा-स्वप्नों और अधैर्य-स्वप्नों तथा ऐसे स्वप्नों के बारे में जो स्पष्टतः लोभ और अहंकार सूचित करते हैं, सुन चुके हैं। पर यह बात आप निश्चित रूप से याद रख सकते हैं कि मनोविश्लेषण के परिणामों के अनुसार वे स्वप्न जिनमें विपर्यास की मात्रा काफी होती है मुख्यतः (पर यहां भी अनन्यतः नहीं) मैथुन सम्बन्धी इच्छाओं को प्रकट करते हैं।

६. स्वप्नों में प्रतीकों के उपयोगों के बहुत-से उदाहरण मैं एक विशेष विचार से दे रहा हूं। अपने पहले व्याख्यान में मैंने यह कठिनाई बताई थी कि मेरे कथनों को इस तरह प्रत्यक्ष प्रदर्शित नहीं किया जा सकता कि आपको मनोविश्लेषण की जांच के परिणामों पर विश्वास हो जाए और अब तक आप मुझसे निःसंदेह सहमत हो गए होंगे। परन्तु मनोविश्लेषण की अलग-अलग स्थापनाएं फिर भी इतने घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं कि किसी भी प्रश्न पर विश्वास और निश्चय हो जाने पर सारे सिद्धान्त के अधिकतर भाग को आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है। मनोविश्लेषण के बारे में यह कहा जा सकता है कि यदि आप इसे अपनी कनिष्ठिका पकड़ाएंगे तो शीघ्र ही यह आपका पहुंचा पकड़ लेगा। यदि गलतियों की व्याख्या को आप सन्तोषजनक मानते हैं तो तर्क का तकाज़ा है कि इसकी सारी बातों में भी आप अविश्वास न करें। स्वप्न-प्रतीकात्मकता भी इसी तरह इन बातों को स्वीकार करने में सहायता पहुंचाती है। मैं आपको एक गरीब वर्ग की औरत का स्वप्न सुनाऊंगा, जो प्रकाशित हो चुका है। इस औरत का पति चौकीदार था, और हम निश्चयपूर्वक मान सकते हैं कि उसने स्वप्न-प्रतीकात्मकता और मनोविश्लेषण का नाम भी कभी नहीं सुना था। तब आप स्वयं यह फ़ैसला कर सकते हैं कि यौन प्रतीकों की मदद से निकाले गए अर्थ को मनमाना या खींचतान से निकाला गया कहना उचित है या नहीं।

'तब कोई सेंध लगाकर मकान में घुस आया और उसने डर के मारे चौकीदार को आवाज़ लगाई, पर चौकीदार दो आवारागर्दों के साथ एक अर्थ में चला गया

था, जिसमें कई सीढ़ियां चढ़कर जाया जाता था। चर्च के पीछे एक पहाड़ था, और पहाड़ पर एक घना जंगल। चौकीदार ने लोहे का टोप, गले का कवच और चोगा पहन रखा था और उसकी पूरी दाढ़ी लहरा रही थी। उसके साथ जो दो आवारागर्द शान्तिपूर्वक गए थे, वे चोगे पहने हुए थे, जो उनके घड़ों पर चोरों की तरह लिपटे हुए थे। एक पगडंडी चर्च से पहाड़ की ओर जाती थी और उसके दोनों ओर ऊंची-ऊंची घास और झाड़ियां थीं जो अधिकाधिक घनी होती जाती थीं और पहाड़ की चोटी पर बाकायदा जंगल था।'

आप यहां उपर्युक्त प्रतीकों को बिना परेशानी के पहचान जाएंगे। पुरुष-लिंग तीन व्यक्तियों के दीखने से निरूपित हुआ है, और स्त्री के यौन अंग चर्च, पहाड़ और जंगल से युक्त दृश्य से निरूपित हुए हैं और सीढ़ियों पर चढ़ने का कार्य यहां भी संभोग-कार्य का प्रतीक है। शरीर का जो भाग स्वप्न में 'पहाड़' कहा गया है, उसे शरीर-शास्त्र में भी कामाचल (Mons veneris) कहते हैं।

७ अब मैं आपको एक और स्वप्न बताऊंगा। उसकी व्याख्या भी प्रतीकों के द्वारा ही की जाएगी। इसके अलावा, यह स्वप्न इस दृष्टि से अधिक *ध्यान देने योग्य और विश्वास पैदा करने वाला है कि स्वप्नद्रष्टा ने स्वयं सब* प्रतीकों का अनुवाद कर दिया, यद्यपि उसे निर्वचन के बारे में पहले से कोई जानकारी नहीं थी। ऐसी परिस्थिति बहुत कम होती है, और हम ठीक-ठीक नहीं समझ सकते कि यह किन अवस्थाओं में होती है।

वह अपने पिता के साथ एक स्थान पर घूम रहा था जो प्रेटर (वियेना का मुख्य पार्क) ही होगा, क्योंकि उन्होंने गोलघर और उसके सामने एक छोटा मकान देखा, जिसपर एक गुब्बारा बंद था जो सुस्त मालूम होता था। उसके पिता ने उससे पूछा कि यह सब किसलिए है। पुत्र को उसके पूछने पर आश्चर्य हुआ, पर फिर भी उसने कुछ स्पष्टीकरण किया। इसके बाद वे एक आंगन में आए। धातु की एक बड़ी चादर फैली हुई थी। उसका पिता उसमें से एक बड़ा टुकड़ा काट लेना चाहता था, पर उसने पहले चारों तरफ देखा कि मुझे कोई देख तो नहीं रहा। उसने अपने पुत्र से कहा कि तुम्हें सिर्फ ओवरसियर से कहने-भर की जरूरत है, और फिर उसके बाद तुम इसे योंही ले जा सकते हो। इस आंगन से कुछ सीढ़ियां नीचे एक डण्डे की ओर जाती थीं। इस डण्डे के पार्श्वों पर कोई नरम वस्तु लगी हुई थी, जैसे यह चमड़े की आरामकुर्सी हो। इस डण्डे के नीचे एक लम्बा चबूतरा, और इससे परे एक और डण्डा था।

स्वप्नद्रष्टा ने इसका स्वयं यह अर्थ बताया, '*गोलघर मेरी जननेन्द्रियों का प्रतीक है और इसके सामने वाला बंदी गुब्बारा शिश्न का प्रतीक है जिसके ढीला या नरम होने की मुझे शिकायत है।*' इसका अधिक विस्तृत अनुवाद इस प्रकार होगा: *गोलघर नितम्बों का प्रतीक है* (जिसे बच्चे सदा जननेन्द्रियों में शामिल

करते हैं) और सामने का छोटा मकान कब्रिस्तान है। स्वप्न में उसका पिता उससे पूछता है कि यह सब क्या है, अर्थात् जननेन्द्रियों का प्रयोजन और कार्य क्या है। इस स्थिति को उलटना, अर्थात् उलटा, करना, जिससे यह हो कि पुत्र सवाल पूछे, सीधी बात है, और ये सवाल असल में कभी नहीं पूछे गए; इसलिए हमें स्वप्न-विचारों को या तो अभिलाषा मानना चाहिए और या उन्हें इस तरह शर्तें अर्थ में लेना चाहिए, 'यदि मैं अपने पिता से इसकी व्याख्या करने के लिए कहता...' इस विचार का बाद का हिस्सा हम अभी देखेंगे।

जिस आंगन में धातु की चादर पड़ी है, उसकी प्रतीकों द्वारा व्याख्या नहीं करनी है, बल्कि वह पिता के कारबार के स्थान का निर्देश है। समझदारी के ख्याल से मैंने उसकी बताई हुई असली चीज की जगह धातु की चादर कर दी है, पर इसके अलावा, स्वप्न के शब्दों में मैंने कोई परिवर्तन नहीं किया। स्वप्नद्रष्टा अपने पिता के कारबार में शामिल हुआ था और जिन बहुत आपत्तिजनक कार्यों पर अधिक लाभ का दारोमदार था, उनसे बहुत लज्जित हुआ था। इसलिए इस स्वप्न-विचार का ऊपर निर्दिष्ट पिछला अंश इस प्रकार होगा, '(यदि मैं उससे पूछता तो) वह मुझे भी वैसे ही धोखा देता, जैसे अपने ग्राहकों को देता है।' स्वप्न-द्रष्टा धातु का टुकड़ा तोड़ने को, जो व्यापार की बेईमानी का प्रतीक है, एक दूसरी व्याख्या पेश करता है। वह कहता है कि इसका अर्थ है हस्त-मैथुन' का कार्य। यह व्याख्या न केवल हमारी पूर्वपरिचित है, बल्कि इस निर्वचन के भी अनुसार है कि हस्त-मैथुन के गुप्त कार्य को उलटे विचार ('हम इसे खुलेआम कर सकते हैं।') द्वारा प्रकट किया जाए। इस प्रकार यह तथ्य कि हस्त-मैथुन का आरोप पिता पर लगाया जाए, जैसेकि स्वप्न के पहले दृश्य में पूछने को उसके साथ जोड़ा गया था, ठीक वैसा है जैसीकि हमें आशा करनी चाहिए थी। स्वप्न-द्रष्टा ने दीवारों के मुलायम स्पर्श के कारण डण्डे का अर्थ तुरन्त योनि बताया और मैं अपनी ओर से यह कहता हूं कि ऊपर जाना तथा नीचे आना मैथुन-कार्य या सम्भोग का सूचक है।

पहले डंडे के नीचे और दूसरे डंडे के परली ओर वाले लम्बे चबूतरे की व्याख्या स्वप्नद्रष्टा ने अपने इतिहास से स्वयं की। वह कुछ समय सम्भोग करता रहा था और इसके बाद निरोधों के कारण उसने इसे छोड़ दिया था, पर इलाज कराकर वह फिर इसे करने योग्य बनने की आशा करता था।

८ नीचे मैं दो ऐसे स्वप्न पेश करता हूं जो उल्लेखनीय बहुपत्नी-प्रवृत्तियों वाले एक विदेशी को आए थे, क्योंकि उनसे इस कथन का स्पष्टीकरण हो सकता है कि प्रत्येक स्वप्नद्रष्टा का अपना व्यक्तित्व मौजूद होता है, चाहे वह व्यक्त वस्तु

में छिपा हुआ ही क्यों न हो। स्वप्नों में सन्दूक स्त्री-प्रतीक हैं।

(क) स्वप्नद्रष्टा एक यात्रा करने वाला था और उसका सामान एक गाड़ी में स्टेशन ले जाया जा रहा था। उसमें एक-दूसरे के ऊपर बहुत-से सन्दूक लदे हुए थे और उनमें दो बड़े काले सन्दूक बंधे थे जैसेकि एजेण्टों के होते हैं। उसने दिलासा देते हुए किसीसे कहा, 'देखो, ये सिर्फ स्टेशन तक जा रहे हैं।'

असल में, वह बहुत सारे सामान के साथ सफर करता है और इलाज में स्त्रियों सम्बन्धी बहुत-से किस्से बताए। दो काले सन्दूक दो काली स्त्रियों के प्रतीक हैं जो उस समय उसके जीवन में प्रमुख स्थान रखती थीं। उनमें से एक उसके पास वियेना आना चाहती थी। पर मेरी सलाह से उसने उसे, तार द्वारा, आने से रोक दिया।

(ख) चुंगीघर का एक दृश्य: एक सहयात्री ने उसका सन्दूक खोला और बेतकल्लुफी से सिगरेट पीते हुए कहा, 'इसमें चुंगी योग्य कोई चीज नहीं।' चुंगी अधिकारी उसपर विश्वास करता मालूम दिया, पर उसने फिर सन्दूक में हाथ डाला और एक सख्त निषिद्ध चीज उसमें मिली। तब यात्री ने लाचारी के ढंग से कहा, 'क्या करूं इसके लिए लाचार हूं।' स्वप्नद्रष्टा स्वयं यात्री है, और मैं चुंगी अफसर हूं। साधारणतया वह मेरे साथ बहुत साफ और सीधा रहता है, पर उसने एक नया सम्बन्ध, जो उसने हाल में ही एक महिला के साथ स्थापित किया था, मुझसे छिपाने का पक्का इरादा किया था; क्योंकि उसकी कल्पना थी, और बिलकुल ठीक थी, कि मैं उस महिला को जानता था। वह इस चीज के पता लग जाने से उत्पन्न दुविधा और परेशानी की स्थिति एक अपरिचित पर डाल देता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि वह स्वयं स्वप्न में बिलकुल नहीं आता।

९. अब मैं एक ऐसे प्रतीक का उदाहरण देता हूं जिसका मैंने अब तक उल्लेख नहीं किया:

स्वप्नद्रष्टा को अभी उसकी बहन मिली जिसके साथ उसकी दो सहेलियां थीं, जो आपस में बहनें थीं। उसने उन दोनों से हाथ मिलाया, पर अपनी बहन से नहीं मिलाया।

इसके साथ सम्बन्धित कोई असली घटना उसके मन में नहीं थी। असल में उसके विचार उस समय में पहुंच गए थे जब उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ करता था कि लड़की की छातियां इतनी देर में क्यों बढ़ती हैं। इसलिए दो बहनें छातियों की प्रतीक हैं। वह उन्हें अपने हाथ से पकड़ना पसन्द करता यदि वे उसकी बहनें न होतीं।

१०. स्वप्नों में मृत्यु-प्रतीकात्मकता का एक उदाहरण है:

स्वप्नद्रष्टा एक बहुत ऊंचा, सीधा, लोहे का पुल पार कर रहा था, और उसके साथ दो आदमी थे जिनके नाम वह जानता था, पर जागने पर भूल गया। एका-एक वे दोनों गायब हो गए और उसने एक भूत जैसा आदमी देखा, जिसने टोपी

और बड़ा चोगा पहन रखा था। उसने उससे पूछा कि क्या तुम तारघर के हरकारे हो?...'नहीं।'...या गाड़ी वाले हो?...'नहीं।'...इसके बाद वह आगे चला गया और स्वप्न में उसे बड़ा डर लगा; जागने पर वह यह कल्पना करने लगा कि लोहे का पुल एकाएक टूट गया और वह गहरे खड्ड में जा गिरा।

जब इस बात पर बल दिया जाता है कि स्वप्न में दिखाई दिए व्यक्ति स्वप्नद्रष्टा के अपरिचित हैं, या वह उनके नाम भूल गया है, तब साधारणतया वे ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। स्वप्नद्रष्टा के परिवार में तीन बच्चे थे। यदि उसने शेष दो बच्चों की मृत्यु की कामना की होती, तभी उसे मृत्यु का भय लगना चाहिए। तार के हरकारे के बारे में उसने कहा कि वे सदा बुरी खबर लाते हैं। अपनी वर्दी के अनुसार, स्वप्न में दिखलाई दिया मनुष्य लैंप जलाने वाला भी हो सकता था, जो लैंप बुझाता भी है क्योंकि मृत्यु जीवन की रोशनी को बुझाती है। गाड़ी वाले के बारे में उसके मन में राजा कार्ल की यात्रा के विषय में ऊलैंड की कविता थी। उसने दो साथियों के साथ एक झील पर की गई खतरनाक यात्रा का भी स्मरण किया, जिसमें उसने कविता में वर्णित राजा का अभिनय किया था। लोहे का पुल उसे एक हाल की दुर्घटना की और इस मूर्खता-पूर्ण कहावत की याद दिलाता था, 'जीवन एक लटका हुआ पुल है।'

११. यह मृत्यु-स्वप्न का एक और उदाहरण माना जा सकता है :

कोई अपरिचित सज्जन स्वप्नद्रष्टा के ऊपर काली किनारी वाला विज़िटिंग कार्ड डाल रहा था।

१२ अब मैं आपके सामने एक और स्वप्न रखता हूं जो कई दृष्टियों से दिलचस्प लगेगा, परन्तु इसका आंशिक कारण स्वप्नद्रष्टा में स्नायुरोग की अवस्था का होना है।

वह एक रेलगाड़ी में था जो खुली जगह रुकी। उसने सोचा कि कोई दुर्घटना होने वाली है और इसलिए मुझे भाग निकलना चाहिए। अतः सब डिब्बों में जाकर उसने गार्ड, ड्राइवर आदि जो भी कोई मिला, सबको मार डाला।

इस स्वप्न से उसे एक दोस्त द्वारा सुनाई गई कहानी याद आई। किसी इटालियन रेलवे लाइन पर एक छोटे डिब्बे में एक पागल आदमी को ले जाया जा रहा था, पर गलती से एक मुसाफिर को उस डिब्बे में आ जाने दिया गया। पागल आदमी ने दूसरे यात्री की हत्या कर दी। इस प्रकार स्वप्नद्रष्टा ने अपने-आपको वह पागल आदमी बना लिया। इसका कारण यह था कि उसे कभी-कभी इस मनोग्रस्तता से परेशानी होती थी कि मुझे 'उन सबके साथ, जिन्हें मेरी बातों का ज्ञान है,' खत्म करना चाहिए। इसके बाद उसने स्वयं स्वप्न का अधिक अच्छा प्रयोजन तलाश किया. पिछले दिन उसने थियेटर में एक लड़की को देखा था, जिससे वह विवाह करना चाहता था, पर उसने [illegible]

ने उसके लिए ईर्ष्या का कारण पैदा किया। ईर्ष्या उसमें कितने तीव्र रूप में हो सकती थी, यह जानने पर भी वह उससे शादी करने की इच्छा रखता तो सचमुच पागल हो जाता। कहने का मतलब यह है कि वह उसे इतना अविश्वसनीय समझता था कि अपनी ईर्ष्या के कारण वह अपने रास्ते में रोड़ा डालने वाले हर किसीकी हत्या कर देता। कई कमरों में से, या यहां की तरह डिब्बों में से, गुजरना, जैसाकि हम पहले देख चुके हैं, विवाह का प्रतीक है। (विरोधी बातों के नियम के अनुसार यह एकपत्नीत्व को प्रकट करता है।)

खुली जगह में गाड़ी के रुकने और दुर्घटना के भय के बारे में उसने यह किस्सा सुनाया :

एक बार स्टेशन से बाहर रेलवे लाइन पर इस तरह एकाएक गाड़ी रुकने पर डिब्बे में बैठी हुई एक नवयुवती ने कहा था कि शायद गाड़ियों में टक्कर होने वाली है, और सबसे अच्छा यह होगा कि टांगें ऊंची उठा ली जाएं। 'टांगें उठाना' पदावली के साथ उसके देहात में बहुत बार की गई यात्राओं के साहचर्य थे, जिनमें वह ऊपर बताई गई लड़की के साथ अपने प्रेम के आरम्भिक सुखमय दिनों में गया था। यह इस बात के लिए, कि यदि वह उससे अब विवाह करे तो पागल हो जाएगा, एक और युक्ति है। तो भी स्थिति को देखकर मेरा यह निश्चित विचार बना कि उसमें तब भी पागलपन का शिकार होने की इच्छा थी।

स्वप्नों में अतिप्राचीन और शैशवीय विशेषताएं

अब हम अपने इस निष्कर्ष से फिर नये सिरे से आगे बढ़ते हैं कि सेंसरशिप के काट-छांट के प्रभाव से स्वप्नतंत्र गुप्त स्वप्न-विचारों को दूसरे रूप में बदल दे है। ये विचार उसी तरह के होते हैं जैसे जाग्रत् जीवन के सुपरिचित चेतन विचार वे जिस नये रूप में प्रकट होते हैं, वह अपनी बहुत-सी विशेषताओं के कारण ह समझ में नहीं आता। हम कह चुके हैं कि इसका विकास हमारे बौद्धिक परिवर्ध की उन अवस्थाओं से है जिनसे हम बहुत आगे बढ़ आए हैं, अर्थात् चित्रलिपियों प्रतीकात्मक सम्बन्धों, और संभवतः उन अवस्थाओं से है जो विचार की भाषा विकास होने से पहले मौजूद थीं। इस कारण हमने स्वप्नतंत्र द्वारा प्रयुक्त अभि व्यक्ति के प्रकार को अतिप्राचीन या प्रतिगामी कहा था।

इससे आप यह नतीजा निकाल सकते हैं कि स्वप्नतंत्र का अधिक गहरा अध्य यन करके हमारे बौद्धिक परिवर्धन की आरम्भिक अवस्थाओं के बारे में, जिनका इस समय कुछ भी पता नहीं है, मूल्यवान निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। मुझे आशा है कि यही होगा, पर इसका यत्न नहीं किया गया है। स्वप्नतंत्र हमें जिस युग में पहुंचाता है, वह दो दृष्टियों से 'आदिम' है: प्रथम तो इसका अर्थ है व्यष्टि अर्थात् मनुष्य के आरम्भिक दिन, अर्थात् उसका बचपन; और दूसरे, जहां तक यह बात है कि प्रत्येक व्यष्टि बचपन में, कुछ संक्षिप्त रूप में, मानव-मूलवंश के परिवर्धन के सारे क्रम को दोहराता है, वहां यह निर्देश जातिचरित या वंशवृत्त' का निर्देश है। मैं इस बात को असंभव नहीं मानता कि हम गुप्त मानसिक प्रक्रमों के उस भाग में जो व्यष्टि के आरम्भिक दिनों से सम्बन्ध रखता है, और उस भाग में, जिसकी जड़ मूलवंश के बाल्यकाल में है, भेद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मुझे ऐसा लगता है कि प्रतीकात्मकता को, जो अभिव्यक्ति की ऐसी रीति है जोकि कभी भी व्यष्टि द्वारा नहीं सीखी गई, मूलवंश की देन माना जाना चाहिए।

परन्तु स्वप्नों की एक यही अतिप्राचीन या पुरानी विशेषता नहीं होती। आप सब अनुभव से यह जानते हैं कि हम सबमें बचपन का स्मृतिनाश[1] (एमनेशिया) होता है। मेरा मतलब यह है कि जीवन के आरम्भिक, अर्थात् पांच, छः या आठ वर्ष की आयु के दिनों के हमारी स्मृति में वैसे अवशेष नहीं रहते जैसे बाद के अनुभवों के। यह ठीक है कि हमें ऐसे लोग भी मिलते हैं जो बचपन से आज तक लगातार स्मृति का दावा कर सकते हैं, पर उनकी तुलना में इसके विपरीत बहुत आदमी हैं, जिनकी स्मृति में बहुत-से खाली स्थान हैं। मेरी राय में इसपर काफी आश्चर्य नहीं पैदा हुआ। दो वर्ष की आयु का बच्चा अच्छी तरह बोल सकता है, और शीघ्र ही यह सिद्ध कर देता है कि वह अपने-आपको उलझनदार मानसिक स्थितियों के अनुकूल बना सकता है, और इसके अलावा ऐसी बातें कहता है जो वर्षों बाद उसके सामने पेश किए जाने पर वह स्वयं भूल गया होता है और फिर भी आरम्भिक वर्षों में स्मृति अधिक दक्ष होनी है क्योंकि उस समय इसपर उतना बोझा नहीं होता जितना बाद में हो जाता है। दूसरे, यह समझने का कोई कारण नहीं है कि स्मृति का कार्य मानसिक व्यापार का कोई विशेष रूप से ऊंचा या कठिन रूप हो। इसके विपरीत, उन लोगों में भी बहुत अच्छी स्मृति-शक्ति हो सकती है जो बुद्धि की दृष्टि से बहुत नीचे धरातल पर हैं।

पर मैं पहली विशेषता के आधार पर आश्रित एक दूसरी विशेषता की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूं, और वह यह है कि बचपन के आरम्भिक वर्षों की विस्मृति में कुछ स्पष्ट रूप से रखी हुई स्मृतियां निकल आती हैं, जो अधिकतर सुघट्य प्रतिबिम्बों के रूप में होती हैं, जिनके बने रहने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं मालूम होता। बाद के जीवन में जो अनेक संस्कार पड़ते हैं, उनपर स्मृति वरण, अर्थात् छंटाई के प्रक्रम से कार्य करती है—महत्त्वपूर्ण को रख लेती है और महत्त्वहीन को छोड़ देती है, पर बचपन से याद बातों के बारे में यह स्थिति नहीं है। आवश्यक नहीं है कि वे बातें बचपन के महत्त्वपूर्ण अनुभवों को सूचित करती हों, यहां तक कि बहुत बार वे ऐसी चीजें भी नहीं होतीं जो बच्चे के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण मालूम हुई हों, बल्कि प्रायः अपने-आपमें इतनी तुच्छ और अर्थहीन होती हैं कि हम अपने-आपसे आश्चर्य के साथ यही पूछ सकते हैं कि यह विशेष घटना भूली क्यों नहीं! मैंने विश्लेषण की मदद से बचपन के स्मृति-नाश की और उसमें से दीखने वाले स्मृति-खण्डों की समस्या हल करने की कोशिश की है, और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि चाहे उसके विपरीत कोई भी प्रमाण मिले, पर असलियत यह है कि बड़ों की तरह बच्चा भी महत्त्व की बातें ही स्मृति में कायम रखता है; पर जो चीज महत्त्वपूर्ण है वह (संघनन के, और विशेष रूप से, विस्थापन के, जिन

१. Amnesia

स्वप्नों में अतिप्राचीन और शैशवीय विशेषताएं

अब हम अपने इस निष्कर्ष से फिर नये सिरे से आगे बढते हैं कि सेंसरशिप या काट-छाट के प्रभाव से स्वप्नतन्त्र गुप्त स्वप्न-विचारों को दूसरे रूप में बदल देता है। ये विचार उसी तरह के होते हैं जैसे जाग्रत् जीवन के सुपरिचित चेतन विचार। वे जिस नये रूप मे प्रकट होते हैं, वह अपनी बहुत-सी विशेषताओं के कारण हमें समझ मे नही आता। हम कह चुके हैं कि इसका विकास हमारे बौद्धिक परिवर्धन की उन अवस्थाओ से है जिनसे हम बहुत आगे बढ आए हैं, अर्थात् चित्रलिपियों, प्रतीकात्मक सम्बन्धों, और सम्भवतः उन अवस्थाओं से है जो विचार की भाषा का विकास होने से पहले मौजूद थीं। इस कारण हमने स्वप्नतन्त्र द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्ति के प्रकार को अतिप्राचीन या प्रतिगामी कहा था।

इससे आप यह नतीजा निकाल सकते हैं कि स्वप्नतन्त्र का अधिक गहरा अध्ययन करके हमारे बौद्धिक परिवर्धन की आरम्भिक अवस्थाओं के बारे मे, जिनका इस समय कुछ भी पता नहीं है, मूल्यवान निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। मुझे आशा है कि यही होगा, पर इसका यत्न नही किया गया है। स्वप्नतन्त्र हमें जिस युग में पहुंचाता है, वह दो दृष्टियों से 'आदिम' है : प्रथम तो इसका अर्थ है व्यष्टि अर्थात् मनुष्य के आरम्भिक दिन, अर्थात् उसका बचपन; और दूसरे, जहां तक यह बात है कि प्रत्येक व्यष्टि बचपन मे, कुछ संक्षिप्त रूप में, मानव-मूलवंश के परिवर्धन के सारे क्रम को दोहराता है, यहां यह निर्देश जातिचरित या वंशवृत्त' का निर्देश है। मैं इस बात को असंभव नहीं मानता कि हम गुप्त मानसिक प्रक्रमों के उस भाग में जो व्यष्टि के आरम्भिक दिनों से सम्बन्ध रखता है, और उस भाग मे, जिसकी जड़ मूलवंश के बाल्यकाल में है, भेद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मुझे ऐसा लगता है कि प्रतीकात्मकता को, जो अभिव्यक्ति की ऐसी रीति है जो कि कभी भी व्यष्टि द्वारा नहीं सीखी गई, मूलवंश की देन माना जाना चाहिए।

परन्तु स्वप्नों की एक यही अतिप्राचीन या पुरानी विशेषता नहीं होती। आप सब अनुभव से यह जानते हैं कि हम सबमें बचपन का स्मृतिनाश[1] (एमनेशिया) होता है। मेरा मतलब यह है कि जीवन के आरम्भिक, अर्थात् पाच, छ या आठ वर्ष की आयु के दिनों के हमारी स्मृति में वैसे अवशेष नही रहते जैसे बाद के अनुभवों के। यह ठीक है कि हमें ऐसे लोग भी मिलते हैं जो बचपन से आज तक लगातार स्मृति का दावा कर सकते हैं, पर उनकी तुलना में इसके विपरीत बहुत आदमी हैं, जिनकी स्मृति में बहुत-से खाली स्थान हैं। मेरी राय में इसपर काफी आश्चर्य नहीं पैदा हुआ। दो वर्ष की आयु का बच्चा अच्छी तरह बोल सकता है, और शीघ्र ही यह सिद्ध कर देता है कि वह अपने-आपको उलझनदार मानसिक स्थितियों के अनुकूल बना सकता है, और इसके अलावा ऐसी बातें कहता है जो वर्षों बाद उसके सामने पेश किए जाने पर वह स्वयं भूल गया होता है और फिर भी आरम्भिक वर्षों में स्मृति अधिक दक्ष होती है क्योंकि उस समय इसपर उतना बोझा नहीं होता जितना बाद में हो जाता है। दूसरे, यह समझने का कोई कारण नहीं है कि स्मृति का कार्य मानसिक व्यापार का कोई विशेष रूप से ऊंचा या कठिन रूप हो। इसके विपरीत, उन लोगों में भी बहुत अच्छी स्मृति-शक्ति हो सकती है जो बुद्धि की दृष्टि से बहुत नीचे धरातल पर हैं।

पर मैं पहली विशेषता के आधार पर आश्रित एक दूसरी विशेषता की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हू, और वह यह है कि बचपन के आरम्भिक वर्षों की विस्मृति में कुछ स्पष्ट रूप से रखी हुई स्मृतिया निकल आती हैं, जो अधिकतर सुघट्य प्रतिबिम्बों के रूप में होती हैं, जिनके बने रहने के लिए कोई पर्याप्त कारण नही मालूम होता। बाद के जीवन में जो अनेक सस्कार पड़ते हैं, उनपर स्मृति वरण, अर्थात् छटाई के प्रक्रम से कार्य करती है—महत्त्वपूर्ण को रख लेती है और महत्त्वहीन को छोड देती है, पर बचपन से याद बातों के बारे में यह स्थिति नहीं है। आवश्यक नही है कि वे बातें बचपन के महत्त्वपूर्ण अनुभवों को सूचित करती हों, यहा तक कि बहुत बार वे ऐसी चीजें भी नहीं होतीं जो बच्चे के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण मालूम हुई हों, बल्कि प्राय. अपने-आपमें इतनी तुच्छ और अर्थहीन होती हैं कि हम अपने-आपसे आश्चर्य के साथ यही पूछ सकते हैं कि यह विशेष घटना भूली क्यों नहीं! मैंने विश्लेषण की मदद से बचपन के स्मृति-नाश की ओर उसमें से दीखने वाले स्मृति-खंडों की समस्या हल करने की कोशिश की है, और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि चाहे उसके विपरीत कोई भी प्रमाण मिले, पर असलियत यह है कि बड़ों की तरह बच्चा भी महत्त्व की बातें ही स्मृति मे कायम रखता है; पर जो चीज महत्त्वपूर्ण है वह (सघनन के, और विशेष रूप से, विस्थापन के, जिन

[1]. Amnesia

कोई सकोच नहीं होना चाहिए कि जिस इच्छा का वह खडन करता है, उसका मूल या उद्गम कहा है । ये दूषित आवेग अतीतकाल मे और प्राय. निकट अतीत-काल की घटनाओं में मौजूद होते हैं। यह भी उसमे प्रत्यक्ष कराया जा सकता है कि कभी वह उन्हें जानता था और उनके बारे में सचेत था, चाहे अब यह बात न हो। एक स्त्री को, जिसे इस अर्थ वाला स्वप्न आया कि वह अपनी एकमात्र पुत्री (जो तब १७ वर्ष की थी)को मरा हुआ देखना चाहती थी, हमारी सहायता से यह पता चला कि एक समय उसके मन मे सचमुच ही यह मृत्यु की इच्छा रही थी। यह बच्ची एक दु खद विवाह की सतान थी, जिसमे पति-पत्नी शीघ्र ही अलग हो गए थे । एक बार, जब यह बच्ची नही पैदा हुई थी, माता ने अपने पति के साथ जोर का झगड़ा होने के बाद क्रोध के आवेग मे अपने गर्भ के बच्चे को मारने के लिए अपने शरीर को मुक्को से पीटा था । कितनी ही माताओं ने, जो आज अनेक बच्चों को बहुत प्यार करती हैं, बड़ी अनिच्छा से उन्हें गर्भ मे धारण किया था, और यह चाहा था कि उनके भीतर मौजूद जीव और आगे न बढ़े, और अपनी इस इच्छा को अनेक क्रियाओं मे भी परिणत किया था, जो खुशकिस्मती से हानिरहित प्रकार की थी । इस प्रकार, प्रिय व्यक्तियो के विरुद्ध बाद मे होने वाली मृत्यु की इच्छा, जो एक पहेली मालूम होती है, उनसे सम्बन्धित होने के प्रारम्भिक दिनो से जुड़ी होती है ।

एक पिता को, जिसका स्वप्न यह सूचित करता है कि वह अपनी सबसे बड़ी और प्रिय सतान की मृत्यु चाहता था, इसी तरह यह याद करना पड़ता है कि एक समय था, जब वह अपनी इस इच्छा से अपरिचित नहीं था । वह पुरुष, जिसका विवाह निराशाजनक सिद्ध हुआ था, प्राय: सोचता था—उस समय यह बालक अभी शिशु ही था—कि यदि वह छोटा-सा प्राणी, जो उसके लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखता था, मर जाए तो वह फिर आज़ाद हो जाएगा, और अपनी आज़ादी का अधिक अच्छा उपयोग कर सकेगा। घृणा के बहुत सारे इसी तरह के आवेगों का मूल इसी तरह का होता है। वे अतीत काल की किसी वस्तु की, जो कभी चेतना में थी और मानसिक जीवन में अपना स्थान रखती थी, स्मृतियां हैं । इससे आप यह निष्कर्ष निकालना चाहेंगे कि इस तरह के स्वप्न और इस तरह की इच्छाएं उन मामलों में नहीं होंगी जिनमें दो व्यक्तियों के सम्बन्धों मे इस तरह के कोई परिवर्तन नहीं हुए । मैं आपको यह निष्कर्ष निकालने की अनुमति देने को तैयार हूं, पर यह चेतावनी दे देना चाहता हूं कि आपको स्वप्न के शाब्दिक अर्थ पर विचार नहीं करना है, बल्कि निर्वचन से प्रकट होने वाले तात्पर्य पर विचार करना है। हो सकता है कि किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु का व्यक्त स्वप्न इसे भयकर नकाब के रूप में काम ला रहा हो, और असल मे उसका अर्थ बिलकुल दूसरा ही हो, या

सम्भव है कि प्रिय व्यक्ति किसी और का मिथ्या या मायात्मक[१] स्थानापन्न हो।

परन्तु इस स्थिति से आपके मन में एक और गम्भीर सवाल पैदा होगा। आप कहेंगे, 'यद्यपि मृत्यु की यह इच्छा किसी समय सचमुच थी, और स्मृति से इसकी पुष्टि होती है, पर यह कोई सच्ची व्याख्या नहीं है; क्योंकि अब इस इच्छा को हुए बहुत समय हो चुका है, और इस समय यह निश्चित रूप से अचेतन में एक स्मृति के रूप में ही रह सकती है, जिसका भावात्मक मूल्य कुछ भी नहीं है, और एक शक्तिशाली उत्तेजक कारक के रूप में नहीं रह सकती। इस पिछली कल्पना के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। 'स्वप्न में कोई इच्छा याद ही क्यों आती है?' यह प्रश्न पूछना सचमुच आपके लिए उचित है। इसका उत्तर देने की कोशिश करते हुए हम बहुत दूर पहुंच जाएंगे और हमें स्वप्न-सिद्धांत के बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न के बारे में अपनी स्थिति प्रकट करनी होगी पर मुझे अपने विवेचन की सीमाओं में रहना है इस प्रश्न पर अभी विचार करने का प्रलोभन छोड़ना होगा। इसलिए फिलह आप इसे यहीं छोड़ने को तैयार हो जाएं। हमें इस वास्तविक प्रमाण से ही स कर लेना चाहिए कि बहुत समय से दबी हुई इस इच्छा के कारण ही स्वप्न का होना सिद्ध किया जा सकता है, और हमें इस प्रश्न की जांच जारी रखनी चा कि क्या अन्य दूषित इच्छाओं का मूल भी इसी तरह पीछे की घटनाओं तलाश किया जा सकता है।

हम मृत्यु-इच्छाओं पर ही विचार करते हैं जो अधिकतर हमें स्वप्नद्र के सीमाहीन अहंकार से ही उत्पन्न दिखाई देंगी। इस तरह की इच्छाएं बहुत ब स्वप्नों का आधारभूत कारण दिखाई देती हैं। जब कभी कोई जीवन में हमा मार्ग में आता है—और हमारे पारस्परिक सम्बन्ध इतने उलझे हुए होने पर ऐस कितनी ही बार होता है!—तब उस व्यक्ति को दूर करने के लिए तुरत ए स्वप्न तैयार हो जाता है, चाहे वह पिता हो, माता हो, भाई हो, बहिन हो, प हो या पत्नी हो। हमें यह बात आश्चर्यजनक लगी थी कि यह दुष्टता मनुष्य-मात्र में जन्मजात होती है, और बिना और प्रमाण के हम निश्चित रूप से यह मानने को तैयार नहीं कि हमारे स्वप्नों के निर्वचनों का यह प्रमाण सही है। पर जब एक बार हमने यह देख लिया कि इस तरह की इच्छाओं का मूल अतीत में खोजना चाहिए, तब हमें उस मनुष्य के अतीत में ऐसा समय ढूंढने में कुछ कठिनाई नहीं हुई थी, जिसमें ऐसे अहंकार और ऐसी इच्छाओं का होना कोई अजीब बात नहीं, चाहे वह इच्छा अपने इष्ट मित्रों के और प्रियजनों के विरुद्ध ही हो। अपने प्रारम्भिक वर्षों में (जो बाद में विस्मृति के पर्दे में छिप जाते हैं) बच्चा वही व्यक्ति है, जो ऐसे अहंकार को बड़े साफ रूप में बहुत बार प्रदर्शित करता है। इस तरह की सुनिश्चित प्रवृत्तियां, या ठीक-ठीक कहें तो उनके बचे हुए अवशेष, उसमें सदा स्पष्ट

१. Illusory

रूप मे दिखाई देते हैं; कारण यह कि बालक पहले अपने से प्यार करता है, और बाद मे दूसरों को प्यार करना और अपने कुछ अहंकार को दूसरों पर कुर्बान करना सीखता है। जिन लोगों से वह शुरू से प्रेम करता मालूम होता है, उनमे भी वह इसीलिए प्रेम करता है क्योंकि उसे उनकी आवश्यकता है, और उनके बिना उसका काम नहीं चल सकता—अर्थात् यहा भी उसका प्रेरक भाव अहकार ही होता है। बाद मे जाकर ही प्रेम का आवेग अहकार से अलग होता है; यह अक्षरश. सत्य है कि बच्चा अपने अहंकार के जरिये ही प्रेम करना सीखता है।

इस सिलसिले मे बच्चे का अपने भाइयो और बहनो के प्रति जो रुख होता है और अपने माता-पिता के प्रति जो रुख होता है, उन दोनों की तुलना करना शिक्षाप्रद होगा। आवश्यक नहीं कि छोटा बालक अपने भाइयो और बहनो को प्यार करता हो, और प्रायः वह यह बात साफ कह देता है। इसमे कोई सदेह नहीं कि वह उन्हें अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता है, और उनसे नफरत करता है, और सब लोग जानते हैं कि यह रुख आम तौर से लगातार वर्षों, अर्थात् बच्चे के बड़े हो जाने पर भी, बना रहता है। यह ठीक है कि प्राय: इसके स्थान पर एक अधिक कोमल भावना आ जाती है, या शायद यह कहना चाहिए कि कोमल भावना उस पहले वाली भावना के ऊपर आ जाती है, पर आम तौर से विरोधी भावना अधिक पहले की मालूम होती है। यह बात ढाई से चार साल तक के बच्चो मे उस समय बहुत आसानी से देखी जा सकती है, जब कोई नया शिशु पदार्पण करता है। साधारणतया उसका बड़ी अनिच्छा से स्वागत किया जाता है, 'मुझे यह पसन्द नहीं; चिड़िया इसे फिर से जाएगी,' इस तरह की बातें आम तौर से कही जाती हैं। बाद में नये शिशु के आने पर मौके-बेमौके नापसन्दगी प्रकट की जाती है। उसे चोट पहुंचाने और उसपर सचमुच आक्रमण करने की कोशिशें भी की जाती हैं। यदि आयु मे अन्तर कम है तो जब तक बच्चे का मानसिक व्यापार अधिक अच्छी तरह परिवर्धित होता है, उसे पहले ही प्रतिद्वन्द्वी मौजूद मिलता है, और वह अपने-आपका स्थिति के अनुकूल बना लेता है। दूसरी ओर यदि आयु में अन्तर अधिक है तो नये शिशु को देखकर पहले बच्चे मे कुछ प्रेमपूर्ण भावनाएं पैदा हो सकती हैं। वह उस शिशु को दिलचस्प चीज और एक तरह की जीवित गुड़िया समझता है, और जब आठ वर्ष या अधिक का अन्तर होता है, और विशेष रूप से यदि बड़ा बच्चा लड़की है, तो रक्षण करने का मातृत्वपूर्ण आवेग तुरन्त प्रवृत्त हो जाता है, पर सच-सच कहा जाए तो जब हम किसी स्वप्न मे किसी भाई या बहन की मृत्यु-इच्छा छिपी हुई देखते हैं, तब हमें कभी भी उलझन पैदा नहीं होती, क्योंकि, बिना बहुत परेशानी के, इसका मूल बचपन मे या बहुत बार बाद के वर्षों में, जबकि वे इकट्ठे रहते थे, मिल जाता है।

शायद कोई बाल-गृह (नर्सरी) ऐसा नहीं होगा, जिसमे माता-पिता का प्रेम

प्राप्त करने के लिए होड़ न होती हो, उन सबकी सांझी सम्पत्ति के लिए मुकाबला न होता हो, और जिस कमरे में वे रहते हैं, उसमें जगह घेरने के लिए एक-दूसरे से बढ़ने की कोशिश न होती हो, और इन्हींके परिणामस्वरूप मार-पीट के झगड़े न होते हो। यह विरोध-भाव छोटे भाइयों और बहनों की तरह बड़ों से भी होता है। मेरा ख्याल है कि बर्नार्ड शॉ ने ही यह लिखा है, 'अंग्रेज युवती अपनी माता के बाद दूसरे नम्बर पर जिससे घृणा करती है वह उसकी बड़ी बहन है।' इस कथन में कुछ ऐसी बात है जो हमारे कानों को खटकती है। हमारे लिए बहनों और भाइयों की आपसी घृणा और मुकाबलेबाजी को समझना बड़ा ही कठिन है, पर घृणा की भावनाएं माता और पुत्री के तथा जनकों और सन्तानों के सम्बन्ध के बीच में कैसे घुस सकती हैं?

यह सम्बन्ध बच्चों के दृष्टिकोण से भी निःसन्देह अधिक अनुकूल है, और इसीकी हम आशा भी करते हैं। भाइयों और बहनों में प्रेम न होने की अपेक्षा जनकों और सन्तानों में प्रेम न होना कहीं अधिक बुरा मालूम होता है। यह कहा जा सकता है कि दूसरे प्रकार के प्रेम को हमने पवित्र मान लिया है जबकि पहले प्रकार के प्रेम को अपवित्र हो जाने दिया है। तो भी, रोज के तजुर्बे से हमें यह पता चल सकता है कि जनकों और बड़ी उम्र के बालकों में एक-दूसरे के प्रति जो भावनाएं होती हैं, वे बहुधा समाज द्वारा स्थापित आदर्श से नीचे होती हैं और कितनी ही विरोध-भावना अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, और यदि पितृभक्ति या मातृभक्ति या अन्य कोमल भावनाओं के विचार से उन्हें न दबाया जाए तो वे किसी समय ज्वाला के रूप में फूट निकलें। इस विरोध के प्रेरक कारण सुविदित हैं, और एक ही लिंग के व्यक्तियों में परस्पर विरोध होने की, अर्थात् पुत्री का माता से, और पिता का पुत्र से विरोध होने की प्रवृत्ति हम देखते हैं। पुत्री को उसकी माता ऐसे हाकिम के रूप में दिखाई देती है जो उसकी इच्छाओं पर रुकावटें लगाती है, और जिसका काम यही है कि वह अपनी पुत्री से यौन आजादी का उतना त्याग कराए जितना समाज चाहता है। कुछ अवस्थाओं में माता भी प्रतिद्वन्द्वी होती है, जो उपेक्षित नहीं होना चाहती। यही बात पिता और पुत्र के बीच और भी उग्ररूप में होती है। पुत्र के लिए पिता उन सामाजिक बन्धनों का मूर्तरूप है जिन्हें वह बड़ी अनिच्छा से स्वीकार करता है। उसके लिए पिता ही वह व्यक्ति है जो बालकपन के यौन आनन्दों की और जब पारिवारिक सम्पत्ति हो तब उसका सुख भोगने की उसकी इच्छा पूरी करने के मार्ग में रुकावट बनता है। जब राजसिंहासन का प्रश्न हो, तब यह अधीरता दुःखदायी तीव्रता तक जा पहुंचती है। पिता और पुत्री या माता और पुत्र का सम्बन्ध कम विनाशकारी मालूम होता है। माता और पुत्र का सम्बन्ध अपरिवर्तित कोमलता का सबसे शुद्ध उदाहरण है, जिसमें अहंकार की किसी भावना से फर्क नहीं पड़ता।

आप पूछेंगे कि मैं ऐसी तुच्छ और हर किसीको ज्ञात बातों की चर्चा क्यों कर रहा हूं। इसका कारण यह है कि लोगों के मन में यह असन्दिग्ध प्रवृत्ति मौजूद है कि वे वास्तविक जीवन में इन बातों के तात्पर्य का निषेध करते हैं और सामाजिक आदर्श जितना वास्तव में पूरा होता है, उससे अधिक पूरा होने की बात जाहिर करते हैं, पर अधिक अच्छा यह है कि मनोविज्ञान ही सचाई बताए और यह कार्य विश्वनिन्दक या 'सिनिक' लोगों के लिए न छोड़ दे। यह सच है कि यह सामान्य निषेध सिर्फ वास्तविक जीवन के बारे में किया जाता है, क्योंकि नाटक-उपन्यास में ऊपर बताए गए प्रेरक भावों का प्रयोग करने की आजादी है, जिससे इन आदर्शों को भारी चोट पहुंचती है।

इसलिए यदि अधिकतर लोगों के स्वप्नों से यह प्रकट होता है कि वे अपने जनकों की, विशेषरूप से उस जनक की, जो स्वप्नद्रष्टा के समान लिंग वाला है, मृत्यु चाहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। हम यह मान सकते हैं कि यह इच्छा जाग्रत् जीवन में भी, कभी-कभी चेतना में भी रहती है, यदि वह किसी और प्रेरक भाव के पीछे अपने को छिपा सके, जैसेकि हमारे तीसरे उदाहरण से स्वप्न-द्रष्टा ने अपने पिता के बेकार कष्ट-सहन पर दया के द्वारा अपने वास्तविक विचार को छिपा दिया। *ऐसा बहुत कम होता है कि विरोध-भाव अकेला ही बना रहे*—अधिकतर यह कोमल भावनाओं के सामने झुक जाता है, और वे अन्त में इसे अवरुद्ध कर देती हैं, अर्थात् दबा देती हैं, और यह पड़ा रहता है, और अन्त में स्वप्न मानो इसे अकेले रूप में प्रदर्शित करता है। जिस चीज को स्वप्न इस अकेलेपन द्वारा बहुत बढ़ाए गए रूप में दिखाता है, वह तब अपना असली आकार ग्रहण कर लेती है, जब हमारा निर्वचन स्वप्नद्रष्टा के शेष जीवन की दृष्टि से इसे इसका उचित स्थान दे दे (एच० सैक्स)। पर यह मृत्यु की इच्छा हमें वहां भी दिखाई देती है जहां वास्तविक जीवन में इसका कोई आधार नहीं होता, और जहां वही उम्र वाले युवक को कभी भी यह स्वीकार नहीं करना पड़ेगा कि उसने जाग्रत् जीवन में इसे अपनाया था। इसका कारण यह है कि विरोध का, विशेष रूप से एक ही लिंग वाले जनक और सन्तान में आपसी विरोध का, सबसे गहरा और सबसे आम प्रेरक कारण बालकपन के आरम्भिक वर्षों में क्रियाशील हुआ था।

मेरा संकेत अनुराग-भावनाओं की उस प्रतिद्वन्द्विता की ओर है जिसमें लिंग-सम्बन्धी तत्त्वों पर स्पष्टतः बल होता है। पुत्र जब बहुत छोटा है, तभी उसमें अपनी माता के प्रति एक विशेष ममता पैदा होने लगती है—वह अपनी माता को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है और पिता को ऐसे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है जो उस अकेले की इस सम्पत्ति, उसके इस एकाकी स्वामित्व, का विरोधी है। इसी प्रकार, छोटी लड़की अपनी माता को ऐसे व्यक्ति के रूप में देखती है जो उसके पिता के साथ उसके अनुराग के सम्बन्ध में बाधा डालती है, और ऐसा स्थान घेरे

हुए है जिनकी, वह अनुभव करती है कि, मैं स्वयं अच्छी तरह पूरी कर सकती। प्रसंग में पता चलता है कि इन भावनाओं का अस्तित्व कितना प्राचीन है। इन भावनाओं को हम ईडिपस ग्रन्थि[1] कहते हैं, क्योंकि ईडिपस की कहानी में पुत्र की स्थिति से पैदा होने वाली इच्छाओं के दो चरम रूप—पिता को मार डालने और माता से विवाह करने की इच्छा—सिर्फ थोड़े-से परिवर्तित रूप में पूरे हो जाते हैं। मैं इस बात पर बल नहीं देता कि जनकों और सन्तानों में जितने सम्बन्ध हो सकते हैं, वे सब ईडिपस ग्रंथि के अन्तर्गत ही आते हैं। वे सम्बन्ध और भी अधिक उलझन-भरे हो सकते हैं। फिर यह ग्रंथि कम या अधिक परिवर्धित हो सकती है, या यह परवर्तित हो सकती है, पर यह बालक के मानसिक जीवन में एक नियमित और बहुत महत्त्वपूर्ण कारक है। इसके प्रभाव और इससे पैदा होने वाली घटनाओं का महत्त्व जितना अधिक समझा जाए, उतना ही थोड़ा है। इसके अलावा जनक बहुत बार स्वयं बच्चों को ईडिपस ग्रंथि से प्रतिक्रिया करने के लिए उत्तेजित करते हैं, क्योंकि वे अपने बच्चों के लिंग-भेद के अनुसार प्रायः उन्हें पसन्द या नापसन्द करते हैं, अर्थात् पिता पुत्री को, और माता पुत्र को पसन्द करती है, या जहां पति-पत्नी का प्रेम शिथिल हो गया है, वहां सन्तान को प्रेम के उस बालक का स्थानापन्न बना लिया जाता है, जिसका आकर्षण खत्म हो गया है।

यह नहीं कहा जा सकता कि ईडिपस ग्रंथि की खोज के लिए संसार ने मनोविश्लेषण सम्बन्धी गवेषणा के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट की है। इसके विपरीत, इस विचार से बड़ी उम्र के लोगों में बड़ा उग्र विरोध पैदा हुआ है और जिन्होंने सब जगह निषिद्ध और घृणित माने जाने वाले भावों के अस्तित्व का खंडन करने में अपनी आवाज नहीं उठाई, उन्होंने बाद में ऐसे अप्रासंगिक निर्वचन पेश करके उसकी कमी पूरी कर दी जिनसे ईडिपस ग्रन्थि का महत्त्व खत्म हो जाए। मेरा अपना यह अटल विश्वास है कि इसमें न तो कोई खंडन करने योग्य बात है और न प्रसन्न होने की बात है—हमें उन तथ्यों से अपने मन की संगति बैठा लेनी चाहिए जिनमें यूनानी पौराणिक कथा में अटल नियति का हाथ दिखलाई देता था। फिर यह कितनी मनोरंजक बात है कि ईडिपस ग्रन्थि, जिसको वास्तविक जीवन से दूर कर दिया गया है, और उपन्यासों में पहुंचा दिया गया है, उनमें अपने पूर्ण रूप में परिवर्धित हो गई है। प्रो० रैंक ने इस आधार पर सावधानी से अध्ययन करके यह दिखलाया है कि किसी तरह इसी ग्रन्थि से नाटकीय काव्य को असंख्य रूपों, रूप-भेदों और छिपे हुए रूपों में, संक्षेप में कहा जाए तो उसी तरह विपर्यस्त होकर जिस तरह स्वप्न-सेंसरशिप के कार्य में हम देख आए हैं, बड़ी मात्रा में प्रेरक भाव प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार हम उन स्वप्नद्रष्टाओं में ईडिपस ग्रन्थि तलाश कर सकते हैं जो सौभाग्यवश बाद के जीवन में अपने माता-पिता के साथ संघर्ष से बचे रहे हैं,

1. Oedipus complex

और इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली वह ग्रन्थि दिखाई देती है जिसे बधियाकरण ग्रन्थि (कैस्ट्रेशन कम्प्लेक्स) कहते हैं; अर्थात् मैथुन सम्बन्धी मामलों के क्षेत्र में डराए जाने की प्रतिक्रिया या शुरू की शैशवीय यौन चेष्टा की उस रुकावट की प्रतिक्रिया, जो पिता द्वारा लगाई गई, कही जाती है।

अब तक हमने जो बातें निश्चित रूप से जान ली हैं, उनमें बालक के मानसिक जीवन का अध्ययन करने में हमें मदद मिली है और अब हम इसी तरह स्वप्नों में दिखाई देनेवाली दूसरे प्रकार की प्रतिषिद्ध इच्छाओं, अर्थात् बहुत अधिक कामुक इच्छाओं के उद्भव की व्याख्या प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। इसलिए हमें बालक के यौन जीवन के परिवर्धन का अध्ययन करना पड़ता है, और इसमें हमें विभिन्न स्थानों से इन तथ्यों की जानकारी मिलती है। प्रथम तो, यह सब निराधार कल्पना है कि बालक का यौन जीवन नहीं होता और उसमें यौन भावना सबसे पहले तरुणावस्था में दिखाई देती है, जब उसकी जननेन्द्रियां परिपक्व अवस्था में आ जाती हैं। इसके विपरीत, उसका शुरू से एक यौन जीवन होता है जो वस्तु की दृष्टि से समृद्ध होता है, यद्यपि यह अनेक बातों में उस यौन जीवन से भिन्न होता है जो बाद में प्रकृत[1] या सामान्य माना जाता है। वयस्क जीवन में जिन्हें (काम) विकृतियां[2] कहते हैं, उनमें, और प्रकृत या सामान्य यौन जीवन में इन दृष्टियों से अन्तर होता है: (१) (काम) विकृति में स्पीशीज़ के भेद (अर्थात् मनुष्य और पशु के बीच के अन्तर) को भुला दिया जाता है, (२) इसमें विरक्ति द्वारा लगाई गई रुकावटों को महसूस नहीं किया जाता, (३) निषिद्ध सम्भोग की रुकावट (नज़दीकी रक्त-सम्बन्धियों से यौन परितुष्टि करने का निषेध) को पार कर लिया जाता है, (४) समयैथुन, अर्थात् समान लिंग वाले व्यक्ति से यौन परितुष्टि की जाती है और (५) जननेन्द्रियों द्वारा किया जानेवाला कार्य शरीर के अन्य अंगों और विभिन्न क्षेत्रों से कर दिया जाता है। ये सब रुकावटें शुरू से ही मौजूद नहीं होतीं बल्कि परिवर्धन और शिक्षण के समय थोड़ी-थोड़ी करके बनती हैं। छोटे बच्चे में ये नहीं होतीं। उसे मनुष्य और पशु में बहुत भारी अन्तर नहीं दीखता। मनुष्य जिस दर्प से अपने-आपको दूसरे पशुओं से अलग करता है, वह उसमें बाद में उदय होता है। उसे जीवन के प्रारम्भ में टट्टी या पाखाने से कोई विरक्ति नहीं होती। वह उसे शिक्षण के प्रभाव से धीरे-धीरे सीखता है; वह लिंगों के अन्तर को कोई खास महत्त्व नहीं देता, असल में तो वह यह समझता है कि दोनों में जननेन्द्रियों का निर्माण एक ही तरह होता है। वह अपनी प्रारम्भिक यौन इच्छाओं और अपनी उत्सुकता को अपने निकटतम लोगों या उन व्यक्तियों के प्रति ही प्रकट करता है जो अन्य कारणों से उसके विशेष प्रिय हों—उसके माता-पिता, भाई-बहिनों, या धाय और अन्त में, हम उसमें वह विशेष बात देखते हैं जो बाद में किसी प्रेम-सबंध

१. Normal २. Perversions

और इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली वह ग्रन्थि दिखाई देती है जिसे बधियाकरण ग्रन्थि (कैस्ट्रेशन कम्प्लेक्स) कहते हैं; अर्थात् मैथुन सम्बन्धी मामलों के क्षेत्र में हटाए जाने की प्रतिक्रिया या शुरू की शैशवीय यौन चेष्टा की उस रुकावट की प्रतिक्रिया, जो पिता द्वारा लगाई गई, कही जाती है।

अब तक हमने जो बातें निश्चित रूप से जान ली हैं, उनसे बालक के मानसिक जीवन का अध्ययन करने में हमें मदद मिली है और अब हम इसी तरह स्वप्नों में दिखाई देनेवाली दूसरे प्रकार की प्रतिषिद्ध इच्छाओं, अर्थात् बहुत अधिक काम इच्छाओं के उद्भव की व्याख्या प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। इसलिए हमें बालक के यौन जीवन के परिवर्धन का अध्ययन करना पड़ता है, और इसमें हमें विभिन्न स्थानों से इन तथ्यों की जानकारी मिलती है। प्रथम तो, यह सब निराधार कल्पना है कि बालक का यौन जीवन नहीं होता और उसमें यौन भावना इसके बाद तरुणावस्था में दिखाई देती है, जब उसकी जननेन्द्रियां परिपक्व अवस्था में आ जाती हैं। इसके विपरीत, उसका शुरू से एक यौन जीवन होता है जो वस्तु की दृष्टि से समृद्ध होता है, यद्यपि यह अनेक बातों में उस यौन जीवन से भिन्न होता है जो बाद में 'प्रकृत' या सामान्य माना जाता है। वयस्क जीवन में जिन्हें (काम) विकृतियां कहते हैं, उनमें, और प्रकृत या सामान्य यौन जीवन में इन दृष्टियों से अन्तर होता है (१) (काम) विकृति में स्पीशीज़ के भेद (अर्थात् मनुष्य और पशु के बीच अन्तर) को भुला दिया जाता है, (२) इसमें विरक्ति द्वारा खड़ी की गई बाधाओं

ने पर उन...
तक ही सीमित नहीं रहता, ...
ागों में भी वैसी ही संवेदनता है, और उनसे भी वैसा ...
, और उनसे यह जननेन्द्रियों का कार्य लेता है। तो, यह कहा जा सकता
ालक में बहुरूपी (काम) विकृति' होती है, और यदि उसमें इन सब आवेगों
ही मिलते हैं, तो भी, इसका एक ओर तो यह कारण है कि इस समय वे उस
कम तीव्र रूप में होते हैं, जो वे बाद के जीवन में हासिल कर लेते हैं, और
और शिक्षा बालक की सब यौन अभिव्यक्तियों को तुरन्त और प्रबलता से
द कर देती है, अर्थात् दबा देती है। इस अवरोध को एक सिद्धांत का रूप दे
जाता है, क्योंकि बड़ी आयु के लोग इनमें से कुछ अभिव्यक्तियों को नजरन्दाज
े की कोशिश करते हैं, और कुछ का गलत अर्थ लगाकर वे उन्हें उनके यौन
रूप से वंचित करने की कोशिश करते हैं, यहां तक कि अन्त में सारी बात का
ी तरह निषेध किया जा सकता है। ये प्रायः वही लोग होते हैं जो पहले छोटे
च्चों के यौन नटखटपन की निन्दा करते हैं, और उसके बाद अपने घर बैठकर
उन्हीं बच्चों की यौन शुद्धता का ज़ोर-ज़ोर से मंडन करते हैं। जब बच्चों को आज़ाद
छोड़ दिया जाए या जब उन्हें इस ओर बहकाया जाए तब उनमें काफी मात्रा
विकृत यौन व्यापार दिखाई देते हैं। बड़े लोगों को इसे बहुत गम्भीरता से ग्रहण
करना और इसे 'बच्चों का खेल' समझना ठीक ही है, क्योंकि बच्चों को बड़ो
पूरी तरह ज़िम्मेदार लोगों के नैतिक नियमों से नहीं नापा जा सकता। तो भ
चीज़ें होती अवश्य हैं, और इस रूप में उनका महत्त्व भी है कि उनसे जन्म
शारीरिक प्रवृत्तियों का पता चलता है, और उनसे बाद में होनेवाले परि- .
उत्पन्न और घोषित होते हैं। उनसे हमें बच्चे के यौन जीवन का अन्तर्दर्शन होता
है, और इस तरह सारी मानव-जाति के यौन जीवन का अंतर्दर्शन होता है। इस-
लिए यदि हमें अपने स्वप्नों के विपर्यासों के पीछे ये सब विकृत इच्छाएं दिखाई देती
हैं तो इसका यही अर्थ है कि इस बात में भी स्वप्न पूरी तरह प्रतिगामी होकर
शैशवीय अवस्था में आ गए हैं।

इन निषिद्ध इच्छाओं में भी विशेष महत्त्व निषिद्ध संभोग की इच्छाओं अर्थात्
उन इच्छाओं को देना चाहिए जो माता-पिता या भाई-बहिनों के साथ मैथुन करने
की दिशा में होती हैं। आप जानते हैं कि मनुष्य समाज ऐसे मैथुन को कितनी घृणा
की दृष्टि से देखता है, या कम से कम घृणा की दृष्टि से देखने का दिखावा करता
है, और इसको रोकने पर कितना बल दिया जाता है। निषिद्ध सम्भोग की इस
...का कारण बताने के बड़े अजीबो-गरीब यत्न किए गए। कुछ लोगों

ने यह मान लिया है कि प्रकृति ने स्पीशीज को कायम रखने के लिए मन में स्वयं ये प्रतिषेध की भावनाएं पैदा करके एक व्यवस्था कर दी है क्योंकि अन्तरभिजनन[1], अर्थात् निकट सम्बन्धियों में विवाह, से मूल वंश का ह्रास हो जाएगा। कुछ लोगों ने इस बात पर बल दिया है कि बिलकुल बचपन से बहुत अधिक निकटता के कारण उन व्यक्तियों के प्रति यौन इच्छा दूर हो गई है। परन्तु इन दोनों अवस्थाओं में निषिद्ध सम्भोग से आप ही आप रक्षा हो जाती है, और हमें सख्त निषेध लागू करने की आवश्यकता समझ में नहीं आती, जिससे प्रबल इच्छा का सा संकेत मिलता है। मनोविश्लेषण के अनुसंधानों ने बिलकुल निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि असल में निषिद्ध प्रेम की इच्छा सबसे पहले होती है, और यह इच्छा सदा होती है, और इसके प्रति विरोध बाद में ही दिखाई देता है, और इस विरोध का कारण उस व्यक्ति के मनोविज्ञान में ढूंढने की आवश्यकता नहीं। बाल मनोविज्ञान पर विचार करने से स्वप्नों को समझने के विषय में जो परिणाम निकले हैं, उनका सारांश यह है: हमें पता चला है कि भूले हुए बाल्यकाल के अनुभवों की सामग्री न केवल स्वप्न की पहुंच में होती है, बल्कि बालक का मानसिक जीवन उसकी सब विशेषताओं, उसके अहंकार, निषिद्ध सम्भोग के लिए उसके वस्तु-चुनाव को साथ लिए हुए स्वप्न हर रात हमें इस बचपन की अवस्था में लौटा ले जाते हैं। *इस कथन से इस विश्वास की पुष्टि होती है कि अचेतन शैशवीय मानसिक जीवन ही है*, और इससे यह आपत्ति योग्य भावना, कि मनुष्य की प्रकृति में इतनी दुष्टता और बुराई दिखाई देती है, कुछ कम हो जाती है; क्योंकि यह भयंकर दुष्टता और बुराई सिर्फ वही चीज है जो मानसिक जीवन में मूल आदिकालीन और बचपन का अंश है, जो हमें बच्चों में कार्य करता दिखाई देता है, जिसकी हम अंशतः इसलिए उपेक्षा कर देते हैं कि वह इतने छोटे पैमाने पर होता है, और अंशतः इसलिए उपेक्षा कर देते हैं कि हम बच्चों में आचार सम्बन्धी ऊंचे मानदण्ड की आशा नहीं करते। इस बचपन की अवस्था में लौटकर हमारे स्वप्न हमारी बुराई और दुष्टता को बाहर लाते हुए दिखलाई देते हैं, पर यह दिखलावा धोखे में डालनेवाला है हालांकि हम इससे भयभीत हो गए हैं; हम उतने बुरे नहीं हैं जितने स्वप्न के निर्वचन के कारण मालूम होने लगते हैं।

यदि हमारे स्वप्नों के दुष्ट आवेग सिर्फ बचपन के या शैशवीय हैं; यदि हमारे आचार सम्बन्धी परिवर्धन का शुरू का रूप है, यदि स्वप्न हमें विचार और भावना में बालक बनाने का कार्य-मात्र करता है तो इन बुरे स्वप्नों पर लज्जित होना तर्कसंगत नहीं। परन्तु तर्क करने की योग्यता हमारे मानसिक जीवन का

---

1 In breeding

सिर्फ एक अंश है। इसके अलावा, उसमे और बहुत कुछ है जो तर्कसगत नही, और
होता यह है कि तर्कसगत न होते हुए भी हम ऐसे स्वप्नो पर शर्मिन्दा होते हैं। हम
इनपर स्वप्न-सेंसरशिप की क्रिया करते हैं और जब इनमे से कोई इच्छा अपवाद रूप
से ऐसे स्पष्ट रूप से हमारी चेतना मे घुस आती है कि हम इसे पहचान जाते हैं,
तब हमें शर्म और गुस्सा महसूस होता है; हा, हम कभी-कभी किसी विपरीत
स्वप्न पर ठीक इस तरह शर्मिन्दा होते हैं जैसे हम इसे सचमुच का समझते थे। जरा
उस सम्मानित बुजुर्ग महिला के 'प्रेम-सेवा' विषयक स्वप्न पर, उसकी परेशानी-
भरी बात पर, गौर कीजिए; यद्यपि उसका अर्थ उसके सामने कभी पेश नही
किया गया। इस प्रकार, समस्या अभी हल नही हुई और अब भी यह सम्भव है
कि यदि हम स्वप्नो मे बुराई के इस प्रश्न पर और आगे विचार करें तो किसी और
निष्कर्ष पर तथा मनुष्य-स्वभाव के किसी और पहलू पर पहुच जाए।

अपनी सारी जाच-पडताल से हम दो परिणामो पर पहुचे, पर इनमे नई
समस्याओ और नये सदेहो के शुरु होने का ही सकेत मिलता है। प्रथम, स्वप्नो
मे प्रतिगमन सिर्फ रूप का नही होता, बल्कि अत.सार का भी होता है। यह
हमारे विचारो का अभिव्यक्ति के आदिम रूप में अनुवाद ही नहीं कर देता,
बल्कि हमारे आदिमकालीन मानसिक जीवन की विशेषताओ—अहकार की
पुरानी प्रधानता तथा हमारे यौन जीवन के आरम्भिक आवेगो—को भी फिर जगा
देता है, और हमें हमारे बौद्धिक विचार भी प्राप्त करा देता है, बशर्ते कि हम
प्रतीकात्मकता की इस प्रकार धारणा बना सकें। और दूसरे ये सब पुरानी
शैशवीय विशेषताए, जो कभी प्रधान और एकमात्र प्रधान थी, आज अचेतन मे चली
गई माननी होगी, और हमें इसके बारे में अपने विचारों को बदलना और बढ़ाना
होगा। अब 'अचेतन' शब्द सिर्फ उसका वाचक नहीं जो अस्थायी रूप मे अर्थात्
कुछ समय के लिए गुप्त है : अचेतन एक विशेष प्रदेश है जिसकी अपनी अलग
इच्छाए और अभिव्यक्ति की अलग रीतिया हैं और विशेष मानसिक तत्र और
प्रक्रियाए हैं जो और जगह कार्य नहीं करतीं। परन्तु हमारे निर्वचन से प्रकट होने-
वाले गुप्त विचार इस प्रदेश के निवासी नहीं होते, वे तो उस तरह के विचारों जैसे
होते हैं जो जाग्रत् जीवन मे भी हमारे अन्दर रहते हैं, और फिर भी वे अचेतन हैं
इस विरोधाभास का परिहार कैसे किया जाए? हमें यह अनुभव होने लगता है कि
यहां हमें विवेक से काम लेना होगा। एक चीज जो हमारे चेतन जीवन में उत्पन्न
होती है और जिसमें इसकी विशेषताए होती हैं—हम इसे पिछले दिन का 'अवशेष'
कहते हैं—अचेतन प्रदेश की एक वस्तु से मिलकर स्वप्न का निर्माण करती है, दो
दो प्रदेशों के बीच में ही स्वप्नतत्र पूरा हो जाता है। इस अवशेष पर अचेतन
प्रभाव का आघात होना ही सम्भवतः प्रतिगमन के लिए अनिवार्य शर्त है
मन के अन्य क्षेत्रों की खोज करने से पहले तक हमारे लिए स्वप्नों की प्रकृ

बारे में अधिक गहरी जा सकनेवाली अन्तर्दृष्टि यही है, पर शीघ्र ही गुप्त स्वप्न-विचारों के अचेतनस्वरूप को दूसरा नाम देना होगा, ताकि इसका उस अचेतन-सामग्री से विभेद किया जा सके जो शैशवीय क्षेत्र में आती है।

हम निःसन्देह यह भी पूछ सकते हैं : सोते हुए हमारे मानसिक व्यापार को ऐसे प्रतिगमन पर जबर्दस्ती कौन पहुंचाता है? नींद को बिगाड़नेवाले मानसिक उद्दीपनों पर बिना इसके क्यों विचार नहीं किया जा सकता और यदि स्वप्न-सेंसरशिप के कारण मानसिक व्यापार को अपने-आपको पुराने और अब समझ में न आनेवाले अभिव्यक्ति-रूप में छिपाना पड़ता है, तो उन पुराने आवेगों, इच्छाओं और विशेषताओं को, जो अब दबाई जा चुकी हैं, पुनः जिन्दा करने का उद्देश्य क्या है? संक्षेप में, रूप और अन्तःसार में प्रतिगमन का क्या लाभ है? इसका एकमात्र सन्तोषजनक उत्तर यह होगा कि स्वप्नों के बन सकने का यह एक संभव तरीका है कि, गतिकीय दृष्टि से विचार करें तो, स्वप्न को जन्म देनेवाले उद्दीपन से और किसी तरह छुटकारा नहीं मिल सकता, पर यह ऐसा उत्तर है जिसे उचित सिद्ध करने के लिए इस समय हमारे पास कोई युक्ति नहीं है।

इच्छापूर्ति

मैं क्या उन क्रमिक पड़ावों की आपको फिर याद दिलाऊं जिनमें हम अपनी वर्तमान अवस्था में पहुंचे हैं ? जब अपनी विधि का प्रयोग करते हुए हम स्वप्नों में होनेवाले विपर्यास पर पहुंचे थे, तब हमने कुछ समय के लिए इस-पर विचार छोड़ देने का निश्चय किया था और स्वप्नों की प्रकृति के बारे में कोई निश्चित जानकारी हासिल करने के लिए बचपन के स्वप्नों पर विचार किया था। इसके बाद इस जांच के परिणाम प्राप्त करके हमने सीधे ही स्वप्न-विपर्यास की समस्या पर विचार किया और मुझे आशा है कि थोड़ा-थोड़ा करके हमने इसे अच्छी तरह समझ लिया है। परन्तु अब हमें यह मानना पड़ेगा कि इन दो दिशाओं में हम जिन परिणामों पर पहुंचे हैं, वे पूरे-पूरे मेल नहीं खाते और यही उचित होगा कि हम अपने परिणामों में मेल बैठाए।

दोनों जांच-पड़तालों से यह स्पष्ट हो गया है कि स्वप्नतन्त्र की सारभूत विशेषता यह है कि विचारों का मतिभ्रमात्मक अनुभव में रूपान्तर हो जाता है। यह देखकर चकित रह जाना पड़ जाता है कि यह प्रक्रम कैसे हो जाता है, परन्तु यह सामान्य मनोविज्ञान का विचार करने की समस्या है, और हमें यहां इसपर विचार नहीं करना है। बालकों के स्वप्नों से हमें यह पता चलता है कि स्वप्नतन्त्र का उद्देश्य किसी इच्छा की पूर्ति द्वारा ऐसे मानसिक उद्दीपन को दूर कर देना है जो नींद में बाधा डाल रहा है। विपर्यस्त स्वप्नों के बारे में हम कोई ऐसी ही बात तब तक नहीं कह सकते थे, जब तक हम उनके अर्थ लगाने का तरीका न समझ लें, पर शुरू से हमें यह आशा थी कि हम उनके विषय में अपने विचारों का अपने शैशवीय स्वप्न विषयक विचारों से मेल बैठा सकेंगे। यह आशा पहली बार तब पूरी हुई जब हमने यह देखा कि सब स्वप्न असल में शैशवीय स्वप्न
क उनमें बचपन की सामग्री का प्रयोग होता है, और बच्चों के मन में रहने-
आवेग और तन्त्र उनमें स्पष्ट रूप से होते हैं। जब हम यह महसूस करते हैं
प्नों में होनेवाले विपर्यास को हमने अच्छी तरह समझ लिया है, तब हमें यह

पता लगाना चाहिए कि यह धारणा विपर्यस्त स्वप्नों के बारे में भी सही है या नहीं, कि स्वप्न इच्छापूर्ति होते हैं।

अभी हमने कई स्वप्नों का अर्थ लगाया था, पर उनमें इच्छापूर्ति के प्रश्न पर बिलकुल विचार नहीं किया था। मैं निश्चित रूप से समझता हूं कि उनपर विचार करते हुए यह प्रश्न बार-बार आपके मन में उठता रहा, 'उस इच्छापूर्ति का क्या हुआ जिसे स्वप्नतन्त्र का उद्देश्य माना जाता है ?' यह प्रश्न अवश्य महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सामान्य लोगों में से हमारे आलोचक निरन्तर यह प्रश्न पूछते हैं। आप जानते ही हैं कि मनुष्य-जाति में बौद्धिक नवीनताओं के प्रति सहज उदासीनता है। इसके प्रकट होने का एक तरीका यह है कि ऐसी किसी भी नवीनता को तुरन्त उसके छोटे से छोटे रूप में ले आया जाता है और यदि सम्भव हो तो उसे किसी रूढ़ोक्ति का रूप दे दिया जाता है। 'इच्छापूर्ति' स्वप्नों के नये सिद्धान्त के लिए एक रूढ़ोक्ति हो गई है। लोग सुनते हैं कि स्वप्नों को इच्छापूर्ति बताया जाता है। तब वे पूछते हैं, 'इच्छापूर्ति कहां से पैदा होती है ?' और उनके यह प्रश्न पूछने का अर्थ यह है कि वे उस विचार को ही अस्वीकार करते हैं। उन्हें तुरन्त अपने ऐसे असंख्य स्वप्न याद आ जाते हैं जिनमें बड़ी अप्रिय भावना अनुभव हुई थी, और कभी-कभी तो बड़ा पीड़ाकारक भय तक अनुभव हुआ था, और इस प्रकार स्वप्नों के विषय में मनोविश्लेषण के सिद्धान्त का यह कथन उन्हें बहुत असम्भाव्य मालूम होता है। इसका आसानी से यह जवाब दिया जा सकता है, कि विपर्यस्त स्वप्नों में इच्छा-पूर्ति खुले रूप में प्रकट नहीं होती, बल्कि उसे खोजना पड़ता है। इसलिए यह तब तक प्रदर्शित नहीं की जा सकती जब तक स्वप्नों का अर्थ न लगाया गया हो। आप यह भी जानते हैं कि इन विपर्यस्त स्वप्नों की तह में कार्य कर रही इच्छाएं वे होती हैं जिन्हें सेंसरशिप ने निषिद्ध और अस्वीकृत कर दिया है, और कि उनके होने के कारण ही विपर्यास पैदा होता है, और सेन्सरशिप का हस्तक्षेप होता है। परन्तु सामान्य व्यक्ति को यह समझना कठिन है कि हमें स्वप्न का अर्थ लगाने से पहले उसमें इच्छापूर्ति होने के विषय में प्रश्न नहीं उठाना चाहिए। वह सदा इस बात को भूल जाता है। उसकी इच्छापूर्ति के सिद्धान्त को मानने की इच्छा असल में स्वप्न-सेंसरशिप का ही परिणाम है, जो उसे वास्तविक विचार के स्थान पर एक स्थानापन्न लाने को प्रेरित करती है, और इन काट-छांट की हुई स्वप्न-इच्छाओं को उसके अस्वीकार कर देने से ही पैदा होती है।

निःसन्देह, हमें खुद यह आवश्यकता महसूस होनी चाहिए कि इतने सारे स्वप्नों की वस्तु कष्टकारक होने का स्पष्टीकरण करें, पर विशेष रूप से हम यह जानना चाहेंगे कि हमें चिन्ता-स्वप्न क्यों आते हैं। यहां पहली बार, हमारे सामने स्वप्नों में भावों या मनोविकारों की समस्या आती है। इस समस्या पर विशेष विचार करने की आवश्यकता है, पर बदकिस्मती से हम इसपर इस समय विचार नहीं कर

सकते । यदि स्वप्न इच्छापूर्ति है तो कोई कष्टदायक भाव कभी भी इसमें नहीं
आने चाहिए इस बारे में सामान्य आदमी का कहना ठीक मालूम होता है पर
इस मामले में तीन बातें उलझनें पैदा करती हैं, जिन्हें सामान्य लोग नजरदाज
कर देते हैं।

पहली हो सकता है कि स्वप्नतन्त्र इच्छापूर्ति की सृष्टि करने में पूरी तरह
सफल न हुआ हो, और इस कारण गुप्त विचारों की कष्टकारी भावना का कुछ
अंश व्यक्त स्वप्न में भी आ गया हो। तब मनोविश्लेषण को यह दिखाना होगा कि
ये विचार उस स्वप्न की अपेक्षा बहुत अधिक कष्टकारी थे, जो इनसे बना है।
इतनी बात हर उदाहरण में सिद्ध की जा सकती है। तो हम स्वीकार करते हैं कि
स्वप्नतंत्र का प्रयोजन सफल नहीं हुआ क्योंकि प्यास के उद्दीपन से उत्पन्न पीने
के स्वप्न से वह प्यास नहीं बुझती। इसके बाद भी आदमी प्यासा रहता है और
उसे जागकर पानी पीना पड़ता है। तो भी, यह एक ठीक स्वप्न है, इसमें इसके
सारभूत स्वरूप की किसी बात का अभाव नहीं है। हर सूरत में स्पष्ट रूप से
पहचाना जा सकनेवाला आशय तो प्रशंसनीय है ही। स्वप्नतन्त्र में विफलता होने के
ये उदाहरण बहुत काफी मिलते हैं, और इसका एक कारण यह है कि स्वप्नतन्त्र के
लिए वस्तु का रूप-भेद करने की अपेक्षा भाव के स्वरूप में अभीष्ट परिवर्तन लाना
[illegible]त कठिन होता है। भाव प्रायः वश में नहीं आते, इसलिए यह होता है कि स्वप्न
[illegible]त्र के प्रक्रम में स्वप्न-विचारों की कष्टकारक वस्तु इच्छापूर्ति का रूप ले लेती है,
[illegible]र कष्टकारक भाव जैसे का तैसा कायम रहता है। जब यह होता है तब भाव और
[illegible]स्तु में कोई मेल नहीं होता, जिससे आलोचकों को यह कहने का अवसर मिलता
[illegible] कि स्वप्न इच्छापूर्ति से बिलकुल भिन्न चीज हैं क्योंकि हानिरहित वस्तु के साथ
[illegible]भी स्वप्न में कष्टकारक भावनाएं जुड़ी होती हैं। इस नासमझी की सी बात पर
हम यह उत्तर देंगे कि इस तरह के स्वप्नों में ही स्वप्नतन्त्र की इच्छापूर्ति की प्रवृत्ति
सबसे अधिक दिखाई देती है, क्योंकि यह वहां सबसे अलग अकेली नजर आती
इस आलोचना में भूल इसलिए होती है कि जो लोग स्नायुरोगों से परि[illegible]
नहीं हैं, वे वस्तु और भाव में वस्तुतः जितना सम्बन्ध है, उससे अधिक गहरे
सम्बन्ध की कल्पना करते हैं, और इसलिए यह नहीं समझ सकते कि वस्तु में
परिवर्तन होते हुए भी उसके साथ वाला भाव अपरिवर्तित रह सकता है।

दूसरी बात, जो इससे भी अधिक महत्व की है, पर साधारण लोगों द्वारा
तरह उपेक्षित कर दी जाती है, यह है : इच्छापूर्ति से निश्चित रूप से सुख
मिलना चाहिए, पर वे पूछते हैं, 'किसे ?' निःसन्देह उस व्यक्ति को जिसमें वह
इच्छा है, पर हम जानते हैं कि स्वप्नद्रष्टा का अपनी इच्छाओं के प्रति एक विशिष्ट
सम्बन्ध है; वह उन्हें अस्वीकार करता है, उनमें काट-छांट करता है; संक्षेप में,
[illegible] कोई वास्ता नहीं रखना चाहता। इसलिए उनकी पूर्ति उसे कोई सुख

नहीं दे सकती, बल्कि इससे उल्टी अनुभूति देगी और यहां अनुभव से पता चलता है कि यह 'विपरीत या उल्टी' अनुभूति जिसकी अभी व्याख्या करनी है, चिंता का रूप ग्रहण करती है। जहां तक स्वप्नद्रष्टा की इच्छाओं का प्रश्न है, वे ऐसे दो पृथक् व्यक्तियों के समान हैं जो किसी महत्त्वपूर्ण साझी बात द्वारा घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। इसके विस्तार में जाने के बजाय मैं आपको वह प्रसिद्ध 'परी की कहानी' याद दिलाऊंगा, जिसमें आप इन सम्बन्धों की आवृत्ति होती देखेंगे। एक भली परी ने किसी गरीब आदमी और उसकी स्त्री से उनकी किन्हीं तीन इच्छाएं पूरी करने का वायदा किया। वे खुश हो गए और उन्होंने अपनी इच्छाएं सावधानी से चुनने का निश्चय किया। परन्तु स्त्री अगली झोंपड़ी में पकाए जा रहे कोफ्ते की गंध से आकृष्ट हो गई, और उसने इस जैसे दो कोफ्ते अपने लिए प्राप्त करने की इच्छा की, और वे फौरन हाज़िर हो गए—इस तरह पहली इच्छा पूरी हो गई। इसपर पुरुष आपे से बाहर हो गया और गुस्से में उसने यह इच्छा की कि वे दोनों कोफ्ते उसकी पत्नी की नाक की नोक पर लटक जाएं। यह भी हो गया। वे कोफ्ते अपने स्थान से नहीं हटाए जा सके। इस तरह दूसरी इच्छा भी पूरी हो गई। पर यह पुरुष की इच्छा थी और इसकी पूर्ति स्त्री के लिए बहुत अप्रिय थी। बाकी कहानी आप जानते हैं : क्योंकि आखिरकार वे पति-पत्नी थे, इसलिए उसे तीसरी इच्छा यह करनी पड़ी कि कोफ्ते स्त्री की नाक की नोक पर से हट जाएं। हम इस परी की कहानी का दूसरे प्रसंगों में बहुत बार प्रयोग कर सकते हैं, पर यहां मैं इससे सिर्फ यह तथ्य स्पष्ट करना चाहता हूं कि हो सकता है कि एक व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति किसी दूसरे के लिए बड़ी अरुचिकर हो, जब तक कि वे दोनों व्यक्ति पूरी तरह एकरूप और एकात्म न हों।

अब 'चिंता-स्वप्नों' को और भी अधिक अच्छी तरह समझना कठिन नहीं रहेगा। एक प्रेक्षण का उपयोग और करना है, और इसके बाद हम ऐसी परिकल्पना बना सकते हैं जिसका कई बातों से समर्थन होता हो। वह प्रेक्षण यह है कि चिंता-स्वप्नों में प्रायः ऐसी वस्तु होती है जिसमें कोई विपर्यास नहीं होता। ऐसा लगता है, मानो वह सेंसरशिप से बच निकली है। इस तरह वह स्वप्न एक अप्रच्छन्न, अर्थात् अपने स्पष्ट रूप में दिखाई देनेवाली, इच्छापूर्ति होता है और इसमें इच्छा वह नहीं होती जिसे स्वप्नद्रष्टा स्वीकार करना चाहता है, बल्कि वह होती है जिसे उसने अस्वीकार कर दिया है। सेंसरशिप की क्रिया होने के स्थान पर चिंता पैदा हो गई है। शैशवीय स्वप्न तो स्वप्नद्रष्टा द्वारा स्वीकृत इच्छा की खुलेआम पूर्ति होता है, और साधारण विपर्यस्त स्वप्न दमित[1] अर्थात् अधिक दबाई गई, इच्छा की प्रच्छन्न अर्थात् अस्पष्ट या छिपी हुई पूर्ति होता है। परन्तु

1. Repressed

शक्तिहीन अनुभव करती है तो वह विपर्यास का उपयोग करने के बजाय अपना आखिरी हथियार काम में लाती है, और चिन्ता पैदा करके नींद को नष्ट कर देती है।

यहाँ आकर हमें महसूस होता है कि अब भी हमारे पास इस विषय में कोई धारणा नहीं कि ये दुष्ट, अस्वीकृत इच्छाएं रात के समय ही क्यों उभर आती हैं, और हमें नींद में परेशान करती हैं। इसका उत्तर एक और परिकल्पना द्वारा ही दिया जा सकता है, जो नींद के स्वरूप पर प्रकाश डालती है। दिन के समय इन इच्छाओं पर सेन्सरशिप का भारी बोझ पड़ता है और साधारणतया यह असम्भव होता है कि वे अपने-आपको ज़रा भी अनुभव करा सकें। पर रात में यह सम्भावना है कि मानसिक जीवन की और सब चेष्टाओं की तरह यह सेन्सरशिप निलम्बित[1] अर्थात् क्रियाहीन, या बहुत ही कमज़ोर हो जाती हो और नींद की एकमात्र इच्छा ही व्यापक हो जाती हो। इस प्रकार, रात के समय सेन्सरशिप की इस आंशिक निष्क्रियता के कारण ही निषिद्ध इच्छाएं फिर सक्रिय हो सकती हैं। इनसोमनिया अर्थात् निद्राहीनता रोग से पीड़ित स्नायु वाले लोग यह स्वीकार करते हैं कि शुरू में उनकी निद्राहीनता अपनी इच्छा के अधीन थी; कारण यह कि उन्हें सोने की हिम्मत नहीं पड़ती थी क्योंकि वे अपने स्वप्नों से डरते थे—आशय यह हुआ कि वे सेन्सरशिप की कम जागरूकता के परिणामों से डरते थे। आपको यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि सेन्सरशिप की यह कमी घोर असावधानी का पक्षपोषण नहीं करती। नींद हमारे मोटर-कार्यों[2] को कमज़ोर कर देती है। यदि हमारे दुष्ट आशय हमारे भीतर हलचल शुरू कर दें, तो भी वे अधिक से अधिक इतना ही कर सकते हैं कि एक स्वप्न पैदा कर दें जो सब व्यावहारिक प्रयोजनों की दृष्टि से हानिरहित होता है, और इस आराम देनेवाली परिस्थिति के कारण ही सोनेवाला यह कह दिया करता है—यह तो सच है कि वह रात में यह बात कहता है पर यह उसके स्वप्न-जीवन का हिस्सा नहीं होती—'यह तो सिर्फ स्वप्न है।' इस प्रकार हम इसे चलने देते हैं और सोना जारी रखते हैं।

तीसरी बात यह है कि यदि आप हमारे इस विचार को याद करें कि अपनी इच्छा के विरुद्ध यत्न करता हुआ स्वप्नद्रष्टा, दो पृथक्, परन्तु फिर भी घनिष्ट रूप से जुड़े हुए व्यक्तियों का मिला-जुला रूप है तो आप इस बात का एक और सम्भव तरीका समझ सकेंगे कि इच्छापूर्ति के द्वारा कोई बहुत अप्रिय बात कैसे पैदा की जा सकती है। मेरा संकेत सज़ा की ओर है। यहाँ भी तीन इच्छाओं वाली परी की कहानी से बात स्पष्ट होने में मदद मिलेगी। तश्तरी में रखे हुए

1. Suspended 2. Motor-functions

कोने पर एक व्यक्ति (स्त्री) की इच्छा की प्रत्यक्ष पूर्ति थे। उनकी नाक की नोक पर
लगे हुए कोने दूसरे व्यक्ति (पति) की इच्छा की पूर्ति है, पर साथ ही वे पत्नी
की मूर्खतापूर्ण इच्छा की सजा भी है। स्नायुरोगों में हमें ऐसी इच्छाएं मिलेंगी
जो परी की कहानी की तीसरी अर्थात् एकमात्र शेष इच्छा से प्रयोजन की दृष्टि से
मिलती-जुलती होंगी। मनुष्य के मानसिक जीवन में ऐसी बहुत सारी सजा की
प्रवृत्तियां हैं। वे बड़ी प्रबल होती हैं, और उन्हें हम अपने कष्टकारक स्वप्नों का
कारण मान सकते हैं। अब शायद आप यह सोचेंगे कि इस सबके बाद प्रसिद्ध
इच्छापूर्ति की कोई खास चीज नहीं बची, पर बारीकी से विचार करने पर
आप यह स्वीकार करेंगे कि आपका कहना गलत है। स्वप्नों के सम्भावित स्व
के बारे में, कुछ लेखकों के अनुसार उनके असली स्वरूप के बारे में, जो ब
सारी सम्भावनाएं हो सकती हैं (इनपर बाद में विचार किया जाएगा), उन
तुलना में हम, अर्थात् इच्छापूर्ति, चिन्तापूर्ति और सजा-पूर्ति, निश्चित
नगण्य है। इसके साथ इतनी बात और जोड़ दीजिए कि चिन्ता इच्छा
ठीक उलटी या विरोधी चीज है, और विरोधी चीजें साहचर्य में एक-दूस
बहुत निकट रहती हैं और जैसाकि हम बता चुके हैं, वे अचेतन में वस्तुत
दूसरे के ऊपर पड़ी होती हैं। इसके अलावा सजा भी एक इच्छा की पूर्ति
यह दूसरे अर्थात् सेन्सर करनेवाले व्यक्ति की इच्छापूर्ति है।

तो कुल मिलाकर मैंने इच्छापूर्ति के सिद्धान्त पर आपके आक्षेपों को रु
नहीं किया, पर हमें प्रत्येक विपर्यस्त स्वप्न में इसकी उपस्थिति दिखानी होगी
निश्चित समझिए कि हम इस जिम्मेदारी से जरा भी बचना नहीं चाहते। हम इ
फ्लोरिन में तीन बेकार थियेटर-टिकटों वाले स्वप्न पर, जिसका हम पहले निर्वचन
कर चुके हैं, विचार करेंगे; जिससे हम पहले बहुत कुछ सीख चुके है। मुझे आशा है कि
वे बातें आपको याद होंगी। एक महिला ने, जिसके पति ने उसे उसकी (उससे सिर्फ
तीन महीने छोटी) सहेली एलिस की सगाई की बात बताई थी, अगली रात स्वप्न में
देखा कि मैं और मेरा पति थियेटर में हैं और बैठने के स्थानों का एक हिस्सा प्राय
खाली है। उसके पति ने उससे कहा था कि एलिस और उसका भावी पति भी
थियेटर आना चाहते थे पर वे नहीं आ सके क्योंकि उन्हें बहुत रद्दी स्थान, अर्थात्
डेढ़ फ्लोरिन में तीन टिकट वाले स्थान मिल सके। उसकी पत्नी ने कहा कि उन्हें
इसमें बहुत हानि हुई। हमने देखा था कि स्वप्न-विचारों का सम्बन्ध उसके जल्दी
विवाह करने और अपने पति से असन्तुष्ट रहने के कारण उत्पन्न परेशानी से था।
हमें यह जानने की उत्सुकता होगी कि ये निराशा-भरे विचार इच्छापूर्ति के रू
में कैसे बदले, और व्यक्त वस्तु में इच्छापूर्ति का कौन-सा चिह्न देखा जा सकता है
यह तो हम पहले से ही जानते हैं कि 'बहुत जल्दी, बहुत जल्दबाजी वाले अवयव
को सेंसरशिप ने पहले ही लुप्त कर दिया है। खाली स्थान इस अवयव का निर्दे

करते हैं। 'डेढ़ में तीन' वाक्यांश अब हमें पहले की अपेक्षा अधिक समझ में आने लगा है क्योंकि उसके बाद हम प्रतीकों की जानकारी हासिल कर चुके हैं।[1] संख्या तीन असल में एक पुरुष की प्रतीक है और हम व्यक्त अवयव का आसानी से यह अर्थ कर सकते हैं, 'दहेज द्वारा एक आदमी (पति) खरीदना' ('मैं अपने दहेज द्वारा दस गुना अच्छा आदमी खरीद सकती थी')। थियेटर जाना स्पष्टत: विवाह का प्रतीक है, टिकट जल्दी हासिल करना 'विवाह जल्दी करने' का सीधा स्थानापन्न है। यह स्थानापन्नता इच्छापूर्ति का कार्य है। स्वप्नद्रष्टा ने अपने शीघ्र विवाह पर हमेशा उतना असन्तोष अनुभव नहीं किया था। जिस दिन उसने अपनी सहेली की सगाई की बात सुनी उस समय तक उसे अपने विवाह का अभिमान था और वह अपनी सहेली की अपेक्षा अपने को अधिक सौभाग्यवती मानती थी। आम तौर से सुनने में आता है कि निष्कपट लड़कियां सगाई हो जाने पर प्राय: इस बात पर खुशी जाहिर करती हैं कि अब वे शीघ्र ही सब नाटकों में जा सकेंगी और अब तक निषिद्ध सब चीजें देख सकेंगी।

यहां जो कुतूहल का संकेत और 'ताकने' की इच्छा प्रदर्शित की गई, वह नि:सन्देह शुरू में, विशेष रूप से माता-पिता के बारे में, यौन 'ताकने के आवेग' से पैदा हुई, और लड़की को जल्दी विवाह करने के लिए प्रेरित करने में यह प्रबल प्रेरक कारण बना। इस प्रकार, थियेटर जाना विवाहित होने का स्पष्ट रूप से सूचक स्थानापन्न बन गया। इस समय अपने शीघ्र विवाह के कारण परेशान होने पर वह उस समय में जा पहुंची जब इसी विवाह ने उसकी दर्शनेच्छा[2] (ताकने की इच्छा) को पूरा किया था, और इस प्रकार उसने इस पुराने इच्छा-आवेग से प्रेरित होकर विवाह के विचार के स्थान पर थियेटर जाने की बात स्थापित कर दी।

हम कह सकते हैं कि छिपी हुई इच्छापूर्ति प्रदर्शित करने के लिए हमने जो उदाहरण चुना है, वह सबसे अधिक सुविधाजनक उदाहरण नहीं है, पर और सब विपर्यस्त स्वप्नों में ऊपर प्रयुक्त रीति के सदृश रीति से ही चलना होगा। इस समय यहां ऐसा करना मेरे लिए सम्भव नहीं। इसलिए मैं सिर्फ अपना यह विश्वास प्रकट करूंगा कि ऐसी प्रक्रिया सदा सफल सिद्ध होगी। पर मैं अपने सिद्धान्त के इस पहलू पर कुछ अधिक कहना चाहता हूं। अनुभव से मुझे मालूम हुआ है कि स्वप्न के सारे सिद्धान्त में सबसे अधिक संकट वाली चीज यही है, जिसमें बहुत-से खण्डनों और गलतफहमियों की गुंजाइश होती है। इसके अतिरिक्त, आप शायद यह समझ

१. इस सन्तानहीन स्त्री के स्वप्न में आनेवाली संख्या तीन का एक और निर्वचन भी आसानी से हो सकता है पर मैं यहां उसका उल्लेख नहीं करूंगा क्योंकि इस विश्लेषण से उसे निर्दिष्ट करनेवाली कोई सामग्री नहीं मिली।

२. Skoptophilia

कोफ्ते पहले व्यक्ति (स्त्री) की इच्छा की प्रत्यक्ष पूर्ति थे। उसकी नाक [illegible] लगे हुए कोफ्ते दूसरे व्यक्ति (पति) की इच्छा की पूर्ति हैं, पर साथ ही [illegible] की मूर्खतापूर्ण इच्छा की सज़ा भी हैं। स्नायुरोगों में हमें ऐसी इच्छाएं [illegible] जो परी की कहानी की तीसरी अर्थात् एकमात्र शेष इच्छा से प्रयोजन [illegible] मिलती-जुलती होगी। मनुष्य के मानसिक जीवन में ऐसी बहुत सारी [illegible] प्रवृत्तियां हैं। वे बड़ी प्रबल होती हैं, और उन्हें हम अपने कष्टसाध्य [illegible] कारण मान सकते हैं। अब शायद आप यह सोचेंगे कि इस सबके बाद [illegible] इच्छापूर्ति की कोई खास चीज़ नहीं बची, पर बारीकी से विचार करने [illegible] आप यह स्वीकार करेंगे कि आपका कहना गलत है। स्वप्नों के सम्बन्ध [illegible] के बारे में, कुछ लेखकों के अनुसार उनके असली स्वरूप के बारे में, [illegible] सारी सम्भावनाएं हो सकती हैं (इनपर बाद में विचार किया जाएगा), [illegible] तुलना में हल, अर्थात् इच्छापूर्ति, चिन्तापूर्ति और सज़ापूर्ति, [illegible] नगण्य हैं। इसके साथ इतनी बात और जोड़ दीजिए कि चिन्ता [illegible] ठीक उलटी या विरोधी चीज़ है, और विरोधी चीज़ें साहचर्य में [illegible] बहुत निकट रहती हैं और जैसाकि हम बता चुके हैं, वे अचेतन में [illegible] दूसरे के ऊपर पड़ी होती हैं। इसके अलावा सज़ा भी एक इच्छा की पूर्ति [illegible] यह दूसरे अर्थात् सेन्सर करनेवाले व्यक्ति की इच्छापूर्ति है।

तो कुल मिलाकर मैंने इच्छापूर्ति के सिद्धान्त पर आपके [illegible] नहीं किया, पर हमें प्रत्येक विपर्यस्त स्वप्न में इसकी उपस्थिति [illegible] निश्चिन्त समझिए कि हम इस ज़िम्मेदारी से ज़रा भी बचना नहीं चाहते। [illegible] पलोरिन में तीन बेकार थियेटर-टिकटों वाले स्वप्न पर, जिसका हम [illegible]
[illegible]

रहे हैं कि मैंने अपने कथन का कुछ अंश पहले ही वापस ले लिया है, क्योंकि मैंने यह कहा है कि स्वप्न, इच्छापूर्ति या इसकी विरोधी चीज अर्थात् चिन्ता या सजा है जो वास्तविक रूप में आ गई है, और आप समझेंगे कि यह बहुत अच्छा मौका है जबकि मुझे अपने अपने कथन को और सीमित करने के लिए मजबूर किया जा सकता है। मुझे इस कारण भी बुरा-भला कहा गया है कि मैं अपने को सुबोध लगने वाले तथ्यों को इतने संक्षिप्त रूप में पेश करता हूं कि वे सुननेवालों को कायल नहीं कर पाते।

जब कोई व्यक्ति स्वप्न-निर्वचन में इतनी दूर तक जा चुका है, और यहाँ तक हमारे सब निष्कर्षों को स्वीकार कर चुका है, तब प्रायः इच्छापूर्ति के इस प्रश्न पर आकर वह रुक जाया करता है और पूछता है, 'मैं मानता हूं कि प्रत्येक स्वप्न का कुछ अर्थ है, और मनोविश्लेषण की विधि का प्रयोग करके यह अर्थ पता लगाया जा सकता है, पर विरोधी बातें सामने देखते हुए भी उसे सदा इच्छापूर्ति के फार्मूले में ही क्यों फिट करना चाहिए। जैसे दिन में हमारे विचार कई पहलुओं वाले होते हैं, वैसे ही हमारे रात के विचार भी क्यों नहीं होने चाहिए, अर्थात् कभी कोई स्वप्न इच्छापूर्ति भी हो सकता है, पर कभी, जैसाकि आप स्वयं मानते हैं, वह इसका विपरीत या उल्टा, अर्थात् भय का वास्तविक रूप भी हो सकता है, या इसी तरह किसी संकल्प की अभिव्यक्ति, कोई चेतावनी, किसी समस्या के पक्ष और विपक्ष में विचार, या कोई भर्त्सना या अन्तःकरण की कोई कचोट हो सकता है या जो काम करना है उसके लिए अपने-आपको तैयार करने की कोशिश हो सकता है, इत्यादि। किसी इच्छा या अधिक से अधिक इसकी विपरीत बात पर ही सदा आग्रह क्यों हो?'

यह माना जा सकता है कि यदि और सब बातों पर हम एकमत हों तो इस प्रश्न पर मतभेद का कोई बड़ा महत्त्व नहीं। क्या हम इतने में सन्तोष नहीं कर सकते कि हमने स्वप्नों का अर्थ पता लगा लिया है, और वे तरीके जान लिए, जिनसे हम उनका अर्थ पता लगा सकते हैं? यदि हम इस अर्थ को बहुत सख्ती से सीमित करने की कोशिश करते हैं तो निश्चित रूप से हम बहुत पीछे लौट जाते हैं, पर यह बात नहीं। इस विषय पर गलतफहमी हमारे स्वप्न सम्बन्धी ज्ञान की सारभूत और आवश्यक बातों पर पहुंच जाती है, और स्नायुरोगों को समझने के कार्य में इसके महत्त्व को कम कर देती है। इसके अलावा, 'दूसरे पक्ष पर अनुग्रह करने के लिए,' जिसका व्यवसाय-जीवन में कुछ महत्त्व है, तैयार रहने की तत्परता यहाँ न केवल अप्रासंगिक है, बल्कि वैज्ञानिक मामलों में वस्तुतः हानिकारक है। इस प्रश्न पर कि स्वप्नों का अर्थ कई तरह का या अनेक पहलुओं वाला क्यों नहीं होना चाहिए, मेरा उत्तर वही है, जो ऐसे मामले में प्रायः होता है: मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए। यदि वे ऐसे होते तो मुझे कोई ऐतराज न होता। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है वे ऐसे हो सकते हैं! पर स्वप्नों के इस अधिक विस्तृत

अधिक सुविधाजनक अवधारण के मार्ग मे सिर्फ एक छोटी-सी बाधा है—कि .वे वैसे नहीं होते ! मेरा दूसरा उत्तर इस बात पर बल देगा कि यह ा कि स्वप्न विचारों की और बौद्धिक कार्यों की बहुत तरह की रीतियों के क होते हैं, मेरे लिए कोई नई चीज नही है। एक बार एक रोगी के रोग- (हिस्टरी) मे मैंने एक ऐसा स्वप्न दर्ज किया जो लगातार तीन रातों तक आया फिर कभी नहीं आया; मैंने उसकी यह व्याख्या की कि स्वप्न किसी संकल्प तिरूप था, और उस संकल्प के पूरा होते ही इसके फिर दीखने की कता नही रही। बाद मे मैंने एक स्वप्न प्रकाशित किया जो एक अपराध- ति को निरूपित करता था। इसलिए यह कैसे हो सकता है कि मैं स्वय अपना र करू और बलपूर्वक कहूं कि स्वप्न सदा और एकमात्र इच्छापूर्ति होते हैं।

मैं कोई ऐसी मूर्खतापूर्ण गलतफहमी चलने देने के बजाय, जिससे स्वप्नों के में हमारी सारी मेहनत अकारथ हो जाए, इस बात पर बल देना ज्यादा ा समझता हू । उस गलतफहमी के कारण लोग स्वप्न को गुप्त स्वप्न- ार समझ लेते हैं, और स्वप्न के बारे में वे बातें कह देते हैं जो गुप्त स्वप्न- ारों पर और सिर्फ उन्हींपर लागू होती हैं। कारण कि यह बिल्कुल सच क स्वप्न अभी बताए गए सब तरह के विचारों अर्थात् संकल्प, चेतावनी, तन, आचार सम्बन्धी किसी समस्या को हल करने की तैयारी या कोशिश ादि को निरूपित भी कर सकते हैं, और ये बातें स्वप्नों के स्थान पर भी आ ती हैं, पर जब आप बारीकी से देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि यह बात उन गुप्त विचारों के बारे में सही है जो स्वप्न के रूप में बदल गए हैं। नों के निर्वचनों से आपको मालूम हुआ था कि मनुष्य के अचेतन विचार-प्रक्रमों ऐसे संकल्प, तैयारियां और चिन्तन भरे पड़े हैं जिनमे से स्वप्नतंत्र के द्वारा न बनते हैं। यदि किसी समय आपकी दिलचस्पी स्वप्नतंत्र में उतनी नहीं बल्कि लोगों के अचेतन विचार-प्रक्रमों पर केन्द्रित है, तो आप स्वप्न-निर्माण छोड़ देंगे, और स्वप्नों के बारे में यह कहने लगेंगे कि वे किसी चेतावनी, ल्प आदि को निरूपित करते हैं, और यह बात व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए ी है। मनोविश्लेषण-कार्यों में प्राय. यह किया जाता है: साधारणतया हम नों के व्यक्त रूप को हटाने की कोशिश करते हैं, और उसके स्थान पर उन बन्धित गुप्त विचारों को लाने का यत्न करते हैं जिनसे स्वप्न पैदा होते हैं।

इस प्रकार हमें गुप्त स्वप्न-विचारों का मूल्यांकन करने की कोशिश से लकुल प्रामाणिक रूप से यह पता चलता है कि ऊपर गिनाए गए सब अति टिल मानसिक कार्य अचेतन रूप से किए जा सकते हैं—यह निष्कर्ष जितना स्मयकारक है, निश्चित रूप से उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

पर थोड़ा-सा पीछे लौटिए। आपका यह कहना बिलकुल सही है कि स्वप्न

इन अनेक विचार-रीतियो को निरूपित करते हैं, परन्तु यह तभी सही है [illegible]
आपके मन में बिलकुल स्पष्ट हो कि यह बात को संक्षिप्त रूप में कहने [illegible]
तरीका है, और आप यह कल्पना न करें कि आप जिस अनेकरूपता की [illegible]
कर रहे है, वह स्वय ही स्वप्नों के सारभूत स्वरूप का हिस्सा है। जब [illegible]
'स्वप्न' की चर्चा करते हैं, तब आपका आशय या तो व्यक्त स्वप्न अर्थात् स्वप्न-
तन्त्र से उत्पन्न वस्तु होगा, अथवा अधिक से अधिक वह स्वप्नतन्त्र अर्थात् इन
सिक प्रक्रम होगा, जो गुप्त स्वप्न-विचारो को व्यक्त स्वप्नों के रूप में लाता है।
इस शब्द का किसी और अर्थ में प्रयोग विचार-विभ्रम है, जिसमें अवश्य ही
गड़बड पैदा हो जाएगी। यदि कुछ भी आप स्वप्न के पीछे मौजूद गुप्त विचारों
के बारे में कहना चाहते हैं तो स्पष्ट रूप से वैसा कहिए, और अपनी शिथिल
अभिव्यक्ति से समस्या को और अस्पष्ट मत बनाइए। गुप्त स्वप्न-विचार वह कच्ची
है जिसे स्वप्नतन्त्र व्यक्त स्वप्न मे बदल देता है। आप सामग्री को, और सामग्री [illegible]
होने वाले प्रक्रम को अलग-अलग पहचानने के समय क्यो लगातार भ्रम में [illegible]
जाते हैं ? यदि आप ऐसे भ्रम मे पडते हैं तो उन लोगो से आप किस [illegible]
श्रेष्ठ हैं जिन्हे सिर्फ अन्तिम उत्पन्न वस्तु का ही पता होता है और जो इस [illegible]
बता सकते कि वह कहा से आती है, या कैसे बनती है ?

स्वय स्वप्न के लिए एकमात्र आवश्यक चीज वह स्वप्नतन्त्र है जिसने विचार-
सामग्री पर क्रिया की है, और जब हम सिद्धान्त-विवेचन पर आते हैं, तब हमें इसका
तिरस्कार करने का कोई अधिकार नहीं, चाहे कुछ क्रियात्मक स्थितियों में इसकी
उपेक्षा की जा सकती हो। दूसरी बात यह है कि विश्लेषण सम्बन्धी प्रेक्षण से पता
होता है कि स्वप्नतन्त्र मे सिर्फ गुप्त विचारो को ऊपर वर्णित आद्य या [illegible]
अभिव्यक्तिरूपों मे बदल देना ही नहीं है; इसके विपरीत, कुछ ऐसी चीज इसमें
सदा जोडी भी जाती है जो दिन के समय के गुप्त विचारों में नहीं होती, पर जो
स्वप्न-निर्माण मे वास्तविक प्रेरक बल होती है। यह अनिवार्य अवयव उसी [illegible]
अचेतन इच्छा होती है, जिसकी पूर्ति के लिए स्वप्न की वस्तु रूपान्तरित होती है।
तो, जहा तक हम स्वप्न मे निरूपित विचार-मात्र पर गौर कर रहे हैं, वह [illegible]
स्वप्न ऐसी कोई भी चीज, जैसे चेतावनी, संकल्प, तैयारी आदि हो सकता है। [illegible]
इसके अलावा, यह स्वय सदा एक अचेतन इच्छा की पूर्ति होता है, और जब [illegible]
इसे स्वप्नतन्त्र का परिणाम-मात्र मानते हैं, तब यह सिर्फ इच्छापूर्ति होता है। [illegible]
स्वप्न कभी भी संकल्प या चेतावनी की अभिव्यक्ति-मात्र नहीं होता, और इस [illegible]
अधिक भी नहीं होता। इसमें संकल्प या और जो भी कुछ हो, वह एक अचेतन इच्छा
की मदद से आद्य रूप में बदल जाता है, और इस तरह रूपान्तरित हो जाता है [illegible]
'रूपान्तरित'[1] हो जाता है कि वह इच्छापूर्ति हो जाता है। [illegible]

[1] Metamorphosed

पर वहां भी परेशानी स्वयं स्वप्न पेश नहीं कर सकती। इस विचार में से, कि 'विवाह करने में इतनी जल्दी करना मूर्खता थी,' तब तक स्वप्न नहीं बन सकता था, जब तक उस विचार ने बचपन की यह देखने की इच्छा को कि विवाह के बाद क्या होता है, न जगा दिया हो। इस प्रकार इस इच्छा ने स्वप्नवस्तु बनाई और उसमें विवाह के स्थान पर 'थियेटर जाना' ला दिया, और उसका रूप विवाह से पहले की इस इच्छापूर्ति का रूप था कि 'मैं अब थियेटर जा सकती हूं, और मैं सब चीज़ें देख सकती हूं जो हमें कभी देखने नहीं दी गईं, और तुम नहीं देख सकती, मेरा विवाह हो चुका है, और तुम्हें प्रतीक्षा करनी है।' इस प्रकार वास्तविक स्थिति विपरीत स्थिति में बदल गई, और पहले की जीत के स्थान पर हार की बेचैनी आ गई; और प्रसन्नता 'ताकने या देखने' के आवेग और महत्त्वपूर्ण प्रतिद्वन्द्विता के आवेग, दोनों की सन्तुष्टि हो गई। यह पीछे वाला सन्तोष ही स्वप्न की प्रकट वस्तु निश्चय या निर्धारित करता है, क्योंकि इसमें वह सचमुच थियेटर में बैठी है जबकि उसकी सहेली अन्दर नहीं आ सकती। स्वप्नवस्तु के भाग, जिनके पीछे गुप्त विचार अब भी अपने-आपको छिपाए हुए हैं, सन्तुष्टि-कारक स्थिति के अनुचित और समझ में न आनेवाले रूप-भेदों के रू[illegible] होंगे। निर्वचन का काम यह है कि उन सारी बातों को अलग कर दे [illegible] पूर्ति को निरूपित करती हैं, और इन संकेतों से कष्टकारक गुप्त [illegible] पुन: रचना करे।

मैंने आपके ध्यान में जो नई बात लाने के लिए कहा था वह यही थी [illegible] इन गुप्त स्वप्न-विचारों पर, जो अब प्रमुख रूप से सामने आए हैं, ध्यान [illegible] यह प्रार्थना है कि आप ये बातें न भूलें (एक) स्वप्नद्रष्टा को इनका ज्ञान [illegible] नहीं है; (दो) वे बिलकुल तर्कसंगत और सुसम्बद्ध हैं, और इसलिए हम [illegible] रूप में समझ सकते हैं कि वे उसी उद्दीपन की सुबोध प्रतिक्रिया हैं जिस [illegible] को जन्म दिया, और (तीन) उनका मूल्य किसी मानसिक आवेग या व्यापार के मूल्य जितना हो सकता है। अब मैं इन विचारों को और भी [illegible] पिछले दिन के अवशेष कहूंगा; स्वप्नद्रष्टा उन्हें माने या न माने। इसके [illegible] इस 'अवशेष' और 'गुप्त स्वप्न-विचारों' में अन्तर करूंगा, और इस तरह, [illegible] हम करते रहे हैं, स्वप्न के निर्वचन से ज्ञात हर बात को 'गुप्त स्वप्न' कहूंगा [illegible] 'पिछले दिन का अवशेष' गुप्त स्वप्न-विचारों का सिर्फ एक अंश है। तो, [illegible] होता है उसके विषय में हमारा अवधारण यह है, पिछले दिन के अवशेष में [illegible] चीज़ और जुड़ गई है। यह चीज़ भी अचेतन से सम्बन्ध रखती है। यह एक [illegible] पर-दमित, अर्थात् दबाया गया, इच्छा-आवेग है, और इसके होने पर ही स्वप्न [illegible] है। इच्छा-आवेग अवशेष पर क्रिया करके गुप्त स्वप्न-विचार [illegible] की सृष्टि करता है जिसका हमारे जाग्रत् जीवन के दृष्टि[illegible]

से अब बुद्धिसंगत या सुबोध दिखाई देना आवश्यक नहीं रहता।

अवशेष और अचेतन इच्छा के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए मैंने कहीं एक दृष्टान्त दिया है, और उसीको मैं यहां दोहराना चाहता हूं। प्रत्येक कारबार के लिए उसके खर्चे उठानेवाले पूंजीपति की, और एक ऐसे मालिक-प्रबन्धक की आवश्यकता होती है जिसे उस कारबार की जानकारी हो, और उसे चलाना आता हो। स्वप्न-निर्माण मे पूंजीपति वाला कार्य सदा अचेतन इच्छा द्वारा, और इस इच्छा द्वारा ही, किया जाता है। यह ही इसके लिए आवश्यक मानसिक ऊर्जा-रूपी धन देती है; मालिक-प्रबन्धक पिछले दिन का अवशेष है जो खर्च करने का तरीका निश्चित करता है। नि सन्देह ऐसा हो सकता है कि स्वयं पूंजीपति को कारबार की सामान्य या विशेष जानकारी हो, या मालिक-प्रबन्धक के पास ही पूंजी हो। इससे व्यावहारिक स्थिति बड़ी सरल हो जाती है, पर उसका सिद्धान्तपक्ष अधिक कठिन हो जाता है। अर्थशास्त्र में हम पूंजीपति का कार्य करनेवाले मनुष्य मे और उसी मनुष्य की मालिक-प्रबन्धक की हैसियत मे विभेद करते हैं, और इस विभेद से वह मूल स्थिति आ जाती है जिसके आधार पर हमारा दृष्टान्त खड़ा है। स्वप्न के निर्माण में भी वे परिणामन या विविध रूप पाए जाते हैं—ये मैं आपके ढूंढने के लिए छोड़ देता हूं।

इस प्रश्न पर अब हम और विचार नहीं करेंगे क्योंकि मुझे लगता है कि आपके मन मे एक बाधक ख्याल बहुत समय से आया हुआ होगा, और वह विचारने योग्य है। आप पूछ सकते हैं, "क्या तथाकथित 'अवशेष' उस अर्थ मे वास्तव में अचेतन है जिसमें स्वप्न के निर्माण के लिए आवश्यक इच्छा अचेतन है ?" आपकी शंका उचित है। यह सारे विषय की मुख्य समस्या है। वे दोनो एक ही अर्थ में अचेतन नहीं हैं। स्वप्न-इच्छा एक दूसरे प्रकार के अचेतन से सम्बन्ध रखती है। इस अचेतन की जड़ें, जैसाकि हम देख चुके हैं, शैशवकाल में होती हैं, और इसमें विशेष तत्त्व होते हैं। इन दोनो प्रकार के 'अचेतनों' में फर्क करने के लिए इन्हें अलग-अलग नाम देना सबसे अच्छा रहेगा। पर फिर भी हम तब तक इस मामले में रुके रहेंगे, जब तक कि हम स्नायुरोगों की घटनाओं से परिचित न हो जाएं। यदि किसी प्रकार के अचेतन के अस्तित्व की हमारी अवधारणा को पहले ही कल्पना-प्रसूत मान लिया जाए, तो हमारे यह कहने पर कि अपने उद्देश्य पर पहुचने के लिए हमें दो प्रकार के अचेतन मानने पड़े हैं, लोगों पर क्या

यह बात हम यहीं छोड़ते है। यहां

क्या यह विचार आशाजनक नहीं !.

हमारे पीछे आनेवालें आगे

खोजने वाली बातें नहीं

पर यहा भी परेशानी स्वय स्वप्न पैदा नही कर सकती । इस विचार से, कि 'विवाह करने मे इतनी जल्दी करना मूर्खता थी,' तब तक स्वप्न नहीं बन सकता था, जब तक उस विचार ने बचपन की यह देखने की इच्छा को कि विवाह के बाद क्या होता है, न जगा दिया हो । इस प्रकार इस इच्छा ने स्वप्नवस्तु बनाई और उसमे विवाह के स्थान पर 'थियेटर जाना' ला दिया, और उसका रूप विवाह से पहले की इस इच्छापूर्ति का रूप था कि 'मैं अब थियेटर जा सकती हू, और वे सब चीजें देख सकती हू जो हमें कभी देखने नहीं दी गईं; और तुम नहीं देख सकती; मेरा विवाह हो चुका है, और तुम्हें प्रतीक्षा करनी है।' इस प्रकार वास्तविक स्थिति विपरीत स्थिति मे बदल गई, और पहले की जीत के स्थान पर हार की बेचैनी आ गई; और प्रसगत 'ताकने या देखने' के आवेग और अहंतापूर्ण प्रतिद्वन्द्विता के आवेग, दोनो की सन्तुष्टि हो गई । यह पीछे वाला सन्तोष ही स्वप्न की व्यक्त वस्तु नियत या निर्धारित करता है, क्योंकि इसमे वह वस्तुतः थियेटर मे बैठी है जबकि उसकी सहेली अन्दर नही आ सकती । स्वप्नवस्तु के अश, जिनके पीछे गुप्त विचार अब भी अपने-आपको छिपाए हुए हैं, सन्तुष्टिकारक स्थिति के अनुचित और समझ मे न आनेवाले रूप-भेदों के रूप में प्राप्त होंगे । निर्वचन का काम यह है कि उन सारी बातों को अलग कर दे जो इच्छापूर्ति को निरूपित करती हैं, और इन सकेतों से कष्टकारक गुप्त विचारों की पुन. रचना करे ।

मैंने आपके ध्यान मे जो नई बात लाने के लिए कहा था वह यही थी कि आप इन गुप्त स्वप्न-विचारो पर, जो अब प्रमुख रूप से सामने आए है, ध्यान दें । मेरी यह प्रार्थना है कि आप ये बातें न भूलें : (एक) स्वप्नद्रष्टा को इनका ज्ञान या चेतना नहीं है, (दो) वे बिलकुल तर्कसगत और सुसम्बद्ध है, और इसलिए हम उन्हें इस रूप मे समझ सकते है कि वे उसी उद्दीपन की सुबोध प्रतिक्रिया हैं जिसने स्वप्न को जन्म दिया; और (तीन) उनका मूल्य किसी मानसिक आवेग या बौद्धिक व्यापार के मूल्य जितना हो सकता है । अब मैं इन विचारों को और भी ठहराके पिछले दिन के अवशेष कहूगा; स्वप्नद्रष्टा उन्हें माने या न माने । इसके बाद मैं इस 'अवशेष' और 'गुप्त स्वप्न-विचारो' में अन्तर करूगा, और इस तरह, जैसे कि हम करते रहे हैं, स्वप्न के निर्वचन से ज्ञात हुई बात को 'गुप्त स्वप्न' कहूगा और 'पिछले दिन का अवशेष' गुप्त स्वप्न-विचारों का सिर्फ एक अश है। तो, जो कुछ होता है उसके विषय मे हमारा अवधारण यह है : पिछले दिन के अवशेष में कोई चीज और जुड गई है। यह चीज भी अचेतन से सम्बन्ध रखती है । यह एक प्रबल पर दमित, अर्थात् दबाया गया, इच्छा-आवेग है, और इसके होने पर ही स्वप्न का निर्माण हो सकता है । इच्छा-आवेग अवशेष पर क्रिया करके गुप्त स्वप्न विचारों के उस दूसरे भाग की सृष्टि करता है जिसका हमारे जाग्रत् जीवन के दृष्टिकोण

से अब बुद्धिसगत या सुबोध दिखाई देना आवश्यक नहीं रहता।

अवशेष और अचेतन इच्छा के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए मैंने कहीं एक दृष्टान्त दिया है, और उसीको मैं यहा दोहराना चाहता हू। प्रत्येक कारबार के लिए उसके खर्च उठानेवाले पूजीपति की, और एक ऐसे मालिक-प्रबन्धक की आवश्यकता होती है जिसे उस कारबार की जानकारी हो, और उसे चलाना आता हो। स्वप्न-निर्माण में पूजीपति वाला कार्य सदा अचेतन इच्छा द्वारा, और इस इच्छा द्वारा ही, किया जाता है। यह ही इसके लिए आवश्यक मानसिक ऊर्जा-रूपी धन देती है, मालिक-प्रबन्धक पिछले दिन का अवशेष है जो खर्च करने का तरीका निश्चित करता है। नि सन्देह ऐसा हो सकता है कि स्वयं पूजीपति को कारबार की सामान्य या विशेष जानकारी हो, या मालिक-प्रबन्धक के पास ही पूजी हो। इससे व्यावहारिक स्थिति बडी सरल हो जाती है, पर उसका सिद्धान्तपक्ष अधिक कठिन हो जाता है। अर्थशास्त्र में हम पूजीपति का कार्य करनेवाले मनुष्य मे और उसी मनुष्य की मालिक-प्रबन्धक की हैसियत मे विभेद करते हैं, और इस विभेद से वह मूल स्थिति आ जाती है जिसके आधार पर हमारा दृष्टान्त खडा है। स्वप्न के निर्माण में भी ये परिणामन या विविध रूप

पर यहां भी परेशानी स्वयं स्वप्न पैदा नहीं कर सकती। इस विचा
'विवाह करने मे इतनी जल्दी करना मूर्खता थी,' तब तक स्वप्न नहीं
था, जब तक उस विचार ने बचपन की यह देखने की इच्छा को कि वि
क्या होता है, न जगा दिया हो। इस प्रकार इस इच्छा ने स्वप्नवस्तु ब
उसमें विवाह के स्थान पर 'थियेटर जाना' ला दिया, और उसका रूप
से पहले की इस इच्छापूर्ति का रूप था कि 'मैं अब थियेटर जा सकती हूं
वे सब चीजें देख सकती हूं जो हमें कभी देखने नहीं दी गईं, और तुम नहीं
सकती, मेरा विवाह हो चुका है, और तुम्हें प्रतीक्षा करनी है।' इस प्रकार व
विक स्थिति विपरीत स्थिति में बदल गई, और पहले की जीत के स्थान पर
की बेचैनी आ गई; और प्रसगत 'ताकने या देखने' के आवेग और अनुराग
प्रतिद्वन्द्विता के आवेग, दोनों की सन्तुष्टि हो गई। यह पीछे वाला सन्तोष
स्वप्न की व्यक्त वस्तु नियत या निर्धारित करता है, क्योंकि इसमें वह वस्तु
थियेटर में बैठी है जबकि उसकी सहेली अन्दर नहीं आ सकती। स्वप्नवस्तु
अश, जिनके पीछे गुप्त विचार अब भी अपने-आपको छिपाए हुए हैं, वस्तु
कारक स्थिति के अनुचित और समझ में न आनेवाले रूप-भेदों के रूप में इच्छा
होते। निर्वचन का काम यह है कि उन सारी बातों को अलग कर दे जो इच्छा-
पूर्ति को निरूपित करती हैं, और इन सकेतों से कष्टकारक गुप्त विचारों की
पुनः रचना करे।

मैंने आपसे —

ते अब बुद्धिसगत या सुबोध दिखाई देना आवश्यक नहीं रहता।

अवशेष और अचेतन इच्छा के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए
वहीं एक दृष्टान्त दिया है, और उसीको मैं यहा दोहराना चाहता हू। अ
कारबार के लिए उसके खर्चे उठानेवाले पूजीपति की, और एक ऐसे मा
प्रबन्धक की आवश्यकता होती है जिसे उस कारबार की जानकारी हो, औ
चलाना आता हो। स्वप्न-निर्माण मे पूजीपति वाला कार्य सदा अचेतन
द्वारा, और इस इच्छा द्वारा ही, किया जाता है। यह ही इसके लिए आव
मानसिक ऊर्जा-रूपी धन देती है; मालिक-प्रबन्धक पिछले दिन का अवशेष
खर्च करने का तरीका निश्चित करता है। नि सन्देह ऐसा हो सकता है कि
पूजीपति को कारबार की सामान्य या विशेष जानकारी हो, या मालिक-प्रब
के पास ही पूंजी हो। इससे व्यावहारिक स्थिति बडी सरल हो जाती है, पर उ
सिद्धान्तपक्ष अधिक कठिन हो जाता है। अर्थशास्त्र में हम पूजीपति का
करनेवाले मनुष्य मे और उसी मनुष्य की मालिक-प्रबन्धक की हैसियत मे
करते हैं, और इस विभेद से वह मूल स्थिति आ जाती है जिसके आधा
हमारा दृष्टात खडा है। स्वप्न के निर्माण मे भी ये परिणामन या विविध
पाए जाते हैं—ये मैं आपके ढूढने के लिए छोड़ देता हू।

इस प्रश्न पर अब हम और विचार नहीं करेंगे क्योंकि मुझे लगता है कि
मन में एक बाधक ख्याल बहुत समय से आया हुआ होगा, और वह विचारने
है। आप पूछ सकते हैं, "क्या तथाकथित 'अवशेष' उस अर्थ मे वास्तव में अ
है जिसमें स्वप्न के निर्माण के लिए आवश्यक इच्छा अचेतन है ?" आपकी
उचित है। यह सारे विषय की मुख्य समस्या है। वे दोनों एक ही अर्थ में अ
नहीं हैं। स्वप्न-इच्छा एक दूसरे प्रकार के अचेतन से सम्बन्ध रखती है। इस
तन की जड़ें, जैसाकि हम देख चुके हैं, शैशवकाल में होती हैं, और इसमें
तन्त्र होते हैं। इन दोनो प्रकार के 'अचेतनों' में फर्क करने के लिए इन्हें
अलग नाम देना सबसे अच्छा रहेगा। पर फिर भी हम तब तक इस मामले
रहेंगे, जब तक कि हम स्नायुरोगों की घटनाओं से परिचित न हो जाए।
किसी प्रकार के अचेतन के अस्तित्व की हमारी अवधारणा को पहले ही क
प्रसूत मान लिया जाए, तो हमारे यह कहने पर कि अपने उद्देश्य पर पहुंचने
हमें दो प्रकार के अचेतन मानने पड़े हैं, लोगो पर क्या असर पड़ेगा ?

यह बात हम यहीं छोडते हैं। यहा फिर आपने अधूरी बात सुनी,
क्या यह विचार आशाजनक नहीं कि हमारी इस जानकारी को हम स्व
हमारे पीछे आनेवाले आगे बढ़ाएगे और क्या स्वयं हमने काफी नई और
चौंकाने वाली बातें नहीं जानी हैं ?

संदिग्ध पहलू और समीक्षात्मक विचार

स्वप्नो के विषय को छोड़ने से पहले हम उन ग्राम प्रचलित संदेहो
अनिश्चितताओ पर विचार करना चाहते हैं, जो ऊपर पेश किए गए नये वि
और अवधारणाओ के सिलसिले मे पैदा होती हैं। आपमे से जो लोग
व्याख्यानों को ध्यान से सुनते रहे हैं, उनके मन मे इस तरह की कुछ शंका
जमा हो गई होगी।

१. आपपर यह असर पड़ा होगा कि मनोविश्लेषण की विधि का पूरी तरह
अनुसरण करने पर भी हमारे स्वप्न-निर्वचन के कार्य मे अनिश्चितता के लिए इतनी
गुंजाइश रह जाती है कि व्यक्त स्वप्नों का उनके गुप्त स्वप्न-विचारो मे विश्वसनीय
अनुवाद उसके द्वारा नहीं किया जा सकता। सबसे पहले आप यह कहेंगे कि हमें
कभी भी यह पता नही चलता कि स्वप्न के किसी अवयव-विशेष को उसके शाब्दि
रूप मे माना जाए, या उसे प्रतीक माना जाए, क्योकि प्रतीकों के रूप मे प्रयुक्त
वस्तुओ का अपना स्वरूप, प्रतीक बन जाने के कारण, समाप्त नहीं हो जाता। इस
इस प्रश्न का फैसला करने के लिए कोई बाहरी आधार नहीं है, तब उस बात को
का निर्वचन निर्वचनकर्ता की मनमानी इच्छा पर छोड़ देना होगा। दूसरी बात यह
कि क्योकि स्वप्नतन्त्र मे विरोधी या विपरीत वस्तुए एक-दूसरे के ऊपर होती हैं,
इसलिए यह प्रत्येक उदाहरण मे अनिश्चित होता है कि कोई विशिष्ट स्वप्न-अवय
अपने दीखनेवाले स्वरूप मे ग्रहण किया जाए, या अपने विपरीत अर्थ मे ग्रहण कि
जाए—यह निर्वचनकर्ता को अपनी मनमानी करने का एक और मौका मिल।
तीसरी, बात स्वप्नो मे अनेक प्रकार के, अपवर्तन का प्रयोग बहुत अधिक या
होने के कारण वह जब चाहे यह कल्पना कर सकता है कि ऐसा अपवर्तन हुआ है।
अन्त में, आप इस बात की ओर मेरा ध्यान खींचेंगे कि यह निश्चय नहीं हो पा
कि जो निर्वचन किया गया है, सिर्फ वही हो सकता था, और यह खतरा ह
रहता है कि उसी स्वप्न का सर्वथा उचित दूसरा निर्वचन ओझल रह जाए। इन
इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इन अवस्थाओं में निर्वचनकर्ता के विवेक को ——

मिल जाती है जिसके कारण परिणाम में वैज्ञानिक निश्चितता आनी कठिन है; अथवा आप यह भी मान सकते हैं कि स्वप्नों मे कोई दोष नहीं है, बल्कि हमारी अवधारणाओं और साध्यावयवों[1] मे ही कोई गलती है, जिसके कारण हमारे निर्वचन सन्तोषजनक नहीं हो पाते।

आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है, पर तो भी, मैं नहीं समझता कि इससे आपके इन निष्कर्षों का औचित्य सिद्ध होता है कि हम जिस तरह का स्वप्न-निर्वचन करते हैं वह निर्वचनकर्ता के मन की मौज पर निर्भर है, और प्राप्त परिणामों के अधूरेपन से हमारी प्रक्रिया की शुद्धता पर आक्षेप आता है। यदि आप निर्वचन-कर्ता की 'मन की मौज' के स्थान पर उसके कौशल, उसके अनुभव और उसकी समझ की बात कहें तो मैं आपसे सहमत हूं। इस तरह के व्यक्तिगत अंश के बिना, विशेष रूप से निर्वचन कठिन होने पर, कभी भी काम नहीं चल सकता, पर यही बात दूसरे वैज्ञानिक कार्य मे भी होती है। मैं यह नहीं मान सकता कि किसी निश्चित विधि का प्रयोग एक आदमी दूसरे की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह या अधिक बुरी तरह करेगा; उदाहरण के लिए, प्रतीकों के निर्वचन से आपमे मनमानी की जो भावना पैदा हुई है, वह इस बात पर विचार करने से दूर हो सकती है कि साधारणतया स्वप्न-विचारों का एक-दूसरे से जुड़ा हुआ सिलसिला और स्वप्न के समय स्वप्न का स्वप्नद्रष्टा के जीवन और सारी मानसिक स्थिति से जुड़ा हुआ सिलसिला, सब सम्भव निर्वचनों मे से एक की ओर सीधा संकेत करता है, और शेष सबको बेकार कर देता है। यह निष्कर्ष कि निर्वचनों मे अधूरापन परिकल्पनाओं के युक्तिसंगत न होने के कारण है, यह सोचने पर गलत सिद्ध हो जाता है कि इसके विपरीत, स्वप्नों की अस्पष्टार्थता या अनिश्चितता ऐसा गुण है जिसके होने की हमें अवश्य आशा करनी चाहिए।

हमारे उस कथन को स्मरण कीजिए कि स्वप्नतंत्र स्वप्न-विचारों का चित्र-लिपि से मिलती-जुलती अभिव्यक्ति की आदिम रीति मे अनुवाद कर दिया करता है। इस तरह की सब आदिम अभिव्यक्ति-प्रणालियों मे अस्पष्टार्थता और अनिश्चितता अवश्य हुआ करती है, पर इस कारण हमारा उनके व्यावहारोपयोगी होने पर शक करना उचित नहीं। आप जानते हैं कि स्वप्नतंत्र में विरोधियों का सम्पात, अर्थात् एक-दूसरे के ऊपर आ जाना वैसा ही है, जैसे कि प्राचीनतम भाषाओं मे आदिम शब्दों के परस्पर विरोधी अर्थ। भाषातत्त्व-शास्त्री आर० एबल ने, जिससे हमें यह जानकारी मिली है, १८८४ में लिखा था कि आप बिलकुल कल्पना न करें कि इस तरह के परस्पर विरोधी दो अर्थों वाले शब्दों से एक व्यक्ति दूसरे से जो कुछ कहता है, उसमे कोई अस्पष्टता रहती है। इसके विपरीत, लहजे या सुर, हाव-भाव और सारे प्रसंग से इस बात मे कोई संशय नहीं रह

जाता कि बोलनेवाला दोनों विरोधी अर्थों में से
चाहता है। लिखने मे, जिसमे हाव-भाव नही रहते,
चित्र जोड दिए जाते थे, जो पृथक् अर्थ के वाचक नह
यदि अस्पष्ट अर्थ वाले केन शब्द का चित्रलिपि में
'कमजोर' और 'मजबूत' दोनो है तो क्रमशः झुके
आदमी का चित्र बना दिया जाता था। इस तरह
अस्पष्टार्थक होने पर भी गलतफहमी का मौका नही

अभिव्यक्ति की प्राचीन प्रणालियो में उदाहरण के
की लिपियो मे अनेक प्रकार की अनिश्चितता इतनी
हम अपने आज के लेखन मे सहन नहीं कर सकते। इस
या सामी लेखो मे शब्दो के व्यजन ही दिखाई देते हैं :
पाठक को अपनी जानकारी और प्रसग से लगाने पड़ते हैं
ही सिद्धान्त चलता है, यद्यपि वह बिलकुल यही नहीं ह
प्राचीन मिस्री भाषा के उच्चारण का कुछ भी पता नही च
मिस्रियों के धार्मिक लेखो में अन्य प्रकार की अनिश्चित
लिए, यह लेखक की इच्छा पर है कि वह दायें से बायें क
दायें को। उन्हें पढते हुए हमे यह याद रखना चाहिए कि
के चेहरो की दिशा मे हमें चलना होगा। पर लेखक या
से नीचे भी बना सकता था, और बहुत छोटी वस्तुओ पर
सोचकर कि ऐसा करने से आंख को अच्छा लगेगा, और मे
है, चिह्नों के विन्यास मे और भी हेर-फेर कर सकता था।
अधिक विभ्रम में डालनेवाली बात यह है कि शब्दों के बीच
जाती। सब चित्र पृष्ठ पर समान अन्तरो पर बनाए जाते हैं
जानना असम्भव होता है कि कोई दिया हुआ चिह्न पूर्ववर्ती
किसी नये शब्द का आरम्भिक हिस्सा है, पर ईरानी की रच
को अलग करने के लिए एक विशेष चिह्न का प्रयोग होता

बोलने और लिखने, दोनों मे काम आनेवाली चीनी भाषा
इसका प्रयोग अब भी चालीस करोड से अधिक लोग करते हैं।
मुझे यह भाषा जरा भी आती है। मैंने तो इसके बारे में कुछ जानक
की है क्योंकि मुझे आशा थी कि इसमे स्वप्नों में होने वाली
अनिश्चितता से मिलती-जुलती चीजें प्राप्त होंगी। मेरी आशा

मैं मनोविश्लेपण सम्बन्धी कुछ वाक्य उद्धृत करूंगा, 'इसके अलावा, उक्त पुस्तक मे ज्यूरिच के डा० फिस्टर द्वारा दिए गए उदाहरण मे कितनी खीचतान की गई है, यह देखकर हम चकित रह गए। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि एक ट्रेनिंग कालेज के हेडमास्टर ने इस तरह के वचनो और सिर्फ ऊपर से ठीक दीखनेवाली गवाहियो को इतने अधविश्वास के साथ स्वीकार कर लिया।' ये वाक्य 'एक शान्त मन से फैसला करनेवाले' की अन्तिम राय बताए गए हैं। मुझे यह शान्त मन वाली बात भूठी मालूम होती है। इन वचनो पर इस आशा से जरा बारीकी से विचार कीजिए कि इस विषय पर थोड़े विचार और जानकारी से 'शान्त मन के फैसले' को भी कोई हानि नहीं होगी।

यह देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है कि कोई आदमी सिर्फ अपने ऊपर पड़े पहले प्रभाव के आधार पर इतनी जल्दी और निर्भ्रान्त रूप से मनोविज्ञान के किसी कठिन प्रश्न पर मन स्थिर कर सकता है। उसे निर्वचन खीच-तान से किए गए मालूम होते हैं, और उसे वे नही जचते इसलिए वे गलत हैं, और यह सारा काम बिलकुल कूड़ा है। ऐसे आलोचक इस सम्भावना को अपने पास भी नही फटकने देते कि निर्वचनों के ऐसे ही होने के लिए काफी अच्छी युक्तिया हो सकती है। यदि वे इस सम्भावना को समझते हैं तो अगला प्रश्न यह होगा कि वे प्रबल युक्तिया क्या हैं।

इस आलोचना का आधार वह परिस्थिति है जिसका विस्थापन के प्रभाव से आवश्यक सम्बन्ध है, और विस्थापन स्वप्न-सेंसरशिप का सबसे प्रबल हथियार बताया गया है। इसकी सहायता से स्थानापन्न रचनाएं बनती हैं, जिन्हें हम अस्पष्ट निर्देश कहते हैं। पर ये अस्पष्ट निर्देश ऐसे होते हैं, जिन्हें इस रूप मे पहचानना तथा उनके पीछे की ओर चलकर असली विचार को खोजना भी आसान नहीं होता, क्योंकि वे इसके साथ बड़े असाधारण और कभी-कभी होनेवाले बाहरी साहचर्यों द्वारा जुड़े रहते हैं। पर इस सबका सम्बन्ध ऐसी वस्तुओ से होता है जिन्हें छिपाना इष्ट होता है, स्वप्न-सेंसरशिप का ठीक यही उद्देश्य है। पर हमें छिपाई गई वस्तु उसी स्थान पर देखने से मिल जाने की आशा न करनी चाहिए जहां वह सामान्यतया होती है। आजकल इस विषय मे सीमान्त-निरीक्षण अधिकारी स्थूल अधिकारियो की अपेक्षा कही अधिक होशियार हैं, क्योंकि वे निश्चित कागजात खोजते हुए सिर्फ पोर्टफोलिओ और चिट्ठियो के थैलो की तलाशी लेकर ही सन्तुष्ट नही हो जाते, बल्कि उन्हें यह सम्भावना भी रहती है कि जासूस और तस्कर कोई आपत्तिजनक चीज अपने शरीर मे ऐसे स्थान पर छिपाकर न ले जाए जहां उन्हें देखना बहुत मुश्किल है, या जहा रखने योग्य वे वस्तुएं नहीं होतीं; उदाहरण के लिए, अपने बूटों की दोहरी तलियों में। यदि छिपाई हुई वस्तुएं वहां मिल जाएं तो निश्चित ही यह कहना सच है कि उन्हें

नहीं है, वे सम्प्रेषण के साधन नहीं हैं। इसके विपरीत उनका समझ मे न आना ही महत्त्व की बात है। इसलिए यदि यह परिणाम निकले कि स्वप्नो की कुछ अस्पष्ट अर्थ वाली और अनिश्चित बातें स्पष्ट रूप से तय न की जा सकें तो हमे आश्चर्य नही करना चाहिए, या किसी भ्रम मे नहीं पड़ना चाहिए। हमारी तुलना से, जो एकमात्र निश्चित जानकारी प्राप्त होती है, वह यह है कि इस अनिश्चितता को (जिसे लोग हमारे स्वप्न-निर्वचनों की यथार्थता के विरुद्ध दलील बनाना चाहते हैं) अभिव्यक्ति की सभी आदिम प्रणालियों की सामान्य विशेषता मानना चाहिए।

अभ्यास और अनुभव से ही यह तय हो सकता है कि स्वप्न असल में कहां तक समझ में आ सकते हैं। मेरी अपनी राय यह है कि वे बहुत दूर तक समझ आ सकते हैं, और उचित रीति से शिक्षा पाए हुए विश्लेषकों ने जो परिणाम निकाले हैं, उनकी तुलना से मेरे विचार की पुष्टि होती है। आम जनता वैज्ञानिक कार्य में भी, वैज्ञानिक सफलता के मार्ग की कठिनाइयों और अनिश्चितताओं के मुकाबले में अपनी प्रबल सन्देहशीलता का प्रदर्शन करके खुश हुआ करती है। मैं समझता हूं कि उसका ऐसा करना गलत है। सम्भवत: आप सबको यह पता नहीं होगा। यही बात तब हुई थी जब बाबुल और असीरिया में मिले लेखों को पढ़ने की कोशिश की जा रही थी। एक ऐसा समय आया, जब लोकमत जोर-शोर से यह घोषणा कर रहा था कि कीलकाक्षर-लेखों को पढ़ने में लगे हुए लोग झूठी कल्पना के शिकार हो गए हैं और यह जांच-पड़ताल का सारा काम एक धोखा और ठगी है। पर १८५७ मे रायल एशियाटिक सोसायटी ने एक निश्चायक परीक्षा की। उसने इस गवेषण-कार्य मे लगे हुए चार सबसे प्रमुख व्यक्तियों रालिन्सन, हिक्स, फौक्स टैलबाट और ओपर्ट से यह कहा कि वे मुहरबन्द लिफाफों मे एक नये खोजे गए लेख के स्वतन्त्र अनुवाद सोसायटी को भेजें, और उन चारों की तुलना करने के बाद सोसायटी ने यह ऐलान किया कि उन चारों में काफी समानता है, जिससे अब तक प्राप्त परिणामों पर विश्वास किया जा सकता है, और आगे प्रगति की आशा की जा सकती है। तब पढ़े-लिखे सामान्य लोगों का हंसी उड़ाना धीरे-धीरे खत्म हो गया और उसके बाद से कीलकाक्षर-लेखों के पढ़ने में बहुत अधिक निश्चितता आ गई।

२. दूसरी तरह के ऐतराज़ों का ऐसी भावनाओं से निकट सम्बन्ध है जिनसे शायद आप भी नहीं बचे हैं, और वे ये हैं कि हमारे स्वप्न-निर्वचन की रीति से प्राप्त कई परिणाम खींच-तान या ज़बर्दस्ती लाए गए या मज़ाक-से लगते हैं। यह आलोचना इतनी अधिक होती है कि मैं उस आलोचना पर विचार करूंगा जो मेरे कान में सबसे पीछे पड़ी थी। अब सुनिए : आज़ाद देश स्विट्ज़रलैंड में हाल ही में एक हेडमास्टर से इस कारण अपने पद से त्यागपत्र देने को कहा गया कि वह मनो-विश्लेषण में दिलचस्पी ... [illegible] ...था, और ... चमत्कार में ... उसके ... [illegible]

'अंधेरे रोशनी में लाया गया,' पर फिर भी वे एक बहुत अच्छी 'खोज'

हम यह मानते हैं कि गुप्त स्वप्न-अवयव और इसके व्यक्त स्थानापन्न सम्बन्ध कभी-कभी बहुत असामान्य और बहुत दूर का प्रतीत होता है, यहां त कि कभी-कभी वह उपहास योग्य-सा मालूम होता है, और इसका कारण यह है। हमें ऐसे बहुत सारे उदाहरणों का अनुभव है जिनमें हम स्वयं अर्थ नहीं खोज सके सिर्फ हमारे प्रयत्नों से इन निर्वचनों पर पहुंचना प्राय. असम्भव होता है। कोई भं समझदार आदमी उन दोनों को जोड़नेवाले सम्बन्ध का अन्दाज़ा नहीं कर सकता। या तो स्वप्नद्रष्टा किसी प्रत्यक्ष साहचर्य के द्वारा सीधे ही पहेली सुलझा देता है (वही इसे सुलझा सकता है क्योंकि स्थानापन्न रचना उसके ही मन में पैदा हुई है), अथवा वह इतनी अधिक सामग्री दे देता है कि उसे हल करने के लिए विशेष जांच-पड़ताल की ज़रूरत नहीं पड़ती—हल आपसे-आप हमारे ऊपर आ पड़ता है। यदि स्वप्नद्रष्टा इनमें से किसी भी तरीके से हमारी मदद नहीं करता तो वह व्यक्त अवयव सदा के लिए हमारी समझ से बाहर रहेगा। इस तरह का एक और उदाहरण देखिए जो हाल में ही हुआ था। मेरी एक रोगिणी का पिता उसके इलाज के दिनों में गुज़र गया और इसके बाद वह अपने स्वप्नों में हर मौके पर उसे जीवित देखा करती थी। इनमें से एक स्वप्न में उसका पिता एक ऐसे सिलसिले में दिखाई दिया जो वैसे लागू नहीं हो सकता था, और बोला, 'अब सवा ग्यारह बजे हैं, अब साढ़े ग्यारह बजे हैं, अब पौने बारह बजे हैं।' इस अजीब-सी बात के अर्थ के बारे में वह इतना ही साहचर्य बता सकी कि उसका पिता उस समय बड़ा प्रसन्न होता था जब उसके बड़े बालक दोपहर के भोजन में ठीक समय पर पहुंचते थे। यह बात स्वप्न-अवयव के साथ निश्चित रूप से जचती थी, पर इससे इसके पैदा होने के कारण पर कोई रोशनी नहीं पड़ती थी। इलाज में हम जिस स्थिति पर पहुंच गए थे, उसके कारण इस संदेह के लिए काफी आधार मालूम होता था कि इसके स्वप्न में अपने प्रिय और सम्मानित पिता के प्रति किसी विरोध का हाथ है, पर उस विरोध को सावधानी से दबा दिया गया है। अपने और साहचर्य बताते हुए, जो इस स्वप्न से बिलकुल दूर मालूम होते थे, उसने बताया कि मैंने पिछले दिन मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर एक लम्बा विवेचन सुना था, और एक रिश्तेदार ने मुझसे कहा था, 'उरमेन्श (Urmensch : आदिम मानव) हम सबके अन्दर जीवित है।' अब हमें नई रोशनी दिखाई दी। अब इसे भी यह कल्पना करने का बहुत अच्छा मौका मिल गया है कि उसका मृत पिता जीवित है और उसने स्वप्न में उसे 'उहरमेन्श' (Uhrmensch : समय बतानेवाला) बना दिया जो दोपहर के भोजन के समय तक हर पन्द्रह मिनट का समय बताता था।

(ए० एडलर), आपको बिलकुल बेतुका जचेगा। इस तरह के स्वप्न होते अवश्य है। और आगे चलकर आपको पता चलेगा कि उनका ढाचा कुछ हिस्टीरिया के लक्षणो वाले ढाचे जैसा ही है। स्वप्नो की नई सामान्य विशेषताओ की इन सब खोजो की चर्चा करके मैं आपको उनके विरुद्ध चेतावनी देना चाहता हू या कम से कम उनके विषय मे अपनी राय आपके सामने स्पष्ट कर देना चाहता हू।

४ एक समय था जब कि स्वप्न-विषयक गवेषणाओ का वैज्ञानिक महत्त्व नष्टप्राय प्रतीत होता था, क्योकि जिन रोगियो का विश्लेषण द्वारा इलाज होता था, वे अपने स्वप्नो की वस्तु को अपने डाक्टरो के प्रिय सिद्धान्तो के अनुकूल बनाते दिखाई देते थे। कुछ लोगो का मुख्यत. यौन या मैथुन सम्बन्धी आवेगो का ही, दूसरो को सत्ता या आधिपत्य के आवेगो का ही, और कुछ को पुनर्जन्म का ही स्वप्न आता था (डबल्यू० स्टीकल)। इस बात का महत्त्व यह सोचने पर बहुत कम हो जाता है कि लोगों ने, स्वप्नो पर प्रभाव डालने के लिए मनोविश्लेषण के इलाज जैसी कोई चीज होने से पहले ही, स्वप्न देखे थे और आजकल इलाज करानेवाले रोगी इलाज शुरू करने से पहले भी स्वप्न देखा करते थे। इस बात मे, जिसे नई समझा जा रहा है, जो असली तथ्य है वह तुरन्त आपसे-आप स्पष्ट दिखाई देता है, और स्वप्नो के सिद्धान्त के लिए महत्त्वहीन है। पिछले दिन का अवशेष, जिससे स्वप्न पैदा होते हैं, जाग्रत् जीवन की बडी दिलचस्पियो मे बचा हुआ अवशेष है। यदि डाक्टर के शब्द और उसके दिए हुए उद्दीपन रोगी के लिए महत्त्वपूर्ण बन गए हैं तो वे, जो कुछ भी अवशेष है, उसमे प्रविष्ट हो जाते हैं और स्वप्न-निर्माण के लिए ठीक उसी तरह मानसिक उद्दीपन बन जाते हैं जैसे पिछले दिन की भावुकतापूर्ण अन्य दिलचस्पिया, जो अभी कम नही हुई हैं। वे उन शारीरिक उद्दीपनो की तरह ही क्रिया करते हैं जो सोते हुए आदमी पर सोते समय प्रभाव डालते हैं। स्वप्न पैदा करनेवाले इन दूसरे कारको की तरह डाक्टर द्वारा पैदा की गई विचार-शृखला भी प्रत्यक्ष स्वप्नवस्तु मे दिखाई दे सकती है, या गुप्त विचारो में उसके अस्तित्व का पता चल सकता है। हम सचमुच यह बात जानते हैं कि परीक्षणो द्वारा स्वप्न पैदा किए जा सकते हैं, या अधिक ठीक-ठीक कहा जाए तो स्वप्न-सामग्री का कुछ हिस्सा इस प्रकार स्वप्न मे प्रविष्ट कराया जा सकता है। इस प्रकार, अपने रोगियो पर प्रभाव डालनेवाला विश्लेषक वैसा ही कार्य करता है जैसा मोर्ली वोल्ड करता था—वह जिस व्यक्ति पर परीक्षण करता था उसके अंग को खास स्थितियो में रख देता था।

हम प्रभाव डालकर प्राय: यह निश्चित कर सकते हैं कि कोई मनुष्य किस विषय में स्वप्न देखे, पर यह कभी नही कर सकते कि वह क्या स्वप्न देखे ; क्योकि स्वप्नतन्त्र की प्रक्रिया और अचेतन स्वप्न-इच्छा किसी भी तरह के बाहरी प्रभाव की पहुच से बाहर है। जब हम शारीरिक उद्दीपनों से पैदा होनेवाले

और इससे उस नगर पर सिकन्दर की विजय की भविष्यवाणी ...
के कारण सिकन्दर ने घेरा जारी रखा, और अन्त में नगर का पतन हो गया। यह निर्वचन कितना झूठा या कृत्रिम मालूम होता है, पर निःसन्देह वह सही था।

३ मैं आसानी से कल्पना कर सकता हूं कि यह बात सुनकर आप विशेष प्रभावित होंगे कि जिन लोगों ने मनोविश्लेषक के रूप में बहुत समय तक स्वप्नों के निर्वचन का अध्ययन किया है, उन्होंने भी हमारी स्वप्नों की अवधारणा पर आक्षेप किए हैं। नई गलतियों के ऐसे अच्छे मौके को कैसे छोड़ दिया जाता? इसलिए विचारों में विभ्रम के कारण और अनुचित सामान्यकरण के आधार पर ऐसी बातें कही गई हैं, जो स्वप्नों की डाक्टरी अवधारणा से कम गलत नहीं हैं। इनमें से एक बात आप पहले सुन चुके हैं कि स्वप्न उस समय की परिस्थिति के अनुरूप बनने की कोशिशों और भविष्य की समस्याओं के हल को प्रकट करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' या लक्ष्य की ओर चलते हैं (ए० मीडर)। हम पहले यह दिखा चुके हैं कि इस कथन का आधार स्वप्न तथा गुप्त स्वप्न विचार को ठीक-ठीक अलग न कर सकना है और इसमें स्वप्नतन्त्र को नजरंदाज कर दिया गया है। जो लोग इस 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' की बात कहते हैं, यदि उसमें उनका आशय उस अचेतन मानसिक व्यापार से है जिसमें गुप्त विचार होते हैं, तो एक ओर तो इनमें कोई नई बात नहीं है, और दूसरी ओर, यह पूरा वर्णन नहीं है, क्योंकि अचेतन मानसिक व्यापार भविष्य के लिए तैयारी करने के अलावा और बहुत-से कामों में लगा रहता है। इस कथन में तो और भी विभ्रम दिखाई देता है कि प्रत्येक स्वप्न की तह में 'मृत्यु-संकेत' देखा जा सकता है। मुझे यह बात अच्छी तरह समझ में नहीं आई कि इस कथन का क्या आशय है, पर यह संदेह होता है कि इसकी आड़ में स्वप्न तथा स्वप्नद्रष्टा के सारे व्यक्तित्व को एक जगह मिलाकर घोटाला कर दिया गया है।

थोड़े-से प्रभावोत्पादक उदाहरणों के आधार पर किया गया एक अनुचित सामान्यकरण इस कथन में मौजूद है कि प्रत्येक स्वप्न के दो तरह के निर्वचन हो सकते हैं—एक उस तरह का जिस तरह का हमने बताया है, अर्थात् तथाकथित 'मनोविश्लेषणात्मक' निर्वचन, और दूसरा तथाकथित 'रहस्यवादी' निर्वचन, जो नैसर्गिक प्रवृत्तियों की उपेक्षा करता है और ऊंचे मानसिक कार्यों के निरूपण का लक्ष्य रखता है (एच० सिल्बरर)। इस तरह के कुछ स्वप्न होते हैं, पर इस अवधारणा में बहुसंख्यक स्वप्न भी नहीं आ सकते। जो कुछ आप सुन चुके हैं, उसके बाद यह कथन कि सब स्वप्नों का निर्वचन द्विलिंगी अर्थात् दो प्रवृत्तियों के—जिनमें से एक पुरुष और दूसरी स्त्री है—मेल के रूप में किया जा सकता है

स्वप्नों पर विचार कर रहे थे, तब हमने यह स्पष्ट समझ लिया था कि
स्वप्नद्रष्टा पर शारीरिक या मानसिक उद्दीपनों के क्रिया करने की जो
प्रतिक्रिया होती है, उसमें स्वप्न-जीवन की विशेषता और स्वतन्त्रता स्पष्ट दिखाई
देती है। ऊपर मैंने जिस आलोचना की चर्चा की है, जोकि स्वप्न सम्बन्धी
जांच-पड़ताल की वैज्ञानिकता पर सन्देह करती है, वह भी ऐसा कथन-मात्र है जो
न तथा स्वप्न-सामग्री में विभेद न करने के आधार पर खड़ा है।

मैं स्वप्नों की समस्याओं के बारे में आपको इतना ही बताना चाहता था।
प समझ रहे होंगे कि मैंने बहुत बड़े क्षेत्र को पार किया है, और यह भी देख लिया
ला कि प्रायः प्रत्येक बात पर मेरा विवेचन अधूरा रहा है, जैसाकि अनिवार्य
था। पर इसका कारण यह है कि स्वप्नों की घटनाएं स्नायुरोगों की घटनाओं
बहुत नज़दीकी सम्बन्ध रखती हैं। हमारी योजना यह थी कि स्नायुरोगों
अध्ययन की भूमिका के रूप में स्वप्नों का अध्ययन किया जाए, और स्ना
रोगों पर विचार करने के बाद स्वप्नों पर विचार करने की अपेक्षा यह तरी
निश्चित रूप से अच्छा था। परन्तु क्योंकि स्वप्न हमें स्नायुरोगों को सम
के लिए तैयार करते हैं, इसलिए स्वप्नों के बारे में सही धारणा भी तभी
सकती है, जब स्नायुरोगों के रूपों का कुछ ज्ञान हमें हो।

मैं नहीं जानता कि आप इसके बारे में क्या सोचेंगे पर मैं आपको वि
दिलाता हूं कि आपकी इतनी दिलचस्पी और समय स्वप्न सम्बन्धी सम
पर लगा देने का मुझे कोई भी अफसोस नहीं। उन कथनों की, जो मनोवि
के आधारभूत सिद्धान्त हैं, सचाई का इतना जल्दी निश्चय कराने का कोई
तरीका मुझे नहीं आता। यह स्पष्ट करने के लिए कि स्नायुरोगी के लक्षणों का
कुछ अर्थ होता है, वे कोई प्रयोजन सिद्ध करते हैं, और रोगी के जीवन सम्बन्धी
अनुभवों से पैदा होते हैं, महीनों, बल्कि वर्षों, कठिन परिश्रम की आवश्यकता है।
दूसरी ओर ये चीज़ें किसी स्वप्न में, जो पहले बिलकुल गड़बड़ और समझ में
न आनेवाला दिखाई देता था, दिखाने के लिए कुछ ही घण्टों की मेहनत काफी
है, और इस तरह उन सब आधारों की पुष्टि हो जाती है जिनपर मनोविश्लेषण
खड़ा है—अर्थात् अचेतन मानसिक प्रक्रमों का अस्तित्व, उनको बतानेवाले
विशेष तन्त्र, और उनमें अभिव्यक्त होनेवाले निसर्ग-वृत्तियों के प्रेरक बल। और
जब हम देखते हैं कि स्वप्नों के ढांचे और स्नायुरोगों के ढांचे में कितना सादृश्य
है, तथा सोचते हैं कि स्वप्नद्रष्टा कितनी जल्दी अच्छी तरह सजग और तर्कसंगत
मनुष्य बन जाता है, तब हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायुरोग भी मानसिक
जीवन में क्रियाशील बलों के अनुपात में होनेवाले परिवर्तन पर ही निर्भर है।

, . . ` का, विशेष रूप से व्यक्तियों का कोई उल्लेख नहीं करूंगा।
कथन की सचाई मैं कभी अपने मन मे नहीं बिठा सका कि 'द्वन्द्व या संघर्ष
वस्तुओं का जनक है।' मेरा ख्याल है कि यह कथन यूनानी सोफिस्टों के
। ने पैदा हुआ है और उस दर्शन की तरह इसमें भी यह त्रुटि है कि इसमे
'मकता' (या तर्क-पद्धति) को बहुत अधिक महत्त्व दे दिया गया है। इसके
ात, मुझे ऐसा लगता है कि तथाकथित वैज्ञानिक विवाद, कुल मिलाकर
द्रूल व्यर्थ है। और यह बात तो है ही कि यह प्राय. सदा बड़ी व्यक्तिगत
से किया जाता है। कुछ वर्ष पहले तक मैं गर्व से यह कह सकता था कि मैं
ानक झगड़े में सिर्फ एक बार बाकायदा उलझा हूं और वह भी सिर्फ एक वैज्ञानिक
नफैल्ड (म्यूनिख वाले) के साथ। इस झगड़े का अन्त यह हुआ कि हम दोनों
बन गए और आज तक मित्र हैं, पर मैंने बहुत समय तक यह परीक्षण फिर नहीं
ा, क्योंकि मुझे यह निश्चय नहीं था कि इसका परिणाम यही होगा।

इससे आप निश्चित रूप से यही समझेंगे कि इस तरह खुलेआम इन प्रश्नों
विचार करने से इन्कार से यही पता चलता है कि आप आलोचना से
। डरते हैं या हठी, या वैज्ञानिक जगत् में प्रचलित मुहावरे में कहा जाए तो,
रहे हैं। इसपर मेरा यह उत्तर है कि यदि आप इतने कठोर परिश्रम के
किसी निश्चय पर पहुंचे हों तो उससे आपको कुछ दृढ़ता के साथ उसपर
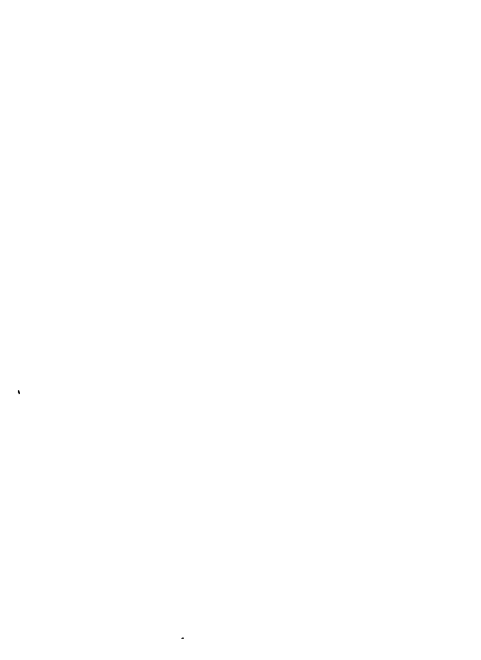
मे विवादास्पद बातों का, विशेष रूप से व्यक्तियों का कोई उल्लेख नहीं करूंगा। इस कथन की सचाई मैं कभी अपने मन में नहीं बिठा सका कि 'द्वन्द्व या संघर्ष सब वस्तुओं का जनक है।' मेरा ख्याल है कि यह कथन यूनानी सोफिस्टों के दर्शन से पैदा हुआ है और उस दर्शन की तरह इसमें भी यह त्रुटि है कि इसमें द्वन्द्वात्मकता' (या तर्क-पद्धति) को बहुत अधिक महत्त्व दे दिया गया है। इसके विपरीत, मुझे ऐसा लगता है कि तथाकथित वैज्ञानिक विवाद, कुल मिलाकर बिलकुल व्यर्थ है। और यह बात तो है ही कि यह प्राय: सदा बड़ी व्यक्तिगत रीति से किया जाता है। कुछ वर्ष पहले तक मैं गर्व से यह कह सकता था कि मैं वैज्ञानिक झगड़े में सिर्फ एक बार बाकायदा उलझा हूं और वह भी सिर्फ एक वैज्ञानिक लोवनफेल्ड (म्यूनिख वाले) के साथ। इस झगड़े का अन्त यह हुआ कि हम दोनों मित्र बन गए और आज तक मित्र हैं, पर मैंने बहुत समय तक यह परीक्षण फिर नहीं किया, क्योंकि मुझे यह निश्चय नहीं था कि इसका परिणाम यही होगा।

इससे आप निश्चित रूप से यही समझेंगे कि इस तरह खुलेआम इन प्रश्नों पर विचार करने से इन्कार से यही पता चलता है कि आप आलोचना से बहुत डरते हैं या हठी, या वैज्ञानिक जगत् मे प्रचलित मुहावरे में कहा जाए तो, दुराग्रही हैं। इसपर मेरा यह उत्तर है कि यदि आप इतने कठोर परिश्रम के बाद किसी निश्चय पर पहुंचे हों तो उससे आपको कुछ दृढ़ता के साथ उसपर डटे रहने का अधिकार होना चाहिए। इसके अलावा मैं यह कह सकता हूं कि अपने गवेषणा-कार्य के बीच में मैंने स्वयं महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचार बदले हैं, और सदा इस तथ्य को प्रकाशित कर दिया है। इस स्पष्टवादिता या साफगोई का क्या परिणाम हुआ ? कुछ लोगों ने मेरे विचारों में स्वयं मुझ द्वारा किए गए संशोधनों को बिलकुल नजरन्दाज कर दिया, और वे आज भी उन विचारों के लिए मेरी आलोचना करते हैं जिनका अब मेरे लिए वह अर्थ नहीं रहा। कुछ लोग यह परिवर्तन करने के कारण मेरी निन्दा करते हैं और इसलिए मुझे भरोसा करने के अयोग्य बताते हैं। जो आदमी एक या दो बार विचार बदल ले वह विश्वास का पात्र कैसे हो सकता है, क्योंकि उसका इस बार का कथन भी गलत हो सकता है; पर जो आदमी अपनी एक बार कही हुई बात पर अड़ा रहे या उसमें आसानी से हेर-फेर करने से इन्कार कर दे, वह हठी या दुराग्रही है। ठीक है न ? ऐसी परस्पर विरोधी आलोचनाओं को देखते हुए सिवाय इसके क्या रास्ता है कि आदमी जैसा है वैसा रहे, और उसे जैसा जंचे फैसला किया, और मैं बाद के अनुभव के न या संशोधन करने में संकोच नहीं करता।

करने की स्थिति में नहीं हैं, तो न तो विश्वास करना चाहिए और न अविश्वास; सिर्फ ध्यान से सुनना चाहिए, और जो कुछ मैं कहता हूं, उसका असर अपने ऊपर पड़ने देना चाहिए। निश्चयात्मक विश्वास या आस्था इतनी आसानी से नहीं पैदा की जा सकती, और जब यह आसानी से पैदा की जाती है, तो वह शीघ्र ही बेकार और अस्थिर सिद्ध हो जाती है। इन मामलों पर ऐसे आदमी को विश्वास करने का हक नहीं है जिसने मेरी तरह वर्षों इस विषय का अध्ययन न किया हो और न ही नये और आश्चर्यजनक रहस्यों का उद्घाटन स्वय अनुभव किया हो। तो बौद्धिक मामलों में एकाएक विश्वास, बिजली की तरह कायापलट, और क्षण-भर में मत-त्याग क्यों होते हैं। क्या आप यह नहीं देखते कि 'प्रथम दृष्टि का प्रेम' भावक्षेत्र से बहुत भिन्न मानसिक क्षेत्र से पैदा होता है। हम अपने मरीजों का मनोविश्लेषण के विश्वासी होना या इसके प्रति भक्ति रखना आवश्यक नहीं समझते। इससे हमें उनपर सदेह होने लगेगा।

हम सबसे अच्छी बात यह समझते हैं कि उनमें हितैषी सन्देहवृत्ति का रुख बना रहे। इसलिए आपको प्रचलित मनश्चिकित्सा सम्बन्धी विचार के साथ-साथ मनोविश्लेषण की अवधारणाओं को भी अपने मनो में चुपचाप बढ़ते रहने का अवसर देना चाहिए, जिससे अन्त में ऐसा मौका आ सकता है कि वे एक-दूसरे पर असर डालें और मिलकर एक निश्चित राय का रूप ग्रहण कर लें।

दूसरी ओर आप यह कल्पना ज़रा भी न करें कि मैं आपके सामने जो मनोविश्लेषण का दृष्टिकोण पेश करूंगा वह कोई अटकल या कल्पनावासी विचार-प्रणाली है। इसके विपरीत, यह उन अनुभवों का परिणाम है जो या तो प्रत्यक्ष प्रेक्षणों पर या प्रेक्षण से निकाले गए निष्कर्षों पर आधारित हैं। ये निष्कर्ष पर्याप्त या उचित रीति से निकाले गए हैं या नहीं, इसका फैसला विज्ञान की भविष्य में होनेवाली उन्नति से होगा। लगभग ढाई शताब्दी के बाद और इतनी आयु हो जाने के बाद मैं बिना आत्मप्रशंसा की भावना के यह कह सकता हूं कि इन प्रेक्षणों में जो कार्य करना पड़ा, वह विशेष रूप से कठिन, गहन और सारा ध्यान लगाने से होनेवाला काम था। प्रायः मेरी यह धारणा बनी है कि हमारे विरोधी हमारे कथनों के इस मूलस्रोत पर विचार करने को तैयार नहीं थे, मानो वे उन विचारों को आत्मनिष्ठ, अर्थात् विचारक की अपनी भावना का परिणाम, मानते थे जिनपर कोई भी आदमी जब चाहे आपत्ति उठा सकता है। अपने विरोधियों की यह बात मुझे बिलकुल समझ में नहीं आती—शायद इसका कारण यह है कि डाक्टर लोग स्नायुरोगियों की ओर इतना कम ध्यान देते हैं और उनकी बातों को इतनी असावधानी से सुनते हैं कि उनके लिए रोगियों के वचनों में कोई विशेष बात देख सकना या उनसे विस्तृत प्रेक्षण करना असम्भ

मैं यहां आपको यह आश्वासन देना चाहता हूं कि मैं इन व्याख्यानं

स्थिति में वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि डाक्टर से बातचीत के समय उसकी बात किसी और के कान में न पड़ना उसके अपने लिए ही हितकर है और वह दोनों दरवाजों को सावधानी से बन्द करना कभी नहीं भूलता।

इसी तरह रोगी की यह भूल न तो आकस्मिक है, न अर्थहीन और न महत्त्वहीन ही, क्योंकि इससे डाक्टर के प्रति रोगी के रुख का पता चलता है। वह उस बड़े वर्ग का व्यक्ति है जो ऊंची स्थिति के लोगों के पीछे फिरते हैं और उनसे आतंकित रहना चाहते हैं। शायद उसने टेलीफोन से यह पूछताछ की थी कि उसे किस समय मिलने का मौका प्राप्त होने की सम्भावना है, और वह यह आशा कर रहा था कि उम्मीदवारों की वैसी ही भीड़ लगी होगी जैसी युद्ध के दिनों में पसारियों के यहां लगी रहती थी। वहां पहुंचने पर उसे खाली कमरा दिखाई देता है जिसमें बहुत मामूली ढंग की कुर्सियां पड़ी हैं, और वह स्तब्ध हो जाता है। वह डाक्टर के प्रति जो अनावश्यक आदर दिखाने की तैयारी करके आया था, उसे किसी तरह झाड़ फेंकना चाहता है और डाक्टर को सामान्य आदमी मानना चाहता है, और इसलिए वह प्रतीक्षा-कक्ष और परामर्श-कक्ष के बीच के दरवाजे को बन्द करना भूल जाता है। वह यह जतलाना चाहता है, 'अरे, यहां तो कोई भी नहीं, और न कोई होगा, चाहे मैं कितनी ही देर बैठा रहूं!' वह मिलने के समय अशिष्ट और गर्वपूर्ण ढंग से व्यवहार करेगा, यदि उसे तेज झटका देकर शुरू में ही उसकी पूर्वधारणा को न रोक दिया जाए।

इस छोटे-से लाक्षणिक कार्य के विश्लेषण में ऐसी कोई बात नहीं है जो आप पहले से नहीं जानते, अर्थात् यह निष्कर्ष है कि यह आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि इसमें कुछ प्रेरक कारण, अर्थ और आशय है, कि इसका सम्बन्ध एक मानसिक प्रसंग से है जो स्पष्ट रूप से बताया जा सकता है, और कि इससे एक और भी महत्त्वपूर्ण मानसिक प्रक्रम का हल्का-सा संकेत मिलता है; पर सबसे बड़ी बात यह है कि इससे यह बात सूचित होती है कि इस प्रकार निर्दिष्ट प्रक्रम का इसे वहन करनेवाले व्यक्ति की चेतना को ज्ञान नहीं है, क्योंकि जिन रोगियों ने दोनों दरवाजे खुले छोड़े उनमें से एक भी यह मानने को तैयार न होगा कि वह अपनी उपेक्षा द्वारा मुझे हीन जतलाना चाहता था। शायद उनमें से बहुतों को खाली प्रतीक्षा-कक्ष में घुसने पर निराशा की भावना का ध्यान आया होगा, पर इस भावना और इसके बाद वाले लाक्षणिक कार्य का सम्बन्ध निश्चित रूप से उनकी चेतना के बाहर रहा।

अब एक लाक्षणिक कार्य के इस छोटे-से विश्लेषण को एक रोगी पर किए गए प्रेक्षण के साथ रखा जाए। मैं ऐसा उदाहरण दूंगा जो मुझे अच्छी तरह याद है, और वह थोड़े-से शब्दों में रखा भी जा सकता है। किसी वृत्तान्त के लिए थोड़े विस्तार से कहना आवश्यक है।

अब तक मुझे अपने मूल दृष्टिकोण को बदलने के लिए कोई उचित क
मिला और मुझे आशा है कि इसकी कभी भी आवश्यकता नहीं होगी

तो, अब मुझे आपके सामने स्नायुरोगों के प्रकटनों, अर्थात् प्रकट ल
मे मनोविश्लेषण का सिद्धान्त पेश करना है। इस प्रयोजन के लिए सा
वैषम्य दोनों ही के कारण सबसे अधिक आसानी इस तरह होगी कि ऐसा
लिया जाए जो हमारी पहले विचारित घटनाओं के सिलसिले में जुड़ा
मैं एक लाक्षणिक कार्य[1] का उदाहरण दूंगा जो बहुत-से लोगों में मैं अपने
कक्ष में देखता हूं। विश्लेषक उन लोगों की कोई मदद नहीं कर सकता,
घंटे के लिए अपनी जीवन-भर की कष्ट-कथा सुनाने उसके पास आते हैं। व
गहरी जानकारी के कारण दूसरों की तरह उसे यह राय नहीं दे सकता
कोई खराबी नहीं है और उन्हें थोड़ी-सी जल-चिकित्सा करा लेनी चाहिए
एक साथी ने एक बार सलाह मांगनेवाले रोगियों के बारे में पूछे जाने प
खुश होते हुए कहा था कि मैं 'उनपर—अदालत का इतना समय बर्बाद क
लिए—इतने क्राउन जुर्माना कर देता हूं।' इसलिए आपको यह सुनकर चकि
होना चाहिए कि अधिक से अधिक व्यस्त मनोविश्लेषकों के पास भी सलाह मांग
वाले मरीजों की भीड़ नहीं लगी रहती। मैंने प्रतीक्षा से स्थान और अपने परामर्श
कक्ष के बीच वाले साधारण दरवाजे के अलावा बीच में एक और दरवाजा लग
लिया है, और उसे नमदे से मढ़वा दिया है। इसका कारण स्पष्ट है। होता यह
है कि जब मैं लोगों को प्रतीक्षा-स्थान से अन्दर बुलाता हूं तब वे इन दरवाजों क
बन्द नहीं करते और अपने पीछे दरवाजों को खुला छोड़ देते हैं। जब मैं ऐस
देखता हूं, तब कुछ कड़ाई से तुरन्त उस रोगी से प्रार्थना करता हूं कि वह मौक़ा
पहले दरवाजे बन्द करे, चाहे वह कितना ही भला-चंगा आदमी हो, या आधुनिक
पर कितने ही घंटे खर्च करनेवाली स्त्री हो। मेरे इस कार्य को अकारण और रौब
दिखानेवाला समझा जाता है। कभी-कभी मेरा कहना अनुचित भी हुआ है क्योंकि
वह व्यक्ति ऐसा निकला जो स्वयं किवाड़ की हत्थी नहीं पकड़ सकता था, पर
अधिकतर मामलों में मेरा कार्य उचित था, क्योंकि जो आदमी इस तरह का व्यवहार
करता है और किसी डाक्टर के परामर्श-कक्ष का दरवाजा प्रतीक्षा-कक्ष की ओर
खुला छोड़ देता है, वह अशिष्ट आदमी है, और उससे उदासीनता का व्यवहार
करना ही उचित है। आप सारी बात सुनने से पहले ही किसी पक्ष में कोई धारणा
मत बना लीजिए। रोगी दरवाजा केवल तभी बन्द नहीं करता जब वह बाहर के
कमरे में अकेला इन्तजार कर रहा है, पर जब दूसरे उसके अपरिचित लोग वहां
प्रतीक्षा कर रहे हों तब वह कभी भी दरवाजा खुला नहीं छोड़ता। इस दूसरी

———————

1. Symptomatic act

स्थिति में वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि डाक्टर से बातचीत के समय उसकी बात किसी और के कान में न पड़ना उसके अपने लिए ही हितकर है और वह दोनों दरवाज़ों को सावधानी से बन्द करना कभी नहीं भूलता।

इसी तरह रोगी की यह भूल न तो आकस्मिक है, न अर्थहीन और न महत्त्व-हीन ही, क्योंकि इससे डाक्टर के प्रति रोगी के रुख का पता चलता है। वह उस बड़े वर्ग का व्यक्ति है जो ऊंची स्थिति के लोगों के पीछे फिरते हैं और उनसे आतंकित रहना चाहते हैं। शायद उसने टेलीफोन से यह पूछताछ की थी कि उसे किस समय मिलने का मौका प्राप्त होने की सम्भावना है, और वह यह आशा कर रहा था कि उम्मीदवारों की वैसी ही भीड़ लगी होगी जैसी युद्ध के दिनों में पसारियों के यहां लगी रहती थी। वहां पहुंचने पर उसे खाली कमरा दिखाई देता है जिसमें बहुत मामूली ढंग की कुर्सियां पड़ी हैं, और वह स्तब्ध हो जाता है। वह डाक्टर के प्रति जो अनावश्यक आदर दिखाने की तैयारी करके आया था, उसे किसी तरह झाड़ फेंकना चाहता है और डाक्टर को सामान्य आदमी मानना चाहता है, और इसलिए वह प्रतीक्षा-कक्ष और परामर्श-कक्ष के बीच के दरवाज़े को बन्द करना भूल जाता है। वह यह जतलाना चाहता है, 'अरे, यहां तो कोई भी नहीं, और न कोई होगा, चाहे मैं कितनी ही देर बैठा रहूं।' वह मिलने के समय अशिष्ट और गर्वपूर्ण ढंग से व्यवहार करेगा, यदि उसे तेज़ झटका देकर शुरू में ही उसकी पूर्वधारणा को न रोक दिया जाए।

इस छोटे-से लाक्षणिक कार्य के विश्लेषण में ऐसी कोई बात नहीं है जो आप पहले से नहीं जानते, अर्थात् यह निष्कर्ष है कि यह आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि इसमें कुछ प्रेरक कारण, अर्थ और आशय है, कि इसका सम्बन्ध एक मानसिक प्रसंग से है जो स्पष्ट रूप से बताया जा सकता है, और कि इससे एक और भी महत्त्वपूर्ण मानसिक प्रक्रम का हल्का-सा संकेत मिलता है; पर सबसे बड़ी बात यह है कि इससे यह बात सूचित होती है कि इस प्रकार निर्दिष्ट प्रक्रम का इसे वहन करनेवाले व्यक्ति की चेतना को ज्ञान नहीं है, क्योंकि जिन रोगियों ने दोनों दरवाज़े खुले छोड़े उनमें से एक भी यह मानने को तैयार न होगा कि वह अपनी उपेक्षा द्वारा मुझे हीन जतलाना चाहता था। शायद उनमें से बहुतों को खाली प्रतीक्षा-कक्ष में घुसने पर निराशा की भावना का ध्यान आया होगा, पर इस भावना और इसके बाद वाले लाक्षणिक कार्य का सम्बन्ध निश्चित रूप में उनकी चेतना के बाहर रहा।

अब एक लाक्षणिक कार्य के इस छोटे-से विश्लेषण को एक रोगी पर किए गए प्रेक्षण के साथ रखा जाए। मैं ऐसा उदाहरण दूंगा जो मुझे अच्छी तरह याद है, और वह थोड़े-से शब्दों में रखा भी जा सकता है। किसी वृत्तान्त के लिए थोड़े विस्तार से कहना आवश्यक है।

एक युवा अफसर ने, जो कुछ दिनों की छुट्टी लेकर घर आया था, मुझसे अपनी सास का इलाज करने के लिए कहा। उसकी सास बड़ी सुखदायक परिस्थितियों में रह रही थी, पर फिर भी अपने और अपने परिवार के जीवन में एक निरर्थक विचार द्वारा कड़वाहट भर रही थी। मैंने देखा कि वह ५३ वर्ष की सु[illegible] और सरल स्वभाव वाली महिला थी, और उसने बिना संकोच अपने बारे में निम्नलिखित वृत्तान्त बताया : वह अपने विवाह से बड़ी सुखी है और अपने पति के साथ, जो एक बड़ी फैक्टरी का मैनेजर है, देहात में रहती है। उसका पति हृदय से [illegible] दयालु है। उन्होंने ३० वर्ष पहले प्रेम-विवाह किया था और तब से उनमें कभी मनमुटाव, झगड़ा या क्षण-भर की भी ईर्ष्या नहीं पैदा हुई थी। उसके दोनों बच्चों का विवाह बहुत अच्छी जगह हुआ, पर उसका पति अपनी कर्तव्य-भावना के कारण अब भी कार्य में जुटा हुआ है। एक वर्ष पहले एक अविश्वसनीय और उसकी समझ में न आनेवाली बात हुई। उसे किसी ने बिना नाम के पत्र लिखकर यह सूचित किया कि उसका गुणी पति एक नौजवान लड़की से साठ-गाँठ कर रहा है, और उसने तुरन्त इस बात पर विश्वास कर लिया—तब से उसका सुख नष्ट हो गया है। विस्तृत विवरण कुछ-कुछ इस प्रकार था : उसके यहाँ एक नौकरानी थी, जिसके साथ वह अपनी निजी बातचीत काफी खुलकर किया करती थी। इस नौजवान औरत के मन में एक और लड़की के प्रति बड़ी तीव्र घृणा थी, जो [illegible] अच्छे घर की न होते हुए भी जीवन में उसकी अपेक्षा अधिक सफल हुई थी। दूसरी नवयुवती ने नौकरी करने के बजाय व्यापार-कार्य की शिक्षा हासिल की थी, और वह फैक्टरी में नौकर हो गई थी, जहाँ कुछ कर्मचारियों को बाहर का काम करने के लिए भेजने के कारण कुछ स्थान खाली हो गए थे, और इस तरह वह अच्छे पद पर पहुँच गई थी। वह फैक्टरी में रहती थी, सब भलेमानसों को जानती थी और उसे लोग 'मिस' कहकर पुकारते थे। जो औरत जिन्दगी में पिछड़ गई थी, वह अपनी उस सहयोगिन पर तरह-तरह के दोष लगाया करती थी। एक दिन हमारी रोगिणी और उसकी नौकरानी एक बड़ी उम्र के आदमी के बारे में बातचीत कर रही थी, जो उनके घर आता था, और जिसके बारे में यह पता था कि वह अपनी पत्नी के साथ नहीं रहता है और उसने एक रखैल रखी हुई है। [illegible] रखी हुई है, यह बात नहीं जानती थी, पर उसने [illegible] [illegible]

यह षड्यंत्र समझ में आ गया और वह अपने चारों ओर ऐसे कायरतापूर्ण दोषारोपण इतने अधिक देख चुकी थी कि उनपर बिलकुल विश्वास नहीं करती थी, पर तो भी इस पत्र से हमारी रोगिणी बहुत उत्तेजित हो गई और उसने बुरा-
—— कहने के लिए अपने पति को तुरन्त बुलवाया। पति ने हसते हुए इस रोपण का खण्डन किया, और अपने पारिवारिक चिकित्सक को (जो फैक्टरी गक्टर भी था) बुलवा भेजा और उसने इस दुखी महिला को शान्त करने कोशिश की। उन्होंने जो अगला कदम उठाया, वह भी बहुत तर्कसंगत था। रानी को बर्खास्त कर दिया गया, पर जिसे रखैल बताया गया था उसे कुछ कहा गया। रोगिणी का कहना है कि तब से मैंने इस मामले पर शांति से ार करने की कोशिश की है, और मैं उस पत्र की बातों पर विश्वास नहीं ी, पर यह धारणा कभी बहुत गहरी नहीं गई, और न कभी बहुत दिन म रही। उस नवयुवती का नाम सुनकर या सड़क पर उसे देखकर ही संदेह, । और निंदा का नया दौरा शुरू हो जाता है।

इस गुणवती स्त्री के 'केस' का रोग-चित्र यह है। मनश्चिकित्सा का बहुत भव न रखनेवाले को भी यह समझ में आ जाएगा कि दूसरे स्नायुरोगियों स केस में यह भेद है कि यह रोगिणी अपने लक्षणों को बहुत हल्के रूप में करती थी, उन्हें प्रच्छन्न[1] करती थी, अर्थात् छिपाती थी, और असल में गुमनाम पत्र से उसका विश्वास कभी नहीं हट सका।

अब प्रश्न यह है कि ऐसे केस में मनश्चिकित्सक का क्या रुख होता है। यह तो पहले ही जानते हैं कि जो रोगी प्रतीक्षा-कक्ष के किवाड़ बन्द नहीं करता, के लाक्षणिक कार्य के बारे में वह क्या कहेगा। वह इसे एक आकस्मिक ना बताता है जिसमें मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी की कोई बात नहीं है, और लिए उसके सोचने की कोई चीज़ नहीं है। पर इस ईर्ष्यालु महिला के केस वह वही रवैया नहीं रख सकता। लाक्षणिक कार्य तो महत्वहीन दिखाई देता है, लक्षण इसे गम्भीर मामला बताता है। रोगिणी को इससे घोर कष्ट हो रहा है, र एक परिवार के टूटने का भय है। इसलिए इसमें मनश्चिकित्सक की दिल-स्पी तो निर्विवाद रूप से होनी ही चाहिए। प्रथम तो, मनश्चिकित्सक लक्षण ो किसी विशेष गुण से नामांकित करने की कोशिश करता है। यह महिला जस मनोबिम्ब या विचार से अपने को पीड़ा दे रही है, उसे अर्थहीन नहीं कहा ा सकता। ऐसा सचमुच होता है कि बड़ी उमर के पति नौजवान स्त्रियों से सम्बन्ध ायम कर लेते हैं, पर इसमें कुछ और चीज़ है जो अर्थहीन और समझ में न आने- ाली है। रोगिणी के पास यह कल्पना करने के लिए उस गुमनाम चिट्ठी के अलावा त्ती-भर भी आधार नहीं है कि प्रेमी और विश्वासपात्र पति भी उसी वर्ग का

[1] Dissumulated

आदमी है जैसे समाज में आम तौर से पाए जाते हैं। वह जानती है कि इस पत्र में कोई प्रमाण नहीं दिया गया। वह इस पत्र के लिखे जाने का कारण सन्तोषजनक रीति से बता सकती है। इसलिए उसे अपने-आपसे कह सकना चाहिए कि मेरी ईर्ष्या बिलकुल निराधार है, और वह ऐसा कहती भी है, पर वह कष्ट इस तरह पा रही है, मानो वह अपनी ईर्ष्या को बिलकुल साधार मानती है। इस तरह के विचार, जिनपर यथार्थता का तर्क और दलीलें प्रभाव नहीं डाल सकतीं सर्व-सम्मति से भ्रम[1] कहलाते हैं। इसलिए यह भली महिला ईर्ष्या के भ्रम से कष्ट पा रही है। स्पष्टतः इस केस की सारभूत विशेषता यही है।

यह पहली बात तय हो जाने के बाद हमारी मनश्चिकित्सा-विषयक दिलचस्पी बढ़ जाती है। अगर कोई भ्रम यथार्थता के तथ्यों से दूर नहीं किया जा सकता, तो शायद वह यथार्थता से पैदा ही नहीं हुआ। तो फिर यह कहां से पैदा हुआ ? भ्रम विविध प्रकार के हो सकते हैं। तो, इस केस में भ्रम की वस्तु ईर्ष्या ही क्यों है ? किस तरह के लोगों को भ्रम, विशेष रूप से ईर्ष्या के भ्रम, होते हैं ? अब हम मन[श्]चिकित्सक से इन प्रश्नों का उत्तर सुनना चाहते हैं, पर यहां वह हमें धक्का देगा[।] है। वह हमारे सिर्फ एक प्रश्न पर विचार करता है। वह इस स्त्री के पारिवारि[क] रोगवृत्त (हिस्टरी) जांच करेगा और शायद हमें यह जवाब देगा कि जो लोग [इस] तरह के भ्रमों से पीड़ित होते हैं, उनके परिवारों में ऐसे या दूसरी तरह के रोग विकार बार-बार हुए होते हैं। दूसरे शब्दों में, इस महिला में यह भ्रम इस[लिए] पैदा हुआ कि उसमें इसके लिए आनुवंशिक पूर्वप्रवृत्ति[2] विद्यमान थी। यह बात ठीक है, पर क्या हम इतना ही जानना चाहते हैं ? क्या उसकी बीमारी का यही कारण है ? क्या यह मान लेने से हमें सन्तोष हो जाता है कि इसी तर[ह] भ्रम पैदा होना, और कोई भ्रम न पैदा होना महत्त्वहीन, मनमाना और व्याख्[या-] अयोग्य है, और क्या हम मान लें कि यह कथन—कि आनुवंशिक पूर्वप्रवृत्ति नि[र्णायक] होती है—नकारात्मक अर्थ में भी सच है, अर्थात् जीवन में उसे चाहे जो[...] और भावनाएं पैदा हुई होतीं, पर उसमें यह भ्रम किसी समय पैदा होना [ही] था ? आप यह जानना चाहेंगे कि क्या वैज्ञानिक मनश्चिकित्सा इसकी व्याख्[या] व्याख्या नहीं करती। मेरा उत्तर है, 'कोई बेईमान ही इससे अधिक व्याख्या करता है।' मनश्चिकित्सक इस तरह के केस में कोई और व्याख्या कर सकने का रास्ता नहीं जानता। वह रोग-निर्णय[3] से, और विस्तृत अनुभव होते हुए भी इसके भावी मार्ग के बड़े अनिश्चित फलानुमान[4] से ही सन्तुष्ट हो जाता है।

प्रश्न यह है कि क्या मनोविश्लेषण इसमें अच्छा नतीजा दिखा सकता है ? हा[ं]

१. Delusions २. Hereditary predisposi[tion] ३. Diagnosi[s] ४. [Pr]ognosis

मुझे निश्चित आशा है कि इस जैसे अस्पष्ट केस में भी कुछ ऐसी चीज ढूढ़ी
सकती है जिससे बात अधिक अच्छी तरह समझ में आ जाए। पहले आप इस छोट
सी बात पर विचार कीजिए ; कि जिस गुमनाम पत्र के आधार पर उनका भ
मौजूद है, उसकी प्रेरणा स्वयं रोगिणी ने ही यह कहकर दी थी कि मेरे लिए
बात से भयंकर और कोई बात नहीं है कि मेरे पति की किसी नौजवान स्त्री
साठ-गांठ है। उसने ऐसा कहकर नौकरानी के मन में पत्र भेजने का विचार पै
किया। इस प्रकार भ्रम उस पत्र से कुछ स्वतन्त्र स्थिति रखता है, यह उसके
में भय के रूप में—या, इच्छा के रूप में ?—पहले ही से मौजूद था। इस
अतिरिक्त विश्लेषण के सिर्फ दो घंटों में जो और छोटे-छोटे संकेत प्रकट हुए
अधिक ध्यान देने योग्य हैं। जब रोगिणी ने अपनी कहानी खत्म कर दी, तब मैं
इस प्रार्थना पर कि वह मुझे अपने दूसरे विचार, मनोबिंब और स्मृति में आ
वाली बातें बताए, उसने बड़ी उदासीनता से इसका उत्तर दिया। उसने कहा
मेरे मन में कुछ नहीं आता और वह मुझे सब बात बता चुकी है। और दो घंटे
आगे कोशिश छोड़ देनी पड़ी, क्योंकि उसने कह दिया कि मैं अब बिलकुल स्व
अनुभव कर रही हूं, और मुझे निश्चय है कि यह अस्वस्थ विचार मुझमें अब
आएगा। उसने यह बात स्वभावत प्रतिरोध के कारण और आगे विश्लेषण
भय के कारण कही थी। फिर भी, इन दो घंटों में उसके मुंह से कुछ ऐसी बातें नि
गईं जिनसे एक विशेष निर्वचन न केवल किया जा सकता था, बल्कि अनिवार
होता था, और इस निर्वचन से ईर्ष्या के भ्रम की उत्पत्ति पर स्पष्ट प्रकाश प
था। असल में, उसमें एक नौजवान के लिए, उसी जमाई के लिए मोहास
विद्यमान थी, जिसने उससे, मेरी सहायता लेने को कहा था। इस मोहासक्ति के
में वह कुछ नहीं, या शायद बहुत ही थोड़ा, जानती थी। उसके सम्बन्ध की प
स्थितियों में यह मोहासक्ति उसके हानिरहित वात्सल्य के रूप में अपने-आ
छिपा सकती थी। जो कुछ हम अब तक जान चुके हैं, उसके बाद इस अच्छी
और श्रेष्ठ माता के मन की बात समझ लेना कुछ कठिन नहीं। ऐसी मोहास
ऐसी भयंकर असम्भव बात, उसके चेतन मन में नहीं आ सकती थी ; तो भी
बनी रही, और अचेतन रूप से इसने भारी दबाव डाला। अब कुछ न कुछ
होना ही—किसी न किसी तरह का आराम पाने का तरीका ढूंढ़ना ही प
और इसे कम करने का सबसे सरल तरीका विस्थापन का मंत्र था जो प्रमा
ईर्ष्या पैदा होने में सदा मदद करता है। यदि वह बुढ़िया स्त्री अकेली ही
नौजवान से प्रेम करती होती, बल्कि यदि उसका बूढ़ा पति भी किसी नौज
औरत से प्रेम करता होता तो उसका अन्तःकरण इस विश्वासघात के क

1. Infatuation

मुक्त हो जाता। इस प्रकार उसके पति की अपत्नीव्रतता या विश्वासघात की कल्पना उसके जलते हुए घाव पर शीतल मरहम का काम करती थी। उसे अपने प्रेम का कभी भी ज्ञान नहीं हुआ, पर भ्रम में, जिससे इतना लाभ होता था, इसे सोचते रहना अनिवार्य, भ्रमात्मक और चेतन हो जाता था। विरुद्ध पेश की गई सब दलीलों का स्वभावतः कोई लाभ नहीं हो सकता क्योंकि वे इस सोचने के विरुद्ध होती थी, उस मूल बात के विरुद्ध नहीं; कारण इस चिन्तन में शक्ति थी और जो पहुंच से बाहर अचेतन में गड़ी

अब इस छोटे अधूरे मनोविश्लेषण के प्रयत्न के परिणामों को इकट्ठा इस केस को समझने की कोशिश की जाए। यह मान लिया गया है कि जानकारी सही थी, और इस प्रश्न पर मैं आपका फैसला नहीं चाहता। पह तो यह कि यह भ्रम अब अर्थहीन और अबोध्य नहीं रहा। यह समझ योग्य है, और इसके तर्कसंगत प्रेरक कारण हैं, और यह रोगिणी के भाव सम्बन्धी अनुभव से एक सिलसिले में जुड़ा हुआ है। दूसरे, यह एक और मानसिक प्रक्रम की, जो स्वयं दूसरे संकेतों से प्रकट हो गया है, आवश्यक प्रतिक्रिया के रूप में पैदा हुआ है, और इसका भ्रमात्मक स्वरूप, इसका यथार्थ और तर्कसंगत दलीलों का विरोध करने का गुण इस दूसरे मानसिक प्रक्रम के साथ यह सम्बन्ध होने के कारण ही है। यह एक अभीष्ट वस्तु, एक तरह की सांत्वना है। तीसरे, रोग के मूल में जो अनुभव है, वह ही यह तथ्य असंदिग्ध रूप से निश्चित कर देता है कि भ्रम ईर्ष्या का होगा, और किसी चीज का नहीं। हमने जिस [illegible] कार्य का विश्लेषण किया था, उसमें दो महत्त्वपूर्ण सादृश्य भी हमारी समझ में आ गए होंगे, अर्थात् लक्षण के पीछे आशय और आशय की खोज, और [illegible] अचेतन, अर्थात् अज्ञात है, इसका सम्बन्ध। गई स्थिति की किसी बात से, जो [illegible]

इतने से निःसंदेह इस केस में पैदा होनेवाले सब प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल जाता। इसके विपरीत, इसमें और भी समस्याएं मालूम होती हैं, जिनमें से कुछ [illegible] सिद्ध हुई, और कुछ इस केस की [illegible] अब तक उनमें भी समाधान योग्य नहीं [illegible] परिस्थितियों के कारण हल नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

भी प्रबल सामर्थ्य वाली, स्त्री की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी न रहा हो। प्रेक्षण से हमें पता चलता है कि ऐसे ही लोग, जिनकी निष्ठा और विश्वस्तता इस प्रकार सामान्य बात होती है, अपनी पत्नियों से विशेष प्रेम से व्यवहार करते हैं, और उनके स्नायुरोग का विशेष रूप से ख्याल करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह बात भी महत्वहीन नहीं है कि इस अप्रकृत[1] मोहासक्ति का आलंबन उसकी पुत्री का नौजवान पति था। पुत्री के प्रति प्रबल कामासक्ति, जिसका मूल माता की अपनी यौन रचना में होता है, प्रायः इस तरह रूपान्तरित होकर कायम रहती है। इस सिलसिले में मैं आपको यह याद दिला दूं कि सास और जमाई का सम्बन्ध, स्मरणातीत काल से मनुष्य जाति द्वारा विशेष रूप से नाजुक माना जाता रहा है, और आदिम मूल वंशों में इसके विषय में बड़े प्रबल टैबू[2] या निषेध और सावधानियां रखी गई हैं। विधि और निषेध, दोनों पक्षों में यह प्रायः उन सीमाओं को लांघ जाता है जो सभ्य समाज में वांछनीय समझे जाते हैं। इन तीन सम्भव बातों में से इस केस में एक बात क्रियाशील रही, या दो बातें रहीं, या तीनों की तीनों रहीं, यह मैं आपको नहीं बता सकता; क्योंकि इसका कारण सिर्फ यह है कि इस केस का विश्लेषण दो घंटे से अधिक नहीं हो सका।

अब मैं समझ रहा हूं कि मैं अब तक मय ऐसी बातें कहता रहा, जिन्हें समझने के लिए अभी आप तैयार नहीं थे। मनश्चिकित्सा और मनोविश्लेषण की तुलना पेश करने के लिए ही मैंने ऐसा किया, पर मैं यहां आपसे एक बात कहना चाहता हूं। क्या आपको इन दोनों में कोई परस्पर विरोध जैसी चीज दिखाई दी? मनश्चिकित्सा मनोविश्लेषण के प्राविधिक या टेक्नीकल तरीके प्रयोग में नहीं लाती, भ्रम की वस्तु पर बिलकुल विचार नहीं करती, और आनुवंशिकता की बात कहकर हमें सिर्फ एक साधारण और दूरवर्ती कारण बताती है; और पहले, अधिक वैज्ञानिक, और निकटतम कारण नहीं बताती। पर क्या इसमें कोई परस्पर विरोध है? क्या एक चीज दूसरी की पूरक ही नहीं है? क्या आनुवंशिकता वाली बात अनुभव के महत्त्व से मेल नहीं खाती और क्या वे दोनों मिलकर बहुत प्रभावकारी नहीं बन जातीं? आप स्वीकार करेंगे कि मनश्चिकित्सा के कार्य में कोई ऐसी सारभूत बात नहीं है जो मनोविश्लेषण सम्बन्धी गवेषणाओं के विरुद्ध हो सके। इसलिए इसका विरोध करनेवाले मनश्चिकित्सक हैं, मनश्चिकित्सा नहीं। मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा का बहुत कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा औतिकी[3] तथा शरीर का—एक में अंगों के बाहरी रूपों का अध्ययन होता है और दूसरे में ऊतकों[4] का और घटक तत्त्वों से इनके निर्माण का। इन दोनों अध्ययन-क्षेत्रों में, जिनमें एक का काम दूसरे में लागू रखा जाता है, कोई परस्पर विरोध आसानी

१. Abnormal २. देखिए Totem and Tabu ३. Histology
४. Tissues

। आप जानते हैं कि आजकल चि
अध्ययन का आधार शरीर है, पर किसी समय शरीर की भीतरी
लिए मनुष्य के शवो की चीर-फाड करना उतना ही बुरा और नि
जितना कि आजकल मनुष्य के मन की भीतरी कार्य-पद्धति
विश्लेपण को माना जाता है। और शायद कुछ ही समय बा
कि वैज्ञानिक आधार पर मनश्चिकित्सा तब तक न हो सकेगी,
जीवन की गहराई मे हो रहे अचेतन प्रक्रमो का पूरा-पूरा ज्ञान

आपमे से कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं जो मनोविश्लेपण से
हों, हालाकि प्राय इसकी आलोचना की जाती है, और यह का
यह अपने-आपको एक और दिशा मे, अर्थात् चिकित्सा के क्षेत्र
कर देगा। आप जानते हैं कि मनश्चिकित्सा पद्धति अब तक भ्रमो
मे असमर्थ रही है। क्या मनोविश्लेपण, शायद इन लक्षणो के
को जानने के कारण, उनपर असर डाल सकता है? नहीं; मुझे
है कि यह उनपर असर नहीं डाल सकता, क्योंकि कम मे कम इ
इन रोगियो के इलाज मे बिलकुल इतना ही असमर्थ है जितनी और
शैली। यह सच है कि हम यह समझ सकते हैं कि मरीज को क्या हु
पास ऐसा कोई साधन नही जिससे हम खुद मरीज को यह बात सम
सुन चुके हैं कि इस भ्रम का विश्लेपण मैं आरम्भिक बातो से आगे
तब क्या आप यह कहेंगे कि ऐसे केसों का विश्लेपण अवाछनीय हो
वह निष्फल रहता है? हमारा यह कर्तव्य और अधिकार है कि ह
लाभ पर बिना ध्यान दिए अपनी गवेपणाएं करते जाएं। कोई दि
कहा और कब, यह हम नही जानते—जब हर छोटे से छोटा ज्ञान
में और चिकित्सा की क्षमता मे परिवर्तित हो जाएगा। यदि मनोवि
की तरह और सब तरह के स्नायुरोगों और मानसिक रोगों में विफ
तो भी यह वैज्ञानिक गवेपणा के अनुपम साधन के रूप मे उपयुक्त ही
सच है कि हम इसका व्यवसाय करने की स्थिति में नहीं हो सकते। जिस
सामग्री से हमे सीखना है, वह जीवित है और उसमे अपनी इच्छा हो
इस कार्य मे हिस्सा लेने के लिए उसके पास कोई व्यक्तिगत प्रेरक कारण हो
और फिर यह इसमे हिस्सा लेने से इन्कार भी कर देती है। इसलिए
व्याख्यान खत्म करते हुए मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि ऐसे

लक्षणों का अर्थ

पिछले व्याख्यान में मैंने आपको बताया था कि क्रियात्मक मनश्चिकित्सा किसी एक लक्षण के वास्तविक रूप या उसकी वस्तु के बारे में बिल्कुल नहीं सोचती, पर मनोविश्लेषण अपनी बात यहां से ही शुरू करता है, और उसे यह निश्चय हो चुका है कि स्वयं लक्षण का कोई अर्थ होता है, और यह रोगी के जीवन के अनुभवों से सम्बन्धित है। स्नायुरोगों के लक्षणों का अर्थ सबसे पहले जे० ब्रायर ने हिस्टीरिया के एक रोगी का अध्ययन और सफल इलाज करते हुए (१८८०-८२) खोजा था, और तब से वह केस प्रसिद्ध हो गया है। यह सही है कि पी० जेनेट स्वतन्त्र रूप से उसी परिणाम पर पहुंचा था। सच तो यह है कि प्रकाशन पहले फ्रांसीसी अनुसंधानकर्त्ता (जेनेट) के ही परिणामों का हुआ, क्योंकि ब्रायर ने अपने प्रेक्षण दस-ग्यारह वर्ष बाद में (१८९३-९४) प्रकाशित किए, जब हम दोनों इकट्ठे काम करते थे। प्रसंगतः, हमारे लिए यह कोई बड़े महत्त्व की बात नहीं कि यह खोज किसने की; क्योंकि आप जानते हैं कि प्रत्येक खोज एक से अधिक बार की जाती है और कोई खोज एक ही बार में पूरी नहीं हो जाती। और न पात्रता के अनुसार सफलता मिलती है। अमेरिका का नाम कोलम्बस के नाम पर नहीं पड़ा। ब्रायर और जेनेट से पहले महान मनश्चिकित्सक ल्यूरेट ने यह विचार प्रकट किया था कि पागलों के भ्रमों का भी कुछ अर्थ निकल सकता है, यदि हम उसका अर्थ लगाना जानते हों। मैं मानता हूं कि मैं स्नायविक लक्षणों की व्याख्या करने के कारण जेनेट को बहुत ऊंचा मान देने को उत्सुक था, क्योंकि वह उन्हें रोगी के मन पर छाए हुए 'अचेतन मनोबिम्बों' की अभिव्यक्तियां मानता था, पर अब से जेनेट ने अनुचित चुप्पी साध ली है, मानो उसके लिए अचेतन कहने का एक तरीका-मात्र था, और उसके मन में कोई 'वास्तविक' या 'यथार्थ' बात नहीं थी; तब से जेनेट के विचार मेरी समझ में नहीं आये, पर मैं समझता हूं कि उसने शुरू में ही बहुत बड़ा श्रेय खो दिया है।

गलतियों और स्वप्नों की तरह स्नायविक लक्षणों का भी अर्थ होता है, और

तिषेधों, सावधानियों और रुकावटों द्वारा उनपर अमल करने की सम्भावना से पनी रक्षा करता है। सचाई तो यह है कि वह एक बार भी इन आवेगों को कार्य-प में परिणत नहीं करता। पलायन और सतर्कता सदा विजयी होती है। जो ार्य वह वास्तव में करता है वह बड़े हानिरहित और निश्चित रूप से तुच्छ कार्य ोते हैं—जिन्हें मनोग्रस्तीय कार्य कहा जाता है—जो अधिकतर रोज के सामान्य ामों की आवृत्ति और जरा धूमधाम से किए गए कार्य ही होते हैं और इस तरह न सामान्य आवश्यक क्रियाओं—सोना, नहाना-धोना, कपड़े पहनना, घूमने ाना आदि—को बड़े श्रमसाध्य और कठिन कार्य बना देता है। अस्वस्थ विचार, आवेग और क्रियाएं मनोग्रस्तता-रोग के अलग-अलग प्ररूपों और उदाहरणों में एक ही अनुपात में नहीं मिले होते। इसके विपरीत, नियम यह है कि इन अभि-व्यक्त रूपों में से एक प्रधान होता है, और उसके नाम पर रोग का नाम पड़ता है; पर इसके सब रूपों में जो सामान्य अंश है वह काफी असंदिग्ध है।

निश्चित रूप से यह पागलपन का रोग है। मैं समझता हूं कि मनश्चिकित्सा की अजीब से अजीब कल्पना भी इस जैसी कोई चीज नहीं बना सकती थी, और यदि हम इसे रोज आंखों से न देखते होते तो हमारे लिए इसपर विश्वास करना भी बड़ा कठिन था। पर आप यह न समझिए कि ऐसे रोगी को यह सलाह देकर, कि अपना ध्यान इधर-उधर न होने दो, इन मूर्खतापूर्ण मनोबिम्बों की ओर कोई ध्यान न दो, और इन अर्थहीन कार्यों के बजाय कोई काम की बात करो, आप उसे कुछ लाभ पहुंचा सकते हैं। यह तो वह स्वयं ही करना चाहता है, क्योंकि उसे अपनी दशा का पूरी तरह पता है। अपने मनोग्रस्तता-लक्षणों के बारे में वह आपकी राय से सहमत है और वह बड़ी खुशी से अपनी राय देता भी है, बात सिर्फ इतनी है कि उसका अपने ऊपर वश नहीं है। मनोग्रस्तता की अवस्था में की जानेवाली क्रियाओं को एक इस तरह की ऊर्जा से पोषण मिलता है जिसकी समकक्ष चीज प्रकृत *मानसिक जीवन में सम्भवतः कोई भी नहीं है। उसके सामने सिर्फ एक रास्ता है*—वह विस्थापन कर सकता है और विनिमय यानी अदल-बदल कर सकता है; एक मूर्खतापूर्ण मनोबिम्ब के स्थान पर वह दूसरा, कुछ हलके प्रकार का मनोबिम्ब ला सकता है, एक सतर्कता या प्रतिषेध से वह दूसरे पर जा सकता है। धूमधाम से किए जानेवाले एक कार्य के स्थान पर वह दूसरा कार्य कर सकता है। वह अपनी अनिवार्यता या बाध्यता की भावना को विस्थापित कर सकता है, पर वह इसे दूर नहीं कर सकता। यह सारे लक्षणों को विस्थापित करने का सामर्थ्य, जिसमें उसके मूल रूप जड़ से बदल जाते हैं, इस रोग की मुख्य विशेषता है। इसके अलावा, यह बात भी खास है कि इस अवस्था में मानसिक जीवन में व्याप्त 'विरोधी मान' (ध्रुवत्व)[1] में खास तौर से तीव्र भिन्नता दिखाई देती है, विध्यात्मक और

१. Opposite values (Polarities)

अच्छा किया ; पर मनोविश्लेषण ने यह सिद्ध कर दिया कि इन असाधारण मनोग्रस्तता-लक्षणों को दूसरे रोगों के लक्षणों की तरह, और उस तरह जैसे उन लोगो मे, जो पतित नहीं हैं, स्थायी रूप से हटाया जा सकता है। स्वयं मुझे ऐसा करने में बहुत बार सफलता मिली है।

मैं मनोग्रस्तता-लक्षणो के विश्लेषण के सिर्फ दो उदाहरण दूगा। इनमे से एक पुराना है, पर उससे अच्छा उदाहरण मुझे आज तक नही मिला, और एक हाल का है। मैं इन दो उदाहरणो तक ही सीमित रहूगा, क्योंकि इस तरह का वर्णन बड़ा स्पष्ट होना चाहिए, और उसमे बहुत विस्तार में जाना होगा।

लगभग ३० वर्ष की आयु वाली एक महिला बड़े प्रबल मनोग्रस्तता-लक्षणों से पीड़ित थी। यदि दुर्भाग्य ने मेरा काम न बिगाड़ दिया होता तो शायद मैं उसकी मदद कर सका होता—इसके बारे मे शायद आगे चलकर मैं बताऊगा। वह निम्न-लिखित अजीब मनोग्रस्तता के कार्य एक दिन मे कई बार करती थी। वह अपने कमरे मे से दौड़कर पास वाले कमरे मे चली जाती; वहा कमरे के बीच मे रखी हुई मेज के पास एक विशेष स्थिति मे खड़ी हो जाती, घण्टी बजाकर अपनी नौकरानी को बुलाती, उसे कोई मामूली-सा हुक्म देती, या बिना हुक्म दिए बाहर भेज देती, और फिर दौड़कर अपने कमरे में लौट जाती। इसमे निश्चित रूप से कोई भय पैदा करनेवाली बात नहीं थी, पर इससे कुतूहल तो पैदा हो ही सकता है। इसकी व्याख्या विश्लेषक के बिना कुछ किए बड़े सरल और सीधे तरीके से सामने आई। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मुझे इस मनोग्रस्तता के अर्थ की शंका भी कैसे हो सकती, या इसकी व्याख्या भी मैं कैसे कर सकता था। मैंने रोगी से जब भी यह पूछा, 'तुम ऐसा क्यों करती हो ? इसका क्या अर्थ है?' तब उसने यही उत्तर दिया, 'मैं नहीं जानती।' पर एक दिन, जब मैं उससे बहुत बड़े संकोच को, जिसमे एक सिद्धान्त का प्रश्न आता था, दूर करने में सफल हुआ, एकाएक वह जान गई, क्योंकि उसने मनोग्रस्तता के उस कार्य का इतिहास सुना दिया। लगभग दस वर्ष पहले, उसने अपने से बहुत अधिक आयु के एक आदमी से विवाह किया था, जो सुहागरात मे नपुसक सिद्ध हुआ था। वह उस रात संभोग का प्रयत्न करने के लिए अनेक बार अपने कमरे से दौड़कर उसके कमरे में गया, पर हर बार असफल रहा। सवेरे उसने क्रोध से कहा था, 'किसी आदमी को बिस्तर लगानेवाली नौकरानी की नजरों मे गिरा देना ही काफी है!' और पास ही पड़ी लाल स्याही की बोतल लेकर उसने चादर पर उलट दी थी, पर ठीक उस स्थान पर नही उलटा था जहां ऐसा निशान हो सकता था। पहले मैं यह नहीं समझ सका कि इस स्मृति का प्रस्तुत मनोग्रस्तता-कार्य से क्या सम्बन्ध हो सकता है, क्योंकि मुझे दोनों स्थितियो मे इसके अलावा और कोई समानता नहीं दिखाई दी थी कि एक कमरे से दूसरे कमरे में दौड़ने की, और शायद नौकरानी के घटनास्थल पर आने की बातें एक-सी हैं।

निषेधात्मक दोनो प्रकार की बाध्यताओं के साथ-साथ बुद्धि के क्षेत्र में संशय दिखाई देता है, जो क्रमश: फैलता जाता है और अन्त में वह उस बात में भी होने लगता है जो प्राय निश्चित मानी जाती है। ये सब बातें मिलकर ऐसी स्थिति बना देती है जिसमे निर्णय-बुद्धि घटती जाती है, ऊर्जा का नाश होता है, और [illegible] कम होती है, और यद्यपि मनोग्रस्तता का रोगी भी हमेशा शुरू में ऊर्जस्वि स्वभाव का होता है, प्राय बहुत-सी रायें रखता है और आम तौर से औसत० अधिक बुद्धि वाला होता है, पर उसका आचार सम्बन्धी परिवर्धन काफी अधिक हुआ होता है, वह बहुत धर्मभीरु और अधिकतर सही होता है। आप [illegible] कर सकते हैं कि परस्पर विरोधी गुणो और अस्वस्थ व्यक्त रूपों के इस गोरख-धन्धे में अपने पाव जमाए रखना काफी श्रमसाध्य काम है। इस समय हमारा ध्येय इस रोग के कुछ लक्षणो का अर्थ लगाना-मात्र है।

शायद हमारे पिछले विवेचन को देखते हुए आप यह जानना चाहेंगे कि मनो-ग्रस्तता-रोग के बारे में आजकल की मनश्चिकित्सा क्या कहती है। इसका बहुत मामूली-सा कार्य है। मनश्चिकित्सा ने अनेक तरह की बाध्यताओं के नाम रख दिए हैं पर वह उनके बारे में और कुछ नही कहती। इसके बदले वह इस बात पर जोर देती है कि जिन व्यक्तियों में ये लक्षण दिखाई देते हैं, वे "पतित"[1] होते हैं। इससे हमें अधिक सन्तोष नही होता। इससे हम उनका सिर्फ मूल्य आंक सकते हैं—यह तो व्याख्या के बजाय निन्दा है। मैं समझता हूं कि मनश्चिकित्सा हमें यह बताना चाहती है कि प्रकृष्ट अर्थात् वास्तविक सामान्य रूप से पतित हो जाने पर लोगों में स्वभावत: सब तरह से विषमताएं पैदा हो जाती हैं। अब हम भी यह मानते हैं कि जिन लोगों में ऐसे लक्षण होते हैं, वे दूसरे मनुष्यों से प्रकृत में कुछ न कुछ भिन्न होते हैं, पर हम यह जानना चाहते हैं कि क्या वे दूसरे स्नायुरोगियों, अर्थात् हिस्टीरिया वाले या पागल लोगों की अपेक्षा अधिक 'पतित' होते हैं? इस तरह स्वरूप-निर्देश करना अत्यधिक साधारण वर्णन है। जब हम यह देखते हैं कि ऐसे लक्षण असाधारण योग्यता वाले उन नर-नारियों में पाए जाते हैं, जिन्होंने अपनी पीढ़ी पर अपने चिह्न छोड़े हैं, तब यह सन्देह होने लगता है कि क्या ऐसा कहना जरा भी उचित है? उनकी अपनी विवेक-बुद्धि और जीवन-चरित लेखकों की असत्यपरायणता के कारण हमें आदर्श महापुरुषों के भीतरी स्वभाव के बारे में प्राय बहुत कम जानकारी होती है, पर कभी-कभी ऐसा अवसर होता है कि उनमें से कोई, सचाई के बारे में एमिल जोला की तरह मतांध होता है, और तब हमें उन बहुत सारी असाधारण मनोग्रस्तता वाली आदतों का पता चल जाता है, जिनसे उसने सारे जीवन कष्ट उठाया।

मनश्चिकित्सा ने इन लोगों को "पतित महापुरुष" कहकर [illegible]

1. Degenerate

ही आता था, यही अर्थ सूचित होता है। वह वर्षों से अपने पति से अलग थी और उससे कानूनन तलाक लेने का इरादा कर रही थी। पर अपने मन में उसके उससे मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती थी। वह अपने-आपको उसके प्रति निष्ठावान होने के लिए मजबूर कर रही थी। वह दुनिया से और सब व्यक्तियों से अपने को खींचकर अलग ले गई जिससे उसे प्रलोभन पैदा न हो, और अपने कल्पनालोक में उसने उसे माफ कर दिया और आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया। उसके रोग का असली भीतरी रहस्य यह था कि इस तरह पड़ोसियों की द्वेषपूर्ण छानाफूसी से बच सकती थी, अपने को पति से अलग रहने को उचित ठहरा सकती थी, और अपने पति को अपने से अलग रहते हुए सुख से जीवन बिताने का मौका दे सकती थी। इस प्रकार किसी हानिरहित मनोग्रस्तता-कार्य के विश्लेषण से हम सीधे रोगी के सबसे अन्दर वाले रहस्य पर पहुंच जाते हैं, और साथ ही हमें सामान्य मनोग्रस्तता-रोग का रहस्य बहुत कुछ पता चल जाता है। मुझे यह मंजूर है कि आप इस उदाहरण पर कुछ समय लगाएं क्योंकि इसमें ऐसी दशाएं एक जगह मौजूद हैं जिनकी सब उदाहरणों में आशा करना युक्तिसंगत नहीं। इस लक्षण का निर्वचन रोगिणी ने विश्लेषक की सहायता या हस्तक्षेप के बिना एकाएक खोज लिया था, और इसका एक ऐसी घटना से सम्बन्ध था, जो बचपन से भूले हुए समय की नहीं थी, जैसाकि आम तौर पर हुआ करती है, बल्कि वह रोगिणी के वयस्क जीवन में हुई थी और उसे स्पष्ट रूप से याद थी। आलोचक लक्षणों के हमारे निर्वचन पर आदतन जो आक्षेप किया करते हैं, वे सब यहां पर बिलकुल असंगत हैं। पर सदा हमारा भाग्य इतना अच्छा नहीं होता।

एक बात और, क्या आपको यह अनुभव हुआ कि यह निर्दोष मनोग्रस्तता-कार्य हमें इस महिला के सबसे अधिक निजी और गोपनीय मामलों में सीधे ही पहुंचा देता है? स्त्री के लिए अपनी सुहागरात की कहानी कहने से बढ़कर गोपनीय कोई बात नहीं है, और क्या यह आकस्मिक बात है और क्या इसका कोई विशेष अर्थ नहीं है कि हम सीधे ही उसके यौन जीवन के भीतरी रहस्यों पर पहुंच जाते हैं? निश्चित रूप से इसका यह कारण हो सकता है कि मैंने यही उदाहरण चुना। इस प्रश्न पर जल्दी में फैसला न कीजिए, बल्कि, दूसरे उदाहरण पर विचार कीजिए जो बिलकुल दूसरी तरह का है और उस तरह के उदाहरणों, अर्थात् सोने से पहले किए जानेवाले कृत्यों के उदाहरणों, में से है।

एक उन्नीस वर्ष की अच्छी तरह पली-पुसी हुई होशियार लड़की, जो अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान थी, और शिक्षा तथा बौद्धिक कार्य में इनसे बढ़कर थी, बड़ी चपल और उत्साही लड़की थी; पर कुछ वर्षों से वह बड़ी चिड़चिड़ी हो गई थी, जिसका कोई कारण दिखाई नहीं देता था। वह विशेष रूप से अपनी माता से बहुत चिड़चिड़ाती थी, असन्तुष्ट और निरुत्साहित थी तथा अनिश्चय और

हीं आता था, यही अर्थ सूचित होता है। वह वर्षों से अपने पति से अलग थी और उससे कानूनन तलाक लेने का इरादा कर रही थी। पर अपने मन में उससे मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती थी। वह [illegible] उसके प्रति निष्ठावान होने के लिए मजबूर कर रही थी। वह दुनिया से और उन व्यक्तियों से अपने को खींचकर अलग ले गई जिनसे उसे प्रलोभन पैदा होते, और अपने कल्पनालोक में उसने उसे माफ कर दिया और आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया। उसके रोग का असली भीतरी रहस्य यह था कि इस तरह पड़ोसियों की ईर्ष्यालु कानाफूसी से बच सकती थी, अपने को पति से अलग रहने को उचित ठहरा सकती थी, और अपने पति को अपने से अलग रहते हुए सुख से जीवन बिताने का मौका दे सकती थी। इस प्रकार किसी हानिरहित मनोग्रस्तता-कार्य के विश्लेषण से हम सीधे रोगी के सबसे अन्दर वाले रहस्य पर पहुंच जाते हैं, और साथ ही हमें सामान्य मनोग्रस्तता-रोग का रहस्य बहुत कुछ पता चल जाता है। मुझे यह मंजूर है कि आप इस उदाहरण पर कुछ समय लगाएं क्योंकि इसमें ऐसी दशाएं एक साथ मौजूद हैं जिनकी सब उदाहरणों में आशा करना युक्तिसंगत नहीं। इस लक्षण का निर्वचन रोगिणी ने विश्लेषक की सहायता या हस्तक्षेप के बिना एकाएक खोज लिया था, और इसका एक ऐसी घटना से सम्बन्ध था, जो बचपन से भूले हुए [illegible]

सन्देह की वृत्तिवाली हो गई थी। और मन्त मे वह कहने लगी कि मैं चौराहों और चौड़ी सड़कों पर अकेली नही चल सकती। हम उसकी जटिल दशा पर बहुत बारीकी से विचार नही करेंगे। इसके कम से कम दो निदान हो सकते हैं, 'अगोराफोबिया' (खुले मैदान की भीति) और 'मनोग्रस्तता-रोग'; पर हम उन कार्यों की ओर ध्यान देंगे जो यह नौजवान लड़की सोने से पहले किया करती थी और जिनसे उसकी माता को बड़ी परेशानी पैदा हुई। एक अर्थ में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सामान्य अवस्था वाला व्यक्ति सोने से पहले कुछ बधे-बधाए काम करता है या कम से कम उसे कुछ ऐसी अवस्थाओं की आवश्यकता होती है जिनके बिना उसे सोने मे बाधा पड़ती है। जाग्रत् जीवन से नींद मे पहुचने के लिए एक नियमित सूत्र बना लिया जाता है जो हर रात उसी तरह दोहराया जाता है। पर स्वस्थ व्यक्ति को नींद की जिस भी अवस्था की जरूरत है, उसकी बुद्धिसगत व्याख्या की जा सकती है, और यदि बाहरी परिस्थितियों के कारण कोई परिवर्तन आवश्यक हो जाए तो वह बिना समय बरबाद किए आसानी से अपने-आपको उसके अनुकूल बना लेता है पर अस्वस्थ कृत्य अपरिवर्तनीय होता है। अधिक से अधिक त्याग करके भी इसे किया जाता है। इसे बुद्धिसगत प्रेरक भावों से ढक लिया जाता है, और इसमें तथा स्वस्थ कृत्य में सिर्फ यह ऊपरी भेद दिखाई देता है कि इसे करते हुए कुछ विशेष सावधानी रखी जाती है। पर बारीकी से जाच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे पूरी तरह नही ढका जा सकता है, और उस कृत्य मे कुछ ऐसे काम भी होते हैं जो तर्कसंगत नहीं ठहराए जा सकते और कुछ तो बिलकुल तर्कविरुद्ध होते है। अपनी रात की सतर्कताओं का प्रेरक कारण बताते हुए हमारी रोगिणी यह कहती है कि रात में मुझे पूरी शान्ति चाहिए, और शोर की कोई सम्भावना मैं नही रहने देती। इसके लिए वह दो काम करती है: अपने कमरे की बडी घडी बन्द कर देती है, और शेष सब घड़ियां, यहां तक कि अपनी छोटी-सी कलाई-घडी भी कमरे से बाहर कर देती है। फूलों के गमले और गुलदस्ते सावधानी से मेज़ पर रख दिए जाते हैं ताकि वे रात मे नीचे गिरकर और टूटकर उसकी नींद खराब न कर सकें। वह जानती है कि शान्ति कायम रखने के लिए ये सतर्कताएं मिथ्या उपाय हैं। छोटी घड़ी की टिक-टिक चारपाई के साथ वाली मेज पर रखी होने पर भी सुनाई नही दे सकती और हम सब जानते हैं कि पेंडुलम वाली घडी की नियमित टिक-टिक से नींद कभी खराब नहीं होती, बल्कि उससे नींद पैदा होने की सम्भावना अधिक है। वह यह भी मानती है कि उसका यह भय कि रात मे अपने स्थान पर रखे हुए गुलदस्ते और गमले अपने-आप नीचे गिर जाएंगे, और टूट जाएंगे, बिलकुल असम्भाव्य है। इसी तरह, उसके कुछ और कार्यों में शांति के लिए आग्रह उसका उद्देश्य नहीं होता। असल में तो वह यह व्यवस्था करके कि उसके सोने के कमरे और उसके माता-पिता के सोने के कमरे का दरवाजा आधा खुला रहे

(जिसके लिए वह दरवाजे में कई तरह की चीजें रख देती है), वह शोर के आने के लिए रास्ता खोलती हुई प्रतीत होती है । पर सबसे महत्त्वपूर्ण काम स्वय बिस्तर से सम्बन्ध रखते हैं। बिस्तर के सिरहाने वाला गोल तकिया या मसनद लकड़ी के पलग के पिछले हिस्से को नही छूना चाहिए। छोटा तकिया गोल तकिये से ठीक विकर्णों की स्थिति मे होना चाहिए, और किसीमे नहीं । इसके बाद वह अपना सिर इस समचतुर्भुज के बीचोबीच लम्बाईनुमा रख देती है। रजाई ओढ़ने से पहले उसे हिलाना जरूरी है, जिससे उसमें भरे हुए पख पैरो की तरफ चले जाएं पर वह इसे फिर दबाकर फैलाती है और सारे मे कर देती है ।

मैं उसके कृत्य की और छोटी-मोटी बातें छोड़ देता हू । उनसे हमे कोई नई बात नहीं पता चलेगी, और हम अपने प्रयोजन से बहुत दूर निकल जाएंगे। पर आप यह मत समझिए, कि यह सब बिलकुल बिना बाधा के हो जाता है। हर काम के साथ यह चिन्ता लगी रहती है कि यह सब उचित रीति से नही हुआ, इसकी जाच की जाए और इसे ठीक किया जाए। पहले उसे अपनी एक सतर्कता पर शक होता है और फिर दूसरी पर, और परिणाम यह होता है कि वह लड़की सोने से पहले एक-दो घण्टा लगा देती है और भयभीत माता-पिता को भी नहीं सोने देती।

इन कष्टों का विश्लेषण उतनी आसानी से नहीं होगा जितनी आसानी से पहली रोगिणी के मनोग्रस्तता-कार्य का हो गया था। मैंने इसके निर्वचन के बारे मे कुछ सकेत और सुझाव पेश किए जिनपर उसने सदा स्पष्ट इन्कार किया या घृणा और सन्देह प्रकट किया, पर अस्वीकृति की पहली प्रतिक्रिया के बाद के समय मे उसने सुझाई गई सम्भावना का स्वय विचार किया, उनसे उत्पन्न साहचर्य नोट किए, स्मृतियां पैदा कीं, और सम्बन्ध-सूत्र कायम किए और अन्त मे उसने उन्हें स्वय निकालते हुए सब निर्वचन स्वीकार कर लिए। उसने जितना-जितना निर्वचन किया, उतना ही उतना वह अपनी मनोग्रस्तता वाली सतर्कताएं शिथिल करती गई और इलाज खत्म होने से पहले उसने सब कृत्य छोड़ दिए थे। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि आजकल हम जिस तरह विश्लेषण-कार्य करते हैं, उसमे निश्चित रूप से यह नहीं होता कि किसी एक ही लक्षण पर तब तक लगातार जुटे रहें जब तक कि इसका अर्थ पूरी तरह स्पष्ट न हो जाए। इसके विपरीत, किसी एक बात को हम बार-बार छोड़ देना पड़ता है कि शायद हम किसी दूसरे प्रसंग में नये सिरे से इसपर पहुच जाएं। इसलिए, उस लक्षण का जो निर्वचन मैं आपको बतानेवाला हूं, वह उन सब परिणामों का मिला-जुला रूप है जो बीच मे अन्य प्रश्नों पर विचार करते हुए सप्ताहों और महीनो में हासिल हुए थे।

धीरे-धीरे रोगिणी को यह समझ मे आने लगा कि वह बड़ी और छोटी घड़ियों को रात के समय इसलिए बाहर कर देती है क्योंकि वे स्त्री-जननेंद्रियों की प्रतीक हैं। घड़ियों को, जिनके बारे में हम जानते हैं कि उनके और भी प्रतीकात्मक अर्थ

सन्देह की वृत्तिवाली हो गई थी। और अन्त मे वह कहने लगी कि मैं चौराहो और चौड़ी सड़को पर अकेली नही चल सकती। हम उसकी जटिल दशा पर बहुत बारीकी से विचार नहीं करेंगे। इसके कम से कम दो निदान हो सकते हैं, 'अगोराफोबिया' (खुले मैदान की भीति) और 'मनोग्रस्तता-रोग', पर हम उन कार्यों की ओर ध्यान देंगे जो यह नौजवान लड़की सोने से पहले किया करती थी और जिनमे

व्यक्ति को नीद की जिस भी अवस्था की जरूरत है, उसकी बुद्धिसगत व्याख्या की जा सकती है, और यदि बाहरी परिस्थितियो के कारण कोई परिवर्तन आवश्यक हो जाए तो वह बिना समय बरबाद किए आसानी से अपने-आपको उसके अनुकूल बना लेता है पर अस्वस्थ कृत्य अपरिवर्तनीय होता है। अधिक से अधिक त्याग करके भी इसे किया जाता है। इसे बुद्धिसगत प्रेरक भावो से ढक लिया जाता है, और इसमें तथा स्वस्थ कृत्य मे सिर्फ यह ऊपरी भेद दिखाई देता है कि इसे करते हुए कुछ विशेष सावधानी रखी जाती है। पर बारीकी से जाच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे पूरी तरह नही ढका जा सकता है, और उस कृत्य मे कुछ ऐसे काम

कमरे से बाहर कर देती है। फूलो के गमले और गुलदस्ते सावधानी से मेज पर रख दिए जाते हैं ताकि वे रात मे नीचे गिरकर और टूटकर उसकी नीद खराब न कर सकें। वह जानती है कि शान्ति कायम रखने के लिए ये सतर्कताए मिथ्या उपाय हैं। छोटी घडी की टिक-टिक चारपाई के साथ वाली मेज पर रखी होने पर भी सुनाई नही दे सकती और हम सब जानते हैं कि पेंडुलम वाली घडी की नियमित टिक-टिक से नींद कभी खराब नहीं होती, बल्कि उससे नीद पैदा होने की सम्भावना अधिक है। वह यह भी मानती है कि उसका यह भय कि रात मे अपने स्थान पर रखे हुए गुलदस्ते और गमले अपने-आप नीचे गिर जाएगे, और टूट जाएगे, बिलकुल असम्भाव्य है। इसी तरह, उसके कुछ और कार्यों मे शांति के लिए यह उसका उद्देश्य नहीं होता। असल मे तो वह यह व्यवस्था करके कि उसके सोने के कमरे और उसके माता-पिता के सोने के कमरे का दरवाजा आधा खुला रहे

(मके लिए वह दरवाजे में कई तरह की चीजें रख देती है), वह शोर के आने लिए रास्ता खोलती हुई प्रतीत होती है । पर सबसे महत्त्वपूर्ण काम स्वय तर से सम्बन्ध रखते हैं । बिस्तर के सिरहाने वाला गोल तकिया या ममनद ड़ी के पलंग के पिछले हिस्से को नहीं छूना चाहिए। छोटा तकिया गोल कये से ठीक विकर्ण की स्थिति में होना चाहिए, और किसीमें नहीं । इसके द वह अपना सिर इस समचतुर्भुज के बीचोबीच लम्बाईनुमा रख देती है । हाई ओढने से पहले उसे हिलाना जरूरी है, जिससे उसमें भरे हुए पख पैरों की रफ चले जाएं पर वह इसे फिर दबाकर फैलाती है और सारे में कर देती है ।

मैं उसके कृत्य की और छोटी-मोटी बातें छोड देता हू । उनसे हमें कोई नई ात नहीं पता चलेगी, और हम अपने प्रयोजन से बहुत दूर निकल जाएंगे । पर ाप यह मत समझिए, कि यह सब बिलकुल बिना बाधा के हो जाता है । हर काम ः साथ यह चिन्ता लगी रहती है कि यह सब उचित रीति से नहीं हुआ, इसकी ाच की जाए और इसे ठीक किया जाए । पहले उसे अपनी एक सतर्कता पर शक होता है और फिर दूसरी पर, और परिणाम यह होता है कि वह लडकी सोने से हले एक-दो घण्टा लगा देती है और भयभीत माता-पिता को भी नहीं सोने देती।

इन कष्टों का विश्लेषण उतनी आसानी से नहीं होगा जितनी आसानी से हली रोगिणी के मनोग्रस्तता-कार्य का हो गया था । मैंने इसके निर्वचन के बारे में कुछ सकेत और सुझाव पेश किए जिनपर उसने सदा स्पष्ट इन्कार किया या घृणा और सन्देह प्रकट किया, पर अस्वीकृति की पहली प्रतिक्रिया के बाद के समय में उसने सुझाई गई सम्भावना का स्वय विचार किया, उनसे उत्पन्न साहचर्य नोट किए, स्मृतियां पैदा कीं, और सम्बन्ध-सूत्र कायम किए और अन्त में उसने उन्हें स्वय निकालते हुए सब निर्वचन स्वीकार कर लिए । उसने जितना-जितना निर्वचन किया, उतना ही उतना वह अपनी मनोग्रस्तता वाली सतर्कताएं शिथिल करती गई और इलाज खत्म होने से पहले उसने सब कृत्य छोड दिए थे । मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि आजकल हम जिस तरह विश्लेषण-कार्य करते हैं, उसमें निश्चित रूप से यह नहीं होता कि किसी एक ही लक्षण पर तब तक लगातार जुटे रहें जब तक कि इसका अर्थ पूरी तरह स्पष्ट न हो जाए । इसके विपरीत, किसी एक बात को हम मात्रा पर बार-बार छोड देना पडता है कि शायद हम किसी दूसरे प्रसग में नये सिरे से इसपर पहुच जाएं । इसलिए, उस लक्षण का जो निर्वचन मैं आपको बतानेवाला हूं, वह उन सब परिणामों का मिला-जुला रूप है जो बीच में अन्य प्रश्नों पर विचार करते हुए सप्ताहों और महीनों में हासिल हुए थे ।

धीरे-धीरे रोगिणी को यह समझ में आने लगा कि वह बडी और छोटी घडियों को रात के समय इसलिए बाहर कर देती है क्योंकि वे स्त्री-जननेंद्रियों की प्रतीक हैं । घडियों को, जिनके बारे में हम जानते हैं कि उनके और भी प्रतीकात्मक अर्थ

हो सकते हैं, घड़ी की शक्ल और नियमित अन्तरालों में गड़बड़ होने के कारण यह स्त्री-जननेन्द्रिय का अर्थ प्राप्त होता है। कोई स्त्री यह शेखी बघार सकती है कि उसे मासिक धर्म घड़ी की तरह नियमित होता है। इस रोगिणी को विशेष भय यह था कि घड़ियां उसकी नींद खराब करेंगी। घड़ी की टिक-टिक की आवाज कामोत्तेजना के समय भगनासा की धड़कन के तुल्य है। यह संवेदन, जो उसे परेशान करता था, उसे कई बार नींद से सचमुच जगा चुका था और अब भगनासा के पुष्ट होने का भय इस रूप में प्रकट होता था कि वह सब चलती हुई बड़ी और छोटी घड़ियों को पास से दूर हटाने का नियम बनाए हुए थी। गमले और गुलदस्ते, और पात्रों की तरह, स्त्री-जननेन्द्रियों के प्रतीक हैं, इसलिए रात में उन्हें गिरने और टूटने से रोकने की सतर्कता भी अर्थशून्य नहीं। हम जानते हैं कि यह प्रथा बहुत व्यापक है कि सगाई के समय कोई बर्तन या तश्तरी तोड़ी जाती है। वहां मौजूद सब लोग एक-एक टुकड़ा लेकर प्रतीकात्मक रूप में यह स्वीकार करते हैं कि अब हमारा इस वधू पर कोई दावा नहीं है। यह प्रथा सम्भवतः एकपत्नी विवाह के साथ पैदा हुई। रोगिणी ने अपने कृत्य के इस हिस्से पर भी कुछ स्मृति और साहचर्यों से रोशनी डाली। एक बार बचपन में वह कांच या चीनी मिट्टी का बर्तन ले जाते हुए गिर पड़ी थी, जिससे उसकी उंगली कट गई थी और उसमें बुरी तरह खून बहने लगा था। जब वह बड़ी हुई और उसे मैथुन सम्बन्धी तथ्यों का पता चला तब उसे यह भय पैदा हो गया कि सुहागरात को उसके खून नहीं निकलेगा, और इस प्रकार वह अक्षतयोनि नहीं सिद्ध होगी। गुलदस्तों के टूटने के बारे में उसकी सतर्कता का अर्थ यह था कि वह अक्षतयोनि होने और सम्भोग के प्रथम कार्य के समय रक्तरंजित होने के प्रश्न विषयक सारी ग्रन्थि को अस्वीकार करती थी; वह रक्तरंजित होगी और वह रक्तरंजित नहीं होगी, इन दोनों चिन्ताओं को वह अस्वीकार करती थी। असल में, इन सतर्कताओं का शोर रोकने के साथ सिर्फ दूर का सम्बन्ध था।

एक दिन उसे अपने कृत्य की मुख्य बात उस समय सूझी जब एकाएक उसे अपना यह नियम समझ में आ गया कि वह गोल तकिये को चारपाई के पिछले हिस्से से नहीं छूने देती थी, उसने कहा कि गोल तकिया मुझे सदा औरत मालूम होता था और चारपाई का सीधा खड़ा हुआ पीछे का हिस्सा आदमी मालूम होता था। इसलिए वह मानो जादू करके आदमी और औरत को अलग रखना चाहती थी, अर्थात् माता-पिता को अलग-अलग करना और उनका सम्भोग रोकना चाहती थी। उसके कृत्य के शुरू होने से वर्षों पहले उसने एक अधिक सीधे तरीके से यह लक्ष्य सिद्ध करने की कोशिश की थी। उसने भय का दिखावा किया था, या भय की प्रवृत्ति का लाभ उठाया था, जिससे उसके सोने के कमरे और उसके माता-पिता के सोने के कमरे के बीच का दरवाजा बंद न यह

उसके मौजूदा कृत्य में सचमुच शामिल था। इस प्रकार, उसने अपने माता-
की बातचीत चुपके-चुपके सुन पाने का तरीका बना लिया था। इस कार्य
किसी समय उसे महीनों नींद नहीं आई थी। अपने माता-पिता को इस तरह
ान करके ही वह सन्तुष्ट नहीं हुई थी, और कभी-कभी वह उस समय माता
पिता के बिस्तर में उनके बीच में सोने में भी सफल हुई थी। 'गोल
किया' और चारपाई तब वास्तव में इकट्ठे नहीं मिल सके थे। जब अन्त में
इतनी बड़ी हो गई कि माता-पिता के साथ उस बिस्तर में सुविधा के साथ
ो सो सकती थी, तब उसने जान-बूझकर भय का दिखावा करके, और
नी माता से अपना स्थान बदलकर तथा पिता के पास उसका स्थान लेकर
ो प्रयोजन पूरा किया। निश्चित रूप से इस घटना से ही उसके कल्पना-
क का आरम्भ हुआ जिसका प्रभाव उसके कृत्य में स्पष्ट दिखाई देता था।

यदि गोल तकिये का अर्थ औरत था तो रजाई हिलाकर सब पर पैरों की
र लाने का, जिससे तली में एक उभार बन जाए, भी कुछ अर्थ था।
का अर्थ था स्त्री को निषेचित करना, अर्थात् उसको गर्भाधान कराना। उसने
र्भावस्था को फिर भी दूर नहीं किया, क्योंकि वर्षों वह इस बात से डरती रही
उसके माता-पिता के सम्भोग से कोई और बच्चा पैदा हो जाएगा और इस
ह उसका कोई प्रतिस्पर्धी आ जाएगा। दूसरी ओर, यदि बड़े गोल तकिये का
र्थ माता था तो छोटे तकिये का अर्थ पुत्री ही हो सकता था। तो यह तकिया
ड़े तकिये पर टेढ़ा करके क्यों रखा जाता था, और उसका सिर ठीक इसके बीच
लम्बाईनुमा क्यों रखा जाता था? उससे आसानी से यह ध्यान आ जाता था
कि दीवारों पर बनाये गए चित्रों में समचतुर्भुज का प्रयोग खुली स्त्री-जननेन्द्रियों
ो सूचित करने के लिए किया जाता है। पुरुष (पिता) का कार्य इस तरह
ह स्वयं करती थी, और पुरुष-लिंग के स्थान पर अपना सिर रखती थी।
देखिए बधिया करने के लिए सिर काटने का प्रतीक)।

आप कहेंगे कि एक कुमारी लड़की के दिमाग में ये कैसे भयंकर विचार
आ रहे हैं! मैं यह बात मानता हूं, पर यह न भूलिए कि मैंने ये विचार बनाए
नहीं हैं, सिर्फ उन्हें उघाड़ दिया है। सोने से पहले इस तरह के कृत्य या काम-
काज भी काफी विचित्र बात है, और इस काम-काज और उसकी कल्पनासृष्टि
निर्वचन से जो सादृश्य और सम्बन्ध प्रकट हुआ है, उससे आप इन्कार नहीं
कर सकते। परन्तु मेरे लिए अधिक महत्त्व की बात यह है कि आप इस बात
र ध्यान दें कि यह काम-काज किसी एक ही कल्पनासृष्टि का परिणाम नहीं
था, बल्कि इसमें कई कल्पनासृष्टियां मिली हुई थीं, जिनकी कहीं एक गांठ या
न्धन-केन्द्र होगा। यह भी देखिए कि इस काम-काज की विस्तृत बातों से
विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनों रूपों में यौन इच्छाओं का पता चलता है। कुछ

उतना ही स्पष्टतः हम यह सम्बन्ध-सूत्र स्थापित करने की आशा कर सकते हैं। तब यह कार्य एक खास खोज बन जाता है क्योंकि उसे भूतकाल की स्थिति की प्रत्येक अनुपयोगी क्रिया और प्रत्येक अर्थहीन विचार, जिसमें वह विचार और क्रिया उचित होते, एक उपयोगी प्रयोजन सिद्ध करते हैं। उस रोगिणी का मनोग्रस्तता-कार्य, जो दौड़कर मेज़ पर पहुँचती थी और नौकरानी को बुलाने के लिए घण्टी बजाती थी, इस तरह के लक्षण का सबसे बढ़िया नमूना है। पर एक सर्वथा भिन्न प्ररूप के लक्षण बहुत बार दिखाई देते हैं। ये वे लक्षण हैं जिन्हें हम रोग के प्राप्रूपिक[1] लक्षण कहते हैं। ये प्रत्येक केस में प्रायः एक-से होते हैं। उनमें फर्क प्रायः दिखाई नहीं देते या बहुत ही थोड़े होते हैं, और इसलिए उनका रोगी के जीवन या उसके भूतकाल की विशेष स्थितियों से सम्बन्ध जोड़ना कठिन होता है। दूसरी रोगिणी के नींद से पहले के काम-काज बहुत-सी दृष्टियों से बिलकुल प्राप्रूपिक है, यद्यपि उसमें कुछ निजी विशेषताएं भी हैं, जिनके कारण, यह कहा जा सकता है कि उनका 'ऐतिहासिक' निर्वचन भी हो सकता है, पर मनोग्रस्तता के सब रोगियों में आवृत्ति या दोहराना, अपनी कुछ क्रियाओं को अलग कर लेना, और तालबद्ध व्यापार पाए जाते हैं। उनमें से बहुत-से लोग बहुत नहाते-धोते हैं। जो रोगी अगोरा-फोबिया (टोपोफोबिया अर्थात् स्थान-भीति के रोगी होते हैं—अब यह रोग मनोग्रस्तता-रोग नहीं माना जाता बल्कि इसे चिन्ता-हिस्टीरिया में गिना जाता है) में रोग-चित्त की वही विशेषताएं फिर पेश करते हैं, वे घिरे हुए स्थानों, चौड़े खुले चौराहों, लम्बी सड़कों और गलियों से डरते हैं। यदि कोई उनके साथ हो, या कोई सवारी उनके पीछे आ रही हो तो वे रक्षित अनुभव करते हैं। तो भी, इतनी समानता रखते हुए अलग-अलग मरीज़ों में अपनी निजी दशाएं दिखाई देती हैं। आप उन्हें मनोदशाएं कह सकते हैं, जिनमें एक-दूसरे से बहुत असमानता होती है। कोई रोगी सिर्फ तंग गलियों से डरता है, कोई सिर्फ चौड़ी सड़कों से डरता है, कोई सिर्फ तब चल सकता है जब आसपास अधिक लोग न हों, और कोई तब ही चल सकता है जब चारों ओर लोग ही लोग हों। इसी तरह हिस्टीरिया में व्यक्तिगत विशेषताओं की प्रचुरता के अलावा सदा बहुत सारे सामान्य प्राप्रूपिक लक्षण होते हैं जो ऐतिहासिक ढंग से आसान निर्वचन करने में बाधा डालते प्रतीत होते हैं। हमें यह न भूलना चाहिए कि इन प्राप्रूपिक लक्षणों द्वारा ही हम निदान करने में अपना आधार बना सकते हैं। मान लीजिए कि हिस्टीरिया के किसी केस में हम पीछे की ओर चलते हुए किसी प्राप्रूपिक लक्षण से किसी अनुभव तक या एक जैसे अनुभवों की शृंखला तक (उदाहरण के लिए हिस्टीरिया-वमन (उलटी) से घृणित प्रकार की भावनाओं की श्रेणी तक) सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, तो किसी दूसरे केस में यह पता चल

[1]. Typical

सकता है कि वमन (उलटी) पैदा करनेवाले अनुभव पहले वाले अनुभवों से सर्वथा
भिन्न हैं और ऊपर से वे कारण मालूम होते हैं, और इस तरह विभ्रम हो जाता
है। पर ऐसा लगने लगता है जैसे किसी अज्ञात कारण से हिस्टीरिया के रोगियों
को वमन (उलटी) अवश्य होनी चाहिए, और मनोविश्लेषण द्वारा प्रकाश में लाए
गए ऐतिहासिक कारण बहाने-मात्र हैं, जो भीतरी आवश्यकता के कारण मौका
मिलने पर अपनी प्रयोजन-सिद्धि के लिए अपना लिए गए हैं।

इससे हम इस निराशाजनक नतीजे पर पहुंचते हैं कि यद्यपि स्नायविक लक्षण
के व्यक्तिगत रूपों की सन्तोषजनक व्याख्या रोगी के अनुभवों से उनका सम्बन्ध
स्थापित करके निश्चित रूप से की जा सकती है, तो भी उन्हीं केसों में अधिकतर
होने वाले प्रारूपिक लक्षणों में हमारा विज्ञान असफल रह जाता है। इसके अलावा,
मैंने किसी लक्षण के ऐतिहासिक अर्थ की दृढ़ता से खोज करने में आनेवाली सब
कठिनाइयां आपके सामने नहीं रखी हैं, और न मैं उन्हें रखूंगा, क्योंकि यद्यपि मैं
न कोई चीज़ छिपाना चाहता हूं, और न किसी चीज़ की शेखी बघारना
हूं पर हमारे इस मिले-जुले अध्ययन के शुरू में ही आपको विभ्रम और
में नहीं डालना चाहता। यह सच है कि लक्षण-निर्वचन को समझना अभी
शुरू ही किया है पर जो जानकारी हमें प्राप्त हुई है, उसे हम याद रखेंगे
अज्ञात बातों की कठिनाइयों को एक-एक करके हल करेंगे आपको इस
र से शायद खुशी होगी कि एक तरह के लक्षण और दूसरी तरह के लक्षण में
मौलिक अन्तर मानना सम्भव नहीं है। यदि लक्षण का व्यक्तिगत रूप रोगी
नुभवों से इतने निश्चित रूप से सम्बन्धित है तो सम्भव है कि प्रारूपिक लक्षण
अनुभव से सम्बन्धित हो जो स्वयं प्रारूपिक है और सारी मनुष्य जाति में
न्य है। स्नायुरोग की अन्य सदा पाई जानेवाली विशेषताएं, जैसे मनोग्रस्तता-
की पुनरावृत्ति और सन्देह, ऐसी व्यापक प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं जिन्हें
अस्वस्थ परिवर्तन के स्वरूप के कारण अतिरंजित करने को मजबूर होता
संक्षेप में बात यह है कि निराश होकर जल्दी में हाथ-पांव छोड़ देना उचित
है। हमें यह देखना चाहिए कि हम और क्या पता लगा सकते हैं।
इसी तरह की कठिनाई स्वप्नों के सिद्धान्त में आई थी, जिसकी मैं अपने स्वप्न
विवेचन के समय पूरी तरह व्याख्या नहीं कर सका था। स्वप्नों की व्यक्त वस्
बहुत रूपों में होती है और अलग-अलग व्यक्ति में उसका बड़ा भिन्न रूप होता
और हम बड़े विस्तार से यह दिखा चुके हैं कि इस वस्तु के विश्लेषण से क्या जानका
प्राप्त हो सकती है। पर ऐसे स्वप्न भी होते हैं जो उसी तरह प्रारूपिक कहे जा सक
हैं और प्रत्येक को आते हैं, अर्थात् एक ही वस्तु वाले स्वप्न जिनके निर्वच
में एक-सी कठिनाइयां आती हैं। ये गिरने, उड़ने, बहने, तैरने, रोके ज
या होने के स्वप्न और ऐसे ही दूसरे चिन्ता-स्वप्न होते हैं, जिनमें सम्बन्धित व्य

नुसार, पहले एक और फिर दूसरा निर्वचन होता है, और उनके बार-बार
मे तथा प्रारुपिक रूप मे आने की कोई व्याख्या नही हो पाती। पर हम देखते हैं
न स्वप्नो मे भी सामान्य जमीन पर व्यक्तिगत विशेषता की सजावट मौजूद
है। सभवत वे भी दूसरे प्रकार के स्वप्नो के अध्ययन मे स्वप्न-जीवन विषयक
जानकारी के साथ सुसगत हो सकते हैं पर किसी जबरदस्ती या खीचतान
नही, बल्कि इन चीजो को समझने का क्षेत्र धीरे-धीरे विस्तृत करके।

उपघातों पर वक्तृता : अचेतन

मैंने पिछली बार कहा था कि हम अपना आगे का कार्य अब तक प्राप्त जानकारी के आधार पर आगे बढ़ाएंगे, अपने मनों में उनसे उत्पन्न संदेहों के आधार पर नहीं। अभी हमने ऊपर के उदाहरणों के विश्लेषण से उत्पन्न सबसे मनोरंजक निष्कर्षों पर विचार आरम्भ भी नहीं किया है।

पहली बात दोनों मरीज़ों ने यह धारणा पैदा की है कि वे अपने भूतकाल की एक विशेष बात से बंधे हुए हैं, कि वे यह नहीं जानते कि अपने को उससे छुड़ाएं, और इसलिए वे वर्तमान और भविष्य दोनों से विच्छिन्न हो जाते हैं; मानो वे अपनी बीमारी में सबसे अलग रह जाते हैं; जैसे पुराने ज़माने में लोग अपने आश्रमों या कुटियों में अकेले रहकर अपने बदकिस्मती के दिन बिता दिया करते थे। पहले रोगी के मामले में उसका अपने पति से विवाह, जो असल में बहुत समय पहले खत्म हो चुका था, उसके मन में जम गया था। अपने लक्षणों के द्वारा वह उस पति के साथ अपना सम्बन्ध कायम रख सकी। उन लक्षणों में हमने ऐसी आवाज़ें सुनी जो उस पुरुष का समर्थन करती थी, उसे क्षमा करती थी, उसे ऊंचा उठाती थी, और उसके अभाव में शोक प्रकट करती थीं। यद्यपि वह युवती है और दूसरे पुरुषों को आकर्षित कर सकती है, पर वह हर सम्भव वास्तविक और काल्पनिक सतर्कता रखती है जो उस पुरुष के प्रति उसकी निष्ठा कायम रखेगी। वह अपरिचितों से नहीं मिलती, अपने बनाव-सिंगार पर ध्यान नहीं देती; इसके अलावा वह जिस कुर्सी पर बैठ जाती है उससे आसानी से नहीं उठ सकती, और वह अपना हस्ताक्षर नहीं करती और कोई उपहार नहीं दे सकती, क्योंकि उसकी अपनी चीज़ और किसीको नहीं मिलनी चाहिए।

दूसरी रोगिणी, अर्थात् नौजवान लड़की में जवानी से बहुत पहले पिता से जो कामुक अनुराग बन गया था, वह उसके जीवन में यह कार्य कर रहा है। उसने स्वयं भी यह देखा है कि जब तक वह इस तरह बीमार है, तब तक वह विवाह नहीं कर सकती। हम यह संदेह कर सकते हैं कि वह विवाह के अयोग्य बनने और इस

तरह अपने पिता के साथ ही रह सकने के लिए इतनी बीमार हो गई है।

हमें यह प्रश्न पूछना ही होगा कि कोई व्यक्ति जीवन के प्रति ऐसा असाधारण और अनाभकर रुख कैसे, किन साधनों से और किन प्रेरक भावों से प्रेरित होकर अपना सकता है, यदि यह रुख स्नायुरोग में सर्वत्र दीखनेवाला गुण हो और इन दो मरीज़ों की कोई अपनी विशेषता न हो। सच्ची बात यह है कि यह ऐसा ही है। यह प्रत्येक स्नायुरोग में पाया जानेवाला सामान्य लक्षण है, और इसका व्यावहारिक महत्त्व बहुत अधिक है। ब्रायर की पहली हिस्टीरिया की रोगिणी इसी तरह उस समय से बद्ध[1] हो गई थी, अर्थात् बंध गई थी, जब उसका पिता बहुत रोगी था, और उसने उसकी परिचर्या की थी। उसके अच्छा हो जाने के बावजूद वह तभी से कुछ हद तक जीवन से विच्छिन्न रही है, क्योंकि यद्यपि वह स्वस्थ और चुस्त रही है, पर उसने स्त्री का सामान्य जीवन-कार्य नहीं अपनाया। अपने प्रत्येक रोगी में विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि लक्षणों और उनके प्रभावों ने रोगी को उसके जीवन से किसी गुज़रे हुए ज़माने में पहुंचा दिया है। अधिकतर उदाहरणों में यह ज़माना जीवन के इतिहास का बहुत आरम्भिक भाग, बचपन का काल या दूध पीते समय का ज़माना होता है, यद्यपि यह बात बेतुकी लगती है।

हमारे स्नायुरोगियों के इस व्यवहार से बहुत सादृश्य रखनेवाला रोग तथाकथित उपघातज स्नायुरोग[2] है, जिसे युद्ध ने कुछ समय से इतना आम बना दिया है। ऐसे उदाहरण युद्ध से पहले रेलवे दुर्घटनाओं तथा जीवन को खतरा पैदा करनेवाले दूसरे डरावने अनुभवों के बाद भी होते थे। उपघातज स्नायुरोग मूलतः वे स्नायुरोग नहीं हैं जो स्वयं पैदा होते हैं, जिनकी हम विश्लेषण द्वारा खोज करते हैं और जिनका हम इलाज करते हैं। आज तक हमें अपने अन्य विषयों सम्बन्धी विचारों से उनका सम्बन्ध जोड़ने में सफलता नहीं हुई। बाद में मैं आपको यह दिखाने की आशा करता हूं कि इसमें क्या रुकावट पड़ती है। फिर भी उनमें एक बात पर पूरी सहमति है जिसपर बल दिया जा सकता है। उपघातज स्नायुरोगों से यह बहुत अच्छी तरह प्रकट हो जाता है कि उनके मूल में उपघात सम्बन्धी घटनाओं के समय से बद्धता होती है। ये रोगी अपने स्वप्नों में सदा उपघातवाली स्थिति पैदा करते हैं। हिस्टीरिया जैसे दौरों वाले मामलों में जिनमें विश्लेषण हो सकता है, यह प्रतीत होता है कि उस दौरे में वह स्थिति पूरी की पूरी फिर उत्पन्न हो जाती है, मानो यह व्यक्ति अभी तक उस स्थिति को पूरी तरह हल नहीं कर सकेगा, मानो यह काम अभी उसके सामने सचमुच अधूरा पड़ा है। हम उसके इस रुख को पूरी सजीदगी से स्वीकार करते हैं। इसमें उस मार्ग का संकेत मिलता है जिसे हम मानसिक प्रक्रमों का आर्थिक अवधारण कह सकते हैं। 'उपघात संबंधी'

१. Fixated २. Traumatic neurosis

शब्द का इस प्राविधिक अर्थ के अलावा, अमल में, और कोई अर्थ नहीं है। उस
अनुभव को हम उपघातज, अर्थात् चोट से पैदा होनेवाला कहते हैं जो बहुत
थोड़े-से समय में मन पर उद्दीपन की इतनी अधिक मात्रा ला देता है कि उसका
प्रायः साधनों से स्वीकरण[1] या विघटन नहीं किया जा सकता और इसलिए
मन में मौजूद ऊर्जा के वितरण में स्थायी विक्षोभ पैदा हो जाते हैं।

इस सादृश्य को देखकर हम उन अनुभवों को भी उपघातज में गिना देना चाहते
जिनसे हमारे स्नायुरोगी बंधे हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार, हमें स्नायुरोग
सरल समस्या मिल जाएगी। इसकी उपघातज रोग से तुलना न हो सकेगी
ह प्रभिभूत करनेवाले भावात्मक अनुभव को पचाने की असमर्थता से पैदा
। असल में, ब्रायर ने और मैंने १८९३-९५ में अपने नये प्रेक्षणों को एक
त का रूप दिया था। वह कुछ ऐसे ही रूप में था। उपर्युक्त पहले मरीज
मामला, जिसमें एक युवा औरत अपने पति से अलग हो गई है, इस वर्णन में
अच्छी तरह जच जाती है। वह अपने विवाह की अव्यवहार्यता को 'विजय'
कर सकी और अब भी उस उपघात से बंधी हुई थी; पर दूसरे नौजवान
की वाले केस से, जो अपने पिता से बंधी हुई थी, तुरन्त यह पता चलता है कि
सूत्र काफी व्यापक नहीं है। एक ओर तो छोटी लड़की का अपने पिता के प्रति
ल्यकालीन प्रणयाभाव ऐसा आम अनुभव है और इतना अधिक पाया जाता
यदि यहां 'उपघातज' शब्द का प्रयोग करें तो वह निरर्थक हो जाता है, दूस
ोर, केस के इतिहास से पता चलता है कि इस पहले यौन बन्धन को रोगी
उस समय बिना कोई बाहरी लक्षण प्रकट किए बिलकुल हानिरहित ढंग से
कर लिया और वह कई वर्षों बाद ही मनोग्रस्तता-रोग के रूप में प्रकट हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्नायुरोग में बहुत-सी उलझनें, बड़ी विवि
और अनेक निर्धारक कारक हैं। पर हमारा विचार है कि उपघात सम्बन्धी
कोण को मिथ्या मानकर छोड़ना जरूरी नहीं होगा, और कि यह दूसरी ज
ठीक तरह जच जाएगा और इसका समन्वय करना होगा।

यहां फिर हमें अपना पहले वाला रास्ता छोड़ना होगा। इस समय हम
बहुत आगे नहीं पहुंच सकते और इसको सन्तोषजनक रीति से आगे चलाने
हमें बहुत कुछ सीखना पड़ेगा, पर उपघातों से बद्धता के विषय को छोड़ने
यह समझ लेना चाहिए कि यह घटना स्नायुरोगों के अलावा और बहुत
में व्यक्त होती है; प्रत्येक स्नायुरोग में ऐसी बद्धता होती है, पर प्रत्येक
स्नायुरोग नहीं सूचित होता, या प्रत्येक बद्धता का स्नायुरोग से सम्ब
आवश्यक नहीं, या प्रत्येक बद्धता स्नायुरोग में ही नहीं पैदा होती। दु

१. Assimilation

भूतकाल की चोट पर भावबद्धता का मूल रूप[1] और आदर्श उदाहरण है और स्नायु-रोगों की तरह इसमें भी वर्तमान और भविष्य से पूर्ण विच्छेद की अवस्था हो जाती है। पर साधारण आदमी भी दुःख और स्नायुरोग में स्पष्ट भेद करता है। दूसरी ओर, ऐसे स्नायुरोग रोग भी हैं जिन्हें दुःख के अस्वस्थ रूप कहा जा सकता है।

ऐसा भी होता है कि किसी उपघातज अनुभव से, जिसने व्यक्ति के जीवन के सारे ढांचे को जड़ से हिला दिया हो, उसका जीवन पूर्णतया स्थिर हो गया हो और इस तरह उसने वर्तमान और भविष्य में सारी दिलचस्पी छोड़ दी हो और वह स्थायी रूप से भूतकाल के चिन्तन में ही डूबा रहता हो। पर ऐसे दुःखी लोगों का स्नायुरोगी [illegible]

गों :

मे

अब हमारे विश्लेषण से निकले दूसरे निष्कर्ष पर विचार कीजिए। इस निष्कर्ष पर हमें बाद में कोई मर्यादा लगाने की आवश्यकता नहीं होगी। पहली रोगिणी से हमने उसके अर्थहीन मनोग्रस्तता-कार्य भी, और इसके सिलसिले में वह जिन घनिष्ट स्मृतियों को याद करती थी, उनकी बात सुनी है। हमने दोनों के सम्बन्ध पर भी विचार किया और स्मृति के साथ इसके सम्बन्ध-सूत्र को देखकर इस मनोग्रस्तता-कार्य का प्रयोजन भी अनुमान से निकाला। पर एक बात को हमने पूरी तरह उपेक्षित कर दिया, जबकि इस बात पर अधिक से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक रोगिणी यह कार्य करती रही, तब तक वह यह नहीं जानती थी कि इसका पिछले अनुभव से किसी भी तरह सम्बन्ध है। दोनों बातों का सम्बन्ध-सूत्र छिपा हुआ था। वह यह बिलकुल सच्चा उत्तर दे सकती थी कि मैं यह नहीं जानती कि किसी आवेग के वशीभूत होकर ऐसा करती हूं। तब एकाएक ऐसा हुआ कि इलाज के प्रभाव से उसे यह सम्बन्ध-सूत्र पता चल गया, और वह इसे कह सकी। पर तब भी उसे यह पता नहीं था कि वह क्रिया करने में उसका क्या प्रयोजन था—उसका प्रयोजन भूतकाल की कष्टकारी घटना को सुधारना और अपने प्रिय पति को अपनी नजरों में ऊंचा उठाना था। उसे यह समझने में और मेरे सामने स्वीकार करने में बहुत समय और प्रयास लगाना पड़ा कि उसके मनोग्रस्तता-कार्य के पीछे ऐसा प्रेरक भाव ही क्रियाशील हो सकता था।

दुःखदायी सुहागरात के बाद वाले सवेरे के दृश्य से सम्बन्ध, और अपने पति के प्रति रोगिणी की अपनी कोमल भावना, ये दोनों बातें मिलकर मनोग्रस्तता-कार्य का 'अर्थ' कही गई हैं। पर इस अर्थ के दोनों पहलू उससे छिपे हुए थे। जब तक वह यह कार्य करती रही, तब तक उसे न तो अपने काम का कहां से समझ में

1. Prototype

ढङ्गा और न स्थिर। इसलिए उसके भीतर ऐसे मानसिक प्रक्रम क्रिया कर रहे थे, जिनका परिणाम वह मनोग्रस्तता-कार्य था। वह उनके प्रभाव से सामान्य रीति से परिचित थी, पर इस परिणाम का मानसिक पूर्व-इतिहास उसकी चेतना के ज्ञान में नहीं आता था। वह सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) से प्रभावित उस पात्र या माध्यम[1] की तरह ही व्यवहार कर रही थी, जिसे बर्नहीम ने उसके जागने के पाँच मिनट बाद छतरी खोलने का आदेश दिया था पर जिसे यह कुछ पता नहीं था कि वह ऐसा क्यों कर रहा था। जब हम अचेतन मानसिक प्रक्रमों के अस्तित्व की बात करते हैं, तब हमारे मन में इसी तरह की घटना होती है; हम संसार में सबको यह चुनौती दे सकते हैं कि वे इस मामले की अधिक सही वैज्ञानिक व्याख्या पेश करें। तब हम खुशी से अपना यह अनुमान वापस ले लेंगे कि अचेतन मानसिक प्रक्रमों का अस्तित्व है, पर जब तक कोई ऐसी व्याख्या नहीं पेश करता, तब तक हम इस अनुमान पर दृढ़ रहेंगे, और जब कोई यह आप... करेगा कि वैज्ञानिक अर्थ में अचेतन का कोई यथार्थ अस्तित्व नहीं है, यह एक कामचलाऊ कल्पना-मात्र है, तब हम उसके कथन को अस्वीकार ही कर स... है। यह अयथार्थ और अवास्तविक है, पर फिर भी मनोग्रस्तता-कार्य जैसी य... और दृष्टिगोचर चीज पैदा कर सकता है।

दूसरी रोगिणी में भी मूल रूप से यही चीज पाई जाती है। उसने यह ... बना लिया है कि गोल बड़ा तकिया चारपाई के पिछले हिस्से को न छुए ... इस नियम का पालन करती है पर वह यह नहीं जानती कि यह नियम ... पैदा हुआ, इसका क्या अर्थ है या यह किस बल पर चलता है। वह इस ... उदासीन है, या इससे संघर्ष करती है, या इसपर क्रोध करती है, या इसे ... करने का संकल्प करती है—इस बात का विशेष महत्त्व नहीं, पर यह नि... जाता है। इसका पालन उसे अवश्य करना होगा। वह व्यर्थ ही अपने-आप... है कि क्यों करना होगा! इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मन... रोग के ये लक्षण, ये मनोबिम्ब और ये आवेग, जिनके बारे में कोई ... नहीं जानता कि ये कहां पैदा होते हैं, और जो उन सारे प्रभावों का ... प्रतिरोध सहते हैं और फिर भी बने रहते हैं, जिन्हें वैसे प्रकृत मानसिक ... नहीं कर सकता, स्वयं रोगियों पर भी यह असर डालते हैं कि जैसे वे ... लोक से आए हुए सर्वशक्तिमान देवता हैं, या अमर सत्ताएं हैं, जो म... आवर्त-चक्र में आकर मिल गई हैं। इन लक्षणों से मानसिक व्यापार ... क्षेत्र का स्पष्टतम संकेत मिलता है, जो शेष सब व्यापारों से विच्छि... मन में अचेतन की सत्ता के प्रश्न पर विश्वास करने का असंदिग्ध मार्ग

---

1 Subject

है, और इसी कारण मनश्चिकित्सा, जो सिर्फ चेतना के मनोविज्ञान को मानती है, इन लक्षणों के विषय मे इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकती कि उन्हें एक विशेष तरह के 'पतन' के चिह्न बना दे। स्वभावत मनोग्रस्तता वाले मनोबिम्ब और आवेग स्वय उससे अधिक अचेतन नहीं होते जितना मनोग्रस्तता-कार्यों का करना। यदि वे चेतना मे न घुस गए होते तो रोग-लक्षण न बने होते, पर विश्लेषण से उनके जो मानसिक पूर्व-इतिहास प्रकट हुए, निर्वचन के बाद वे जिन सम्बन्धों से बधे, वे कम से कम तब तक अचेतन हैं, जब हम विश्लेषण के कार्य द्वारा रोगी को उनसे चेतन, अर्थात् सज्ञान बनाते हैं।

इसके अलावा, अब इस बात पर भी विचार कीजिए कि इन दो केसो मे स्थापित तथ्यों की प्रत्येक स्नायु-रोग के प्रत्येक लक्षण में पुष्टि होती है, कि लक्षणों का अर्थ सदा और सर्वत्र रोगी को अज्ञात होता है, कि विश्लेषण सदा यह प्रकट करता है कि ये लक्षण उन अचेतन मानसिक प्रक्रमों से पैदा होते हैं जो अनेक अनुकूल अवस्थाओं मे चेतन भी हो सकते हैं। तब आपको यह बात समझ मे आएगी कि मनोविश्लेषण में हम मन के अचेतन भाग को छोडकर नहीं चल सकते, और हमे इसके साथ उसी तरह व्यवहार करने का अभ्यास है, जैसे किसी वास्तविक और मूर्त चीज से। शायद आप यह भी अनुभव कर सकेंगे कि वे लोग इस विषय मे राय बनाने मे कितने अक्षम हैं, जो अचेतन को एक शब्द-मात्र के रूप में जानते हैं, जिन्होंने कभी स्वप्नों का विश्लेषण या निर्वचन या स्नायविक लक्षणों का उनके अर्थ और आशय मे रूपान्तर या अनुवाद नहीं किया। आपके ध्यान में इसे अच्छी तरह से बैठाने के लिए मैं इसका सारांश फिर दोहराऊंगा। यह तथ्य कि विश्लेषण तथा निर्वचन द्वारा स्नायविक लक्षणों का अर्थ जानना सम्भव है, अचेतन मानसिक प्रक्रमों के अस्तित्व का, या यदि आप यों कहना चाहें तो उनका अस्तित्व मानने की आवश्यकता का अकाट्य प्रमाण है।

पर इतनी ही बात नहीं है। ब्रायर की दूसरी खोज से, जिसका सारा श्रेय उस अकेले को है और जिसका महत्त्व मुझे पहली खोज से भी अधिक दूरगामी मालूम होता है, अचेतन और स्नायु-रोगियों के लक्षणों के आपसी सम्बन्ध के बारे मे और भी ज्ञान प्राप्त हुआ। लक्षण का अर्थ ही सदा अचेतन नहीं होता, उन दोनों मे स्थानापन्नता के ढग का सम्बन्ध-सूत्र भी होता है। लक्षण का अस्तित्व इस अचेतन व्यापार के कारण ही हो सकता है। मेरा आशय आप जल्दी ही समझ जाएंगे। ब्रायर की तरह मैं भी यह बात मानता हू · जब कभी हम कोई लक्षण देखते हैं, तभी हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि रोगी के मन मे सुनिश्चित अचेतन व्यापार मौजूद है, जिसमे लक्षण का अर्थ निहित है। विलोमत., यह अर्थ पहले अवश्य अचेतन होना चाहिए, तब ही इसमे कोई लक्षण पैदा हो सकता है। लक्षण चेतन प्रक्रमों से नहीं पैदा होता। ज्योंही लक्षण पैदा करने

किसी विशेष रोगी में अचेतन रूप से मौजूद भावनाएं कौन-सी हैं। इसलिए रोगी को अपना ज्ञान देकर और इस तरह उसका अज्ञान दूर करके उसका इलाज करना कोई कठिन काम नहीं होता। लक्षण के अचेतन अर्थ का एक पहलू तो इस तरह आसानी से हल हो सकता है, यद्यपि यह सच है कि इसका दूसरा पहलू, अर्थात् लक्षण तथा रोगी के जीवन के पिछले अनुभवों का सम्बन्ध, इस प्रकार नहीं जाना जा सकता; क्योंकि विश्लेषक नहीं जानता कि रोगी को क्या अनुभव हुए हैं, इसलिए उसे तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक रोगी उन्हें याद न कर ले और उसे न बता दे। पर बहुत-से उदाहरणों में इसके स्थान पर भी एक दूसरा उपाय किया जा सकता है। आप रोगी के मित्रों और रिश्तेदारों से उसके पिछले जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्रायः उन्हें यह पता होता है कि उपघात के ढंग की, अर्थात् मन को चोट पहुंचाने वाली कौन-सी घटनाएं हुई हैं। शायद वे कुछ ऐसी घटनाएं भी बतला सकें, जिनका रोगी को ज्ञान नहीं है, क्योंकि वे उसके बहुत बचपन में हुई थीं। ऐसा मालूम होने लगता है कि दोनों उपायों को मिलाकर रोगियों के रोगजनक अज्ञान को बहुत जल्दी और बिना अधिक परेशानी के दूर किया जा सकता है।

काश कि ऐसा हो सकता! हमने ऐसी खोजें की हैं जिनके होने से पहले हमें जरा भी यह सम्भावना नहीं थी कि जानने और जानने में भेद होता है। दोनों ज्ञान सदा एक ही चीज़ नहीं होते। ज्ञान अनेक प्रकार का होता है, और सब प्रकारों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समान मूल्य नहीं होता। चिकित्सक का जानना और रोगी का जानना एक ही चीज़ नहीं हैं, और उन दोनों का एक ही प्रभाव नहीं होता। जब डाक्टर रोगी को अपना ज्ञान प्रकट करता है तब उसका प्रभाव होता है। नहीं, ऐसा कहना सही नहीं। इसका प्रभाव यह नहीं होता कि लक्षण लुप्त हो जाए; पर इसका एक और प्रभाव होता है—इससे विश्लेषण गतिमान हो जाता है, और इसका पहला परिणाम प्रायः जोरदार निषेध होता है। रोगी को कुछ ऐसी चीज़, अर्थात् अपने लक्षण का अर्थ, ज्ञात हुआ है जो उसे पहले ज्ञात नहीं था, और तब भी वह पहले की तरह कुछ नहीं जानता। इस तरह हम देखते हैं कि अज्ञान एक से अधिक प्रकार का होता है। यह समझने के लिए कि इन दोनों में किस बात का अन्तर है, मनोवैज्ञानिक मामलों की गहरी पैठ और सूझ-बूझ होनी चाहिए। पर यह कथन तब भी सच रहता है कि लक्षणों के अर्थ का ज्ञान हो जाने पर वे लुप्त हो जाते हैं। इसकी आवश्यक शर्त यह है कि इस ज्ञान का आधार रोगी का आन्तरिक परिवर्तन होना चाहिए, और यह परिवर्तन इस उद्देश्य से किए गए मानसिक व्यापार द्वारा ही हो सकता है। यहां हमारे सामने ऐसी समस्याएं आ गई हैं जो शीघ्र ही बढ़ते-बढ़ते लक्षण-निर्माण की गतिकी[1]

[1]. Dynamics

(या गति विज्ञान) का रूप धारण कर लेंगी।

अब मुझे सचमुच रुक जाना चाहिए, और आपसे यह पूछना चाहिए। [illegible] बातें मैं कह रहा हूं, वे बहुत अधिक अस्पष्ट और उलझनदार तो नहीं हैं? क्या मैं इतनी सारी शर्तें और मर्यादाएं लगाकर, विचार-भुलभुलाए बनाकर फिर उन्हें छोड़कर आपके मन में गड़बड़-घुटाला तो नहीं पैदा कर रहा? ऐसा होगा तो मुझे बड़ा दुःख होगा। मुझे सत्य की हानि करके सरलीकरण [illegible] एकदम नापसन्द है। मुझे इस विषय के अनेक पहलुओं और कठिनाइयों का चित्र आपके सामने रखने की इच्छा है, और मैं यह मानता हूं कि प्रत्येक प्रश्न के [illegible] में जितना आप इस समय पचा सकते हैं, उससे अधिक बताने से कोई हानि [illegible] होगी। मैं जानता हूं कि प्रत्येक श्रोता और प्रत्येक पाठक जो कुछ सुनता या [illegible] उसे अपने मन में अपने ढंग से सजा लेता है। उसे संक्षिप्त करता है, उसे [illegible] करता है, और उसमें से वह चीज निकाल लेता है जो वह याद रखना चाहता [illegible] कुछ सीमाओं में यह बात सच है कि हम जितने अधिक से शुरू करेंगे, अन्त में [illegible] ही अधिक हमारे पास रहेगा। इसलिए मुझे आशा है कि विचार के व्यापार [illegible] वाले सवालों के अर्थ, प्रयोजन और उन दोनों के सम्बन्ध के बारे में मैंने बहुत [illegible] [illegible] [illegible] किया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया है कि [illegible]

विपरीत, यह उसकी स्मृति में सजीव है, इसी तरह उसके लक्षण के निर्माण की कोई और भी बात भूली हुई नहीं है। दूसरे उदाहरण में, जिसमें लडकी मनोग्रस्तता के काम-काज करती है, स्थिति बिलकुल ऐसी है, यद्यपि वह इतनी स्पष्ट नहीं है। वह भी अपने पहले के दिनों के व्यवहार को असल में भूली नहीं थी। यह तथ्य था कि उसने अपने माता-पिता के सोने के कमरे और अपने सोने के कमरे के बीच का दरवाजा खुला रखने का आग्रह किया था, और कि उसने अपनी माता को अपने माता-पिता के बिस्तर से हटा लिया था। उसे यह बात बिलकुल स्पष्ट रूप से ज्ञात थी, यद्यपि उसे इसमें सकोच और अनिच्छा अनुभव होती थी। इसमें विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि पहली रोगिणी ने अपना मनोग्रस्तता-कार्य असख्य बार किया था, पर उसे सुहागरात के बाद वाले दृश्य से इसकी समानता का ध्यान एकबारगी नहीं आया, और जब उससे अपने मनोग्रस्तता-कार्य का मूल खोजने के लिए सीधे तौर से कहा गया, तब भी उसे यह बात ध्यान नहीं आई। यही बात उस लडकी के बारे में भी है, जिसके सामने न केवल अपना निश्चित काम बल्कि उसे पैदा करनेवाली स्थिति भी हर सायकाल उसी रूप में आती थी। दोनों में से किसी भी उदाहरण में स्मृति-व्यवधान या एमनेशिया वस्तुतः नहीं था, पर वह सम्बन्ध-सूत्र टूट गया था जो जैसे का तैसा रहना चाहिए था, और जिसे उन बातों का स्मरण कराना चाहिए था। मनोग्रस्तता-रोग के लिए स्मृति का इस तरह गडबड हो जाना काफी है। हिस्टीरिया में यह दूसरी तरह का होता है। हिस्टीरिया रोग में प्रायः बहुत बड़े पैमाने पर स्मृति-व्यवधान होते हैं। साधारणतया हिस्टीरिया के प्रत्येक लक्षण का विश्लेषण करने पर पिछले सस्कारों की एक पूरी की पूरी शृखला मिलती है, जिसके बारे में उनके लौट आने पर यह कहा जा सकता है कि वह अब तक बिलकुल भूली हुई थी। यह शृखला एक ओर तो बचपन के बिलकुल प्रारम्भिक दिनों तक पहुचती है, और इसीलिए हिस्टीरिक एमनेशिया, अर्थात् हिस्टीरिया का स्मृति-व्यवधान उस बाल्यकालीन स्मृति-व्यवधान का सीधा विस्तार दिखाई देता है, जो हमारे मानसिक जीवन के शुरू के सस्कारों को हम सबसे छिपाए रखते हैं। दूसरी ओर हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि रोगी को बहुत हाल के अनुभव भी भूल जाते हैं, और विशेष रूप से वे उत्तेजक [illegible] जिन्होंने रोग को जन्म दिया या उसे बढाया था, स्मृति-व्यवधान से पूरी [illegible]ने पर भी कम से कम अंशत. तो लुप्त हो ही जाते हैं। हाल की [illegible]त्वपूर्ण बातें सदा लुप्त हो जाती हैं, या [illegible] बार-बार प्राय सदा यह हुआ कि विश्ले-[illegible] अनुभवों की वे स्मृतियां ऊपर आ जाती [illegible] थीं, और जिन्होंने सिलसिले में बहुत-से [illegible]खाली स्थान छोड रखे थे।

प्रतिरोध और दमन[1]

अब हमें स्नायु-रोगो को समझने की दिशा में बढ़ने के लिए [illegible]
आवश्यकता है। हमारे पास ही दो प्रेक्षण मौजूद हैं। दोनों [illegible]
[illegible] हैं और शुरू में बड़े आश्चर्यजनक थे। आप हमारे पिछले
[illegible] से उन दोनों के लिए निःसन्देह तैयार हो चुके हैं।

पहला : जब हम किसी रोगी के लक्षणों का इलाज करने
[illegible] हैं, तब वह इलाज के सारे समय हमारा ज़ोरदार और
[illegible] करता है। यह ऐसी असाधारण बात है कि हम इसमें आपका बहु
[illegible] आशा नहीं करते। सबसे अच्छी बात यह है कि रोगी के [illegible]
बारे में कुछ न कहा जाए, क्योंकि वे सदा यह समझते हैं कि
[illegible] सीखने के लिए या इलाज के व्यर्थ हो जाने पर यह बहाना
है। रोगी में इस प्रतिरोध के सब प्रकट रूप दिखाई देते हैं, [illegible]
[illegible] नहीं पहचानता, और हम उसे यह तथ्य अनुभव करा
[illegible] कि एक बहुत बड़ी बाधा पार कर ली। यह सोचना कि रोगी
[illegible] और उसके रिश्तेदारों को इतना कष्ट दे रहे हैं, और [illegible]
लिए समय, धन और परिश्रम का इतना त्याग और [illegible]
तैयार है, वह अपने रोग को दूर करने के लिए प्रस्तुत सहाय
करे — यह बात कितनी असम्भाव्य लगती है, पर तो भी यह [illegible]
इस असम्भावना के आधार पर हमारी निन्दा की जाए, तो [illegible]
सकते हैं कि यह कोई अनोखी या बेमिसाल बात नहीं है, क्यों[illegible]
[illegible] जो आदमी दांत-डाक्टर के पास जाता है, [illegible]

स्मृतियों को फिर से याद कर सकने के सामर्थ्य में जो ये विशेष या गड़बड़ियां हो जाती हैं, ये जैसाकि मैंने बताया है, हिस्टीरिया की विशेषताएं हैं, जिसमें यह भी होता है कि ये अवस्थाएं लक्षण (हिस्टीरिया के दौरों) के रूप में आती हैं, जिनकी स्मृति का कुछ भी अंश उनके बाद बचे रहना जरूरी नहीं। क्योंकि मनोग्रस्तता-रोग में इससे भिन्न स्थिति है, इसलिए आप यह अनुमान कर सकते हैं कि ये स्मृति-व्यवधान या एमनेशिया हिस्टीरिया वाले परिवर्तन के मनोवैज्ञानिक स्वरूप के अंश हैं, सामान्य स्नायु-रोग के व्यापक चिह्न नहीं। इन प्रकार का महत्त्व निम्नलिखित बात पर विचार करने से बहुत कम रह जाएगा। दो चीजें मिलकर किसी लक्षण का अर्थ होती हैं : इसका 'कहां से' और 'किधर' या 'क्यों'; अर्थात् वे संस्कार और अनुभव जिनसे यह पैदा हुआ, और वह प्रयोजन या उद्देश्य जो इससे पूरा होता है। किसी लक्षण के 'कहां से' को बाहर से प्राप्त संस्कारों में खंडित किया जा सकता है जो किसी समय अवश्य चेतन अर्थात् ज्ञात थे, और जो उसके बाद भूल जाने के कारण अचेतन हो सकते हैं। पर लक्षण का 'क्यों', अर्थात् इसकी प्रवृत्ति सदा एक अंतर्मानसिक प्रक्रम है, जिसका शुरू में चेतन होना भी संभव है, और यह भी संभव है कि वह कभी चेतन न रहा हो और शुरू से अचेतन में रहा हो। इसलिए यह बात बहुत महत्त्व की नहीं है कि स्मृति-व्यवधान या एमनेशिया ने 'कहां से' पर, अर्थात् उन संस्कारों पर जिनके सहारे वह लक्षण जीवित है, अपना असर डाला है—जैसाकि हिस्टीरिया में होता है, 'किधर' अर्थात् लक्षण की प्रवृत्ति ही, जो शुरू से अचेतन चली आने वाली हो सकती है, लक्षण को अचेतन के आश्रित रखती है; और यह, हिस्टीरिया की तरह मनोग्रस्तता-रोग में भी, लक्षण को अचेतन पर निर्भर रखती है।

इस प्रकार मानसिक जीवन में मौजूद अचेतन पर बल देकर
जाति की सारी दुर्भावना को मनोविश्लेषण के विरोध में खड़ा कर लि
पर आश्चर्य मत कीजिए, और यह भी मत समझिए कि यह विरोध
धारणा बनाने में स्पष्टतः होने वाली कठिनाई से संबंधित है या इस
करने वाली गवाही की आपेक्षिक दुर्गमता से संबंधित है। मैं समझता
जड़ कुछ गहरी है। मनुष्य जाति को विज्ञान के हाथों अपने निष्कप
पर दो अत्याचार बहुत समय से सहने पड़े हैं। पहला वह था, जब वि
पता लगाया कि हमारी पृथ्वी विश्व का केन्द्र नहीं है, बल्कि कल्पना
बड़े विश्व-चक्र में एक छोटा बिन्दु-मात्र है। यह बात हमारे मनों में कोप

ली कि उसका निर्माण किसी विशेष तरह से हुआ था, और उसे पशु-जगत् से उत्पन्न बता दिया, जिसका मतलब यह था कि उसमें ऐसी पशु-प्रकृति मौजूद है जिसे उन्मूलित नहीं किया जा सकता। यह मूल्यान्तरण, अर्थात् मूल्यों का परिवर्तन हमारे ही ज़माने में चार्ल्स डारविन, वालेस और उनके पूर्ववर्तियों की प्रेरणा पर हुआ, और इसका उनके समकालीन लोगों ने बड़ा प्रबल विरोध किया। पर अब, मनुष्य की बड़प्पन की लालसा को, आजकल की मनोवैज्ञानिक गवेषणा से तीसरा सबसे प्रबल आघात सहना पड़ रहा है—यह मनोवैज्ञानिक गवेषणा हममें से प्रत्येक के 'अहम्' के सामने यह सिद्ध करने का यत्न कर रही है कि तुम अपने स्वयं के भी स्वामी नहीं हो, बल्कि तुम्हें, जो कुछ तुम्हारे अपने मन में अचेतन रूप से चल रहा है, उसके बारे में भी बहुत ही कम जानकारी से सन्तुष्ट रहना होगा। मनुष्य जाति को यह कहने का काम कि वह अपने अंदर की ओर देखे, सबसे पहले और या एकमात्र मनोविश्लेषकों ने ही नहीं किया है; पर प्रतीत होता है कि इसका पूरे आग्रह के साथ समर्थन करना और प्रत्येक व्यक्ति से नज़दीकी सम्बन्ध रखने वाली आनुभविक[1] गवाही से इसका समर्थन करना, हमारे ही ज़िम्मे पड़ा है। हमारे विज्ञान के विरुद्ध सर्वत्र हो रहे विद्रोह का, वाद-विवाद में विद्वज्जनोचित शिष्टाचार के पूर्ण तिरस्कार का, और निष्पक्ष तर्क की सब अपेक्षाओं से मुक्त विरोध का यही मूल कारण है, और इसके अतिरिक्त, एक और तरीके से भी हमें दुनिया की शांति भंग करनी पड़ी है, जैसाकि आप आगे चलकर देखेंगे।

प्रतिरोध और दमन*

अब हमे स्नायु-रोगो को समझने की दिशा मे बढने के लिए और तथ्यों की आवश्यकता है। हमारे पास ही दो प्रेक्षण मौजूद हैं। दोनो बड़े ध्यान देने योग्य हैं और शुरू मे बड़े आश्चर्यजनक थे। आप हमारे पिछले साल किए गए कार्य से उन दोनो के लिए नि सन्देह तैयार हो चुके हैं।

पहला जब हम किसी रोगी के लक्षणो का इलाज करने का कार्य अपने ऊपर लेते हैं, तब वह इलाज के सारे समय हमारा जोरदार और लगातार विरोध करता है। यह ऐसी असाधारण बात है कि हम इसमे आपका बहुत विश्वास होने की आशा नही करते। सबसे अच्छी बात यह है कि रोगी के रिश्तेदारों से इसके बारे मे कुछ न कहा जाए, क्योकि वे सदा यह समझते हैं कि हमने इलाज को लम्बा खीचने के लिए या इलाज के व्यर्थ हो जाने पर यह बहाना तैयार कर रखा है। रोगी मे इस प्रतिरोध के सब प्रकट रूप दिखाई देते हैं, यद्यपि वह इन्हें इस रूप मे नही पहचानता, और हम उसे यह तथ्य अनुभव करा दें, तब समझिए कि एक बहुत बडी बाधा पार कर ली। यह सोचना कि रोगी, जिसके लक्षण उसे और उसके रिश्तेदारो को इतना कष्ट दे रहे हैं, और जो उनसे छूटने के लिए समय, धन और परिश्रम का इतना त्याग और आत्मविजय करने को तैयार है, वह अपने रोग को दूर करने के लिए प्रस्तुत सहायता का प्रतिरोध करे—यह बात कितनी असम्भाव्य लगती है, पर तो भी यह सच है, और यदि इस असम्भाव्यता के आधार पर हमारी निन्दा की जाए, तो हम यही जवाब दे सकते हैं कि यह कोई अनोखी या बेमिसाल बात नहीं है, क्योंकि भयंकर दांत-दर्द से पीड़ित जो आदमी दांत-डाक्टर के पास जाता है, वह भी डाक्टर के जम्बूर निकालने पर उसको पकड़कर रोकने की कोशिश करता

रोगियों मे दिखाई देनेवाला यह प्रतिरोध है।

अत्यधिक सूक्ष्म होता है, प्राय इसे पहचानना कठिन होता है, और इसके नाना रूप बहुत जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं। विश्लेषण को लगातार सन्देहशील और इसके विरुद्ध सावधान रहने की आवश्यकता है। मनोविश्लेषण द्वारा चिकित्सा में हम उस विधि का प्रयोग करते हैं जिसे आप स्वप्न-निर्वचन के सिलसिले में देख चुके हैं : हम रोगी से कहते हैं कि वह शान्तिपूर्वक आत्मप्रेक्षण करे, 'कुछ भी सोचने की कोशिश न करे' और इसके बाद उसे अन्दर से जिस बात का ज्ञान हो, उस सबको—भावनाओं, विचारों और स्मृतियों को—उसी क्रम से बताता जाए जिस क्रम से वे उनके मन में पैदा होती हैं। हम उसे साफ चेतावनी दे देते हैं कि वह किसी ऐसे कारण से प्रभावित न हो जो उसे उन मनोबिम्बों (साहचर्यों) में से किसीको छांटने या छोड़ने को प्रेरित करें, चाहे वे बहुत 'बुरे लगने वाले', या 'न कहने योग्य', या बहुत 'महत्त्वहीन' या 'अप्रासंगिक' या 'अर्थहीन' ही हों। हम उसके मन में यह बात बैठाते हैं कि उसे सिर्फ यह बात पकड़नी है जो उसके मन में चेतन रूप में ऊपरी तल पर है और जो कुछ उसे प्राप्त हो, उसपर होने वाली सब तरह की आपत्तियों को छोड़ देना है, चाहे वे किसी भी रूप में हों। और हम उससे कह देते हैं कि उसके इलाज की सफलता, और सबसे बढ़कर, इसमें लगने वाला समय, इस बात पर निर्भर होगा कि वह कहां तक इस आधारभूत शास्त्रीय नियम पर सचाई से कायम रह सकता है। स्वप्न-निर्वचन की विधि से हमें पता चल चुका है कि ठीक उन्हीं साहचर्यों में अचेतन का ज्ञान कराने वाली सामग्री होती है जिनके विरुद्ध असंख्य संदेह और आपत्तियां पैदा होती हैं।

यह शास्त्रीय नियम लागू करने के परिणामस्वरूप पहली बात यह होती है, कि सबसे पहले इसीका प्रतिरोध किया जाता है; रोगी प्रत्येक संभव उपाय द्वारा इससे बचने की कोशिश करता है। पहले वह कहता है कि मेरे दिमाग में कुछ भी नहीं आता; फिर वह कहता है कि मेरे दिमाग में इतनी सारी बातें आती हैं कि मैं उनमें से किसीको पकड़ नहीं सकता। फिर हम नाराजी और आश्चर्य से देखते हैं कि वह अपनी आलोचनाओं और आक्षेपों में से कभी किसीके और कभी किसीके वश में हो जाता है। यह बात उसकी बातचीत में आने वाली लम्बी चुप्पियों से दिखाई देती है। अन्त में वह मान लेता है कि वास्तव में मैं कुछ नहीं कह सकता, मुझे शर्म आती है, और वह अपने वायदे को तोड़कर इस भावना के वश में हो जाता है; अथवा उसने कोई बात सोची है जो स्वयं उसपर लागू नहीं होती, बल्कि किसी और पर लागू होती है, और इसलिए यह उस नियम का अपवाद है, अथवा, जो कुछ मैंने अभी सोचा है, वह बिलकुल महत्त्वहीन, मूर्खतापूर्ण और बेहूदा है, और आपका यह आशय कभी नहीं हो सकता कि मैं ऐसे विचारों पर ध्यान दूं। इस तरह अनेक रूपों में यह बात चलती है जिसपर यही उत्तर दिया जाता है कि प्रत्येक बात बताने का अर्थ वास्तव में प्रत्येक बात बताना ही है।

और अधिक सीख सके। वह इस शर्त पर मनोविश्लेषण का समर्थक होने के लिए पूरी तरह तैयार है कि विश्लेषण व्यक्तिगत रूप में उसे बख्श दे। पर ज्ञान की इस अभिलाषा में हमें प्रतिरोध स्पष्ट दीखता है। यह प्रस्तुत विषय से हटाना है, और हम इसे नहीं चलने देते। मनोग्रस्तता-रोग में प्रतिरोध एक विशेष चाल चलता है, जिसके लिए हम बिलकुल तैयार होते हैं। यह विश्लेषण को बिना बाधा के इसके रास्ते पर चलने देता है, यहां तक कि केस की समस्याओं पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ता जाता है, पर अन्त में हमें यह आश्चर्य होने लगता है कि इन स्पष्टीकरणों का कोई क्रियात्मक परिणाम क्यों नहीं होता, और लक्षणों में उनके अनुरूप सुधार क्यों नहीं होते? तब हमें पता चलता है कि प्रतिरोध मनोग्रस्तता-रोग की एक विशेषता, अर्थात् सन्देह पर आकर टिक गया है, और इस किले से हमें सफलतापूर्वक दूर रख रहा है। रोगी अपने मन में कुछ इस तरह की बात कह रहा है, 'यह सब बात बड़ी सुन्दर और मनोरंजक है। मैं इसे जारी रखना चाहता हूं। मुझे निश्चय है कि यदि यह सच हो तो इसमें मुझे बड़ा लाभ होगा, पर मुझे इसमें ज़रा भी विश्वास नहीं है, और जब तक मुझे इसपर विश्वास नहीं, तब तक इसका मेरे रोग पर कोई असर नहीं होगा।' इस तरह बहुत समय तक सिलसिला चलता रहता है, और अन्त में हम इस मनोभाव पर ही पहुंच जाते हैं और फिर निर्णायक संघर्ष शुरू होता है।

बौद्धिक प्रतिरोध ही सबसे कठिन नहीं होते। इनको सदा हटाया जा सकता है, पर रोगी जानता है कि खास विश्लेषण की सीमाओं में प्रतिरोध किस तरह कायम किए जाएं, और इनको पराजित करना इस विधि के सबसे कठिन कामों में से है। अपने पिछले जीवन की कुछ भावनाओं और मन की अवस्थाओं को याद करने के बजाय वह उन्हें पुनः पैदा कर लेता है, और उनमें से कुछ में, चिकित्सा और इलाज का मुकाबला करता हुआ, 'स्थानान्तरण'[1] नामक उपाय द्वारा पुनः र[illegible] जाता है या जीने लगता है। यदि रोगी पुरुष है तो वह यह सामग्री प्राय: अपने पि[illegible] के साथ अपने सम्बन्ध से लेता है, जिसके स्थान पर अब उसने डाक्टरों को रख लि[illegible] है; और ऐसा करते हुए वह व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता और निर्णय की स्वतन्त्र[illegible] प्राप्त करने के संघर्षों में से अपनी उस आकांक्षा में से, जिसका पहला लक्ष्य पि[illegible] के समान बनना, या उससे बढ़ जाना था, या अपने जीवन में दूसरी बार कृतज्ञ[illegible] का भार अपने ऊपर लेने की अपनी अरुचि में से प्रतिरोध खड़े कर लेता है। कभ[illegible] कभी ऐसा समय आता है, जिसमें यह महसूस होता है कि रोगी की विश्लेषण [illegible] गलत सिद्ध करने की, उसकी असमर्थता सिद्ध करने की, उसपर विजय प्राप्त क[illegible] की, इच्छा ने उसकी अपने रोग का अन्त करने की उचिततर इच्छा को पूरी त[illegible]

---

[1] Transference

निकाल भगाया है। स्त्रियों में यह प्रतिमा होती है कि वे विश्लेषक पर ऐसा एक कोमल, कामुकता से अंकित, स्थानान्तरण द्वारा प्रतिरोध कायम कर है। जब यह आकर्षण एक विशेष तीव्रता पर पहुंच जाता है, तब इलाज की परिस्थिति में सारी दिलचस्पी उड़ जाती है, और साथ ही इलाज आरम्भ क समय की गई सब प्रतिज्ञाएं भी उड़ जाती हैं। चाहे कितनी भी नर्मी से भाव को तिरस्कृत करें, पर उसके परिणामस्वरूप पैदा होनेवाली अनिवार्य ई और वैमनस्य से चिकित्सक के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध को अवश्य हानि पहुंचे और इस तरह विश्लेषण में प्रयुक्त एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रेरक व प्रभावी हो जाएगा।

इस तरह के प्रतिरोधों की सकीर्ण भाव से निन्दा या तिरस्कार नहीं करना चाहिए। उनमें रोगी के पिछले जीवन की इतनी सारी सबसे अधिक महत्वपूर्ण सामग्री होती है और वे इतने निश्चायक तरीके से उसे वापस ले आते हैं कि यदि उन्हें ठीक-ठीक उपयोग में लाने के लिए कौशलपूर्ण विधि का सही ढंग से प्रयोग किया जाए तो वे विश्लेषण के लिए बहुत अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह सामग्री पहले सदा प्रतिरोध का कार्य करती है, और ऐसे रूप में सामने आती है जो इलाज का विरोधी होता है। यह कहा जा सकता है कि वे चरित्र के गुण हैं, अहंकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्तियां या रुख हैं जो प्रस्तुत परिवर्तनों का विरोध करने के लिए इस तरह इकट्ठे हो जाते हैं। तब यह पता चलता है कि स्नायु-रोग की दशाओं के प्रसग में, और इसकी आवश्यकताओं के विरोध में प्रतिक्रिया के रूप में ये चरित्र-गुण कैसे परिवर्धित हुए हैं, और इस चरित्र में वे विशेषताएं दिखाई देती हैं जो अन्यथा न दिखाई देतीं, या कम से कम इतने स्पष्ट रूप में न दिखाई देतीं अर्थात् जिन्हें हम गुप्त कह सकते हैं। आपको यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि हम इन प्रतिरोधों को ऐसा अकल्पित खतरा मानते हैं, जो हमारे विश्लेषण के प्रभाव को हानि नहीं पहुंचा सकता है। नहीं, हम जानते हैं कि ये प्रतिरोध अवश्य प्रकट होंगे, बल्कि हम तब असन्तोष अनुभव करते हैं जब उन्हें काफी सुनिश्चित रूप में उद्बुद्ध न कर सकें, और रोगी को उनका इस रूप में ज्ञान न करा सकें। सच तो यह है कि हम अन्त में यह समझते हैं कि इन प्रतिरोधों को दूर करना विश्लेषण का आवश्यक कार्य है, और इसे करने पर ही यह निश्चित होता है कि हमने रोगी के लिए कुछ सफलता प्राप्त की है।

इसके अलावा, आपको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रोगी इलाज के दिनों में पैदा होनेवाली सब आकस्मिक घटनाओं का प्रयोग इलाज में बाधा डालने में करता है। अपने मिलने-जुलने वालों के संघ में, जिसे भी वह प्रामाणिक मान सकता है उसकी ही विरुद्ध राय को, किसी भी आकस्मिक शारीरिक

करता है। सच तो यह है कि वह अपनी दशा में होने वाले प्रत्येक सुधार को भी अपने प्रयत्न शिथिल करने के लिए एक प्रेरक कारण में परिवर्तित कर लेता है। इसी तरह आपको उन प्रतिरोधों के रूपों और तरीकों की एक तस्वीर, चाहे वह अधूरी ही हो, प्राप्त हो गई, जो प्रत्येक विश्लेषण के बीच में आते हैं, और जिन्हें दूर करना पड़ता है। मैंने इस प्रश्न पर इतने विस्तार से रोशनी इसलिए डाली है क्योंकि मैं अभी आपको यह बतलाने वाला हूं कि स्नायु-रोगों के बारे में हमारी गतिकीय अवधारणा हमारे उन प्रतिरोधों के अनुभव पर ही आधारित है, जो स्नायु-रोगी अपने लक्षणों के इलाज के विरोध में पेश करते हैं। ब्रायर और मैं, दोनों, पहले सम्मोहन, अर्थात् हिप्नोटिक विधि में मानसिक चिकित्सा का कार्य करते थे। ब्रायर के पहले रोगी का इलाज सम्मोहनीय आदेशवश्यता[1] अर्थात् सम्मोहनावस्था में दिए जानेवाले आदेश की अधीनता की अवस्था में ही किया गया था। पहले मैंने उसका अनुकरण किया। मैं मानता हूं कि उस समय मेरा कार्य बहुत आसानी से और मजे से आगे बढ़ता था, और उसमें समय भी कम लगता था। पर उसके परिणाम मनमाने और अस्थायी होते थे। इसलिए मैंने अन्त में सम्मोहन छोड़ दिया और तब मैंने समझा कि इन मनोविकारों की गतिकी को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक सम्मोहन का प्रयोग होगा। इस अवस्था में प्रतिरोधों का अस्तित्व ही डाक्टर की नजर से छिपा रहता है। सम्मोहन प्रतिरोधों को पीछे धकेल देता है और विश्लेषण कार्य के लिए कुछ क्षेत्र मुक्त कर देता है, पर इस क्षेत्र की सीमाओं पर उन प्रतिरोधों को रोक देता है, इसलिए वे अजेय रहते हैं। इसका परिणाम वैसा ही होता है जैसा मनोग्रस्तता-रोगी के संदेह का। इसलिए यह कहना उचित होगा कि सच्चा मनोविश्लेषण तभी आरम्भ हुआ, जब सम्मोहन का सहारा छोड़ दिया गया।

यदि इन प्रतिरोधों को कायम करने का इतना अधिक महत्त्व है, तो जब हम यह मानते हो कि सतर्कता और संदेह मौजूद हैं, तब निश्चित ही इन्हें पूरी तरह अपना प्रभाव दिखाने का मौका देना समझदारी की बात होगी। शायद स्नायु-रोग के ऐसे उदाहरण मिल जाएं जिनमें साहचर्य असल में दूसरे कारणों से विफल होते हैं, शायद हमारे सिद्धान्तों के विरोध में पेश की गई दलीलें अधिक गम्भीरता से सुनने योग्य हों, ; और हमारा रोगी के बौद्धिक आक्षेपों को प्रतिरोध कहकर इतनी आसानी से उड़ा देना गलत हो। मैं आपको इतना ही विश्वास दिला सकता हूं कि इस मामले में हमारा निर्णय जल्दबाजी में किया हुआ नहीं है। हमें इन आलोचक रोगियों को प्रतिरोध के ऊपरी तल पर आने से पहले भी, और इसके दूर हो जाने पर भी, देखने का मौका मिला है। इलाज के समय प्रतिरोध की तीव्रता लगातार बदलती रहती

१ Hypnotic suggestibility

सकता। लक्षण उसका स्थानापन्न है जो पूरा नहीं हो सका। अब हम जानते हैं कि जिन बलों के क्रियाशील होने का हमे सदेह है, वे कहा हो सकते हैं। प्रस्तुत मानसिक प्रक्रम को चेतना मे घुसने से रोकने के लिए प्रबल प्रयास किया होगा और परिणामत. यह अचेतन रहा है। अचेतन रहने के कारण इसमें लक्षण रचने की शक्ति है। वही प्रबल प्रयास विश्लेषण द्वारा इलाज के समय फिर क्रियाशील हो रहा है जो अचेतन को चेतन मे लाने की कोशिश कर रहा है। इसे हम प्रतिरोधों के रूप मे देखते हैं। प्रतिरोधो से प्रदर्शित होने वाले रोगजनक प्रक्रम को हम दमन कहते हैं।

अब दमन के इस प्रक्रम की अपनी धारणा को अधिक यथार्थ बनाना आवश्यक है। यह लक्षणो के परिवर्धन की आवश्यक प्रारम्भिक शर्त है। पर इसके अलावा कुछ और भी है—एक ऐसी चीज है जिसके मुकाबले की दूसरी चीज नहीं। नमूने के लिए, एक आवेग, अर्थात् अपने को क्रिया में परिवर्तित करने के लिए यत्नशील मानसिक प्रक्रम को लीजिए. हम जानते हैं कि यह 'प्रत्याख्यान'[1] या 'तिरस्करण'[2] द्वारा अस्वीकृत किया जा सकता है। तब इसके पास प्रस्तुत ऊर्जा वापस लौटा ली जाती है। यह शक्तिहीन हो जाता है, पर स्मृति के रूप में बना रह सकता है। इस प्रश्न पर फैसला करने का सारा प्रक्रम 'अहम्' के पूर्ण सज्ञान[3] से होता है, पर जब वह आवेग दमन के अधीन होता है, तब स्थिति बहुत भिन्न होती है: तब इसकी ऊर्जा कायम रहती है और इसकी कोई स्मृति पीछे नहीं रहती। दमन का प्रक्रम अहम् के सज्ञान बिना ही पूरा हो जाता है, इसलिए इस तुलना से हम दमन के स्वरूप के कुछ अधिक निकट नहीं पहुचते।

मैं आपके सामने वे सैद्धान्तिक अवधारणा ही पेश करूंगा जो दमन शब्द का अधिक सुनिश्चित अर्थ स्थापित करने मे उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसके लिए, पहले यह आवश्यक है कि हम 'अचेतन' शब्द के शुद्ध वर्णनात्मक अर्थ से आगे चलकर इसके व्यवस्थित या वैज्ञानिक अर्थ पर पहुचें, अर्थात् हम किसी मानसिक प्रक्रम की चेतनता या अचेतनता को इसका एक गुण-मात्र समझें, और आवश्यक नहीं कि यह उसका एकमात्र गुण हो। मान लें, कि इस तरह का एक प्रक्रम अचेतन रहा है, तो इसका चेतना से बाहर रह जाना इस बात का चिह्न-मात्र हो सकता है कि इसकी क्या गति हुई और आवश्यक नहीं कि यह इसकी गति या भाग्य ही हो। इस भाग्य की अधिक ठोस धारणा बनाने के लिए, मान लें कि प्रत्येक मानसिक प्रक्रम—इसमें एक अपवाद है जिसकी चर्चा मैं बाद में करूंगा—पहले एक अचेतन अवस्था या कला[4] में रहता है, और इसमें से सिर्फ परिवर्धित होकर चेतन कला मे आ जाता

१. Repudiation २. Condemnation ३ Cognizance
४. Phase.

...बहुत कुछ वैसे ही जैसे फोटो पहले नेगेटिव है और फिर पोजिटि
द्वारा चित्र बन जाता है। पर हर नेगेटिव का पोजिटिव नहीं बनाया जा
इसी तरह यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अचेतन मानसिक प्रक्रम चेतन ब
इस तरह ठीक ढंग से कहा जा सकता है : प्रत्येक प्रक्रम पहले अचेतन म
सन्निधि में रहता है। इस संस्थान से वह कुछ अवस्थाओं में आगे बढ़क
संस्थान में आ जाता है।

इन संस्थानों का सबसे स्थूल अवधारणा ही हमें सबसे अधिक सुविधा
लगेगा और वह अवकाशीय[1] अवधारणा है। इसलिए अचेतन संस्थान की तु
एक बड़े पूर्वकक्ष[2] अर्थात् बड़े कमरे में पहुंचाने वाले छोटे कमरे से की जा सक
है, जिसमें अनेक प्रकार के मानसिक उत्तेजन, मनुष्यों की तरह, एक दूसरे के आ
भरे पड़े हैं। इससे लगा हुआ एक दूसरा छोटा कमरा एक तरह का स्वागत-क
है जिसमें चेतना का निवास है, पर इन दोनों के बीच की देहली पर एक पहरेद
का काम करने वाला व्यक्ति खड़ा है जो इन विविध मानसिक उत्तेजनों की परीक्ष
करता है, उन्हें सेन्सर करता है, अर्थात् उनमें काट-छांट करता है और जब वह
उन्हें नापसन्द करता है तब उन्हें स्वागत-कक्ष में जाने से रोक देता है। आप तुरन्त
समझ जाएंगे कि यदि पहरेदार किसी एक आवेग को देहली पर लौटा देता है,
अथवा इसके एक बार स्वागत-कक्ष में घुस जाने के बाद इसे बाहर निकालता है, तो
इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह तो उसकी जागरूकता की मात्रा और पहचानने
की तत्परता का ही प्रश्न है। अब इस रूपक के द्वारा हम अपनी शब्दावली और
बढ़ा सकते हैं। अचेतन या पूर्वकक्ष में मौजूद उत्तेजन चेतना को दिखाई नहीं देते
क्योंकि वह दूसरे कमरे में है। इस प्रकार, शुरू में वे अचेतन रहते हैं। जब वे ज़ोर
लगाकर देहली में पहुंच गए हैं और चौकीदार द्वारा वापस लौटा दिए गए हैं, —
वे 'चेतन होने में असमर्थ' हैं; तब हम उन्हें दमित कहते हैं, पर जो उत्तेजन देह
के पार जाने दिए जाते हैं, उनका भी चेतन हो जाना आवश्यक नहीं। वे तभ
चेतन हो सकते हैं, यदि वे चेतना की दृष्टि आकर्षित कर सकें। इसलिए इस
दूसरे कक्ष को पूर्वचेतन[3] संस्थान कहना उपयुक्त होगा। इस प्रकार चेतन होने
के प्रक्रम का अपना शुद्ध वर्णनात्मक अर्थ बना रहता है। जब किसी आवेग को
दमित आवेग कहते हैं, तब इसका अर्थ यह होता है कि वह अचेतन संस्थान में
निकलने में असमर्थ है क्योंकि चौकीदार उसे पूर्वचेतन में प्रवेश नहीं करने
देता। चौकीदार वही है जिसे हम दमन को शिथिल करने का, विश्लेषण द्वारा
यत्न करते हुए प्रतिरोध के रूप में जान चुके हैं।

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि आप यह कहेंगे कि ये अवधारणाएं...

हैं, उतने ही कल्पित हैं, और वैज्ञानिक प्रतिपादन में इन्हें बिलकुल स्थान नहीं दिया जा सकता। मैं जानता हूं कि वे स्थूल हैं। इतना ही नहीं, मैं यह भी मानता हूं कि वे गलत हैं, और यदि मैं गलती नहीं करता तो हमारे पास उनसे अच्छे स्थानापन्न भी तैयार हैं। मैं नहीं जानता कि तब आप उन्हें इतना कल्पित समझते रहेंगे या नहीं। इस समय तो वे बात समझने में बड़े सहायक हैं, जैसे विद्युत् की धारा में तैरते हुए ऐम्पीयर के 'वितनू', अर्थात् बहुत छोटे-छोटे मनुष्य, और जहां तक उनसे बात समझने में मदद मिलती है, वहां तक वे तिरस्कार-योग्य नहीं। फिर भी मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि स्थूल परिकल्पनाएं—दो कमरे, दोनों के बीच की देहली पर चौकीदार, और दूसरे कमरे के अन्त में दर्शक के रूप में चेतना—वास्तविक यथार्थता को बहुत दूर तक निर्दिष्ट करते हैं। मैं समझता हूं कि आप यह भी स्वीकार करेंगे कि हमारे रखे हुए नाम अचेतन, पूर्व अचेतन और चेतन दूसरे नामों की अपेक्षा, जो सुझाए गए हैं या प्रयोग में आ गए हैं, उदाहरण के लिए, अवचेतन (सबकान्शस), अन्तर्चेतन (इन्टरकान्शस), सहचेतन (कोकान्शस) आदि अधिक तर्कसंगत हैं।

यदि आप इसे स्वीकार करते हैं तो फिर आपका यह कहना मेरे लिए बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होगा कि मानसिक उपकरण की जैसी रचना मैंने स्नायविक लक्षण की व्याख्या के लिए मानी है, वह सर्वत्र लागू होनी चाहिए, और उसे सामान्य कार्य-व्यापार पर भी प्रकाश डालना चाहिए। आपका यह कहना बिलकुल सही है। हम इस समय इस निष्कर्ष पर अधिक विचार नहीं कर सकते, पर यदि हमें रोग की दशाओं के अध्ययन से सामान्य मानसिक कार्य-व्यापार के, जो अब तक एक रहस्य रहा है, भीतर की झांकी मिलने की सम्भावना दिखाई देती हो, तो लक्षण-परिवर्धन के मनोविज्ञान में हमारी दिलचस्पी निश्चित ही बहुत अधिक बढ़ जाएगी।

इसके अलावा, क्या आप यह नहीं समझते कि इन दोनों संस्थानों की इन अवधारणाओं का और इनके तथा चेतना के आपसी सम्बन्ध का आधार क्या है?—अचेतन और पूर्व चेतन के बीच में मौजूद चौकीदार उस सेंसरशिप के अलावा और कुछ नहीं है जिसे हमने प्रत्यक्ष स्वप्न के रूप को प्रभावित करते देखा था। दिन के अनुभवों का अवशेष ही जिसे हमने स्वप्न को उद्दीपित करने वाला उद्दीपन बताया था, वह पूर्वचेतन सामग्री है जो रात में सोने समय अचेतन और दमित इच्छाओं तथा उत्तेजनों से प्रभावित हुई है, और वे इस प्रकार उनके साहचर्य से उनकी ऊर्जा के द्वारा गुप्त स्वप्न का निर्माण कर सके हैं। अचेतन संस्थान के आधिपत्य ने इस सामग्री का—संघनन और विस्थापन द्वारा—इस तरह से विवरित या प्रभावित किया है जैसे प्रकृत मानसिक जीवन, अर्थात् पूर्वचेतन संस्थान, में नहीं हुआ करता, या बहुत ही कम होता है। उनके कार्य-

व्यापार की रीति-का यह अन्तर ही हमें उन दोनों सस्थानों का भेद बताता है। चेतना से सम्बन्ध, जो पूर्वचेतन का स्थायी रूप है, यह सकेत करता है कि कोई दिया हुआ प्रक्रम दोनों सस्थानों में से किसका है। स्वप्न देखना रोगात्मक घटना नहीं है। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य को सोते हुए स्वप्न आ सकता है। मानसिक उपकरण की रचना से, जिसमे स्वप्नों और स्नायविक लक्षणों, इन दोनों का स्पष्टीकरण होता है, सम्बद्ध प्रत्येक अनुमान प्रकृत मानसिक जीवन पर भी अवश्य लागू होता है, इसमे कोई सन्देह नहीं।

फिलहाल दमन के बारे में हम इतना ही कहना चाहते हैं। इसके अलावा, यह एक आवश्यक पूर्वावस्था-मात्र है, लक्षण-निर्माण की पूर्वावस्था या पूर्व आवश्यकता-मात्र है। हम जानते हैं कि लक्षण किसी और प्रक्रम का, जो दमन द्वारा रोक दिया गया है, स्थानापन्न है, पर दमन को मान लेने के बाद भी हमें इस स्थानापन्न-निर्माण को पूरी तरह समझने के लिए काफी आगे बढ़ना होगा। स्वय दमन-समस्या के भी कुछ और पहलू हैं, जिनसे कुछ प्रश्न पैदा होते हैं, जिनका उत्तर देना आवश्यक है : किस तरह से मानसिक उत्तेजनों का दमन होता है, कौन-से बल दमनकारी हैं और उनके प्रेरक या प्रवर्तक कारण क्या हैं ? अब तक हमें इस प्रश्न से सम्बन्धित जानकारी सिर्फ एक बात पर प्राप्त हुई। प्रतिरोध की समस्या पर विचार करते हुए हमने यह देखा था कि इसके पीछे कार्य करने वाले बल पहचान-योग्य या गुप्त अहम् से या चरित्र-गुणों से पैदा होते हैं। इसलिए इन्हीं बलों ने दमन किया है, कम से कम उसमें कुछ हिस्सा लिया है। इस समय हम इससे अधिक कुछ नहीं जानते।

मैंने आपको जिस दूसरे प्रेक्षण के लिए तैयार किया था, वह अब हमारा सहायक होगा। विश्लेषण के द्वारा हम सदा स्नायविक लक्षण के पीछे मौजूद प्रयोजन का पता लगा सकते हैं। पर यह आपके लिए कोई नई बात नहीं है। इसकी ओर स्नायु-रोग के दो उदाहरणों में मैं पहले ही सकेत कर चुका हूँ। पर उन दो उदाहरणों से क्या सूचित होता है ? इस बात को दिखाने वाले सैकड़ों उदाहरण होने चाहिए। पर मैं आपको यह मांग नहीं मान सकता, इसलिए आपको व्यक्तिगत अनुभव या विश्वास का ही सहारा लेना होगा, और इस मामले में आपका विश्वास सब मनोविश्लेषकों की सर्वसम्मत गवाही पर भरोसा कर सकता है।

आपको याद होगा कि जिन दो उदाहरणों के लक्षण पर हमने विस्तार से विचार किया था, उनसे रोगी के यौन जीवन के सबसे भीतरी रहस्यों का पता चला था। इसके अलावा, पहले उदाहरण में प्रस्तुत लक्षण का प्रयोजन या प्रवृत्ति विशेष रूप से स्पष्ट थी। शायद दूसरे उदाहरण में यह कुछ सीमा तक एक दूसरी बात से ढकी हुई थी जिसका जिक्र बाद में किया जाएगा। अब इन दो उदाहरणों में जो बात प्रकट हुई है, वही विश्लेषण के लिए प्रस्तुत हर उदाह

विश्लेषण से हम रोगी के यौन अनुभवों और अभिलाषाओं पर पहुंचते हैं, और हर बार इस बात की पुष्टि होती है कि लक्षण से वही प्रयोजन सिद्ध होता था। यह प्रयोजन यौन इच्छाओं की परितुष्टि प्रकट हुआ—ये लक्षण रोगी के लिए यौन परितुष्टि का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। ये यथार्थ रूप में प्राप्त न होने वाली सन्तुष्टि के स्थानापन्न हैं।

हमारे पहले रोगी के मनोग्रस्तता-कार्य पर विचार कीजिए। इस स्त्री को अपने अत्यन्त प्रिय पति के बिना रहना पड़ता है। पति की त्रुटियों और कमियों के कारण वह उसके जीवन में हिस्सेदार नहीं बन सकती। उसे उसके प्रति निष्ठावान रहना पड़ता है। वह उसके स्थान में और किसीको नहीं ला सकती। उसका मनोग्रस्तता-लक्षण उसे वह चीज़ देता है जिसकी उसे इतनी अभिलाषा है; वह उसके पति को ऊंचा उठाता है, उसकी कमियों का, और सबसे बढ़कर उसकी नपुंसकता का निषेध और शोधन करता है। यह लक्षण मूलतः एक इच्छा-पूर्ति है, और इस दृष्टि से बिलकुल स्वप्न की तरह है। इसके अलावा, यह कामुक इच्छा-पूर्ति है, जोकि हरएक स्वप्न नहीं होता। दूसरी रोगिणी के उदाहरण में आप देख सकते हैं कि उसके काम-काज का ध्येय माता-पिता के मैथुन को रोकना या उनकी दूसरी संतान पैदा होने में रुकावट डालना है। सम्भवतः आपने यह भी समझ लिया है कि यह लक्षण उसे उसकी माता के स्थान में रखना चाहता है। इसलिए यह भी यौन-संतुष्टि की रुकावटों का निवारण और रोगिणी की अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति है। इसके उदाहरण में बताई गई उलझनों के बारे में मैं आगे कहूंगा।

मैं यह नहीं चाहता कि इन कथनों के सब जगह लागू हो सकने के बारे में बाद में कुछ शर्तें या मर्यादाएं लगाऊं, और इसलिए आपसे यह बात समझ लेने के लिए कहता हूं कि दमन, लक्षण-निर्माण और लक्षण-निर्वचन के बारे में मैंने अभी जो कुछ कहा है, वह स्नायु-रोग के तीन प्ररूपों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है, और फिलहाल वह इन तीन प्ररूपों पर ही लागू हो सकता है, अर्थात् चिन्ता-हिस्टीरिया, कन्वर्शन-हिस्टीरिया, और मनोग्रस्तता-रोग। ये तीन विकार ही, जिन्हें मिलाकर हम स्थानान्तरण स्नायु-रोग[1] के समूह में रखा करते हैं, मनोविश्लेषण चिकित्सा के लिए खुला हुआ क्षेत्र है। अन्य स्नायु-रोगों का मनोविश्लेषण की दृष्टि से इतनी बारीकी से अध्ययन नहीं हुआ। इस उपेक्षा का कारण निःसन्देह यह रहा है कि उनमें से एक समूह पर चिकित्सा का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि मनोविश्लेषण अभी बहुत नया विज्ञान है, और इसके अध्ययन के लिए बहुत समय और परिश्रम की आवश्यकता है, और कुछ समय पहले इस तरह चिकित्सा करने वाला सिर्फ एक आदमी था। पर सब दिशाओं

१. Transference neuroses

में हो रहे प्रयत्न से अब हम उन अस्वस्थ अवस्थाओं को समझने के अधिक निकट पहुंचते जा रहे हैं जो स्थानान्तरण स्नायु-रोग नहीं हैं। मुझे आशा है कि मैं अब भी आपको यह बता सकूंगा कि इस नई सामग्री से अपना तान-मेल बैठाने के लिए हमारी परिकल्पनाओं और निष्कर्षों को किस तरह प्रभावित होना पड़ा, और यह दिखला सकूंगा कि इस विस्तृत अध्ययनों से कोई परस्पर विरोध सामने नहीं आया, बल्कि हमारे ज्ञान का बहुत अच्छा एकीकरण ही हुआ। तो, जो कुछ कहा गया है, वह सिर्फ तीन स्थानान्तरण स्नायु-रोगों पर लागू होता है, और अब मैं एक और जानकारी दूंगा जो लक्षणों की सार्थकता पर और रोशनी डालती है। यह रोग जिन स्थितियों में पैदा हुआ, उनकी तुलनात्मक परीक्षा करके निम्नलिखित परिणाम निकलता है, जिसे इस सूत्र के रूप में रखा जा सकता है, अर्थात् ये व्यक्ति उस प्रवचन[1] (विफलता या कुंठा[2]) से रोगी हुए, जो इन्हें उस समय सहनी थी जब यथार्थ या वास्तविकता ने इन्हें अपनी यौन इच्छाओं की परितुष्टि से रोका। आप समझ रहे होंगे कि ये दोनों निष्कर्ष कितनी सुन्दरता से एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं। अब लक्षणों की व्याख्या हम इस तरह करते हैं कि वे जीवन में, अतृप्त इच्छाओं की स्थानापन्न परितुष्टियां हैं।

इस कथन पर निस्सन्देह सब तरह की आपत्तियां उठाई जा सकती हैं कि स्वाभाविक लक्षण यौन परितुष्टियों के स्थानापन्न हैं। उनमें से दो की मैं यहां चर्चा करूंगा। यदि आपमें से किसी ने बहुत-से स्नायु-रोगियों का विश्लेषण किया है तो वह शायद सिर हिलाकर यह कहेगा, 'कुछ उदाहरणों में यह बात बिलकुल लागू नहीं होती। उनमें तो यह प्रतीत होता है कि लक्षणों का प्रयोजन बिलकुल उलटा, अर्थात् यौन परितुष्टि से दूर रहने या उसे खत्म करने का होता है।' मैं आपके निर्वचन पर आपत्ति नहीं करता। मनोविश्लेषण में स्थितियां हमारी कल्पना की अपेक्षा बहुत अधिक उलझी हुई होती हैं; यदि वे सरल रूप में होतीं तो शायद मनोविश्लेषण को उन्हें पुन: सामने लाने की आवश्यकता ही न होती। हमारी दूसरी रोगिणी के काम-काज की कुछ बातें ऐसी ही साधुता की और यौन सतुष्टि की विरोधी दिखाई देती हैं; उदाहरण के लिए, रात के समय इकीकरण या खड़ा होने को रोकने के जादुई प्रयोजन के लिए उसका घड़ियों को हटा देना, या गमलों और गुलदस्तों को गिरने से रोकने की कोशिश करना, जिसका अर्थ है अपने कौमार्य या अक्षतयोनित्व की रक्षा करना। उसके बिस्तर पर लेटने पर किए जाने वाले कृत्यों में, और जिन केसों का मैंने विश्लेषण किया है, उनमें यह निषेधात्मक रूप काफी अधिक प्रमुख था। सारा काम-काज भी यौन स्मृतियों और प्रलोभन से अपनी रक्षा करने वाले नियमों के रूप में होता था। पर मनोविश्लेषण में बहुत पहले यह पता लग

[1] ...rivation २. Frustration

चुका है कि विपरीत बातें परस्पर विरोधी नहीं होतीं। हम इस बात को और बढ़ाक यह कह सकते हैं कि लक्षण का प्रयोजन यौन सन्तुष्टि और इससे बचना होत है, हिस्टीरिया में कुल मिलाकर, इच्छा-पूर्ति का अस्तिमूलक या पहला रूप प्रधा होता है, और मनोग्रस्तता-रोग में नास्ति वाला त्यागी रूप प्रधान होता है। ये लक्ष यौन परितुष्टि, और उसके विरोध, इन दोनों का प्रयोजन बहुत अच्छी तरह पू कर सकते हैं; क्योंकि उनके तन्त्र के एक अवयव में, जिसका उल्लेख करने का अ हमें मौका नहीं मिला है, इस दो-पहलूपन या द्वित्व का सबसे अधिक उपयु आधार होता है। असल में वे, जैसाकि हम आगे देखेंगे, दो एक दूसरे पर क्रि कर रही विरोधी प्रवृत्तियों के मध्यमार्ग या समझौते का परिणाम होते हैं, वे उ भी निरूपित करते हैं जिसका दमन किया गया है, और उसे भी निरूपित करते हैं जि दमन किया है और उन्हें पैदा करने में सहयोग दिया है। लक्षण में इन दो कार में से किसी एक का निरूपण प्रधान रूप में हो सकता है, पर ऐसा बहुत ही क होता है कि उनमें से एक सर्वथा नदारद हो। हिस्टीरिया में एक लक्षण में इन प्रवृत्तियों का प्राय सहयोग हो जाता है। मनोग्रस्तता-रोग में दोनों भाग प्रा अलग-अलग रहते हैं। तब लक्षण दोहरा होता है, और उनमें दो क्रमिक क्रिय होती हैं जो एक-दूसरे को उदासीन या रद्द करती हैं।

एक दूसरी कठिनाई को हल करना इतना आसान नहीं होगा। जब आप लक्ष निर्वचनों की एक पूरी श्रेणी पर विचार करते हैं, तब सम्भवतः आपकी पहली यह होगी कि यौन स्थानापन्न परितुष्टि के अवधारण को अधिक से अधिक विस करने पर ही वे लक्षण उसके अन्तर्गत आ सकते हैं। आप यह भी अवश्य कहेंगे इन लक्षणों से परितुष्टि के बारे में कोई यथार्थ बात सामने नहीं आती, कि प्र वे किसी संवेदन को पुनरुज्जीवित करने या किसी यौन ग्रन्थि से पैदा होनेवा कल्पना-सृष्टि का निर्माण करने तक ही सीमित रहते हैं। इसके अलावा, आप भी कहेंगे कि प्राय. यौन परितुष्टि का दृश्य रूप शैशवकालीन और अनुचित जैसा होता है। शायद वह हस्तमैथुन-कार्य से मिलता-जुलता होता है, या उन ग आदतों की याद दिलाने वाला होता है जो बचपन में बहुत पहले निषिद्ध की गई और छोड़ दी गई थीं; और फिर आप इस बात पर आश्चर्य करेंगे कि कोई व्य उन बातों को भी यौन परितुष्टियों में गिनता है जिन्हें क्रूर या भयंकर इच्छाओं तृप्ति ही कहा जा सकता है, या जिन्हें अस्वाभाविक या अप्राकृत कहा जा सक है। सच बात यह है कि इन पीछे वाली बातों पर हम तब तक एकमत नहीं सकते, जब तक हमने मनुष्य की यौन प्रवृत्ति पर पूरा विचार न कर लिया हो यह तय न कर लिया हो कि किस प्रवृत्ति को यौन प्रवृत्ति कहना उचित है।

मनुष्य का यौन जीवन

आपके मन मे निश्चित रूप से यही बात आती होगी कि 'यौन' (या कामात्मक) शब्द के अर्थ पर कोई सन्देह नही हो सकता। निःसन्देह, इसका सबसे पहला अर्थ है 'अनुचित', अर्थात् जिसकी चर्चा नही करनी चाहिए। मुझे एक प्रसिद्ध मनश्चिकित्सक के कुछ छात्रों के विषय मे एक कहानी सुनाई गई है। इन छात्रों ने एक बार अपने गुरु को यह निश्चय कराने की कोशिश की कि हिस्टीरिया रोगी के लक्षण बहुत बार यौन बातो को निरूपित करते हैं। इस उद्देश्य से वे उसे हिस्टीरिया वाली एक स्त्री के पलग के पास ले गए जिसके दौरे प्रसव के अनुदिश अनुकरण थे। पर वह बोला 'लेकिन प्रसव मे यौन कहीं नही है।' निश्चय जानिए कि प्रसव सदा अनुचित नही होता।

मैं समझ रहा हूं कि आप ऐसे गम्भीर मामलों पर मेरे मजा करने को पसन्द नही समझते। पर यह सिर्फ मजाक नहीं है। गम्भीरता से सोचने पर हम देखते हैं कि यह बताना आसान नहीं कि यौन शब्द के अन्तर्गत क्या-क्या बातें आती हैं। शायद इसकी सही परिभाषा ठीक हो सकती है कि दोनों लिङ्गों के अन्तर या भेद से सम्बन्धित प्रत्येक बात यौन बात है। पर आप यह कहेंगे कि यह बहुत व्यापक, अनिश्चित परिभाषा हुई। यदि आप मैथुन या सम्भोग-कार्य को केन्द्रबिन्दु मान लें तो शायद आप यौन का अर्थ यह करेंगे कि प्रत्येक वह बात जो विपरीत लिङ्ग वाले के शरीर (और विशेष रूप से मैथुन के अगों) से सुखदायक परितुष्टि प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है; बहुत सकुचित अर्थ में वह प्रत्येक बात यौन बात है, जिसका लक्ष्य जननेन्द्रियों का मिलन और मैथुन-कार्य की परिपूर्ति है। पर यह परिभाषा करते हुए आपने यौन तथा अनुचित को करीब करीब एक ही मान लिया है, और इस अवस्था में प्रसव का यौन प्रवृत्ति (काम) से सम्बन्ध हुए भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। फिर यदि आप प्रजनन के कार्य को यौनवृत्ति का आवश्यक मानते हैं तो हस्तमैथुन या चुम्बन जैसी बहुत सारी बातें, जिनका उद्देश्य प्रजनन नहीं होता, पर फिर भी निःसन्देह यौन प्रवृत्तियां हैं, इससे बाहर रह जाएंगी। पर हम पहले

देख चुके हैं कि परिभाषा करने की कोशिश से सदा कठिनाइयां पैदा होती हैं। इस-लिए इस मामले में हमें कोई अच्छी परिभाषा करने की कोशिश छोड़ ही देनी चाहिए। हम यह मान सकते हैं कि 'यौन' (या कामात्मक) अवधारणा बनते हुए कोई ऐसी बात हुई है जिसके परिणामस्वरूप, एच० सिलबरर के शब्दों में, 'व्याप्ति दोष' हो गया है। सच बात तो यह है कि यौन का अर्थ हम अच्छी तरह जानते हैं।

जनसाधारण की दृष्टि से, जो सामान्य जीवन में सब व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए काफी है, यौन वह चीज है जिसमें लिंग-भेद, आनन्दजनक उत्तेजना और परितुष्टि, प्रजनन-कार्य, अनुचित की धारणा और छिपाने की आवश्यकता सबंधी सब बातें इकट्ठी आ जाती हैं। पर विज्ञान के लिए अब इतना ही काफी नहीं है। कारण कि परिश्रम से की गई गवेषणाओं से (जो आत्मत्याग से पोषित आत्म-संयम की भावना से ही हो सकती हैं) यह प्रकट हुआ है कि मनुष्य जाति में ऐसे वर्ग भी हैं जिनका यौन जीवन प्रचलित यौन जीवन से बहुत अधिक भिन्न है। इन 'विकृतों'[1] के एक समूह ने मानो अपने जीवन-क्रम में से लिंगों के भेद को निकाल बाहर कर दिया है। इन लोगों में अपने समान लिंग के व्यक्ति से ही यौन इच्छा पैदा हो सकती है। उसके लिए दूसरे लिंग का (विशेष रूप से दूसरे लिंग वाले की जननेन्द्रिय का) ज़रा भी यौन आकर्षण नहीं है, और कुछ पराकाष्ठा वाले उदा-हरणों में वह उनकी घृणा की वस्तु हो सकती है। इस प्रकार, उन्होंने प्रजनन के प्रक्रम को बिलकुल छोड़ दिया है। ये व्यक्ति समकामी या समलिंगकामी[2] कहलाते हैं। प्रायः, (पर सदा नहीं) वे ऐसे नर-नारी होते हैं जो बौद्धिक दृष्टि से और आचार की दृष्टि से मानसिक वृद्धि और परिवर्धन के बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंच चुके हैं, और उनमें एक यही अजीब विशेषता होती है। अपने वैज्ञानिक प्रवक्ताओं के ज़रिये वे यह दावा करते हैं कि हम मानव जाति की एक विशेष किस्म 'तीसरा लिंग' हैं जिसे शेष दो लिंगों के बराबर ही अधिकार हैं। शायद हम आगे इन दोनों की समीक्षा करें। वे निःसन्देह मनुष्य जाति का 'श्रेष्ठ अंश' नहीं हैं, जैसाकि वे खुशी से मानते हैं। उनमें भी कम से कम उतने ही घटिया और बेकार लोग हैं जितने दूसरे प्रकार की यौनप्रवृत्ति वालों में।

ये विकृत लोग अपनी अभिलाषाओं के आलम्बनों से प्रायः वही लक्ष्य पूरे करना चाहते हैं जो प्रकृत लोग अपनी अभिलाषाओं के आलम्बनों से करते हैं। पर इनके पीछे अप्रकृत प्ररूपों की एक लम्बी श्रेणी है जिनमें काम-चेष्टाएं ऐसी वस्तुओं से अधिकाधिक दूर होती जाती हैं जो किसी बुद्धियुक्त प्राणी को आकर्षक प्रतीत होती हैं। उनकी विविधता और विचित्रता की दृष्टि से इन प्ररूपों की तुलना उन विराट जीवों से की जा सकती है जिन्हें पी० फ्लायबर्ट ने सेंट एन्थनी के प्रलोभन

१. Perverts २. Homosexual or Inverts

को निरूपित करने के लिए चित्रित किया है, या उन बुड्ढे देवताओं और उपासकों के लम्बे जुलूस से की जा सकती है जो गस्ताव फ्लाबेयर ने अपने धार्मिक प्रायश्चित करने वाले पात्र के सामने से गुजरता दिखाया है। इसकी तुलना और किसी चीज से नहीं की जा सकती। इस अव्यवस्थित जमघट को कुछ समझना है, तो इसका वर्गीकरण आवश्यक है। हम उन्हें दो भागों में बांटते हैं : पहले वे जिनमें काम का आलंबन बदल गया है, जैसाकि समकामियों में हुआ, और दूसरे वे जिनमें सबसे मुख्य बात यह हुई है कि काम का उद्देश्य बदल गया है। पहले समूह में वे लोग आते हैं जिन्होंने जननेन्द्रियों के परस्पर मिलन को छोड़ दिया है, और जिन्होंने काम-क्रिया के एक साथी में जननेन्द्रियों के स्थान पर कोई और अंग या शरीर का भाग (योनि के स्थान पर मुख या गुदा) को रख लिया है, और इसमें होने वाली शारीरिक कठिनाइयों और विरक्ति के निवारण को भुला दिया है। इनके बाद, वे लोग हैं जिन्होंने जननेन्द्रियों को आलम्बन तो बनाया हुआ है, पर उसके मैथुन सम्बन्धी कार्य के कारण नहीं, बल्कि उन दूसरे कार्यों के कारण जिनमें वे शरीर की दृष्टि से, या उनकी समवतता, अर्थात् सबसे अधिक पास होने के कारण शामिल होती हैं। इन लोगों को देखने से यह पता चलता है कि मल-विसर्जन, अर्थात् टट्टी-पेशाब के कार्य, जिन्हें बच्चे के पालन-पोषण के समय गन्दा या अशिष्ट मान लिया जाता है, सम्पूर्ण यौन दिलचस्पी आकर्षित करने में समर्थ बने रहते हैं। कुछ और लोग ऐसे हैं जिन्होंने जननेन्द्रियों को अपना आलम्बन बनाना पूरी तरह छोड़ दिया है, और इसके बदले शरीर के किसी दूसरे भाग को अपनी इच्छा का आलम्बन बना लिया है, जैसे स्त्री की छाती, या बालों की लट। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिए शरीर का हिस्सा भी निरर्थक है, और कोई कपड़े का टुकड़ा या जूता या अन्दर पहनने का कपड़ा उनकी सब इच्छाओं की परितुष्टि कर देता है। ये लोग अ[illegible] भक्त' कहलाते हैं। आगे चलकर वे लोग आते हैं, जो सारे आलम्बन की कामना करते हैं; पर इन लोगों की कामना बड़े असाधारण या अजीब रूप ग्रहण कर लेती है, यहां तक कि वे इसे चेष्टाहीन लाश के रूप में ही हासिल करना चाहते हैं, और अपनी अपराधी मनोग्रस्तियों से प्रेरित होकर इसमें एकात्मता कायम करना, और इस तरह इसका भोग करना चाहते हैं, पर इन भयंकर बातों का इतना ही [illegible] काफी है।

दूसरे समूह में सबसे मुख्य वे विकृत लोग हैं जिनकी यौन इच्छाओं का उ[illegible] वह कार्य करना होता है जो सामान्यतः सिर्फ प्रारम्भिक या तैयारी का कार्य है। वे लोग हैं जिन्हें दूसरे व्यक्ति के बहुत गोपनीय कार्यों को या अंगों को देखने, छूने या ताकते रहने से परितुष्टि मिलती है; या वे लोग हैं जो अपने शरी

उन भागों को, जिन्हें ढके रहना चाहिए, इस धुंधली आशा में उघाड़ते हैं कि दूसरा व्यक्ति भी ऐसा ही करेगा, और उन्हें आनन्दित करेगा। इसके बाद वे अजीब पीड़कतोष[१] (सैडिस्ट) अर्थात् पीड़ा पहुंचाकर परितुष्टि हासिल करने वाले लोग आते हैं, जिनकी सारी अनुराग-भावना का एक ही उद्देश्य होता है, कि अपने आलम्बन को पीड़ा और कष्ट पहुंचाया जाए। यह भावना हलके रूप में दूसरे को अपमानित करने की प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देती है, और उग्र रूप में सख्त शारीरिक चोट पहुंचाने का रूप ग्रहण करती है। इसके बाद पीड़िततोष[२] (मैसोकिस्ट) लोग आते हैं—ये मानो पीड़कतोषों के पूरक हैं—जिनकी एकमात्र यह लालसा रहती है कि अपने प्रेम के आलम्बन के हाथों वास्तविक रूप में या प्रतीक रूप में अपमान और पीड़ा सहें। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनमें इस तरह की कई अप्रकृत विशेषताएं मिली-जुली होती हैं। अन्त में हम देखते हैं कि इनमें से प्रत्येक समूह को आगे फिर और उपसमूहों में बांटा जा सकता है वे लोग जो अपनी यौन सन्तुष्टि यथार्थ रूप में करना चाहते हैं, और वे लोग जो अपने मनों में कल्पना करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं—उन्हें यथार्थ आलम्बन की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि वे इस स्थान पर कल्पित आलम्बन बना लेते हैं।

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि पागलपन के ये असाधारण और भयकर व्यवहार सचमुच इन लोगों के काम-व्यापार होते हैं। न केवल वे स्वयं इन्हें ऐसा मानते हैं, क्योंकि वे आलम्बन के स्थानापन्न रूप को स्वीकार करते हैं, बल्कि हमें भी यह मानना पड़ता है कि उनका उनके जीवन में वही कार्य होता है जो हमारे जीवनों में प्रकृत यौन सन्तुष्टि का। उसमें वे उतने ही और प्राय उसमे भी अधिक त्याग करते हैं। यह स्थूल रूप में भी और सूक्ष्म रूप में भी पता लगाया जा सकता है कि ये अप्रकृतताएं कहां आकर प्रकृत में विलीन हो जाती हैं, और कहां वे उससे अलग होती हैं। यह बात भी आपके ध्यान में अवश्य आएगी कि किसी यौन व्यापार से अनिवार्यतः सम्बद्ध मनोविरस का गुण भी इसके रूपों में मौजूद है। उनमें से अधिकतर में यह इतने तीव्र रूप में है कि कलक बन जाता है।

तो, यौन सन्तुष्टि के इन व्यापक रूपों के बारे में हमारा क्या रुख होना चाहिए? इनपर गुस्सा करने से और व्यक्तिगत विरक्ति प्रकट करने से, तथा यह बताने से कि ये कामनाएं हममें नहीं हैं, स्पष्टत हमारी गाड़ी बहुत दूर नहीं जा सकती। विचारणीय प्रश्न यह नहीं है। आखिरकार घटनाओं के अन्य क्षेत्रों की तरह यह भी एक घटना-क्षेत्र है। यह बहाना बनाकर कि ऐसा बहुत कम होता है, इनसे मुह मोड़ने और भागने की कोशिश का आसानी से जवाब दिया जा सकता है। इसके विपरीत, ये घटनाएं काफी अधिक लोगों में और काफी व्यापक

१ Sadists २. Masochists

क्षेत्र मे देखी जाती हैं। पर यदि आक्षेप किया जाए कि इसके कारण मनुष्य जाति के यौन जीवन के बारे मे हमे अपने विचार संशोधित करने की आवश्यकता नही, क्योकि ये सब बातें नैसर्गिक यौन वृत्ति के विपथन और पथभ्रष्ट रूप हैं तो इसका गम्भीर उत्तर देना आवश्यक होगा। यदि काम-वृत्ति के इन अस्वस्थ रूपों को हम नहीं समझते और यौन जीवन की प्रकृत वृत्तियो से उसका सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते, तो हम प्रकृत और यौन प्रवृत्ति को भी नहीं समझ सकते। संक्षेप मे, हमारा यह सुनिश्चित कर्तव्य है कि ऊपर वर्णित सब काम-वृत्तियो के होने का सैद्धान्तिक रूप से सन्तोषजनक कारण उपस्थित करें, और तथाकथित प्रकृत यौन वृत्ति से उनका सम्बन्ध स्पष्ट करें।

इस कार्य मे हमे एक दृष्टिकोण से और दो नये प्रेक्षणो से मदद मिल सकती है। उस दृष्टिकोण के लिए हम इवान ब्लाख के आभारी हैं। उसके अनुसार यह विचार गलत है कि सब काम-विकृतियां 'पतन के चिह्न' हैं; क्योकि यह साक्ष्य मिलता है कि मैथुन के लक्ष्य से विपथन (या मार्ग-भ्रष्टता), मैथुन के आलम्बन से ऐसा अनियमित सम्बन्ध, आदिकाल से, हमे ज्ञात प्रत्येक युग मे, अधिक से अधिक आदिम जाति से लेकर अधिक से अधिक सभ्य जाति तक मे दिखाई दे रहे हैं, और कभी-कभी इनको सहन भी किया जाने लगा और इनका व्याप प्रचलन रहा। उपर्युक्त दो प्रेक्षण स्नायु-रोगियो की मनोविश्लेषण द्वारा गई जांच मे प्राप्त हुए हैं। उनसे काम-विकृतियो के सम्बन्ध मे निस्सन्देह हम धारणा को एक निश्चित रूप मिलेगा।

हम कह चुके हैं कि स्नायविक लक्षण यौन सन्तुष्टियो के स्थानापन्न और मैं पहले संकेत कर चुका हूं कि इस कथन को लक्षणो के विश्लेषण से पुष्ट करने मे बहुत सारी कठिनाइयां आएगी। असल मे यह बात ठीक इस मे तभी सही है, जब तथाकथित 'विकृत' यौन आवश्यकताओ को यौन सन्तुष्टि के अन्तर्गत माना जाए, क्योकि इस आधार पर लक्षणो का निर्वचन हमारे इतनी बार आता है कि आश्चर्य होता है। समकामियो का यह दावा मनुष्य जाति का एक श्रेष्ठ अंश हैं, उस समय बिलकुल मिथ्या सिद्ध हो जा जब हम यह देखते हैं कि एक-एक स्नायु-रोगी मे समकामी प्रवृत्तियो का प्र दिखाई देता है, और उसके अधिकतर लक्षण इस गुप्त समकामिता या (अनी को ही सूचित करते हैं। जो लोग खुले आम अपने-आपको समकामी बता सिर्फ वही लोग हैं जिनमें समकामिता सचेत और व्यक्त होती है। इनकी संख्या उनके मुकाबले मे कुछ भी नहीं है जिनमे गुप्त होती है। सच तो यह है कि अपने ही लिंग वाला आलम्बन अपनाने को प्रेम करने के सामर्थ्य की सामान्य का नियमित

प्ररूप मानना पड़ता है, और निग्य ऐसी नई जानकारी मिल रही है जिसके कारण इसे विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण मानना पड़ता है। इससे व्यक्त समकामिता तथा प्रच्छन्न रूप के फर्क निश्चित रूप से मिट नहीं जाते। उनका अपना व्यावहारिक महत्त्व तो बना रहता है, पर सिद्धान्त की दृष्टि से उनका मूल्य बहुत कम रह जाता है। प्रसंग में, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि एक मानसिक विकार 'पैरानोइया' जिसे अब स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में नहीं समझा जाता, सदा अनुचित रूप से प्रबल समकामी प्रवृत्तियों को दबाने की कोशिश से ही पैदा होता है। शायद आपको याद होगा कि हमारी एक रोगिणी अपने मनोग्रस्तता-कार्य में एक पुरुष का, अर्थात् अपने पति का, जिसे उसने छोड़ दिया था, अभिनय करती थी। ऐसे लक्षण, जिनमें पुरुष का रूप धारण किया जाता है, स्नायविक स्त्रियों में आम तौर से होते हैं। यदि इसे वास्तव में समकामिता से उत्पन्न न माना जाए तो निश्चित रूप से इसका उसके उद्गमों से नज़दीकी सम्बन्ध है।

जैसाकि सम्भवतः आप जानते हैं, हिस्टीरिया का स्नायु-रोग शरीर के सब संस्थानों (रक्त-संचार, श्वास-संस्थान आदि) में अपने लक्षण पैदा कर सकता है, और इस प्रकार सब कार्यों में गड़बड़ी कर सकता है। विश्लेषण से प्रकट होता है कि विकृत बनाए गए ये सब आवेग, जिनका उद्देश्य जननेन्द्रिय के स्थान पर किसी और अंग को लाना होता है, इन लक्षणों में अभिव्यक्त होते हैं। इस प्रकार, ये अंग जननेन्द्रियों के स्थानापन्न के रूप में कार्य करते हैं। हिस्टीरिया के लक्षणों के अध्ययन से ही हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि शारीरिक अंगों के जो अपने कार्य हैं, उनके अलावा उनका यौन या कामजनक' अर्थ भी है; और यदि उनसे कामजनक प्रयोग बहुत अधिक किया जाएगा तो उनके असली कार्य में बाधा पड़ेगी। इस प्रकार हमें यौन वृत्ति से जिन अंगों का कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता, उनमें हिस्टीरिया के लक्षणों के रूप में जो असंख्य संवेदन और स्नायुदीपन होते हैं, उनका अर्थ असल में यह है कि अन्य अंग जननेन्द्रियों का कार्य छीनकर विकृत यौन इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार हमें यह भी पता चल जाता है कि खास कर पोषण और विसर्जन के अंग यौन उत्तेजना देने में कितना अधिक कार्य कर सकते हैं। असल में यह वही चीज है जो काम-विकृतियों में व्यक्त होती है; फर्क इतना ही है कि काम-विकृतियों में यह असंदिग्ध रूप से और बिना कठिनाई के पहचानी जा सकती है [illegible] लक्षण का निर्वचन करना पड़ता है, और [illegible] में नहीं बताते, बल्कि

प्ररूप वे हैं जो विकृत उद्देश्यवाली यौन प्रवृत्तियों के एक समूह, अर्थात् पीडकनोप-
समूह, की अनुचित शक्ति के कारण पैदा होते हैं। मनोग्रस्तता-रोगों की सरचना के
अनुसार ही ये लक्षण मुख्यत इन इच्छाओं से बचाव का काम करते हैं, अथवा
वे सन्तुष्टि और अस्वीकृति के बीच मौजूद द्वन्द्व को प्रकट करते हैं। पर सन्तुष्टि
भी चुप नही बैठी रहती। यह जानती है कि रोगी के व्यवहार में चक्करदार
रास्ता पकड़कर और विशेष रूप से अपने को स्वय मत्रणा देकर कैसे अपने को आं
बढ़ाया जाए। इस स्नायु-रोग के और रूप बहुत अधिक 'चिंता' और सोच
रहना है, इनमें उन कार्यों का, जो प्रकृत रूप में यौन सन्तुष्टि की तैयारी के
है, अतिरंजित कामुकीकरण' प्रकट होता है, जैसे देखने की, छूने की, और म
की बात जानने की इच्छा। इसी कारण इस रोग में स्पर्श के भय और मनोग्र
'धोने' का इतना अधिक महत्त्व हो जाता है। मनोग्रस्तता-क्रियाओं का
बड़ा भाग हस्तमैथुन की प्रच्छन्न रूप में पुनरावृत्ति और रूप-भेद होता है
यह स्वीकार किया जाता है कि यौन कल्पनाओं की जो विविध उड़ानें
सबमें एक यही कार्य एकसमान मौजूद रहता है।

काम-विकृति और स्नायु-रोग का सम्बन्ध अधिक विस्तार से दिखा
भी कठिन नही है, पर मैं समझता हू कि मैंने अपने प्रयोजनों के लिए काफी
है। पर लक्षणों के निर्वचन में विकृत काम-प्रवृत्तियों के बारे में इतनी जानकारी हो
जाने के बाद हमें मनुष्य जाति में उसकी बारबारता और तीव्रता को बहुत अधिक
महत्त्व देने से बचना चाहिए। आपने सुना है कि प्रकृत यौन सन्तुष्टि की कुठा में
स्नायु-रोग पैदा हो सकता है। वास्तविक जीवन में इस कुंठा के कारण आवश्यकता
यौन उत्तेजन के अप्रकृत रास्ते अपनाने को मजबूर हो जाती है। बाद में आप समझ
सकेंगे कि यह कैसे होता है, कम से कम आप इतना तो समझ जाएंगे कि इस
तरह के एकमात्र अवरोध से विकृत आवेगों का बल बढ़ जाएगा और अब वे तब
की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो जाएंगे जबकि वास्तविक रूप में प्रकृत यौन-
सन्तुष्टि में कोई रुकावट न होती। प्रसगत', ऐसी ही बात व्यक्त काम-विकृतियों
में भी दिखाई देगी। बहुत-से उदाहरणों में वे नैसर्गिक काम-वृत्ति की प्रकृत सन्तुष्टि
में अनुचित रूप से बड़ी कठिनाइयों के कारण पैदा या सक्रिय होती हैं, और
कठिनाइया अस्थायी दशाओं या स्थायी सस्थाओं से पैदा होती हैं। दूसरे उदाहर
में विकृत प्रवृत्तिया निश्चित रूप से ऐसी अवस्थाओं से बिलकुल स्वतन्त्र होती
ऐसा लगता है मानो वे सम्बन्धित व्यक्ति के लिए स्वाभाविक यौन जीवन
शायद आप थोड़ी देर के लिए यह समझ रहे होंगे कि इन सब बातों से
... वृत्ति के सम्बन्ध स्पष्ट होने के बजाय और अस्पष्ट होने ...

पर यह बात मन मे रखिए। यदि यह बात सही है कि यौन सन्तुष्टि के मार्ग की वास्तविक बाधाएं या इसके विषय मे कुण्ठा उन लोगों मे विकृत प्रवृत्तियों को ऊपर के तल पर ले आती है जिनमे अन्यथा ऐसी कोई प्रवृत्ति न दिखाई देती, तो हमें यह निष्कर्ष मानना ही होगा कि इन लोगों में कोई ऐसी चीज है जो उन काम-विकृतियों को अपनाने को तैयार है, या आप कहना चाहें तो ये प्रवृत्तियां उनमें गुप्त रूप में अवश्य मौजूद हैं। इस प्रकार मैंने जिन दो नये प्रेक्षणों की बात कही थी, उनमें से दूसरे पर हम आ जाते हैं। मनोविश्लेषण की जांच-पड़ताल से यह पता चला है कि बच्चों के यौन जीवन की पड़ताल करना आवश्यक है, क्योंकि लक्षणों के विषय में जो स्मरण और साहचर्य सामने आते हैं, वे सदा शैशव के प्रारम्भिक वर्षों पर लौटा ले जाते हैं। जो बात हमने इस तरह खोजी थी, उसके एक-एक अंश की पुष्टि बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण से हो चुकी है। इस प्रकार यह पता चला है कि सब विकृत यौन प्रवृत्तियों का मूल बचपन में मिलता है। बालकों मे वे सब विकृत प्रवृत्तियां ग्रहण करने का झुकाव होता है और वे अपनी अपरिपक्वता के अनुसार अलग-अलग मात्रा मे उन सबके वशीभूत होते हैं, और उन्हें अपनाते हैं। संक्षेप मे, विकृत यौन प्रवृत्ति शैशवीय यौन प्रवृत्ति ही है, जो अब अधिक बड़े रूप मे और अपने घटक-अवयवों में खण्डित होती है।

अब आप काम-विकृतियों को बिलकुल दूसरे ही ढग से देखेंगे और मनुष्य जाति के जीवन में उनके सम्बन्ध की उपेक्षा नहीं करेंगे। पर इन आश्चर्यकारक और अजीब बातों के ज्ञान से आपमे कितनी परेशानी के भाव पैदा होंगे! शुरू मे निश्चित रूप से आप प्रत्येक बात का निषेध करना चाहेंगे। इस तथ्य का कि बालकों मे यौन जीवन कही जा सकने योग्य कोई चीज नहीं होती है, हमारे प्रेक्षणों की यथार्थता का और बालकों के व्यवहार में उस चीज के साथ, जो बाद के वर्षों में विकृति कहलाती है, कोई सम्बन्ध देखने के हमारे दावे के औचित्य का आप विरोध करेंगे। सबसे पहले तो मैं आपके विरोध के प्रेरक कारण आपके सामने रखूंगा, और इसके बाद अपने प्रेक्षणों का सारांश पेश करूंगा। यह कहना या समझना कि बालकों का कोई यौन जीवन नहीं होता अर्थात् उनमे यौन उत्तेजना, एक तरह की यौन आवश्यकताएं और सन्तुष्टि नहीं होती और उनमे ये बातें बारह और चौदह वर्ष की आयु के बीच एकाएक आ जाती हैं, और दृष्टियों के अलावा जैविकीय दृष्टि से भी वैसा ही असम्भाव्य, बल्कि बेहूदा होगा, जैसे यह कल्पना करना कि वे बिना जननेन्द्रियों के पैदा होते हैं और तरुणावस्था में उनमे जननेन्द्रियां फूटने लगती हैं। उनमे इस समय असल मे जो चीज पैदा होती है वह है प्रजनन सम्बन्धी कार्य, जो उस समय शरीर और मन में मौजूद सामग्री का अपने प्रयोजनों के लिए उपयोग कर लेता है। आप यौन प्रवृत्ति और प्रजनन को एक-दूसरे से मिला रहे हैं और इस तरह आप यौन प्रवृत्ति, काम-विकृतियों और स्नायु-रोगों को समझने

का रास्ता स्वयं बन्द कर रहे हैं। इसके अलावा, इस भूल मे एक अर्थ भी है। कहने मे अजीब मालूम होता है, पर इसका मूल कारण यह है कि आप सब कभी बालक रहे हैं, और बालकपन मे आप शिक्षा के प्रभाव मे रहे हैं। क्योंकि शिक्षा का एक सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य यह भी है कि वह नैसर्गिक यौन प्रवृत्ति को, जब वह प्रजनन सम्बन्धी कार्य के रूप मे विकसित हो जाती है तब, मयत करे, सीमित करे, और व्यक्ति को नियन्त्रण मे रखे (व्यक्ति का नियन्त्रण और समाज की आवश्यकता एक ही बात है), इसलिए समाज अपने हित को देखते हुए बालक के पूर्ण परिवर्धन को तब तक के लिए टाल देता है, जब तक कि वह बौद्धिक परिपक्वता की एक निश्चित स्थिति पर न पहुंच जाए, क्योंकि नैसर्गिक यौन प्रवृत्ति के पूर्ण रूप मे क्रियाशील हो जाने पर शिक्षणीयता अर्थात् शिक्षा-प्राप्ति की योग्यता प्राय खत्म हो जाती है। यदि ऐसा न किया जाए तो निसर्ग-वृत्ति सब रुकावटो को और परिश्रम से खड़े किए गए सभ्यता के ढाचे को तोड़-फोड़कर फेंक देगी। इसमें सयत करने का काम आसान भी नही है। इस दिशा मे सफलता प्राय बहुत कम होती है, और कभी-कभी बहुत अधिक भी होती है। मूलतः समाज का प्रेरक भाव आर्थिक है क्योंकि इसके पास इतने साधन नहीं हैं कि यह अपने सदस्यो के बिना परिश्रम किए उनके जीवन का भरण-पोषण कर सके। इसलिए उसे यह यत्न करना पड़ता है कि इन सदस्यो की सख्या अधिक न बढ़ सके और उनकी शक्ति यौन व्यापारों से हटकर अपने कार्य पर लगी रहे—इसलिए जीवन-धारण के लिए होने वाला नित्य और आदिकाल से चला आता हुआ सघर्ष आज तक चला आ रहा है।

अनुभव से शिक्षकों को यह पता चला होगा कि अगली पीढ़ी की यौन इच्छा को ढालने का कार्य तभी सफल हो सकता है जब तूफान फटने तक प्रतीक्षा करने के बजाय शुरू मे ही उसपर असर डाला जाए और तरुणावस्था से पहले ही बालकों के यौन जीवन मे दखल दिया जाए। इसलिए बालक के प्राय सब यौनवीय दो... व्यापारों पर रोक लगा दी जाती है, या उन्हें अरुचिकर बना दिया जाता है ... आदर्श यह रहा है कि बालक के जीवन को निष्काम या कामहीन बना दिया जा... और धीरे-धीरे इसका यह नतीजा हुआ है कि हम इसे वास्तव में निष्काम मा... मने हैं और विज्ञान भी इसे ऐसा ही बताता है। इसलिए, प्रतिष्ठित विश्वासों ... सच्चों मे कोई विरोध न होने देने के लिए, बालकों के यौन व्यापार मे ध्यान ... भी जाती है—और यह कोई छोटी सफलता नहीं है—और उधर विज्ञान ... दूसरे ढग से व्याख्या करके सन्तुष्ट हो जाता है। छोटे बालक को शुद्ध और ... जाता है। जो इसमें भिन्न बात कहे उसको मनुष्य जाति का ... पर अविश्वास करने वाला कहा जाता है। ... लिया नहीं ... हैं ...

उन्हें अभी सीखनी है। कैसी विचित्र बात है कि जो लोग बालकों में काम-प्रवृत्ति होने का निषेध करते हैं, वे ही इसको रोकने के लिए होने वाले शिक्षणात्मक उपायों को शिथिल करने का सबसे अधिक विरोध करते हैं। बच्चों में कोई भी 'दूषित प्रवृत्ति', जिसके होने का वे निषेध करते हैं, दीखने पर वे ही उसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करते हैं। इसके अलावा, सिद्धान्त-विचार की दृष्टि से यह बात बड़े महत्त्व की है कि जीवन का जो समय निष्काम बालकपन सम्बन्धी संस्कार का सबसे प्रबल खण्डन करता है, अर्थात् पांच या छः वर्ष की आयु तक का समय, वह वही समय है जो अधिकतर लोगों में विस्मृति के पर्दे में छिपा रहता है। यह विस्मृति विश्लेषण द्वारा पूरी तरह हटाई जा सकती है, पर विश्लेषण से पहले भी उसके अन्दर प्रवेश होता था, और बालकपन के कुछ स्वप्न कायम रहते थे।

अब मैं आपको बालकपन के वे यौन व्यापार बताऊंगा जो सबसे अधिक स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं। यह अधिक अच्छा होगा कि मैं पहले आपको लिबिडो या राग या काम-क्षुधा का परिचय दे दूं। लिबिडो या राग बिलकुल क्षुधा की तरह है। यह वह बल है जिसके द्वारा नैसर्गिक यौन वृत्ति वैसे ही अपनी अभिव्यक्ति करती है जैसे पोषण की निसर्ग-वृत्ति भूख के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करती है। यौन उत्तेजन और सन्तुष्टि आदि अन्य शब्दों की कोई परिभाषा देने की आवश्यकता नहीं। निर्वचन को शिशु के यौन व्यापारों के विषय में बहुत कुछ करने योग्य काम मिलता है, जैसाकि आप आसानी से समझ जाएंगे, और निःसन्देह आपको आक्षेप करने के लिए भी कारण दिखाई देगा। यह निर्वचन किसी लक्षण से पीछे की ओर चलते हुए मनोविश्लेषणात्मक जांच के आधार पर बना हुआ है। शिशु के प्रथम यौन उत्तेजन जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण दूसरे कार्यों के सिलसिले में प्रकट होते हैं। इसकी मुख्य दिलचस्पी, जैसाकि आप जानते हैं, पोषण प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है। जब वह बिलकुल सन्तुष्ट होकर छाती पर पड़ा सोता है, तब उसके चेहरे पर पूर्ण परितृप्ति होती है, जो बाद के जीवन में शुक्रक्षरण[1] के अनुभव के बाद फिर दिखाई देती। यह बात निष्कर्ष निकालने के लिए काफी नहीं है, पर हम देखते हैं कि शिशु पोषण पाने के लिए आवश्यक क्रिया वास्तव में पोषण न पाते हुए भी करता रहना चाहता है। इसलिए इसका कारण भूख नहीं है। हम इस क्रिया को 'सुख के लिए चूसना' कहते हैं (रबड़ का निपल चूसते रहना बच्चों को अच्छा मालूम होता है); और जब शिशु ऐसा करता है तब फिर वह वही आनन्दपूर्ण परितृप्ति प्रकट करता हुआ सो जाता है—इस तरह हम देखते हैं कि चूसने की क्रिया अपने-आपमें सन्तुष्टि देने के लिए काफी है। धीरे-धीरे उसे ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह इस तरह निप्पल चूसे बिना नहीं सोता। बुडापेस्ट

१. Sexual orgasm

के निवासी और बच्चो का इलाज करने वाले वयोवृद्ध डाक्टर लिण्डनर ने सबसे
पहले इस प्रतिक्रिया को यौन प्रकृति का बताया था। बच्चो की देखभाल करने
वाली नर्सें तथा लोग इस चूसने के बारे मे यही विचार रखते मालूम होते हैं।
उन्हे इसमे सन्देह नही कि इसका एकमात्र प्रयोजन इससे प्राप्त होने वाला सुख
ही है। वे इसे बच्चों की 'शैतानी' समझते हैं, और यदि बच्चा इसे खुद नहीं छोड़
देता, तो वे उसकी यह आदत छुड़ाने के लिए सख्त उपाय बरतते हैं, और इस तरह
हमे पता चला कि शिशु सुख-प्राप्ति से भिन्न कोई उद्देश्य न होते हुए कुछ क्रियाएं
करता है। हम मानते हैं कि सबसे पहले यह सुख पोषण-ग्रहण के समय प्राप्त होता
है, पर शिशु पोषण से अलग भी इसका सुख-भोग करना जल्दी ही सीख जाता है।
इससे प्राप्त परितुष्टि सिर्फ मुख और होठों के क्षेत्र से सम्बन्धित होती है। इसलिए
इस क्षेत्र को हम कामजनक क्षेत्र कहते हैं, और इस चूसने से उत्पन्न सुख को यौन
सुख बताते हैं, पर इस शब्द के प्रयोग के औचित्य के बारे मे अभी हमे विचार
करना है।

यदि बालक अपने मन की बात कह सकता तो वह अवश्य यह मानता कि माता
की छाती चूसने का कार्य जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। उसका यह कहना
गलत नही होता, क्योकि इस कार्य मे जीवन की दो सबसे बड़ी आवश्यकताओं की
एकसाथ पूर्ति हो जाती है। फिर, मनोविश्लेषण से पता चलता है, और उसे
आश्चर्य भी होता है कि इस कार्य का कितना अधिक मानसिक महत्त्व सारे जीवन
मे बना रहता है। पोषण के लिए स्तन चूसने से ही सारे यौन जीवन का परिवर्धन
होता है। यह बाद मे मिलने वाली प्रत्येक यौन सन्तुष्टि का अलभ्य मूर्त रूप है और
आवश्यकता के समय कल्पना प्रायः इसी पर लौटकर पहुंचती है। चूसने की इस
मे माता की छाती के लिए इच्छा भी शामिल है, और इसलिए माता की छाती
यौन इच्छा का पहला आलम्बन है, जो आलम्बन बाद मे बनते हैं, उनके निर्धारण
इस प्रथम आलम्बन का कितना महत्त्व होता है, इस रूपान्तरण और स्थानान्तरण
द्वारा मानसिक जीवन के बहुत दूरवर्ती क्षेत्रों पर कितना प्रभाव डालता है,
इसकी पूरी-पूरी धारणा आपको कराने मे मैं असमर्थ हूं, पर सबसे पहले जब
बालक सुख के लिए चूसता है, तब इस आलम्बन को छोड़कर इसके स्थान पर वह
अपने शरीर के एक हिस्से का प्रयोग करता है। वह अपने अंगूठे या अपनी जीभ
को चूसता है। इस प्रकार वह सुख-प्राप्ति के प्रयोजन के लिए अपने आपको बाहरी
दुनिया की सहमति से स्वतन्त्र कर लेता है, और उत्तेजन के क्षेत्र मे शरीर के एक दूसरे
हिस्से को लाकर, और इस तरह उसका विस्तार करके अपने सुख और भी बढ़ा लेता
है। सब कामजनक क्षेत्र बराबर सुख नहीं दे सकते, इसलिए जब शिशु, जैसा कि
लिण्डनर ने कहा है, अपने शरीर को टटोलता हुआ अपनी ज्ञानेन्द्रियों मे विशेष
रूप से उत्तेजन योग्य क्षेत्र का पता लगा लेता है, और इस तरह सुखार्थ चूसने से

स्वयरति का रास्ता ढूंढ़ लेता है, तब यह एक महत्त्वपूर्ण अनुभव होता है।

मुखार्थ चूसने के स्वरूप के बारे मे इस विचार ने शैशवीय यौन प्रवृत्ति की दो निश्चायक विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान खीचा है। ये प्रबल शारीरिक आवश्यकताओं की सतुष्टि के सिलसिले में सामने आती हैं और आत्मकामित[1] व्यवहार करती हैं, अर्थात् ये अपने शरीर में ही अपने आलम्बन खोजती है और प्राप्त करती हैं। जो बात पोषण-ग्रहण करने के बारे में बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, वही कुछ दूर तक मल-त्याग के प्रक्रम में भी होती है। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शिशुओं को पेशाब और आंतों का मल निकालने में सुख अनुभव होता है और वे बहुत शीघ्र इन क्रियाओं को इस तरह करने की कोशिश करते हैं जिससे इन कामजनक क्षेत्रों में इन क्रियाओं के साथ होने वाले झिल्लियों के उत्तेजन से उन्हें यथासम्भव अधिक से अधिक परितुष्टि मिल सके। जैसाकि लो एण्ड्रियास ने बताया है, किसी अन्त प्रेरणा से प्रेरित होकर बाहरी दुनिया सबसे पहले इस जगह रुकावट के रूप में सामने आती है। वह बालक की सुख की इच्छा का विरोध करने वाले बल के रूप में उसके सामने आती है—यहीं उसे बाद के जीवन में अनुभव होने वाले बाहरी और भीतरी द्वन्द्वों का पहला सकेत मिलता है। जब वह स्वयं चाहे तब मल-त्याग न करे, बल्कि दूसरे लोगों द्वारा नियत समय पर ही मल-त्याग करे। उसे सुख के इन स्रोतों को छोड़ने की प्रेरणा देने के लिए उससे कहा जाता है कि इन कार्यों से सम्बन्धित हर बात 'बुरी' या 'अनुचित' है और उसे छिपाना चाहिए। इस प्रकार, उसे पहली बार दूसरों की दृष्टि में अपना मान पाने के लिए अपना सुख छोड़ने को कहा जाता है। मल-त्याग के प्रति उसका अपना रुख शुरू में बड़ा भिन्न होता है। अपने खुद के मल से उसमें कोई घृणा पैदा नहीं होती। वह उसे अपने शरीर के हिस्से की तरह मानता है, और छोड़ना नहीं चाहता। वह उसका उपयोग अपने प्रिय लोगों को अपने चिह्न की सबसे पहली 'भेंट' देने में करता है। शिक्षा के द्वारा इन प्रवृत्तियों से हटा दिए जाने पर भी वह अपनी 'भेंटों' और अपने 'धन' को उतना ही महत्त्व देता रहता है। पेशाब करने की अपनी सफलता उसे विशेष अभिमान की बात मालूम होती है।

मैं जानता हूं कि कुछ समय से आप मुझे रोकने के लिए यह कहने को उतावले हो रहे हैं, 'ये बेहूदी बातें बन्द करो! आंतों की गति से बच्चे भी सुखदायक यौन तृप्ति करते हैं! मल भी कीमती वस्तु है और गुदा एक तरह की जननेन्द्रिय है! हम इन बातों पर विश्वास नहीं करते, पर हम यह समझ गए हैं कि बालकों के डाक्टरों और शिक्षा-शास्त्रियों ने मनोविश्लेषण और इसके निष्कर्षों को क्यों इस तरह बलपूर्वक अस्वीकार किया है।' जरा भी नहीं। आप इस समय यह बात

1. Auto-erotically

जीवन मे सिर्फ उन घटक-निसर्ग-वृत्तियों[1] की एक शृंखला के सिर्फ वे व्यापार होते हैं जो एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए कुछ उसके अपने शरीर में और कुछ पहले ही से किसी बाहरी आलम्बन में परितुष्टि पाना चाहते हैं। इन शारीरिक संस्थानों के अंगों मे शीघ्र ही पहला स्थान जननेन्द्रिय संस्थान[2] का हो जाता है। ऐसे लोग भी होते हैं जिनमे किसी अन्य जननेन्द्रिय या आलम्बन की मदद के बिना, अपनी ही जननेन्द्रिय में सुखदायक परितुष्टि, शैशव के दूध चूसने के समय की आदतन स्वयं रति से शुरू होकर तरुणावस्था मे होने वाली आवश्यकता से उत्पन्न स्वयं रति तक, बिना व्यवधान के जारी रहती है और उसके बाद भी अनिश्चित काल तक कायम रहती है। प्रसगत स्वय रति का विषय इतने से खत्म नहीं हो गया। इसमें अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है।

इस चर्चा को मैं बहुत नहीं बढ़ाना चाहता, पर फिर भी, बच्चों मे जो यौन कुतूहल होता है, उसकी कुछ बात अवश्य कहना चाहता हूं। बाल्य यौन वृत्ति की यह इतनी बड़ी विशेषता है और स्नायु-रोग के लक्षण-निर्माण के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इसे छोड़ा नहीं जा सकता। शैशवीय यौन कुतूहल बहुत छोटी उम्र में, कभी-कभी तीसरे वर्ष से भी पहले, शुरू हो जाता है। यह लिंगों के भेद से सम्बन्ध नहीं रखता। बालकों के लिए इसका कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि वे, कम से कम लड़के तो, दोनों लिंगों मे वही पुरुष-जननेन्द्रिय समझते हैं। यदि फिर कोई लड़का अपनी छोटी बहन या साथ खेलने वाली लड़की की योनि देख ले, तो वह तुरन्त अपनी इन्द्रियों के साक्ष्य का निषेध करना चाहता है, क्योंकि वह यह धारणा नहीं बना सकता कि कोई उसकी तरह का मनुष्य प्राणी उसके सबसे महत्त्वपूर्ण गुण से रहित भी हो सकता है। बाद मे इससे जो शायद ए या किए जा सकने वाले कार्य उसके सामने आते हैं, उन्हें देखकर वह भयभीत हो जाता है। उसे अपने इस छोटे-से अंग पर बहुत ध्यान देते देखकर पहले जो धमकियां दी गई थीं, उनका प्रभाव उसे अब अनुभव होने लगता है। उसपर बधियाकरण ग्रन्थि का आधिपत्य हो जाता है, जो उसके स्वस्थ रहने पर उसके चरित्र-निर्माण में, रोगी होने पर उसके स्नायु-रोग के निर्माण में और यदि उसका मनोविश्लेषण द्वारा इलाज किया जाता है तो उसके प्रतिरोधों के निर्माण मे इतना महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। हम जानते हैं कि छोटी लड़कियां बड़े दृष्टिगोचर शिश्न के अभाव से अपने मे भारी कमी अनुभव करती हैं, और लड़कों मे इसके होने पर ईर्ष्या रखती हैं, इसी मूल से प्रथमत. पुरुष होने की इच्छा पैदा होती है, जो किसी स्त्रियोचित परिवर्धन के साथ ठीक समंजन न होने के कारण बाद मे स्नायु-रोग मे फिर आ जाती है। इसके अलावा, लड़की की भगनासा बालपन में हर प्रकार से शिश्न के तुल्य होती है। यह विशेष उत्तेज-

१. Component-instincts २. Genitalia

जन्म होता है। कुछ-कुछ ऐसे तरीके से कुतूहली बालक यौन वृत्ति सबधी तथ्यों की कुछ जानकारी हासिल करता है बशर्ते कि वह अज्ञान के कारण गलत रास्ते पर न चला जाए। वह तथ्यों को नज़रन्दाज करता रहता है, और अन्त मे उसे प्राय तरुणावस्था से पहले के दिनों में उनका अधूरा और भद्दा वृत्तान्त पता चलता है जिससे उसमें प्राय उपघातज प्रभाव पैदा होता है।

अब, सम्भवतः आपने सुना होगा कि 'यौन' या 'काम सम्बन्धी' शब्द के अर्थ का मनोविश्लेषण ने अकारण फैलाव कर डाला है, जिससे स्नायु-रोगों के यौन उद्गम और लक्षणों के यौन अर्थ के बारे में इसकी मान्यताएं खड़ी हो सकें। अब आप स्वयं यह फैसला कर सकते हैं कि यह फैलाव उचित है या नहीं। हमने 'यौनवृत्ति' या 'कामुकता' के अवधारण का अर्थ विस्तृत कर दिया है, पर इतना ही विस्तृत किया है कि इससे विकृत व्यक्तियों और बालकों के यौन जीवन को इसके अन्तर्गत लाया जा सके, अर्थात् हमने इसे इसके अर्थ का सही दायरा फिर प्राप्त करा दिया। मनोविश्लेषण के बाहर जिस चीज़ को यौन वृत्ति या कामुकता कहा जाता है, वह सिर्फ उस सीमित यौन जीवन पर लागू होती है जो प्रजनन-कार्य के लिए प्रयुक्त होता है, और प्रकृत कहलाता है।

होता है। वे निश्चित ही यौन स्वरूप वाली है, चाहे आप उन्हें पतन के चिह्न कहिए या कुछ और, पर इतना हौसला अभी किसीने नहीं दिखाया कि उन्हें यौन जीवन की घटनाओं मे रखने के बजाय किसी और वर्ग मे रख दें। सिर्फ उन्हे देखते हुए भी हमारा यह मानना उचित है कि यौन प्रवृत्ति अथवा कामुकता और प्रजनन-कार्य एक बात नहीं है, क्योंकि वे सबकी सब काम-प्रवृत्तिया प्रजनन के उद्देश्य को अस्वीकार करती हैं।

यहा एक मजेदार-सी समानान्तर बात दिखाई देती है। अधिकतर लोग 'मानसिक' का अर्थ 'चेतन' समझते हैं; पर हमें 'मानसिक' शब्द के प्रयोग का क्षेत्र बढाना पडा, जिससे मन का वह भाग भी इसके अन्तर्गत आ जाए जो चेतन नहीं है। ठीक इसी प्रकार अधिकतर लोग 'यौन' या 'कामुक' को और 'प्रजनन सम्बन्धी', अथवा संक्षेप मे कहना चाहें तो 'जननेन्द्रिय सम्बन्धी' को एक ही बताते हैं, जबकि हमे उन बातों को भी 'यौन' या 'कामुक' मानना पडता है जो 'जननेंद्रिय सम्बन्धी' नहीं हैं, और जिनका प्रजनन से कोई सम्बन्ध नही है। सिर्फ ऊपरी सादृश्य है, पर इसका गहरा अर्थ भी अवश्य है।

पर यदि काम-विकृतियो का अस्तित्व इस प्रश्न पर इतनी प्रबल दलील है, तो इसने बहुत पहले ही इस प्रश्न का समाधान क्यो नही कर दिया? मैं सचमुच इसका उत्तर देने मे असमर्थ हू। मुझे ऐसा लगता है कि यौन विकृतियो पर बहुत सख्त पाबन्दी रही, जो इस सिद्धान्त में भी घुस गई, और इस विषय मे वैज्ञानिक विवेक मे भी बाधा डालती है। ऐसा लगता है कि जैसे कोई भी यह बात नही भुला सकता था कि वे न केवल घृणा योग्य हैं बल्कि कोई राक्षसी और भयानक चीज हैं मानो उनसे प्रलोभनकारी प्रभाव पडता था, मानो हृदय के अन्तस्तल में काम-विकृति का सुख लेने वालों से गूढ ईर्ष्या मौजूद थी जिसे दबाना पडता था। वास्तव मे काम-विकृत लोग बेचारे मुसीबत के मारे ही होते हैं जिन्हें इतनी कठिनाई से प्राप्त की हुई सन्तुष्टियो की बडी कडी सजा भुगतनी पडती है।

विकृत काम-व्यापार के आलम्बनों या उनके उद्देश्यों में बिलकुल अस्वाभाविक लगने वाली बातें होने पर भी वे इस कारण असंदिग्ध रूप से यौन या कामुक व्यापार हैं कि विकृत सन्तुष्टि में भी कार्य का अन्त प्रायः पूर्ण सुखोत्तेजना और शुक्रक्षरण के रूप मे होता है। यह सम्बन्धित व्यक्तियों मे वयस्कता-प्राप्ति पर ही होता है। बच्चों मे सुखोत्तेजना और शुक्रक्षरण उस तरह सम्भव नहीं है। उनके स्थानापन्न के रूप मे उनसे मिलती-जुलती चीजें होती हैं, पर उन्हें भी निश्चित रूप से यौन नहीं माना जाता।

काम-विकृतियो का पूरा स्वरूप विदित करने के लिए मुझे अभी कुछ और भी कहना होगा। उन्हें घृणित समझा जाता है, और वे प्रकृत यौन व्यापार से बहुत भिन्न भी हो सकती हैं, पर मामूली प्रेक्षण से पता चल जाएगा कि शायद

कोई ऐसी काम-विकृति हो जो प्रकृत व्यक्ति के यौन जीवन में
सबसे पहले चुम्बन को ही विकृत यौन कार्य कहा जा सकता है, क्योंकि
में दो कामजनक सुख-क्षेत्रों का मिलन होता है, दो जननेन्द्रियों का नहीं, पर
कोई विकृत नहीं कहता। इसके विपरीत, नाटक में इसे दिखाया जा सकता
क्योंकि इसे मैथुन-कार्य का एक परिष्कृत संकेत माना जाता है। फिर भी
चुम्बन ऐसी चीज है जो आसानी से पूर्ण काम-विकृति बन सकता है, अर्थात् ज
व यह इतनी तीव्रता में होता है कि सुखोत्तेजना और शुक्रक्षरण इसके साथ ही
ो जाते हैं, जोकि कोई असामान्य बात नहीं है। फिर, आप देखेंगे कि ए
व्यक्ति में आलम्बन को ताकना और उसे हाथ से स्पर्श करना यौन सुख के लि
अनिवार्य होता है, जबकि दूसरा, यौन उत्तेजन की पराकाष्ठा आने पर का
है या चिकोटी भरता है, किसी तीसरे प्रेमी में आलम्बन के शरीर का जननेन्
क्षेत्र के अलावा कोई और क्षेत्र अधिकतम उत्तेजना पैदा करता है, और
तरह इनके अनन्त भेद हो सकते हैं। इस तरह की किसी एक विलक्षणता
लोगों को प्रकृतों की श्रेणी में से निकालना और विकृतों में शामिल करना बि
बेतुका है। इसके विपरीत, यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है कि
विकृति का आवश्यक तत्त्व यौन उद्देश्य में आगे बढ़ जाना, जननेन्द्रि
स्थान पर और अंगों को ले आना, और आलम्बन में भिन्नताएं हो जान
हैं, बल्कि सिर्फ यह है कि व्यक्ति इन विपथनों या मार्ग-भ्रष्टताओं पर
अनन्यता' में कायम रहता है, और इस तरह प्रजनन का प्रक्रम कहां
मैथुन-कार्य को सर्वथा दूर कर देता है। जहां विकृत काम-चेष्टाएं प्रकृ
... की पूर्ति को तीव्र करने, या वहां तक पहुंचाने के लिए की जातीं
... किस तरह के तथ्य अभी बताए गए ... बहुत अधि

है—यह या तो वही होता है जो दिखाई दे रहा है, या इसने दूसरों को अपने ही प्रयोजनों में लगा लिया है। इस दृष्टि से विकृत और प्रकृत यौन प्रवृत्ति के बीच इसके सिवाय और कोई अन्तर नहीं कि प्रधान घटक-आवेग और इसलिए यौन-उद्देश्य भिन्न हैं। वे दोनों ही एक सुसंगठित क्रूर शासन हैं; फर्क यही है कि इनमें से एक में शासक वर्ग ने सारी सत्ता हथिया ली है, और दूसरे में दूसरे ने। इसके विपरीत, शैशवीय यौन प्रवृत्ति में इस सघनता और संगठन का मुख्यतया अभाव होता है। इसके घटक-आवेग भी उतने ही प्रबल होते हैं। उनमें से प्रत्येक स्वतन्त्र रूप से अपने ही सुख के लिए प्रयत्न करता है। (बालकपन में) इस सघनता का अभाव और (वयस्कता में) इसका अस्तित्व, ये दोनों बातें इस तथ्य के साथ बिलकुल मेल खाती हैं कि प्रकृत और विकृत दोनों यौन प्रवृत्तियां एक ही स्रोत, अर्थात् शैशवीय यौन प्रवृत्ति से पैदा होती हैं। सच तो यह है कि काम-विकृति के ऐसे उदाहरण भी हैं जो शैशवीय यौन प्रवृत्ति से इस दृष्टि से और भी मेल खाते हैं कि बहुत-सी घटक-निसर्ग-वृत्तियां और उनके उद्देश्य एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए, उनमें परिवर्धित हो जाते हैं या स्थायी बन जाते हैं। इन उदाहरणों को यौन जीवन की विकृति के बजाय शैशवीयता[1] कहना अधिक सही है।

इतना जानने के बाद अब हमें एक सुझाव पर विचार करना चाहिए, जो हमारे सामने अवश्य पेश किया जाएगा। कहा जाएगा, 'बालकपन की उन अनिश्चित अभिव्यक्तियों को, जिनमें से बाद के यौन जीवन का परिवर्धन हुआ और जिसे आप स्वयं अनिश्चित मानते हैं, पहले से यौन प्रवृत्ति का प्रकटन बताने के लिए आपने क्यों कमर कस ली है? आप उनका कायिकी की दृष्टि से वर्णन करके, और सिर्फ इतना कहकर ही क्यों सन्तुष्ट नहीं हो जाते कि खाली चूसन और मल रोकने जैसे व्यापार छोटे बच्चों में पहले ही देखे जा सकते हैं, जिससे प्रकट होता है कि वे अपने अंगों से सुख प्राप्त करते हैं? इस तरह आपको शिशुओं में भी यौन जीवन का अस्तित्व नहीं मानना पड़ेगा जो हमारी भावनाओं के लिए इतना अरुचिकर है।' इसका मैं यही उत्तर दे सकता हूं कि मुझे शरीर के अंगों से उत्पन्न सुख के विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। मैं यह जानता हूं कि मैथुन या लैंगिक ऐक्य का सर्वोपरि सुख भी एक शारीरिक सुख ही है, जो जननेन्द्रिय की चेष्टा से पैदा होता है। पर क्या आप मुझे बता सकते हैं कि वह शारीरिक सुख, जो शुरू में निष्काम होता है, कब यौन रूप प्राप्त करता है?—परिवर्धन की अन्तिम कलाओं में तो इसका यौन रूप असंदिग्ध रूप से होता है। क्या हम इस 'अंग-सुख' के बारे में यौन प्रवृत्ति की अपेक्षा अधिक जानते हैं? आप कहेंगे कि इसमें यौन रूप तब आ जाता है जब जननेन्द्रियां अपना कार्य करने लगती हैं; यौन प्रवृत्ति या कामुकता का अर्थ सिर्फ 'जननेन्द्रिय

---

१. Infantilism

में पहले ही मौजूद है यद्यपि मैं उसे बीज-पत्रों में नहीं देख सकता ? यही बात हम तब कहते हैं जब शिशु की सुखकर चेष्टाओं को यौन बताते हैं। प्रत्येक अग-सुख को यौन या कामुक कहा जा सकता है या नहीं, अथवा यौन सुख के अलावा कोई और भी ऐसा सुख है या नहीं, जो इस नाम से न पुकारा जा सकता हो?—इस प्रश्न का विवेचन मैं यहां नहीं कर सकता। अग-सुख और इसके लिए आवश्यक दशाओं के बारे में मैं बहुत कम जानता हू और मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं है कि विश्लेषण के पीछे की ओर चलने के कारण मैं अन्त में ऐसे कारकों पर पहुंचता हू जिनका इस समय सुनिश्चित वर्गीकरण सम्भव नहीं।

एक बात और। अब तक आपको अपनी इस स्थापना के लिए कि बच्चे यौन दृष्टि से शुद्ध होते हैं, कोई खास चीज़ नहीं मिली, चाहे आप मुझसे यह मनवा लें, कि शिशु की चेष्टाओं को यौन या कामुक न माना जाता तो अच्छा रहता। कारण कि तीसरे वर्ष से तो बच्चे में यौन जीवन शुरू हो जाने के बारे में कोई सदेह ही नहीं है। इस समय जननेन्द्रियों में उत्तेजन के चिह्न दिखाई देने लगते हैं। शायद शिशु-हस्तमैथुन का अर्थात् जननेन्द्रियों से परितुष्टि पाने का एक सभवत. अनिवार्य समय है। अब यौन जीवन के मानसिक और सामाजिक पहलुओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती : आलम्बन का चुनाव, विशेष व्यक्तियों से अनुराग, और एक या दूसरे लिंग वाले में प्रीति तथा ईर्ष्या, मनोविश्लेषण के समय से पहले भी निष्पक्ष प्रेक्षकों ने स्वतत्र रूप से कार्य करते हुए निश्चायक रूप से सिद्ध कर दी थी। हर कोई प्रेक्षक, जो अपनी आंखों का प्रयोग करे, उनकी पुष्टि कर सकता है। आप कहेंगे कि हमने अनुराग जल्दी पैदा हो जाने में कभी सदेह नहीं किया। हमने तो सिर्फ इस बात पर सदेह किया कि यह अनुराग 'यौन' प्रकार का है। तीन और आठ वर्षों के बीच की आयु वाले बालक निश्चित रूप से अनुराग के यौन तत्त्व को छिपाना सीख जाते हैं, पर फिर भी, यदि आप ध्यान से देखें तो आपको इस अनुराग के 'ऐन्द्रिक' प्रकार का होने की काफी गवाही मिल जाएगी, और यदि तब भी कोई बात आपके ध्यान में आने से रह जाएगी तो उसकी पूर्ति विश्लेषण की जाच-पड़ताल से बहुत अच्छी तरह हो जाएगी। जीवन के इस काल में यौन उद्देश्य उसी समय पैदा होने वाले यौन कुतूहल से, जिसका कुछ वर्णन मैंने किया है, बहुत नज़दीकी सम्बन्ध रखते हैं। इनमें से कुछ उद्देश्यों का विकृत स्वरूप बालक के अप्रौढ शरीर का स्वाभाविक परिणाम है, जिसे अभी सम्भोग के उद्देश्य या लक्ष्य का पता नहीं चला है।

छठे या आठवें वर्ष से आगे यौन परिवर्धन में स्थिरता या ह्रास दिखाई देता है—बहुत ऊंचे सांस्कृतिक स्तर वाले बालकों में इसे गुप्तता-काल कहना उचित होगा, पर यह गुप्तता-काल नहीं भी आ सकता है, और यह भी आवश्यक नहीं कि सारे क्षेत्र में यौन-चेष्टाओं और यौन-दिलचस्पियों में व्याघात हो। तब गुप्तता-

मे पहले ही मौजूद है यद्यपि मैं उसे बीज-पत्रो मे नहीं देख सकता ? यही बात हम तब कहते हैं जब शिशु की मुसकर चेष्टाओ को यौन बताते हैं। प्रत्येक अग-सुख को यौन या कामुक कहा जा सकता है या नहीं, अथवा यौन सुख के अलावा कोई और भी ऐसा सुख है या नहीं, जो इस नाम से न पुकारा जा सकता हो ?—इस प्रश्न का विवेचन मैं यहां नहीं कर सकता। अग-सुख और इसके लिए आवश्यक दशाओ के बारे में मैं बहुत कम जानता हू और मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं है कि विश्लेषण के पीछे की ओर चलने के कारण मैं अन्त मे ऐसे कारको पर पहुचता हू जिनका इस समय सुनिश्चित वर्गीकरण सम्भव नहीं।

एक बात और। अब तक आपको अपनी इस स्थापना के लिए कि बच्चे यौन दृष्टि से शुद्ध होते हैं, कोई खास चीज नहीं मिली, चाहे आप मुझसे यह मनवा लें, कि शिशु की चेष्टाओ को यौन या कामुक न माना जाता तो अच्छा रहता। कारण कि तीसरे वर्ष से तो बच्चे मे यौन जीवन शुरू हो जाने के बारे में कोई सदेह ही नहीं है। इस समय जननेन्द्रियो मे उत्तेजन के चिह्न दिखाई देने लगते हैं। शायद शिशु-हस्तमैथुन का अर्थात् जननेन्द्रियों से परितुष्टि पाने का एक सभवतः अनिवार्य समय है। अब यौन जीवन के मानसिक और सामाजिक पहलुओ की उपेक्षा नहीं की जा सकती : आलम्बन का चुनाव, विशेष व्यक्तियो से अनुराग, और एक या दूसरे लिंग वाले से प्रीति तथा ईर्ष्या, मनोविश्लेषण के समय से पहले भी निष्पक्ष प्रेक्षकों ने स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए निश्चायक रूप से सिद्ध कर दी थीं। हर कोई प्रेक्षक, जो अपनी आखो का प्रयोग करे, उनकी पुष्टि कर सकता है। आप कहेंगे कि हमने अनुराग जल्दी पैदा हो जाने मे कभी सदेह नहीं किया। हमने तो सिर्फ इस बात पर सदेह किया कि यह अनुराग 'यौन' प्रकार का है। तीन और आठ वर्षों के बीच की आयु वाले बालक निश्चित रूप से अनुराग के यौन तत्त्व को छिपाना सीख जाते हैं; पर फिर भी, यदि आप ध्यान से देखें तो आपको इस अनुराग के 'ऐन्द्रिक' प्रकार का होने की काफी गवाही मिल जाएगी, और यदि तब भी कोई बात आपके ध्यान मे आने से रह जाएगी तो उसकी पूर्ति विश्लेषण की जांच-पड़ताल से बहुत अच्छी तरह हो जाएगी। जीवन के इस काल में यौन उद्देश्य उसी समय पैदा होने वाले यौन कुतूहल से, जिसका कुछ वर्णन मैंने किया है, बहुत नजदीकी सम्बन्ध रखते हैं। इनमे से कुछ उद्देश्यों का विकृत स्वरूप बालक के अप्रौढ़ शरीर का स्वाभाविक परिणाम है, जिसे अभी सम्भोग के उद्देश्य या लक्ष्य का पता नहीं चला है।

छठे या आठवें वर्ष से आगे यौन परिवर्धन मे स्थिरता या ह्रास दिखाई देता है—बहुत ऊचे सांस्कृतिक स्तर वाले बालकों में इसे गुप्तता-काल कहना उचित होगा, पर यह गुप्तता-काल नहीं भी आ सकता है, और यह भी आवश्यक नहीं कि सारे क्षेत्र मे यौन-चेष्टाओ और यौन-दिनचर्याओं में व्याघात हो। तब गुप्तता-

काल से पहले होने वाले अधिकतर मानसिक अनुभव और उत्तेजन [illegible] व्यवधान या स्मृति-नाश से, जिसपर पहले विचार किया जा चुका है, [illegible] हो जाते हैं, जो हमारे आरम्भिक बचपन को हमसे छिपा लेता है, और हमारे लिए अपरिचित बना देता है। प्रत्येक मनोविश्लेषण का कार्य है कि वह जीवन के इस भूले हुए काल को स्मृति में लाए। यह कल्पना बलात् होती है कि इस काल के यौन जीवन के आरम्भिक अंश ही इस भूलने के प्रेरक कारण होते हैं, अर्थात् यह विस्मरण दमन का परिणाम होता है। तीसरे वर्ष से बालकों के यौन जीवन में वयस्कों के यौन जीवन से बहुत समानता दिखाई देती है। इसमें वयस्कों के यौन जीवन से, जैसाकि हम पहले ही जानते हैं, यह भिन्नता होती है कि इसमें जननेन्द्रियों की प्रधानता वाले स्थायी संगठन का अभाव होता है; विकृत प्रकार के अनिवार्य रूप होते हैं और सारे आवेग में तीव्रता भी बहुत कमी होती है। पर यौन परिवर्धन की, या जिसे हम आगे राग-परिवर्धन या लिबिडो-परिवर्धन कहेंगे, उसकी वे कलाएं, जो सिद्धान्ततः सबसे अधिक दिलचस्पी की हैं, इस काल से पहले होती हैं। यह परिवर्धन इतनी तेज गति से होता है कि शायद सिर्फ प्रत्यक्ष प्रेक्षण से इसके जल्दी-जल्दी बदलते हुए रूपों का निर्धारण करने में कभी सफलता नहीं हो सकती। स्नायु-रोगों की मनोविश्लेषण द्वारा जांच से इतनी दूर पीछे तक जाना और राग-परिवर्धन की और भी पहले वाली कलाओं को खोजना सम्भव हुआ है। निश्चय ही ये कलाएं सैद्धान्तिक निर्मिति मात्र हैं, पर मनोविश्लेषण के अभ्यास से [illegible]

[illegible]

क्रूरता में परिवर्तित हो जाती है। निष्क्रिय उद्देश्य वाले आवेगों का सम्बन्ध गुदा के कामजनक क्षेत्र से होता है, जो इस समय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। दर्शनेच्छा और कुतूहल के आवेग बड़े प्रबल और सक्रिय होते हैं। जननेन्द्रिय यौन जीवन में वास्तव में इतना ही हिस्सा लेती है कि वह पेशाब विसर्जित करती है। इस काल में घटक-निसर्ग-वृत्तियों को आलम्बनों की कमी नहीं होती, पर आवश्यक नहीं कि ये सब आलम्बन एक आलम्बन में शामिल हों। पीडकतोपीय-गुदीय संगठन जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता की कला से ठीक पहले वाली अवस्था होती है। बारीकी से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसका कितना अंश बाद के अन्तिम ढांचे में, *जैसे का तैसा कायम रहता है और किन मार्गों से ये घटक-निसर्ग-वृत्तियां* नये जननेन्द्रिय संगठन के हित-साधन के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। राग-परिवर्धन की पीडकतोपीय-गुदीय कला के पीछे हमें परिवर्धन की उसमें भी आदिम अवस्था की झांकी मिलती है, जिसमें कामजनक मुख्य क्षेत्र का कार्य मुख्य होता है। आप यह अनुमान कर सकते हैं कि (सिर्फ मुख के लिए) चूसने का यौन व्यापार इस अवस्था से ही सम्बन्ध रखता है, और आप उन प्राचीन मिस्रवासियों की समझ की प्रशंसा करेंगे जिन्होंने होरस देवता को भी मुख में उंगली डाले हुए चित्रित किया है। अब्राहम ने हाल में ही अपना गवेषण कार्य प्रकाशित किया है, जिसमें यह दिखाया गया है कि परिवर्धन की इस आदिम मुखीय अर्थात् मुख सम्बन्धी कला के अवशेष बाद के वर्षों के यौन जीवन में भी बचे रहते हैं।

मैं अच्छी तरह कल्पना कर सकता हूं कि यौन संगठन के बारे में यह जानकारी आपको ज्ञानवर्धक के बजाय कष्टदायक लगी होगी। शायद मैं फिर बहुत विस्तार में चला गया। पर ज़रा धीरज रखिए। जो कुछ अभी बताया गया है, वह बाद में अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस समय आप यह बात ध्यान में रखिए कि यौन जीवन—जिसे हम राग-कार्य[1] या लिबिडो-कार्य कहते हैं—अपने अन्तिम रूप में ही पहली बार नहीं पैदा होता, और न यह अपने सबसे पहले वाले रूपों के मार्गों पर फैल जाता है, बल्कि उत्तरोत्तर कलाओं की एक श्रेणी में से गुज़रता है जो एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इसमें उसी तरह बहुत-से परिवर्तन होते हैं जैसे कीड़े (कैटरपिलर) से तितली बनने में। इस परिवर्धन का मोड़-बिन्दु है सब यौन घटक-निसर्ग-वृत्तियों का जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता के अधीन हो जाना, और इसके साथ-साथ, यौन प्रवृत्ति या कामुकता को प्रजनन-कार्य के हित-साधन में नियुक्त कर लेना। कहा जा सकता है कि इससे पहले यौन-जीवन असम[2] या स्वच्छन्द होता है—अकेले घटक-आवेगों की स्वतन्त्र चेष्टाएं अलग-अलग अंग-सुख (शरीर के किसी अंग के सुख) पाने का यत्न करती

१. Libido function २ Disparate

हैं। इस अराजकता को प्रायः जननेन्द्रिय 'संगठनों' की कोशिशों द्वारा सुधारा जाता है। इन संगठनों में पहले मुख्य कला पीडकतोषीय-गुदीय कला है और उससे पहले मुख-चर्वी कला है जो शायद सबसे आदिम है। इसके अलावा, और अनेक प्रक्रम, जिनके बारे में अभी विशेष जानकारी नहीं है, संगठन की एक अवस्था से उससे ऊपर वाली अगली अवस्था में संक्रमण कराते हैं। राग या लिबिडो के परिवर्तन की इतनी सारी अवस्थाओं की यह लम्बी यात्रा स्नायु-रोगों को समझने में किस तरह सहायक है, यह हम आगे चलकर देखेंगे।

आज हम इस परिवर्धन के दूसरे पहलू, अर्थात् यौन घटक-आवेगों का आलम्बन से सम्बन्ध, पर कुछ विचार करेंगे या यों कहिए कि हम इस परिवर्धन की सरसरी झांकी देखेंगे जिससे हम बाद में मिलने वाले इसके परिणाम पर अधिक अच्छी तरह विचार कर सकें। यौन निसर्ग-वृत्ति के कुछ घटक-आवेगों का बिलकुल शुरू से कोई आलम्बन होता है और वे इसे कसकर पकड़े रहते हैं। ये आवेग हैं आधिपत्य (पीडकतोष), देखना (दर्शनेच्छा) और कुतूहल। दूसरे आवेगों का, जो शरीर के खास कामजनक क्षेत्रों से अधिक साफ तौर से सम्बन्धित होते हैं, शुरू में सिर्फ तब तक एक आलम्बन होता है जब तक वे अ-यौन कार्यों पर निर्भर रहते हैं और जब वे इनसे अलग हो जाते हैं तब वे उसे छोड़ देते हैं। इस प्रकार, यौन निसर्ग-वृत्ति के मुखीय घटक का पहला आलम्बन माता का स्तन है, जो शिशु की पोषण की जरूरत पूरी करता है। 'चूसने के लिए चूसने' के कार्य में काम-घटक, जो पोषण के लिए चूसते हुए भी परितुष्ट होता था, स्वतंत्र हो जाता है, बाहरी जगत में रहने वाले आलम्बन को छोड़ देता है, और इसके स्थान पर शिशु के अपने शरीर के एक हिस्से को अपना आलम्बन बना लेता है। मुखीय आवेग आत्मकामुक हो जाता है, जैसे कि गुदीय और दूसरे कामजनक आवेग शुरू से होते हैं। आगे के परिवर्धन को अधिक से अधिक संक्षेप में रखा जाए तो उसके दो लक्ष्य होते हैं: पहला, आत्मकामुकता को छोड़ना, शिशु के अपने शरीर में प्राप्त आलम्बन को फिर छोड़कर बाहरी आलम्बन ग्रहण करना; और दूसरा, पृथक् आवेगों के बहुत-से आलम्बनों को इकट्ठा मिला देना और उनके स्थान पर सिर्फ एक आलम्बन स्थापित करना। स्वभावतः यह बात तभी हो सकती है यदि वह अकेला आलम्बन अपने-आपमें पूरा हो, और उसका भी आश्रय के शरीर की तरह शरीर हो। ऐसा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि आत्मकामुक आवेग-उत्तेजनों के कुछ हिस्से को बेकार मानकर छोड़ दिया जाए।

आलम्बन जिन प्रक्रमों से प्राप्त किया जाता है, वे कुछ उलझनदार हैं और

मुख-आवेग के प्रथम आलम्बन से, जिसे बालक ने इसमें निर्भरता का सम्ब
होने के कारण अपनाया था, प्रायः अभिन्न सिद्ध होता है; अर्थात् यह माता हो
है, यद्यपि माता का स्तन नहीं। माता को हम पहला प्रेम-आलम्बन कहते हैं
'प्रेम' हम तब कहते हैं जब यौन आवेगों के मानसिक पहलू पर बल देते हैं, औ
आवेगों के आधारभूत शारीरिक या 'ऐन्द्रिक' पहलू की आवश्यकताओं को छ
देते हैं, या ज़रा देर के लिए भूल जाना चाहते हैं। जिस समय माता प्रेम-आलम
बन जाती है, लगभग उसी समय बालक में दमन की मानसिक प्रक्रिया शुरू
चुकी होती है और उसके यौन उद्देश्यों के कुछ हिस्से का ज्ञान उससे छीन लि
जाता है। प्रेम-आलम्बन के लिए इस प्रकार माता को चुनने के साथ वे सब ब
जुड़ी हुई हैं जो ईडिपस ग्रन्थि या मातृप्रणय-ग्रन्थि[1] के नाम से पुकारी ज
हैं, जिनका स्नायु-रोगों की मनोविश्लेषणीय व्याख्या में इतना अधिक महत्त्व
गया है और शायद मनोविश्लेषण का विरोध पैदा करने में भी जिनका इत
ही महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है।

एक छोटी-सी घटना है जो इस युद्ध के दिनों में हुई थी। मनोविश्लेषण
एक कट्टर अनुयायी पोलैंड के मोर्चे पर डाक्टर के रूप में काम कर रहा था। उ
दूसरे सहयोगियों का यह देखकर उसकी ओर ध्यान खिंचा कि कई बार
किसी-किसी रोगी पर अप्रत्याशित प्रभाव डाल देता था। पूछने पर उसने माना
मैं मनोविश्लेषण की विधियों का प्रयोग करता हूं; और वह अपने सहयोगियों
अपना ज्ञान देने को तैयार हो गया। इस प्रकार, उसके दल के चिकि
अधिकारी, उसके सहयोगी और अफ़सर, हर सायंकाल मनोविश्लेषण के रह
को समझने के लिए इकट्ठे होने लगे। कुछ समय तक सब ठीक चलता रहा,
जब उसने अपने श्रोताओं को ईडिपस ग्रन्थि का परिचय दिया, तब एक
अफ़सर खड़ा हो गया, और उसने कहा कि 'मैं इन सब बातों को नहीं मान
और बहादुर लोगों को, जो परिवारों के पिता हैं और अपने देश की खातिर
रहे हैं, ऐसी बातों पर व्याख्यान देना नीच कार्य है,' और उसने व्याख्यान ज
रहने पर रोक लगा दी। इस प्रकार उनका अन्त हो गया, विश्लेषक को
के दूसरे हिस्से पर भेज दिया गया। पर मेरी राय में, यदि जर्मन सेना की वि
विज्ञान की ऐसी दलबन्दी पर निर्भर है तो उसका भविष्य अच्छा नहीं और
किसी दलबन्दी से जर्मन विज्ञान समृद्ध नहीं होगा।

अब आप यह जानने के लिए अधीर होंगे कि इस भयानक ईडिपस ग्रन्थि
क्या-क्या बात आती है। राजा ईडिपस की ग्रीक पुराणों में जो कथा आती
उससे आप परिचित होंगे—ईडिपस के विषय में यह भविष्यवाणी की गई थ

1. Oedipus complex

वह अपने पिता को मारेगा और अपनी माता से विवाह करेगा। उसने इन भविष्यवाणियों को झूठा सिद्ध करने की भरसक कोशिश की, और जब उसे यह पता चला कि उसने अज्ञान में ये दोनों अपराध कर लिए हैं, तब दण्ड के रूप में उसने अपने-आपको अन्धा कर लिया। इसीलिए इसे ईडिपस ग्रन्थि कहा जाता है। मैं समझता हूं कि सोफोक्लीज़ ने इस कहानी से जो दुःखान्त नाटक बनाया है, उसका गहरा प्रभाव आपने स्वयं अनुभव किया होगा। इस यूनानी कवि की रचना में ईडिपस के कार्य का, जो बहुत पहले किया जा चुका था, क्रमशः उद्घाटन किया गया है, और पूछताछ के प्रसंग को बड़ी कुशलता से लम्बा करके और उसे लगातार नये साक्ष्य से पुष्ट करके धीरे-धीरे सामने रखा गया है, इस प्रकार, यह कुछ-कुछ मनोविश्लेषण के तरीके जैसा है। संवाद में, भ्रम में पड़ी हुई माता-पत्नी जोकास्टा इस पूछताछ को जारी रखने का विरोध करती है। वह कहती है कि स्वप्नों में बहुत-से लोगों ने अपनी माताओं से सम्भोग किया है, पर स्वप्नों का कोई महत्त्व नहीं है। हमारे लिए स्वप्नों का बहुत महत्त्व है, विशेष रूप से प्रारूपिक स्वप्नों का, जो बहुत-से लोगों को आते हैं। हमें कुछ भी सन्देह नहीं कि जोकास्टा जिस स्वप्न की बात कहती है, उसका पौराणिक आख्यान की भयंकर कहानी से गहरा सम्बन्ध है।

यह आश्चर्य की बात है कि सोफोक्लीज़ के दुःखान्त नाटक से उसके श्रोताओं में रोषपूर्ण विरोध नहीं पैदा होता। उनमें यह प्रतिक्रिया पैदा होना अधिक उचित होता, जोकि उस मन्दबुद्धि सैनिक डाक्टर में पैदा हुई थी, क्योंकि मूलतः यह अनैतिक नाटक है। यह सामाजिक नियम के प्रति मनुष्य की जिम्मेदारी को दूर कर देता है, और यह दिखलाता है कि दैवी बलों के विधान से यह अपराध होता है, और मनुष्य की नैतिक निसर्ग-वृत्ति, जो इस अपराध से उसकी रक्षा करती, शक्तिहीन हो जाती है। यह मानना आसान है कि पौराणिक आख्यान की कथा में भाग्य और देवताओं को दोष देने का आशय मौजूद रहा होगा; बुद्धिवादी यूरीपिडीज़ की रचना में, जो दैवी शक्तियों का विरोधी था, यह चीज़ सम्भवतः ऐसा दोषारोपण बन जाती, पर धर्मप्राण सोफोक्लीज़ के साथ ऐसे आशय का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। उसकी धार्मिक भावना देवताओं की इच्छा के पालन को सबसे ऊंची नैतिकता बताती है, यहां तक कि जब वे अपराध का विधान करें, तब भी, और इस तरह वह इस दोष का भागी नहीं बनाया जा सकता। मैं यह नहीं समझता कि उस नाटक का यह सन्देश भी उसकी एक अच्छाई है, पर इससे उसके प्रभाव में कमी भी नहीं होती। इससे श्रोता उदासीन बना रहता है। वह इसपर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, बल्कि स्वयं पौराणिक कथा के गूढ़ अर्थ और अनुसार इस तरह प्रतिक्रिया करता है, मानो आत्मविश्लेषण करके उसने अपने भीतर ईडिपस ग्रन्थि का

लिया है, और यह मान लिया है कि देवताओं की इच्छा और भविष्य-

वाणी मेरे ही अचेतन का गरिमा से ढका हुआ रूप है ; मानो उसे यह याद आ गया है कि उसमे अपने पिता को खतम कर देने और उसकी जगह अपनी माता से विवाह करने की इच्छा थी, और उसे इस विचार से घृणा करनी चाहिए। कवि के शब्दों का उसे यह अर्थ प्रतीत होता है, 'आप व्यर्थ ही अपने को दोषी होने से इन्कार करते हैं, आप व्यर्थ ही यह बताते हैं कि आपने इन बुराइयों से बचने की कितनी कोशिश की ; इसलिए आप अपराधी हैं, क्योंकि आप उन्हें दूर नही कर सके, वे अब भी अचेतन रूप मे आपके भीतर मौजूद हैं।' और इसमे मनोवैज्ञानिक सत्य है। यद्यपि मनुष्य ने अपनी दूषित इच्छाओं का दमन करके उन्हें अपने अचेतन में भेज दिया है और तब वह खुशी से अपने मन में कहता है कि अब मैं उनके लिए उत्तरदायी नहीं, तो भी उसे इस रूप में अपनी जिम्मेदारी महसूस करनी पड़ती है कि उसके हृदय मे एक ऐसी अपराध-भावना है जिसकी उसे कोई बुनियाद नही दिखाई देती।

इस बात मे कोई सन्देह नहीं हो सकता कि स्नायु-रोगियो को प्राय. तंग करने वाली अपराध-भावना के सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोतो में से एक ईडिपस ग्रन्थि है। इसके अतिरिक्त एक और बात है मैंने १९१३ में टोटेम उड टेबू (Totem und Tabu) शीर्षक एक अध्ययन प्रकाशित किया था, जिसमें धर्म और नैतिकता के प्राचीनतर रूपो का परिचय था। उसमे मैंने यह आशंका प्रकट की थी कि शायद सारी मनुष्य जाति की अपराध-भावना, जो सारे धर्म और नैतिकता का मूल स्रोत है, इतिहास के आरम्भ मे ईडिपस ग्रन्थि के द्वारा ही प्राप्त की गई होगी। मैं इस विषय में आपको बहुत कुछ बताना चाहता हू, पर अच्छा यह होगा कि न बताऊं। इस विषय को एक बार शुरू करके छोड़ देना कठिन है, और अब हमें फिर व्यष्टि मनोविज्ञान पर लौट आना चाहिए।

तो गुप्तता-काल से पहले वाले आलम्बन-चुनाव के काल में बालकों के सीधे प्रेक्षण से ईडिपस ग्रन्थि के बारे में हमें क्या पता चलता है ? आसानी से दीख जाता है कि वह, जहां शिशु पुरुष अपनी सारी की सारी माता को अपने लिए ही चाहता है, अपने पिता को इसमें बाधक देखता है, जब पिता को उसका आलिंगन करते देखता है, तब बेचैन हो जाता है और जब पिता बाहर चला जाता है या अनुपस्थित होता है, तब वह अपना सन्तोष जाहिर करता है। वह अपनी भावनाएं सीधे तौर से शब्दों मे प्राय प्रकट करता है, अपनी माता को वचन देता है कि मैं तेरे साथ विवाह करूंगा ; ईडिपस के कृत्यों की तुलना मे यह बात कुछ बड़ी नही प्रतीत होगी, पर तथ्य की दृष्टि मे यह काफी है, दोनों का सार एक ही है। बहुत बार प्रेक्षण मे यह देखकर पहेली-सी लगने लगती है कि इस काल मे वही बालक किसी समय पिता के लिए बड़ा अनुराग प्रदर्शित करेगा ; पर भावना की ऐसी विषम, या ठीक-ठीक कहा जाए तो उभयक[1] एव

1. Ambivalent

जाती है। अहंकारमूलक दिलचस्पियों को लगने वाले आघात से नया बल पाकर यह इन नये बच्चों के प्रति अरुचि की भावना और फिर उनसे छुटकारा पाने की नि.संकोच इच्छा पैदा करती है। ये घृणा की भावनाएं साधारणतया जनकीय ग्रन्थि[1] से सम्बन्धित घृणा-भावनाओं की अपेक्षा अधिक खुलेआम प्रकट की जाती हैं। यदि यह इच्छा पूरी हो जाए और कुछ समय बाद परिवार में अनचाही वृद्धि मृत्यु के कारण हट जाए, तो बाद के विश्लेषण से पता चलेगा कि बालक के लिए इस मृत्यु का भी कितना अर्थ था, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि इसकी याद उसे बनी रहे। दूसरे शिशु के पैदा हो जाने के कारण पहले बालक को मजबूरन दूसरे स्थान पर हटना पड़ता है, और अब पहली बार वह माता से प्राय पूरी तरह अलग हो जाता है। इसलिए इस तरह अपने अलग कर दिए जाने को माफ कर देना उसके लिए बड़ा कठिन है। उसमें वैसी ही भावनाएं पैदा हो जाती हैं जिन्हें वयस्कों में हम 'गहरी कटुता की भावना' कहते हैं, और प्राय ये अस्थायी वैमनस्य का आधार बन जाती हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि यौन कुतूहल और इसके बाद की सब बातों का प्राय. इन अनुभवों से सम्बन्ध होता है। जब ये नये भाई और बहन बड़े होते हैं तब उनके प्रति बालक के रुख में बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं। लड़का अपनी निष्ठाहीन माता के स्थान पर अपनी बहन को प्रेम-आलम्बन बना सकता है। जहां एक छोटी बहन को आकृष्ट करने वाले कई भाई होते हैं, वहां बालकपन में ही विरोधपूर्ण प्रतिस्पर्धा पैदा हो जाती है, जो बाद के जीवन में बड़े महत्त्व की सिद्ध होती है। छोटी लड़की अपने से बड़े भाई को पिता का स्थानापन्न बना लेती है, क्योंकि पिता अब उसमें बचपन के जैसा प्यार नहीं करता, या वह किसी छोटी बहन को उस शिशु का स्थानापन्न बना लेती है जो वह अपने पिता से पाना चाहती थी, पर न पा सकी।

यह और इसी तरह की अन्य बहुत-सी बातें बालकों के सीधे प्रेक्षणों से और बचपन की स्पष्ट स्मृतियों पर विचार करने से बिना विश्लेषण के दिखाई देती हैं। आप इससे, और बातों के अलावा, यह अनुमान भी कर सकते हैं कि भाइयों और बहनों के क्रम में बालक की जो स्थिति है, वह उसके बाद के जीवन के लिए बहुत अधिक मर्मपूर्ण है, जिसपर प्रत्येक जीवन-चरित्र पर विचार करना चाहिए, पर इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आसानी से प्राप्त होनेवाली इन ज्ञानवर्धक बातों को सुनकर आप निषिद्ध सम्भोग[2] का निषेध होने के कारणों के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को याद करके मुस्करा पड़ेंगे। इसके लिए क्या-क्या उपाय नहीं सोचे गए? हमें बताया जाता है कि एक परिवार में विपरीत लिंग के सदस्यों से यौन आकर्षण इसलिए हट जाता है कि वे बिलकुल बचपन से इकट्ठे रहते हैं, या अन्तरनिमग्नन

---

१. Parental complex २. Incest

के विरुद्ध जैविकीय प्रवृत्ति जैसी प्रवृत्ति के कारण मन में निषिद्ध सम्भोग का भय
होता है। इस तरह सोचते हुए यह बिलकुल भुला दिया जाता है कि यदि निषि[द्ध]
सम्भोग के प्रलोभन के विरुद्ध कोई विश्वसनीय प्राकृतिक रुकावटें होतीं तो कानून
और रूढ़ि में ऐसे प्रबल निषेधों की आवश्यकता न रहती। सचाई बिलकुल इसके
विपरीत है। मनुष्य जाति में आलम्बन का पहला चुनाव सदा निषिद्ध सम्भोग वाला
ही होता है। पुरुषों के लिए वह माता और बहन होती हैं, और इस चले आने वाली
दानवीय प्रवृत्ति को कार्यरूप में परिणत होने से रोकने के लिए बहुत कठोर निषेधों
की आवश्यकता होती है। आज जो जंगली और आदिम जातियां मौजूद हैं,
उनमें निषिद्ध सम्भोग विषयक निषेध हमारे यहां से बहुत अधिक कठोर हैं।
थियोडोर रीक ने हाल में ही एक बहुत उत्तम पुस्तक में यह बताया है कि तरुणा-
वस्था या प्रौढ़ता पर जंगली लोगों में होने वाले कर्मकाण्ड का, जो द्वितीय जन्म को
निरूपित करता है, अर्थ है माता के प्रति बालक की निषिद्ध सम्भोगात्मक आसक्ति
को शिथिल कर देना और पिता के साथ उसका फिर मेल-मिलाप करा देना।

पौराणिक साहित्य से पता चलता है कि जिस निषिद्ध सम्भोग से मनु[ष्य]
इतनी घृणा प्रदर्शित करते हैं, उसकी उन्होंने अपने देवताओं को बिना हि[चक]
छूट दे रखी है, और प्राचीन इतिहास से आपको पता चलेगा कि बहन के स[ाथ]
निषिद्ध सम्भोगात्मक विवाह राजाओं (मिस्र के फारो, और पेरू के इनका)
लिए धार्मिक कर्तव्य बताया गया था। इसलिए यह एक तरह का विशेषाधि[कार]
था जो आम लोगों को नहीं दिया गया था।

ईडिपस का एक अपराध था माता के साथ निषिद्ध सम्भोग और दूस[रा]
पिता की हत्या। प्रसंगत, टोटेमवाद, जो मनुष्य जाति की पहली सामाजिक-धार्मिक
संस्था है, उन्हें सबसे बड़ा अपराध मानता है। अब बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण को
छोड़कर वयस्क स्नायु-रोगियों की मनोविश्लेषण-संबंधी जांच की ओर चलें। यह जान[ना]
विश्लेषण से ईडिपस ग्रन्थि के बारे में और क्या जानकारी मिलती है? [illegible]
जाता है कि ग्रन्थि ठीक उसी रूप में प्रकट होती है जिस रूप में वह पौराणिक कथ[ा]
में बताई गई है। यह पता चलता है कि इन स्नायु-रोगियों में से प्रत्येक व्यक्ति [illegible]
तो स्वयं ईडिपस था, और या ग्रन्थि से उत्पन्न प्रतिक्रिया में 'हैमलेट' बन गया था [illegible]
जो रूप ही बात है। सचाई यह है कि विश्लेषण का [illegible]
सामने आता है, वह [illegible]
जब पिता से घृणा और उसके मर जाने की इच्छा [illegible]
माता के प्रति अनुराग प्रकट हो जाता है, जिसका उद्देश्य [illegible]
होता है। क्या [illegible]
आसक्ति की उम्र को [illegible] है? इस [illegible]
-- [illegible]

कठिन नहीं। जब कभी कोई व्यक्ति भूतकाल का वर्णन करता है, चाहे वह इतिहास-कार्य ही हो, तब हमें उन सब बातों को भी देखना पड़ता है, जिन्हें वह ऐसा आशय न रखते हुए भी, वर्तमान और बीच के कालों से भूतकाल में डाल देता है, और इस तरह उसे मिथ्या बना देता है। स्नायु-रोगी के मामले में यह भी संदिग्ध है कि यह प्रतिवर्तन[1] सर्वथा बिना आशय के होता है। आगे चलकर हम देखेंगे कि इसके लिए भी प्रेरक कारण होते हैं, और हमें 'प्रतीपगामी[2] कल्पना-निर्माण' के सारे विषय की खोज करनी चाहिए, जो सुदूर भूतकाल तक जाता है। हमें यह भी शीघ्र ही पता चल जाता है कि पिता के विरुद्ध घृणा बाद के कालों में पैदा हुए कई प्रेरक कारणों से और जीवन के अन्य सम्बन्धों से पुष्ट हुई है, और माता के प्रति यौन इच्छाएं ऐसे रूपों में ढल गई हैं जो अब तक बच्चे के लिए अपरिचित होते। पर यदि हम सारी ईडिपस ग्रंथि की व्याख्या 'प्रतिगामी कल्पना-निर्माण' से और जीवन के बाद के काल में पैदा होने वाले प्रेरकों से करने की कोशिश करेंगे, तो वह निष्फल होगी। शैशवकाल का नाभिक[3], और इसमें जो कुछ वृद्धि हुई हो, वह जैसे के तैसे बने रहते हैं, जिसकी पुष्टि बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण से होती है।

अब हमारे लिए वह चिकित्सा-सम्बन्धी तथ्य सबसे अधिक व्यावहारिक महत्त्व का हो जाता है जो विश्लेषण द्वारा सिद्ध ईडिपस ग्रंथि के रूप के पीछे से हमारे सामने आता है। हमें पता चलता है कि प्रौढ़ता के समय जब यौन निसर्ग-वृत्ति सबसे पहले अपनी आवश्यकताएं पूरी ताकत से पेश करती है, तब पुरानी परिचित निषिद्ध सम्भोगात्मक वस्तु राग या लिबिडो से ढके हुए रूप में पुनः ग्रहण की जाती है, मानो शैशव काल का आलम्बन-चुनाव खेल में किया गया एक विनोदात्मक यत्न था, पर इसने प्रौढ़ता के आलम्बन-चुनाव के लिए दिशा निश्चित कर दी। इस समय ईडिपस ग्रंथि की दिशा में या इसके विरोध में भावना का बड़ा तीव्र प्रवाह सक्रिय हो जाता है, पर क्योंकि उन भावनाओं की मानसिक पूर्वावस्थाएं असह्य हो गई हैं, इसलिए वे भावनाएं अधिकांशतः चेतन के बाहर ही रहती हैं। प्रौढ़ता या तरुणावस्था के समय से मनुष्य को अपने-आपको स्वतन्त्र करने के भारी काम में लगाना पड़ता है, और इस आसक्ति को छोड़ देने के बाद ही उसका बालकपन खत्म हो सकता है, और इस प्रकार वह सामाजिक समुदाय का सदस्य बन सकता है। पुत्र के लिए यह कार्य है कि वह अपनी रागात्मक अभिलाषाओं को अपनी माता से हटा ले, जिससे वह उसका उपयोग यथार्थ रूप में एक बाहरी प्रेम-आलम्बन की खोज में कर सके; और दूसरे, यदि वह अपने पिता का विरोधी रहा है, तो उसके साथ मेल कर ले, या यदि शैशवकाल के विद्रोह की प्रतिक्रिया के रूप में वह उसके अधीन हो गया है, या उसका साधन-मात्र बन गया, तो उसके आधिपत्य से अपने को मुक्त कर ले। ये कार्य प्रत्येक पुरुष के लिए हैं, पर यह बात ध्यान देने

१. Retroversion २. Retrogressive ३. Nucleus

में त्यागे जा चुके हैं, पर जो रात मे अब भी अपनी मौजूदगी सिद्ध कर देते हैं, और एक अर्थ मे, कार्य करने में समर्थ हैं। पर क्योंकि इस तरह विकृत निषिद्ध सम्भोगात्मक हत्या वाले स्वप्न सब लोगो को आते हैं, और सिर्फ स्नायु-रोगियो को नही आते, इसलिए हम यह अनुमान कर सकते हैं कि जो लोग आज प्रकृत हैं, वे ईडिपस ग्रन्थि की विकृतियो और आलम्बन-आच्छादनो में से गुजर चुके हैं, और यह ही प्रकृत परिवर्धन का रास्ता है। इतनी ही बात है कि जो चीज हमे प्रकृत लोगों के स्वप्न-विश्लेषणो मे भी प्रकट होती दिखाई देती है, वह स्नायु-रोगियो मे बड़े अतिरंजित रूप मे होती है, और यह भी एक कारण है जिससे हमने स्नायविक लक्षणो पर विचार करने से पहले स्वप्नो का अध्ययन करना उचित समझा था।

सन करने लगती हैं, जिससे वे श्रोणि[1] के सिरे की त्वचा के लगभग नीचे आ जाती हैं। कुछ नरों में यह देखा जाता है कि अंगों की इस जोड़ी में से एक श्रोणि-विवर में रह गई है, या इसने इंग्वाइनल कैनाल (वक्षण नाली) में, जिसमें से इन दोनों को गुजरकर आना था, अपना स्थायी स्थान बना लिया है, अथवा यह होता है कि नाली जो प्रकृत रूप से वीर्य-ग्रन्थियों के इसमें से गुजर जाने के बाद बन्द हो जानी चाहिए, बन्द नहीं हुई है। जब छात्रावस्था में बी० ब्रुक की देख-रेख में वैज्ञानिक गवेषणा का पहला काम कर रहा था, तब मैं एक छोटी मछली की, जो अभी बड़े प्राय या अति प्राचीन रूप में थी, मेरु-रज्जु (स्पाइनल कौर्ड) में पृष्ठीय स्नायु-मूलों (डौर्सल नर्व-रूट्स) के उद्गम पर कार्य कर रहा था। मैंने देखा कि इन मूलों के स्नायु-तन्तु भूरे द्रव्य (ग्रे मैटर) के पश्च सींग (पोस्टीरियर हार्न) पैदा होते थे—यह अवस्था अब दूसरे पृष्ठवंशियों (वर्टेब्रेट्स) में नहीं पाई जाती, पर कुछ ही समय बाद मैंने देखा कि वैसी ही स्नायु-कोशिकाएं (नर्व-सेल्स) पश्च मूलों की तथाकथित स्पाइनल गैंगलियोन (मेरु-प्रगंड) की सारी लम्बाई पर भूरे द्रव्य से बाहर भी मौजूद थीं, जिससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि इन गैंगलियोन की कोशिकाएं स्नायु-मूलों के साथ-साथ मेरु-रज्जु (स्पाइनल कौर्ड) से बाहर चली गई हैं। विकासात्मक परिवर्धन (एवोल्यूशनरी डेवलपमेंट) से भी यह बात मालूम होती है, पर इस छोटी-सी मछली में सारे रास्ते पर वे कोशिकाएं मौजूद थीं, जो रास्ते में रुद्ध[2] हो गई थीं। बारीकी से विचार करने पर आपको तुरन्त पता चल जाएगा कि इन तुलनाओं में कहां-कहां कमजोरियां हैं। इसलिए मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि हमारी राय में यह हो सकता है कि प्रत्येक पृथक् यौन-आवेग के एकाकी अंश परिवर्धन की किसी प्रारम्भिक अवस्था में रह हों, जबकि उसी समय इसके दूसरे अंश अपने अन्तिम उद्देश्य पर पहुंच गए हों। इससे आपको पता चलेगा कि ऐसे प्रत्येक आवेग को हम जीवन के आरम्भ से निरन्तर बहती हुई धारा मानते हैं, और हमने इसके प्रवाह को कृत्रिम रूप से, पृथक्, क्रमिक तथा अग्रगामी सचलनों में कुछ सीमा तक विभाजित कर दिया है। आपकी यह धारणा सही है कि इन मान्यताओं का और स्पष्टीकरण होना चाहिए, पर अधिक स्पष्टीकरण की कोशिश से हम अपने विषय से बहुत बाहर चले जाएंगे, इस समय हम प्रारम्भिक अवस्था में घटक-आवेग में होने वाले इस रोध या रुकावट को (आवेग की) बद्धता कहेंगे।

क्रमिक अवस्थाओं में होने वाले परिवर्धन में इस तरह का जो दूसरा खतरा है, उसे हम प्रतिगमन कहते हैं। ऐसा भी होता है कि जो अंश आगे बढ़ चुके हैं, वे पीछे की ओर लौटकर इन पहले वाली अवस्थाओं में आ जाते हैं। आवेग को

१. Pelvic २. Arrested

समझ लें, और इन दोनों प्रक्रमों के संबंध के बारे में आपके मन में स्पष्ट धारणाएं बनाने में मैं आपकी सहायता करूंगा। आपको याद होगा कि दमन वह प्रक्रम है जिसके द्वारा चेतन होने में समर्थ (अर्थात् पूर्वचेतन संस्थान में रहने वाला) मानसिक कार्य अचेतन बना दिया जाता है, और अचेतन संस्थान में धकेल दिया जाता है, और तब भी दमन कहलाता है जब अचेतन मानसिक कार्य को साथ वाले पूर्व चेतन संस्थान में बिलकुल नहीं घुसने दिया जाता, बल्कि सेंसरशिप द्वारा देहली पर से पीछे लौटा दिया जाता है। इसलिए 'दमन' के अवधारण का यौन प्रवृत्ति या कामुकता से कोई सम्बन्ध-सूत्र नहीं है। कृपा करके इस बात को सावधानी से गांठ बांध लीजिए। यह शुद्ध रूप से एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रम को सूचित करता है, और इसे स्थान-वृत्तीय प्रक्रम[1] कहना और भी अधिक ठीक होगा, जिसका अर्थ यह है कि यह उन अवकाशीय सम्बन्धों से वास्ता रखता है जिनको हम मन के भीतर मानते हैं और यदि सिद्धान्त-निर्माण में इन स्थूल सादृश्य-कल्पनाओं को छोड़ दिया जाए तो हम यह कहेंगे कि दमन शब्द का सम्बन्ध पृथक् मनोधात्वीय[2] संस्थानों में से सिर्फ मानसिक उपकरणों की संरचना से सम्बन्ध रखता है।

ऊपर प्रस्तुत की गई तुलनाओं से पता चला कि 'प्रतिगमन' शब्द का प्रयोग अब तक उसके सामान्य अर्थ में नहीं किया जा रहा था, बल्कि एक संकुचित अर्थ में किया जा रहा था। अगर आप इसका व्यापक अर्थ—अर्थात् साधारणतया परिवर्धन की ऊंची अवस्था से नीची अवस्था में लौट आना—लें, तब दमन भी प्रतिगमन के अन्तर्गत आ जाता है, क्योंकि यह भी कहा जा सकता है किसी मानसिक कार्य का, परिवर्धन की पहले वाली और निचली मंजिल पर प्रतिवर्तन, अर्थात् लौट आना, भी दमन है। फर्क सिर्फ इतना है कि दमन में इस प्रतिगमन की दिशा का हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि हम इसे गतिकीय अर्थ में उस समय दमन भी कहते हैं, जब कोई मानसिक प्रक्रम निचली अचेतन अवस्था से चलने से पहले रोक दिया जाता है। इस प्रकार दमन एक स्थानवृत्तीय गतिकीय अवधारण है जबकि प्रतिगमन शुद्ध रूप से वर्णनात्मक अवधारण है। पर अब तक जिस चीज को हमने 'प्रतिगमन' कहा है और बद्धता के साथ जिसके सम्बन्ध पर विचार किया है वह परिवर्धन में अपने पहले वाले पड़ावों पर राग या लिबिडो की वापसी को ही सूचित करता था, अर्थात् ऐसी चीज को सूचित करता था जो सारतः दमन से बिलकुल भिन्न और उससे बिलकुल स्वतन्त्र है। राग के प्रतिगमन को हम शुद्ध रूप से मनोधात्वीय प्रक्रम भी नहीं कह सकते; न हम यह जानते हैं कि मानसिक उपकरण में इसका स्थान कहां निर्दिष्ट करें, क्योंकि यद्यपि यह

---

१ · Topographical process २. Psychical

मानसिक जीवन पर बड़ा प्रबल प्रभाव डाल सकता है, तो भी इसमें मस्तिष्क-
संबंधी[1] कारक सबसे अधिक प्रमुख होता है ।

इस तरह का विचार कुछ सूखा-सा हो जाता है । इसलिए उसकी अधिक
सजीव धारणा प्राप्त करने के लिए उसके कुछ रोग-सम्बन्धी दृष्टान्त लिए जाएं ।
आप जानते हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के समूह में मुख्यतः हिस्टीरिया और
मनोग्रस्तता-रोग आते हैं । हिस्टीरिया में राग का प्राथमिक निषिद्ध सम्भोगात्मक
यौन आलम्बनों पर प्रतिगमन तो निस्सदेह सदा मिलता है, पर यौन संगठन की
इससे पहली वाली मंजिल पर इसका प्रतिगमन नहीं होता, या बहुत ही थोड़ा होता
है । परिणामतः हिस्टीरिया के तंत्र में मुख्य कार्य दमन द्वारा किया जाता है । अब
तक इस स्नायु-रोग की जो निश्चित जानकारी मिल चुकी है, उसके आधार पर
स्थिति इस तरह बयान की जा सकती है . जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता में घटक
आवेगों का सायुज्यन[2] (अर्थात् मिलकर बिलकुल एक बन जाना) हो चुका है;
पर इस ऐक्य के परिणामों का पूर्व-चेतन संस्थान की, जिसके साथ चेतना जुड़ी हुई
है, दिशा से प्रतिरोध होता है । इसलिए जननेन्द्रिय संगठन अचेतन के लिए तो ठीक
बैठता है, पर पूर्वचेतन के लिए नहीं और पूर्वचेतन द्वारा इस अस्वीकृति के
परिणामस्वरूप ऐसा चित्र बनता है जो जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता से पहले
वाली स्थिति से कुछ मिलता-जुलता है; पर असल में, यह बिलकुल भिन्न होता
है । राग के दो प्रकार के प्रतिगमनों में से, जो प्रतिगमन यौन संगठन की पहले
वाली कला पर होता है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण होता है । क्योंकि हिस्टीरिया में
यह प्रतिगमन नहीं होता, और अभी हमारा स्नायु-रोगों का सारा अवधारण मुख्यतः
हिस्टीरिया के अध्ययन के द्वारा ही चल रहा है, जो समय की दृष्टि से पहले
हुआ था; इसलिए राग-प्रतिगमन का महत्त्व दमन के महत्त्व से बहुत पीछे समझा
जा सका । मुझे निश्चय है कि जब हम हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग के
अलावा अन्य स्व-रतिक स्नायु-रोगों पर भी विचार करेंगे, तब हमारे दृष्टिकोण
[illegible] परिवर्तित हो जाएंगे ।

लेना चाहता हूं।' इसके साथ जब आप यह विचार भी करते हैं कि उसी समय प्राथमिक आलम्बनों पर प्रतिगमन भी शुरू हो गया है, जिससे यह आवेग, सबसे निकट वाले और सबसे अधिक प्रिय व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है, तब आप यह कल्पना कर सकते हैं कि इन मनोग्रस्त विचारों से रोगी में कितना भय पैदा होता होगा और साथ ही वे उसके चेतन के ज्ञान को कितने अकारण और अव्याख्येय मालूम होते होंगे। पर इस स्नायु-रोग के क्रिया-विन्यास में दमन का भी हिस्सा होता है और बहुत बड़ा हिस्सा होता है, पर उसे इस तरह के सरसरी तौर से किए जा रहे सर्वे में पेश नहीं किया जा सकता। बिना दमन के राग का प्रतिगमन कभी भी स्नायु-रोग पैदा नहीं करेगा—वह तो काम-विकृति में परिणत हो जाएगा। इससे आप समझ जाएंगे कि दमन वह प्रक्रम है, जो स्नायु-रोगों का विशेष रूप से विवेक कराता है, और जिससे उन्हें सबसे अधिक अच्छी तरह पहचाना जा सकता है। परन्तु शायद मुझे किसी समय आपको यह बताने का मौका मिले कि काम-विकृतियों के क्षेत्र के बारे में हम क्या जानते हैं, और तब आप देखेंगे कि वहां भी गाड़ी उतनी आसानी से नहीं चलती जितनी कि हम अपनी निर्मितियों में कल्पित कर लेना चाहते हैं।

मुझे आशा है कि राग की बद्धता और प्रतिगमन के इस विवरण को आप तब आसानी से स्वीकार कर लेंगे जब आप यह समझेंगे कि यह स्नायु-रोगों की कारणता के अध्ययन की तैयारी है। अब तक मैंने आपको इस विषय में सिर्फ एक बात बताई है, और वह यह कि लोग स्नायु-रोग से तब पीड़ित होते हैं जब राग की सन्तुष्टि की [illegible]

[illegible]

कुंठा प्रत्येक व्यक्ति को स्नायु-रोगी बना देती है। इसका इतना ही अर्थ है कि स्नायु-रोग के जितने उदाहरणों की जांच-पड़ताल की गई उन सबमें कुंठा का कारक प्रदर्शित किया जा सका। इसलिए इस कथन का विलोम सही नहीं है। आप अवश्य समझ गए होंगे कि इस कथन का आशय स्नायु-रोगों की कारणता का सारा रहस्य प्रकट करना नहीं है, बल्कि इसमें एक महत्त्वपूर्ण और सदा वर्तमान दशा पर ही बल दिया गया है।

अब इस बात पर आगे विचार करते हुए हम यह नहीं समझ पाते कि पहले कुंठा या विफलता के स्वरूप से शुरू करें या इससे प्रभावित व्यक्ति के अपने गुण से। ऐसा बहुत कम होता है कि यह कुंठा सर्वांगव्यापी और सर्वथा पूर्ण हो। सम्भवतः रोगजनक प्रभाव पैदा करने के लिए वह सन्तुष्टि के उसी रूप पर चोट [illegible] जिसे वह [illegible]

बिना रोगी हुए, सहन किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि हम ऐसे लोगों को जानते हैं जो बिना किसी हानि के ऐसा निग्रह कर सकते हैं। वे उन सदा खुश नहीं होते। वे असन्तुष्ट लालसा का कष्ट पाते हैं, पर वे बीमार नहीं पड़ते। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि यौनावेग-उत्तेजनों में मानो निराली 'सुघटता'[1] अर्थात् लचीलापन होता है। उनमें से एक के स्थान पर दूसरा आ सकता है। यदि उनमें से एक की सन्तुष्टि वास्तव में नहीं हो सकती, तो दूसरे की सन्तुष्टि से पूर्ण भरपाई हो जाती है। वे तरल से भरी हुई संचार-नालियों के जाल की तरह एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, और यह अवस्था जननेन्द्रिय की प्रधानता के अधीन रहने के बावजूद होती है—यह अवस्था ऐसी है जिसे आसानी से प्रतिबिंब के रूप में नहीं लाया जा सकता। इसके अलावा, यौन प्रवृत्ति की घटक विसर्ग-वृत्तियों में और उस संयुक्त यौन आवेग में, जिसकी वे घटक होती हैं, अपना आलम्बन बदलने की बड़ी क्षमता होती है; इसे देकर दूसरा लेने, अर्थात् अधिक सुलभ आलम्बन ग्रहण करने की बड़ी क्षमता होती है। विस्थापन की यह क्षमता और स्थानापन्न को स्वीकार करने की तत्परता से कुंठा के प्रभाव का एक प्रबल प्रतिप्रभाव अवश्य पैदा हो जाएगा। अभाव से पैदा होने वाली बीमारी से बचाने वाले इन प्रक्रमों में से एक प्रक्रम संस्कृति के परिवर्धन में एक विशेष महत्त्व प्राप्त कर चुका है—वह है यौन आवेग द्वारा घटक-आवेग के परितुष्टि-रूप या प्रजनन के प्रासंगिक परितुष्टि-रूप, पहले गृहीत उद्देश्य का त्याग और एक नये उद्देश्य का ग्रहण—यह नया उद्देश्य प्रजनन-विज्ञान की दृष्टि से, पहले से सम्बन्धित तो है, पर इसे अब यौन या कामुक नहीं माना जा सकता, बल्कि इसके स्वरूप को सामाजिक कहना चाहिए। इस प्रक्रम को हम उदात्तीकरण[2] कहते हैं, और ऐसा कहकर हम साधारण प्रचलित मानदण्ड का ही समर्थन करते हैं, जो सामाजिक उद्देश्य को यौन (अन्ततः स्वार्थपूर्ण) उद्देश्यों से ऊंचा मानता है। प्रसंगतः, उदात्तीकरण यौन-आवेगों और दूसरे अ-यौन या निष्कर्ष-आवेगों के बीच मौजूद सम्बन्ध-सूत्रों की सिर्फ एक विशेष अवस्था है। इसपर हम एक और सिलसिले में विचार करेंगे।

अब आपके मन में यह धारणा होगी कि हमने सन्तुष्टि के अभाव को सहन करने के इतने सारे साधन मानकर इसे एक बहुत छोटी वस्तु बना दिया है; पर नहीं, यह बात नहीं है। इसमें इसकी रोगजनक शक्ति कायम रहती है। इसको संभालने के साधन सदा काफी नहीं होते। औसत मनुष्य अपने ऊपर असन्तुष्ट

बहुत-से लोगों में उदात्तीकरण की क्षमता बहुत ही कम होती है। इन परिसीमाओं में से सबसे महत्त्वपूर्ण परिसीमा स्पष्टतः वह है जो रोग की चलिष्णुता के बारे में है, क्योंकि वह मनुष्य को ऐसे उद्देश्यों और आलम्बनों की प्राप्ति तक सीमित कर देती है जिनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। ज़रा सोचिए कि राग में अधूरे परिवर्तन के पीछे, संगठन की पहले वाली कलाओं और आलम्बन-चुनाव के प्रक्रमों पर बहुत विस्तृत (और कभी-कभी संख्या में भी बहुत अधिक) रागबद्धताएं रह जाती हैं जो अधिकतर वस्तु-जगत् में सन्तुष्ट नहीं हो सकतीं। तब आप रागबद्धता को रोग पैदा करने में कुंठा के साथ मिलकर कार्य करने वाला दूसरा शक्तिशाली कारक स्वीकार करेंगे। हम इसे विन्यास की दृष्टि से संक्षिप्त करके, यह कह सकते हैं कि स्नायु-रोगों की कारणता में रागबद्धता भीतरी पूर्वप्रवृत्ति[1] वाले कारक को निरूपित करती है और कुंठा या विफलता बाहरी आकस्मिक[2] कारक को।

मैं यहां आपको यह चेतावनी दे दूं कि इस बिलकुल अनावश्यक विवाद में आप कोई पक्ष न लें। वैज्ञानिक मामलों में आम तौर से लोग सत्य का एक पक्ष पकड़ लेते हैं, और इसीको सम्पूर्ण सत्य मानने लगते हैं और फिर सत्य के अंश के पक्ष में रहकर शेष सारे अंश के बारे में, जो स्वयं उतना ही सत्य होता है, विवाद किया करते हैं। इस तरह एक से अधिक टोली मनोविश्लेषण आन्दोलन से पहले ही अलग हो चुकी है। उनमें से एक सिर्फ़ अहंकारमूलक आवेगों को मानती है, और यौन आवेगों का निषेध करती है। दूसरी टोली जीवन में हुए वास्तविक कार्यों का ही प्रभाव मानती है, और मनुष्य के पिछले जीवन का प्रभाव नहीं मानती। इसी तरह औरों के अलग-अलग विचार हैं। अब यहां एक और विवादग्रस्त प्रश्न है : स्नायु-रोग बहिर्जात[2] रोग हैं या अन्तर्जात[3]?—एक विशेष प्रकार की शारीरिक रचना का अनिवार्य परिणाम हैं या व्यक्ति के जीवन की कुछ हानिकारक (उपघातीय) घटनाओं से पैदा होते हैं? खास तौर से, क्या ये रोग की बद्धता और शेष यौन रचना के कारण पैदा होते हैं या कुंठा अथवा विफलता के दबाव से होते हैं? यह विवाद मुझे वैसा ही मालूम होता है जैसा यह विवाद कि बालक पिता के जनन-कार्य से पैदा होता है, या माता के गर्भधारण से। आप यही उत्तर देंगे, जोकि उचित है, कि दोनों अवस्थाएं समान रूप से आवश्यक हैं। स्नायु-रोगों की आधारभूत अवस्थाएं भी, यदि बिलकुल वैसी नहीं तो भी उनसे मिलती-जुलती हैं। कारण-कार्य की दृष्टि से स्नायविक रोग के रोगी एक श्रेणी में आते हैं, जिनमें दो कारक—यौन रचना—और अनुभूत घटनाएं; अथवा यदि आप इन तरह कहना चाहें, तो रोग की बद्धता और कुंठा इस प्रकार निरूपित होती हैं कि जहां उनमें से एक की प्रधानता होती है, वहां दूसरा कारक उसी अनुपात में कम प्रमुख होता है। इस

१. Predisposition २. Exogenous ३. Endogenous

रहा है। उसमें दुर्धर्ष यौन उत्तेजना एक विशेष रूप वाले जूते से ढके हुए पैर द्वारा ही पैदा की जा सकती है; वह अपने छठे वर्ष की एक घटना याद कर सकता है, जिसने उसमें राग की यह बद्धता पैदा कर दी है। वह अपनी शिक्षिका के पास स्टूल पर बैठा था और शिक्षिका उसे अंग्रेजी पढ़ा रही थी। वह सीधी-सादी, बड़ी उमर की झुर्रियों वाली बूढ़ी धाय थी, जिसकी आंखें पानीदार नीली थीं, और नाक चपटी थी; उस दिन उसके पांव में चोट लग गई थी और इसलिए उसने इसे मखमली स्लीपर में गद्दे पर रखा था और टांग बहुत अच्छी तरह ढक रखी थी। बाद में तरुणावस्था में प्रकृत यौन व्यापार के, डरते-डरते किए गए, एक प्रयत्न के बाद उस शिक्षिका के पांव जैसा एक पतला उभरी नसों वाला पांव उसका एकमात्र यौन आलम्बन हो गया, और यदि किसी व्यक्ति की अन्य बातें भी उसे अंग्रेज शिक्षिका जैसी स्त्री का स्मरण करा देतीं तो वह पुरुष बेबस होकर आकर्षित हो जाता था। पर राग की इस बद्धता ने उसे स्नायविक न बनाकर विकृत बना दिया। हम कहेंगे कि वह पाद जड़ासक्त बन गया। इस प्रकार आप देखते हैं कि स्नायु-रोग के कारणों में राग की अत्यधिक और साथ ही समय से पूर्व, बद्धता एक अपरिहार्य कारण है। तो भी, इसके प्रभाव का विस्तार स्नायु-रोगों की सीमा से बहुत आगे निकल जाता है। यह अवस्था अपने-आपमें उसी तरह निश्चायक अवस्था नहीं है, जैसेकि पहले बताई हुई कुंठा या विफलता।

इस प्रकार स्नायु-रोगों के कारणों की समस्या और अधिक उलझ गई मालूम होती है। तथ्य तो यह है कि मनोविश्लेषण सम्बन्धी जांच-पड़ताल हमारा एक और कारक से परिचय कराती है, जिसपर हमने अपनी कारण-शृंखला में विचार नहीं किया है, और जो ऐसे व्यक्ति में बड़ी अच्छी तरह देखा जा सकता है, जिसका पहले का अच्छा स्वास्थ्य स्नायु-रोग हो जाने के कारण एकाएक बिगड़ गया हो। इन लोगों में परस्पर विरोधी इच्छाओं या मानसिक द्वन्द्व के चिह्न सदा पाए जाते हैं। व्यक्तित्व का एक पक्ष कुछ इच्छाएं रखता है, और दूसरा भाग उनके खिलाफ संघर्ष करता है और उन्हें मार्ग बताता है। इस तरह के द्वन्द्व के बिना कोई स्नायु-रोग नहीं होता। हो सकता है कि आपको इसमें कोई विशेष बात दिखाई न दे। आप जानते हैं कि हम सबके मानसिक जीवन में सदा द्वन्द्व होते रहते हैं, जिनका फैसला करना पड़ता है। इसलिए ऐसा प्रतीत होगा कि कुछ विशेष दशाएं होने पर ही यह द्वन्द्व रोगजनक हो सकता है। हम पूछ सकते हैं कि वे दशाएं कौन-सी हैं, इन रोगजनक द्वन्द्वों में मन में कौन-कौन-से बल हिस्सा लेते हैं या द्वन्द्वों का अन्य कारणों से क्या सम्बन्ध होता है।

मैं इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूं जो सन्तोषजनक होंगे, पर शायद संक्षिप्त रूपरेखामात्र होंगे। यह द्वन्द्व कुंठा या विफलता से पैदा होता है, क्योंकि असन्तुष्ट राग को दूसरे रास्ते और दूसरे आलम्बन तलाश करने की प्रेरणा मिलती है। तो

श्रेणी या शृङ्खला के एक सिरे पर वे चरम रोगी हैं जिनके बारे में यह कहा जा
है ये लोग अपने विषम राग-परिवर्धन के कारण अवश्य रोगी होते, चाहे कुछ
भी होता, चाहे वे कुछ भी अनुभव करते, चाहे जीवन उनके लिए कितना ही
सुखद रहा होता। दूसरे सिरे पर वे रोगी हैं, जिनके लिए बिल्कुल विपरीत राय
बनेगी—यदि जीवन में उनपर अमुक-अमुक बोझ न पड़े होते तो वे अवश्य रो
से बच गए होते। इस श्रेणी या शृङ्खला के मध्यवर्ती रोगों में रोगानुकूलता-कार
(यौन रचना) जीवन की हानिकर घटनाओं से कभी कम और कभी अधिक मा
में मिला रहता है। यदि उन्हें जीवन में अमुक-अमुक अनुभवों में से न गुजरना पड़
तो उनकी यौन रचना से उन्हें स्नायु-रोग नहीं पैदा हुआ होता और यदि राग
रचना दूसरे ढंग से हुई होती तो जीवन के उतार-चढ़ावों का उनपर उपघात
प्रभाव न पड़ा होता। इस शृङ्खला में शायद मैं यह स्वीकार कर सकता हूं
पूर्वप्रवृत्ति वाले कारक का प्रभाव कुछ अधिक होता है, पर यह बात भी इस
बात पर निर्भर है कि स्नायु-रोग की सीमा-रेखा आप कहां खींचते हैं।
... मेरा यह सुझाव है कि इस तरह की श्रेणी को हम 'पूरक श्रेणी' ना ... देना चाहता हूं कि हमें इस

रहा है। उसमें दुर्धर्ष यौन उत्तेजना एक विशेष रूप वाले जूते से ढके हुए पैर द्वारा ही पैदा की जा सकती है; वह अपने छठे वर्ष की एक घटना याद कर सकता है, जिसने उसमें राग की यह बद्धता पैदा कर दी है। वह अपनी शिक्षिका के पास स्टूल पर बैठा था और शिक्षिका उसे अंग्रेजी पढ़ा रही थी। वह सीधी-सादी, बड़ी उमर की झुर्रियों वाली बूढ़ी भाय थी, जिसकी आंखें पानीदार नीली थीं, और नाक चपटी थी; उस दिन उसके पांव में चोट लग गई थी और इसलिए उसने इसे मसमली स्लीपर में गद्दे पर रखा था और टांग बहुत अच्छी तरह ढक रखी थी। बाद में तरुणावस्था में प्रकृत यौन व्यापार के, डरते-डरते किए गए, एक प्रयत्न के बाद उस शिक्षिका के पांव जैसा एक पतला उभरी नसों वाला पांव उसका एकमात्र यौन आलम्बन हो गया, और यदि किसी व्यक्ति की अन्य बातें भी उसे अंग्रेज शिक्षिका जैसी स्त्री का स्मरण करा देती तो वह पुरुष बेबस होकर आकर्षित हो जाता था। पर राग की इस बद्धता ने उसे स्नायविक न बनाकर विकृत बना दिया। हम कहेंगे कि वह पांव अङ्गासक्त बन गया। इस प्रकार आप देखते हैं कि स्नायु-रोग के कारणों में राग की अत्यधिक और साथ ही समय से पूर्व, बद्धता एक अपरिहार्य कारण है। तो भी, इसके प्रभाव का विस्तार स्नायु-रोगों की सीमा से बहुत आगे निकल जाता है। यह अवस्था अपने-आपमें उसी तरह निश्चायक अवस्था नहीं है, जैसेकि पहले बताई हुई कुंठा या विफलता।

इस प्रकार स्नायु-रोगों के कारणों की समस्या और अधिक उलझ गई मालूम होती है। तथ्य तो यह है कि मनोविश्लेषण सम्बन्धी जांच-पड़ताल हमारा एक और कारक से परिचय कराती है, जिसपर हमने अपनी कारण-शृंखला में विचार नहीं किया है, और जो ऐसे व्यक्ति में बड़ी अच्छी तरह देखा जा सकता है, जिसका पहले का अच्छा स्वास्थ्य स्नायु-रोग हो जाने के कारण एकाएक बिगड़ गया हो। इन लोगों में परस्पर विरोधी इच्छाओं या मानसिक द्वन्द्व के चिह्न सदा पाए जाते हैं। व्यक्तित्व का एक पक्ष कुछ इच्छाएं रखता है, और दूसरा भाग उनके खिलाफ संघर्ष करता है और उन्हें मार्ग बताता है। इस तरह के द्वन्द्व के बिना कोई स्नायु-रोग नहीं होता। हो सकता है कि आपको इसमें कोई विशेष बात दिखाई न दे। आप जानते हैं कि हम सबके मानसिक जीवन में सदा द्वन्द्व होते रहते हैं, जिनका फैसला करना पड़ता है। इसलिए ऐसा प्रतीत होगा कि कुछ विशेष दशाएं होने पर ही यह द्वन्द्व रोगजनक हो सकता है। हम पूछ सकते हैं कि वे दशाएं कौन-सी हैं। इन रोगजनक द्वन्द्वों में मन में कौन-कौन-से बल हिस्सा लेते हैं या द्वन्द्वों का अन्य कारणों से क्या सम्बन्ध होता है।

मैं इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूं जो सन्तोषजनक होंगे, पर शायद संक्षिप्त रूपरेखामात्र होंगे। यह द्वन्द्व कुंठा या विफलता से पैदा होता है, क्योंकि असन्तुष्ट राग को दूसरे रास्ते और दूसरे आलम्बन तलाश करने की प्रेरणा मिलती है। तो,

इसका एक अर्थ यह है कि ये दूसरे मार्ग और आलम्बन व्यक्तित्व के एक भाग में नापसन्दगी पैदा करते हैं, जिससे वीटो या प्रतिषेध अर्थात् उसका निषेध, पैदा होता है, जो शुरू में सन्तुष्टि के नये रास्ते को व्यर्थ कर देता है। यहीं से लक्षणों के निर्माण की ओर गति होती है, जिसपर हम बाद में विचार करेंगे। अस्वीकृत रागात्मक लालसाएं चक्करदार मार्गों से अपने आगे बढ़ने का तरीका निकाल लेती हैं, पर उन्हें प्रतिषेध[1] की यह चुनौती चुकानी पड़ती है कि वे अपना रूप कुछ बदल लेती हैं। ये चक्करदार रास्ते लक्षण-निर्माण के रास्ते हैं। लक्षण ही नई और स्थानापन्न सन्तुष्टियां हैं, जिनकी आवश्यकता कुंठा के कारण पैदा हुई है।

मानसिक द्वन्द्व का अर्थ एक और तरह से भी बताया जा सकता है: बाहरी कुंठा या विफलता के रोगजनक बनने के लिए आवश्यक है कि बाद में भीतरी कुंठा या विफलता से उसकी पूर्ति हो। जब ऐसा होता है तब निस्सन्देह बाहरी और भीतरी कुंठाएं भिन्न-भिन्न मार्गों और भिन्न-भिन्न आलम्बनों से सम्बन्धित होती हैं, बाहरी कुंठा सन्तुष्टि के एक अवसर को दूर करती है और भीतरी कुंठा दूसरे अवसर को हटाने की कोशिश करती है, और यह दूसरा अवसर ही द्वन्द्व का अखाड़ा बन जाता है। मैं इस रूप में इसलिए यह बात रख रहा हूं क्योंकि इसमें एक ध्वनितार्थ है। इसमें यह ध्वनि है कि भीतरी बाधा शुरू में मानव-परिवर्तन की आदिम कलाओं में मौजूद वास्तविक बाहरी बाधाओं में से पैदा हुई।

पर वे बल कौन-से हैं जिनमें से रागात्मक लालसाओं का प्रतिषेध पैदा होता है, और जो रोगजनक द्वन्द्व में दूसरा पक्ष है? बहुत मोटे रूप में कहा जाए तो हम कह सकते हैं कि वे यौनेतर निसर्ग-वृत्तियां हैं। उन सबको मिलाकर हम 'अहम् निसर्ग-वृत्तियां'[2] कहते हैं, स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के विश्लेषण से उनकी अ अधिक जांच-पड़ताल के लिए और ज्यादा मौका नहीं मिलता। अधिक से अधि हमें उनकी कुछ जानकारी विश्लेषण का विरोध करने वाले प्रतिरोधों से ही मि है। इसलिए, रोगजनक द्वन्द्व अहम्-निसर्ग-वृत्तियों और यौन निसर्ग-वृत्तियों होता है। रोगियों की एक पूरी की पूरी श्रेणी में ऐसा लगता है, जैसे बहुत-से शुद्ध रूप से यौन आवेगों में भी द्वन्द्व हो सकता है, पर गहराई में देखा जाए तो यह भी वही बात है, क्योंकि द्वन्द्व में लगे हुए दो आवेगों में से एक सदा 'अहम्-संगत' (अहम् से संगत)[3] दिखाई देगा, और दूसरा अहम् से विरोध कराता होगा। इसलिए य भी अहम् का और यौन प्रवृत्तियों का ही द्वन्द्व है।

जब मनोविश्लेषण ने मन में होने वाली किसी घटना को नैसर्गिक यौन प्र त्तियों की अभिव्यक्ति माना है, तब बार-बार रोषपूर्वक उसके विरुद्ध यह आप उठाई गई है कि मानसिक जीवन में नैसर्गिक यौन प्रवृत्तियों के अलावा दूसरी नैस

---

१. Prohibition २. Ego-instincts ३. Ego-syntonic

प्रवृत्तियां और अभिरुचियां भी मौजूद हैं, कि यौन प्रवृत्ति से ही 'सब कुछ' नहीं निकालना चाहिए, इत्यादि। तो, बात यह है कि अपने विरोधियों से कभी भी सहमत हो जाना सचमुच आनन्ददायक होता है। मनोविश्लेषण यह कभी नहीं भूला कि मानसिक जीवन में यौनेतर निसर्ग-वृत्तियां भी हैं। इसका निर्माण ही नैसर्गिक यौन प्रवृत्तियों और नैसर्गिक अहम्-प्रवृत्तियों के स्पष्ट विभेद पर हुआ है, और सारे विरोध के बावजूद, यह इसी बात पर अड़ा रहा है कि स्नायु-रोगों के पैदा होने का कारण अहम् और यौन प्रवृत्तियों का द्वन्द्व है, इस बात पर नहीं कि वे यौन प्रवृत्ति से पैदा होते हैं। रोग में, और सामान्यतया जीवन में, यौन प्रवृत्तियों द्वारा होने वाले कार्य की जांच-पड़ताल करते हुए मनोविश्लेषण का, अहम्-निसर्ग-वृत्तियों के अस्तित्व या महत्त्व से इन्कार करने का कोई भी प्रयोजन नहीं हो सकता। सिर्फ इतनी बात है कि मनोविश्लेषण पर यौन निसर्ग-वृत्तियों पर विचार करने का ही सबसे मुख्य कार्य पड़ा है, क्योंकि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में निसर्ग-वृत्तियों पर ही जांच सबसे अधिक आसानी से पहुंच सकती थी, और क्योंकि उसे उस वस्तु का अध्ययन करना पड़ा जिसे दूसरों ने उपेक्षित कर दिया था।

यह कहना यथार्थ नहीं है कि मनोविश्लेषण ने व्यक्तित्व के यौनेतर पहलू पर बिलकुल विचार नहीं किया। अहम् और यौन प्रवृत्तियों के विभेद से ही हमें यह विशेष स्पष्टता से पता चल गया है कि अहंकार-वृत्तियों में भी एक महत्त्वपूर्ण परिवर्धन होता है, जो न तो राग के परिवर्धन से पूरी तरह स्वतन्त्र होता है, और न उसपर प्रभाव डालने में निष्क्रिय। अहम् के परिवर्धन को हम उतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाए हैं जितनी अच्छी तरह राग के परिवर्धन को, क्योंकि स्नायु-रोगों के अध्ययन से ही अहंकार की संरचना का रहस्य समझ में आने की कुछ आशा हुई है। तो भी फेरेंजी ने अहम् के परिवर्धन की क्रमिक अवस्थाओं को सैद्धान्तिक रूप से पुनः रचना करने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया है, और कम से कम दो बातें ऐसी हैं, जिनपर हमें एक ऐसा दृढ़ आधार मिल जाता है, जिसमें इस परिवर्धन की आगे परीक्षा की जा सकती है। हम यह नहीं समझते कि मनुष्य के रागात्मक स्वहित शुरू से आत्मसंरक्षण[1] संबंधी स्वहितों के विरोधी होते हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि प्रत्येक अवस्था में अहम् यह प्रयत्न करता है कि वह यौन संगठन की तत्सवादी अवस्था से सामंजस्य बनाए रखे, और अपने-आपको उसके अनुकूल बना ले। राग के परिवर्धन में अलग-अलग कलाओं का अनुक्रम सम्भवत: एक नियत मार्ग से चलता है; पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस मार्ग को अहम् की दिशा से प्रभावित किया जा सकता है। यह भी माना जा सकता है कि अहम् और राग के दोनों परिवर्धनों की कलाओं में कुछ सादृश्य और एक

१. Self-preservation

प्रवृत्तियां और अभिरुचियां भी मौजूद हैं, कि यौन प्रवृत्ति से ही 'सब कुछ' नहीं निकालना चाहिए, इत्यादि। तो, बात यह है कि अपने विरोधियों से कभी भी सहमत हो जाना सचमुच आनन्ददायक होता है। मनोविश्लेषण यह कभी नहीं भूला कि मानसिक जीवन में यौनेतर निसर्ग-वृत्तियां भी हैं। इसका निर्माण ही नैसर्गिक यौन प्रवृत्तियों और नैसर्गिक अहम्-प्रवृत्तियों के स्पष्ट विभेद पर हुआ है, और सारे विरोध के बावजूद, यह इसी बात पर अड़ा रहा है कि स्नायु-रोगों के पैदा होने का कारण अहम् और यौन प्रवृत्तियों का द्वन्द्व है, इस बात पर नहीं कि वे यौन प्रवृत्ति से पैदा होते हैं। रोग में, और सामान्यतया जीवन में, यौन प्रवृत्तियों द्वारा होने वाले कार्य की जांच-पड़ताल करते हुए मनोविश्लेषण का, अहम्-निसर्ग-वृत्तियों के अस्तित्व या महत्त्व से इन्कार करने का कोई भी प्रयोजन नहीं हो सकता। सिर्फ इतनी बात है कि मनोविश्लेषण पर यौन निसर्ग-वृत्तियों पर विचार करने का ही सबसे मुख्य कार्य पड़ा है, क्योंकि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में निसर्ग-वृत्तियों पर ही जांच सबसे अधिक आसानी से पहुंच सकती थी, और क्योंकि उसे उस वस्तु का अध्ययन करना पड़ा जिसे दूसरों ने उपेक्षित कर दिया था।

यह कहना यथार्थ नहीं है कि मनोविश्लेषण ने व्यक्तित्व के यौनेतर पहलू पर बिलकुल विचार नहीं किया। अहम् और यौन प्रवृत्तियों के विभेद से ही हमें यह विशेष स्पष्टता से पता चल गया है कि अहंकार-वृत्तियों में भी एक महत्त्वपूर्ण परिवर्धन होता है, जो न तो राग के परिवर्धन से पूरी तरह स्वतंत्र होता है, और न उसपर प्रभाव डालने में निष्क्रिय। अहम् के परिवर्धन को हम उतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाए हैं जितनी अच्छी तरह राग के परिवर्धन को, क्योंकि स्नायु-रोगों के अध्ययन से ही अहंकार की संरचना का रहस्य समझ में आने की कुछ आशा हुई है। तो भी फेरेंज़ी ने अहम् के परिवर्धन की क्रमिक अवस्थाओं को सैद्धान्तिक रूप से पुन: रचना करने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया है, और कम से कम दो बातें ऐसी हैं, जिनपर हमें एक ऐसा दृढ़ आधार मिल जाता है, जिससे इस परिवर्धन की आगे परीक्षा की जा सकती है। हम यह नहीं समझते कि मनुष्य के रागात्मक स्वहित शुरू से आत्मसंरक्षण[१] संबंधी स्वहितों के विरोधी होते हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि प्रत्येक अवस्था में अहम् यह प्रयत्न करता है कि वह यौन संगठन की तत्संवादी अवस्था से सामंजस्य बनाए रखे, और अपने-आपको उसके अनुकूल बना ले। राग के परिवर्धन में अलग-अलग कलाओं का अनुक्रम सम्भवत: एक नियत मार्ग से चलता है, पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस मार्ग को अहम् की दिशा से प्रभावित किया जा सकता है। यह भी माना जा सकता है कि अहम् और राग के दोनों परिवर्धनों की कलाओं में कुछ सादृश्य और एक

१. Self-preservation

निरिपर सवादिता होती है। अब तो यह है कि इस संवादिता
विक्षोभ एक रोगजनक कारक बन सकता है। हमारे लिए यह प्रश्न
पूर्ण है कि जब राग अपना परिवर्धन होते हुए किसी पहले वाले
स्थान, पर प्रबल बद्धता कर चुका है, तब अहम् कैसे व्यवहार करता
है कि अहम् ने बद्धता की मौन-स्वीकृति दे दी हो और तब वह उ
विकृत होगा, या शैशवीय होगा, जो दोनों एक ही बात हैं। पर यह भी
है कि वह राग के इस संयोजन से अपने-आपको उदासीन रखे, जिस
यह होगा कि जहां राग बद्ध होता है, वहां अहम् दमन का कार्य शुरू कर

इस प्रकार, हम इस नतीजे पर पहुचते हैं कि स्नायु-रोगों की कारण
तीसरा कारक द्वन्द्व-वश्यता है, वह अहम् के परिवर्धन से उतना ही जुड़
जितना राग के परिवर्धन से, इस प्रकार स्नायु-रोगो के कारणो के विषय
अन्तर्दृष्टि विस्तृत हो जाती है। सबसे पहले प्रवचन की सबसे साधारण
दशा है। इसके बाद राग की बद्धता है (जो इसे विशेष धाराओं मे

विवरण के समय समझी हो। फिर भी अभी इसकी समाप्ति नहीं हुई।
कुछ और भी बात बतानी है, और जो कुछ हम पहले जानते हैं, उसकी
चीर-फाड़ करनी है।

द्वन्द्व की प्रकृति पर, और उसके साथ-साथ स्नायु-रोग की कारणता पर
के परिवर्धन का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए मैं एक उदाहरण दूगा, जो वि
काल्पनिक होते हुए भी, किसी भी दृष्टि से असम्भाव्य नहीं है। मैं इसे नेट्रा
प्रहसन वाला नाम देता हूं, अर्थात् डाउन स्टेयर्स एंड अप दि ... (निचली मंजिल मे और अटारी पर)। कल्पना कीजिए कि कोई चौकीदार
मकान की निचली मंजिल मे रहता है और मालिक जो धनी और सम्भ्रात
है, ऊपर रहता है। उन दोनो के बच्चे हैं, और हम यह मान लेते हैं कि मालिक
छोटी लड़की को सामाजिक दृष्टि से हीन चौकीदार के बच्चे से खेलने की छु
छूट है। तब बहुत आसानी से ऐसा हो सकता है कि उनके खेल 'शैतानी' के हो ज
हैं, अर्थात् उनका रूप यौन रूप हो जाता है: वे 'पिता और माता' का खेल खेल
हैं, एक-दूसरे को अतरग कार्य करते समय देखते हैं, और एक-दूसरे की जननेन्द्रिय
को उद्दीप्त करते हैं। हो सकता है कि इसमे चौकीदार की लड़की ने मोहिनी डाल
हो, क्योंकि अपनी आयु पाच या छः वर्ष होने पर भी वह यौन विषयों मे अधिक

जानकारी प्राप्त कर चुकी है। उनके बहुत थोडी देर साथ रहने पर भी इन घटनाओ से दोनो बच्चो मे कुछ यौन उत्तेजन पैदा हो जाएगे जो उनका खेल बद हो जाने के बाद कुछ वर्ष तक हस्तमैथुन के रूप मे प्रकट होंगे। यहा तक दोनो मे समानता है, पर अन्तिम परिणाम दोनो मे बहुत भिन्न होगा। चौकीदार की लड़की शायद मासिक धर्म शुरू होने तक हस्तमैथुन करती रहेगी, और फिर बिना दिक्कत के इसे छोड देगी। कुछ वर्ष बाद वह एक प्रेमी खोज लेगी और शायद एक बालक को जन्म देगी, जीवन के आगे बढने का कोई रास्ता ढूढेगी, शायद कोई प्रसिद्ध अभिनेत्री बन जाएगी, और अन्त मे अभिजात कुलीन वर्ग मे आ जाएगी। हो सकता है कि उसकी जीवन-यात्रा इतनी सफल न हो, पर अपरिपक्व अवस्था की यौन चेष्टाओं से उसे कोई हानि नही होगी, वह स्नायु-रोग से मुक्त रहेगी, और अपना जीवन सुख से बिता सकेगी। दूसरी बालिका मे परिणाम बहुत भिन्न होगा। छोटी आयु मे ही उसमें यह भावना पैदा हो जाएगी कि मैंने बुरा काम किया है। कुछ ही समय बाद वह हस्तमैथुन छोड देगी, यद्यपि उसे इसके लिए शायद बडा सघर्ष करना पड़ेगा। पर फिर भी उसमें दबी हुई उदासी की भावना हृदय मे बनी रहेगी। जब बाद में तरुणावस्था आने पर उसे सम्भोग के बारे मे कुछ पता चलेगा, तब वह अजीब डर के साथ इससे दूर भागेगी और अनजान बनी रहना चाहेगी। सम्भवत उसे फिर हस्तमैथुन करने के लिए एक प्रबल आवेग पैदा होगा, जो वह किसी को बताने का साहस नहीं करेगी। जब वह किसी पुरुष की पत्नी बनेगी, तब उसमें स्नायु-रोग पैदा हो जाएगा और उसे विवाह के सुख और जीवन के आनन्द से वचित कर देगा। अगर विश्लेषण द्वारा इस स्नायु-रोग का रहस्य उघाड़ा जा सकेगा, तो यह पता चलेगा कि इस अच्छी तरह पालित-पोषित बुद्धिमती आदर्शप्रिय लड़की ने अपनी इच्छाओं को पूरी तरह दमन कर दिया है, पर उसकी यौन इच्छाए अचेतन रूप से उन थोड़े-से छोटे-छोटे अनुभवों से जुडी हुई हैं, जो उसे बालकपन मे अपनी सहेली के साथ हुए थे।

दोनो के सामान्य अनुभवो के बावजूद इन दोनों की अन्तिम अवस्था म जो भेद पैदा हुए हैं, वे इस कारण पैदा हुए हैं कि एक लड़की में अहम् ने उस परिवर्धन को बनाए रखा जो दूसरी मे नहीं है। चौकीदार की लड़की को बाद की आयु मे भी यौन चेष्टा वैसी ही स्वाभाविक और हानिरहित मालूम हुई, जैसी बचपन मे। मालिक की लड़की 'अच्छे ढग से पाली-पोसी गई', और उसने अपने शिक्षण के मानदड अपना लिए। इस प्रकार, उद्दीपित होकर उसके अहम् ने स्त्री की शुद्धता और वासना के अभाव के आदर्श अपना लिए जो यौन कार्यों से असगत थे। उसके बौद्धिक प्रशिक्षण ने उसके उस नारी-कार्य को उसकी ही दृष्टि मे हीन बना दिया जिसके लिए वह बनाई गई है। उसके अहम् में जो यह ऊंचा नैतिक और बौद्धिक परिवर्तन हुआ, उसने उसमें और उसकी यौन प्रवृत्ति की आव-

निश्चित सवादिता होती है। सच तो यह है कि इस सवादिता में होने वाला विक्षोभ एक रोगजनक कारक बन सकता है। हमारे लिए यह प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है कि जब राग अपना परिवर्धन होते हुए किसी पहले वाले बिन्दु, अर्थात् स्थान, पर प्रबल बद्धता कर चुका है, तब अहम् कैसे व्यवहार करता है। हो सकता है कि अहम् ने बद्धता को यौन-स्वीकृति दे दी हो और तब वह उस सीमा तक विकृत होगा, या शैशवीय होगा, जो दोनो एक ही बात है। पर यह भी हो सकता है कि यह राग के इस सयोजन से अपने-आपको उदासीन रखे, जिसका परिणाम यह होगा कि जहा राग बद्ध होता है, वहां अहम् दमन का कार्य शुरू कर देता है।

इस प्रकार, हम इस नतीजे पर पहुचते हैं कि स्नायु-रोगो की कारणता में जो तीसरा कारक द्वन्द्व-वश्यता है, वह अहम् के परिवर्धन से उतना ही जुड़ा हुआ है, जितना राग के परिवर्धन से; इस प्रकार स्नायु-रोगो के कारणो के विषय में हमारी अन्तर्दृष्टि विस्तृत हो जाती है। सबसे पहले प्रवचन[1] की सबसे साधारण सामान्य दशा है। इसके बाद राग की बद्धता है (जो इसे विशेष धाराओ में जाने को मजबूर करती है), और तीसरी द्वन्द्व-वश्यता—यह द्वन्द्व उस विशेष प्रकार के रागात्मक उत्तेजनो को अस्वीकार करने पर अहम् के परिवर्धन से पैदा होता है। इसलिए यह चीज उतनी अस्पष्ट और जटिल नही है, जितनी शायद आपने मेरे विवरण के समय समझी हो। फिर भी अभी इसकी समाप्ति नही हुई। हमें कुछ और भी बात बतानी है, और जो कुछ हम पहले जानते हैं, उसकी और भी चीर-फाड करनी है।

द्वन्द्व की प्रवृत्ति पर, और उसके साथ-साथ स्नायु-रोग की कारणता पर अहम् के परिवर्धन का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए मैं एक उदाहरण दूगा, जो बिल्कुल काल्पनिक होते हुए भी, किसी भी दृष्टि से असम्भाव्य नही है। मैं इसे नेस्ट्राय के प्रहसन वाला नाम देता हू, अर्थात् ऑन दि ग्राउण्ड फ्लोर ऐंड इन दि सैलर (निचली मज़िल में और अटारी पर)। कल्पना कीजिए कि कोई चौकीदार किसी मकान की निचली मज़िल में रहता है और मालिक जो धनी और सम्भ्रान्त व्यक्ति है, ऊपर रहता है। उन दोनों के बच्चे हैं, और हम यह मान लेते हैं कि मालिक की छोटी लड़की को सामाजिक दृष्टि से हीन चौकीदार के बच्चे से खेलने की छुट्टी है। तब बहुत आसानी से ऐसा हो सकता है कि उनके खेल 'शैतानी' के हो जाते हैं, अर्थात् उनका रूप यौन रूप हो जाता है; वे 'पिता और माता' का खेल खेलते हैं, एक-दूसरे को अंतरग कार्य करते समय देखते हैं, और एक-दूसरे की जननेन्द्रियों को उद्दीप्त करते हैं। हो सकता है कि इसमें चौकीदार की लड़की ने मोहिनी शक्ति का [illegible], क्योंकि अपनी आयु पाच या छः वर्ष होने पर भी वह यौन विषयों में [illegible]

जानकारी प्राप्त कर चुकी है। उनके बहुत थोड़ी देर साथ रहने पर भी इन घटनाओं से दोनों बच्चों में कुछ यौन उत्तेजन पैदा हो जाएगे जो उनका खेल बंद हो जाने के बाद कुछ वर्ष तक हस्तमैथुन के रूप में प्रकट होंगे। यहां तक दोनों में समानता है, पर अन्तिम परिणाम दोनों में बहुत भिन्न होगा। चौकीदार की लड़की शायद मासिक धर्म शुरू होने तक हस्तमैथुन करती रहेगी, और फिर बिना दिक्कत के इसे छोड़ देगी। कुछ वर्ष बाद वह एक प्रेमी खोज लेगी और शायद एक बालक को जन्म देगी, जीवन के आगे बढ़ने का कोई रास्ता ढूंढेगी, शायद कोई प्रसिद्ध अभिनेत्री बन जाएगी, और अन्त में अभिजात कुलीन वर्ग में आ जाएगी। हो सकता है कि उसकी जीवन-यात्रा इतनी सफल न हो, पर अपरिपक्व अवस्था की यौन चेष्टाओं से उसे कोई हानि नहीं होगी, वह स्नायु-रोग से मुक्त रहेगी, और अपना जीवन सुख से बिता सकेगी। दूसरी बालिका में परिणाम बहुत भिन्न होगा। छोटी आयु में ही उसमें यह भावना पैदा हो जाएगी कि मैंने बुरा काम किया है। कुछ ही समय बाद वह हस्तमैथुन छोड़ देगी, यद्यपि उसे इसके लिए शायद बड़ा संघर्ष करना पड़ेगा। पर फिर भी इसमें दबी हुई उदासी की भावना हृदय में बनी रहेगी। जब बाद में तरुणावस्था आने पर उसे सम्भोग के बारे में कुछ पता चलेगा, तब वह अजीब डर के साथ इससे दूर भागेगी और अनजान बनी रहना चाहेगी। सम्भवतः उसे फिर हस्तमैथुन करने के लिए एक प्रबल आवेग पैदा होगा, जो वह किसी को बताने का साहस नहीं करेगी। जब वह किसी पुरुष की पत्नी बनेगी, तब उसमें स्नायु-रोग पैदा हो जाएगा और उसे विवाह के सुख और जीवन के आनन्द से वंचित कर देगा। अगर विश्लेषण द्वारा इस स्नायु-रोग का रहस्य उघाड़ा जा सकेगा, तो यह पता चलेगा कि इस अच्छी तरह पालित-पोषित बुद्धिमती आदर्शप्रिय लड़की ने अपनी इच्छाओं को पूरी तरह दमन कर दिया है, पर उसकी यौन इच्छाएं अचेतन रूप से [illegible]-छोटे अनुभवों से जुड़ी हुई हैं, जो इसे बालकप[illegible] ।

लक्षण-निर्माण के मार्ग

जनसाधारण की दृष्टि मे लक्षण ही रोग का सारभाग है, और उनके लि
इलाज का अर्थ है—लक्षणो का हट जाना ; पर चिकित्सा-विज्ञान मे लक्षणो औ
रोग मे भेद करना बहुत महत्त्वपूर्ण है, और यह बताना भी महत्त्वपूर्ण है कि लक्षण
का हट जाना और रोग का हट जाना एक ही बात नही । परन्तु लक्षणो के ह
जाने के बाद रोग का जो एकमात्र मूर्त अश रह जाता है, वह है नये लक्षणो क
निर्माण करने की क्षमता । इसलिए थोडी देर के लिए हम जनसाधारण का
दृष्टिकोण मान लें और लक्षणो की बुनियाद के ज्ञान को रोग विषयक जानका
का समानार्थक समझ लें ।

लक्षण ऐसे व्यापार या चेष्टाए हैं जो, सारे जीवन की दृष्टि से, हानिकार
या हीनतम रूप मे बेकार हैं । यहां यह ध्यान रखिए कि हम मानसिक (या मने
धातुजनक) लक्षणो और मानसिक रोगो पर विचार कर रहे हैं ; लक्षणो से ग्रस
व्यक्ति बार-बार यह शिकायत करता है कि वे मुझे बुरे लगते हैं या मुझे उन
परेशानी और तकलीफ होती है । उनसे मुख्य हानि यह होती है कि उनमें बहु
सी मानसिक ऊर्जा खर्च होती है, और इसके अलावा, उनसे सघर्ष करने मे
ऊर्जा खर्च होती है । जब लक्षण अधिक फैल जाते हैं तब दोनों प्रयासो मे इत
अधिक ऊर्जा खर्च हो जाती है कि व्यक्ति के पास अपनी कुल मानसिक ऊर्जा
गम्भीर कमी हो जाती है, जो उसे जीवन के सब महत्त्वपूर्ण कार्यों मे असमर्थ
देती है । यह परिणाम मुख्यत. इस बात पर निर्भर है कि इस तरह ऊर्जा
कितनी मात्रा खर्च हुई है । इसलिए आप देखेंगे कि 'बीमारी' सारत एक क्रियात्म
या प्रायोगिक अवधारण है, पर यदि आप इस मामले पर सिद्धान्त की दृष्टि
विचार करें और मात्रा के प्रश्न को छोड दें तो आप आसानी से कह सकते
कि हम सब लोग रोगी अर्थात् स्नायु-रोगी हैं, क्योंकि लक्षण-निर्माण के लिए
अवस्थाएं अपेक्षित हैं वे प्रकृत व्यक्तियों मे भी दिखाई जा सकती हैं ।

इतना ही कह सकते हैं कि सुख मनोरथ में मौजूद उद्दीपन की मात्रा घटाने, हलका करने या हटाने से किसी रूप में सम्बन्धित है, और दुःख में यह उद्दीपन बढ़ जाता है। मनुष्य जो तीव्रतम सुख, अर्थात् सम्भोग-सुख पा सकता है, उसपर विचार करने से इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता। इस प्रकार के सुखात्मक प्रक्रम मानसिक उत्तेजन और ऊर्जा की मात्राओं के वितरण से सम्बन्धित हैं। इसलिए हम इस तरह के विचारों को आर्थिक विचारणा कहते हैं। मालूम होता है कि मनोयन्त्र के कार्यों का वर्णन, सुख-प्राप्ति पर बिना बल दिए, हम एक और तरीके से और अधिक व्यापक रूप से कर सकते हैं। हम कह सकते हैं कि मनोयन्त्र अतिरिक्त उद्दीपनों के ढेरों, अर्थात् ऊर्जा की मात्राओं को, नियन्त्रित और विसर्जित करने का प्रयोजन सिद्ध करता है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि यौन प्रवृत्तियां अपने परिवर्धन के आरम्भ से अन्त तक परितुष्टि के लक्ष्य की ओर चलती हैं। वे सारे समय, बिना किसी परिवर्तन के, यह प्राथमिक कार्य भी करती रहती हैं। पहले दूसरा समूह अर्थात् अहम् वृत्तियां भी यही कार्य करती हैं। पर अपनी मालकिन, आवश्यकता, के आदेश से वे जल्दी ही सुख-सिद्धान्त के स्थान पर उसके किसी रूप-भेद को लाना सीख लेती हैं। उनके लिए दुःख से बचने का काम लगभग उतने ही महत्त्व का होता है जितना सुख पाने का काम। अहम् को पता चल जाता है कि अनिवार्यतः उसे तत्काल परितुष्टि से वंचित रहना होगा; परितुष्टि बाद के लिए मुलतवी करनी होगी; कुछ दुःख सहन करना सीखना होगा; और सुख के कुछ स्रोतों को बिलकुल छोड़ देना होगा। इस प्रकार अभ्यास हो जाने पर अहम् 'तर्कसंगत' हो जाता है। अब वह सुख-सिद्धान्त से नियन्त्रित नहीं रहता, बल्कि यथार्थता-सिद्धान्त पर चलता है। पर वह भी मूलतः सुख खोजता है, यद्यपि यह देर से मिलने वाला और पहले से कम सुख था ऐसा सुख खोजता है, जो इसके तथ्य को समझ लेने के कारण और इसका यथार्थता से सम्बन्ध होने के कारण मिलना निश्चित है। सुख-सिद्धान्त से यथार्थता-सिद्धान्त में संक्रमण अहम् के परिवर्धन में एक महत्त्वपूर्ण प्रगति है। हम पहले ही जानते हैं कि इस अवस्था में यौन वृत्तियां देर से और अनिच्छा से चलती हैं। अब हम यह जानने का यत्न करेंगे कि बाह्य यथार्थता को इतने हलके हाथ से पकड़कर मनुष्य की यौनवृत्ति के सन्तुष्ट होने से उसके लिए क्या-क्या दुष्परिणाम होते हैं, और अन्त में इस सिलसिले में एक बात और। यदि मनुष्य जाति में अहम् का विकास राग के विकास की तरह हुआ है तो आपको यह सुनकर आश्चर्य नहीं होगा कि 'अहम् प्रतिगमन' भी होते हैं और आप यह जानना चाहेंगे कि अहम् के, लौटकर परिवर्धन की पहले वाली अवस्थाओं में पहुंचने का स्नायु-रोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सस्थान के सूचक विशेष प्रक्रमों के अधीन कार्य करते हैं, अर्थात् उनका सघन
और विस्थापन हो सकता है। इस प्रकार ऐसी अवस्थाएं बन जाती हैं जो स्वप्न
निर्माण की अवस्थाओं से बिलकुल मेल खाती हैं, जैसे गुप्त स्वप्न, जो पहले विचार
से अचेतन में बनता है और किसी अचेतन इच्छा-कल्पना की पूर्ति होता है, किस
(पूर्व) चेतन चेष्टा से मिलता है जो इसकी काट-छाट करती है, और अपनी रा
के अनुसार व्यक्त स्वप्न में एक मध्यमार्गी या समझौते वाले रूप का निर्माण हो
देती है। उसी प्रकार उस मनोबिंब को, जिससे राग चेतन में जुड़ा रहता है, (राग
निरूपक)[1] पूर्व चेतन अहम् की शक्ति से फिर सघर्ष करना पड़ता है। अहम्
इसका विरोध प्रति आवेश (एण्टी-कैथेक्सिस) बनकर इसके पीछे आता है, औ
इसे अभिव्यक्ति का ऐसा रूप अपनाने को मजबूर करता है जिससे साथ ही सा
विरोध करनेवाले बल भी अपने-आपको अभिव्यक्त कर सकें। इस प्रकार त
लक्षण अचेतन रागात्मक इच्छा-पूर्ति के अनेक प्रकार से विपर्यस्त व्युत्पन्न के रू
में एक ऐसे चतुराई से चुने गए सदिग्ध अर्थ के रूप में, जिसके दो बिलकुल परस्प
विरोधी अर्थ होते हैं, जन्म लेता है। स्वप्न-निर्माण और लक्षण-निर्माण में सि
इस अन्तिम बात में अतर है, क्योंकि स्वप्न-निर्माण में पूर्व चेतन का प्रयोजन सि
इतना है कि नींद की रक्षा की जाए, और ऐसी कोई बात चेतना में न घुसने
जाए जो इसे बिगाड़े। यह अचेतन इच्छा-आवेग के सामने 'नहीं, इसके विपरीत
का प्रतिषेधक नोटिस लगाने का आग्रह नहीं करता। यह अधिक सहिष्णु
सकता है, क्योंकि सोता हुआ मनुष्य कम खतरनाक स्थिति में रहता है। इच्छ
को वास्तव में पूरी होने से रोकने के लिए नींद की अवस्था ही काफी है।

आप देखते हैं कि द्वन्द्व की स्थिति में राग का यह पलायन बद्धताओं के अस्ति
के कारण सम्भव हो पाता है। इन बद्धताओं पर मौजूद (राग का) प्रतिगा
आवेश दमनों से दूर रहता हुआ आगे बढ़ जाता है, और राग का विसर्जन (डि
चार्ज) या सन्तुष्टि—हो जाती है, जिसमें तब भी समझौते या मध्य मार्ग
अवस्थाएं बनाए रखनी पड़ती हैं। अचेतन और पुरानी बद्धताओं का लम्बा रास
पकड़कर राग अन्त में वास्तविक सन्तुष्टि पाने में सफल हो जाता है, यद्यपि
सन्तुष्टि निश्चित रूप से बड़े सीमित प्रकार की होती है, और इसे इस रू
पहचानना कठिन होता है। इस नतीजे के बारे में दो बातें और कहता हूं। प्रथ
तो आपने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि एक ओर तो राग और अचे
तथा दूसरी ओर, अहम्, चेतना और यथार्थता में कितना नजदीकी सम्बन्ध दिख
देता है, हालांकि शुरू में उनमें कोई ऐसे सम्बन्ध नहीं थे, और दूसरे, यह
रखिए कि मैंने इस विषय में जो कुछ कहा है और मुझे जो कुछ कहना है,

१. Libido-representatives

स्नायविक लक्षणों के बारे में हम यह जानते हैं कि वे उस द्वंद्व का परिणाम हैं जो राग की सन्तुष्टि का नया रूप तलाश करने पर पैदा होता है। दो शक्तियां, जो एक-दूसरे के विरोध में खड़ी हैं, लक्षण में फिर आकर मिल जाती हैं, और लक्षण-निर्माण में निहित समझौते या मध्यमवर्ग द्वारा सामंजस्य कर लेती हैं। इसी कारण लक्षण में इतने प्रतिरोध का सामर्थ्य है। इसे दोनों ओर से सहारा मिलता है। हम यह भी जानते हैं कि द्वंद्व करने वाले दो पहलवानों में एक वह असन्तुष्ट राग है जो यथार्थता से कुंठित हो गया है और जिसे अब सन्तुष्टि के लिए दूसरा मार्ग खोजना पड़ा है। यदि यथार्थता तब भी अड़ी रहे जबकि राग निषिद्ध आलम्बन के स्थान पर दूसरा आलम्बन पकड़ने को तैयार है, तो तब अन्त में राग को प्रतिगमन का मार्ग पकड़ने तथा जिन संगठनों को यह पहले पार कर आया है, उनमें से किसी एक से, या जो आलम्बन इसने पहले छोड़ दिए थे, उनमें से किसी एक से सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। राग को वे बद्धताएं प्रतिप्रागमन के मार्ग पर खींचती हैं जो यह अपने परिवर्धन में इन स्थानों पर अपने पीछे छोड़ आया है।

अब काम-विकृति का रास्ता स्नायु-रोग के रास्ते से बिलकुल अलग हो जाता है। यदि इन प्रतिगमनों पर अहम् कोई प्रतिषेध नहीं लागू करता तो स्नायु-रोग नहीं पैदा होता। राग यथार्थ सन्तुष्टि प्राप्त कर लेता है, यद्यपि वह प्रकृत सन्तुष्टि नहीं होती; पर यदि अहम्, जो न केवल चेतना को, बल्कि कर्म-स्नायु के उद्दीपन[1] द्वारों को भी नियन्त्रित करता है, और इस प्रकार मानसिक आवेगों की वस्तुतः सन्तुष्टि को नियन्त्रित करता है, इन प्रतिगमनों से सहमत नहीं है, तो द्वंद्व शुरू हो जाता है। राग जैसे चारों ओर से घिर जाता है और उसे ऐसा रास्ता ढूंढ़ना है जिससे वह सुख-सिद्धांत की मांग के अनुसार कैथेक्सिस, अर्थात् ऊर्जा के आवेग (या चार्ज) को बाहर कर सके : यह अहम् से बचने और दूर रहने की कोशिश करेगा। परिवर्धन के मार्ग पर, जिसपर अब प्रतिगमन हो रहा है, मौजूद बद्धताएं—जिनसे अहम् ने पहले दमन द्वारा अपने को बचा लिया था, ऐसे पलायन-मार्ग के रूप में दिखाई देती हैं। पीछे की ओर जाते हुए इन दमित स्थानों को पुनः ऊर्जाविष्ट करते हुए राग अहम् और उसके नियमों से अपने-आपको दूर हटा लेता है, पर वह अहम् के प्रभाव से प्राप्त सारे प्रशिक्षण को भी त्याग देता है। यह तब तक विनीत था जब तक सन्तुष्टि नजर आ रही थी; बाहरी और भीतरी कुंठा के दोहरे दबाव में यह अ-नियम्य बन जाता है और पुराने सुखमय दिनों की ओर मुड़कर देखने लगता है। यह इसका परमावश्यक अपरिवर्तनीय गुण है। अब राग अपना ऊर्जावेश या कैथेक्सिस जिन मनोबिंबों पर ले जाता है वे अचेतन मस्थान के होते हैं, और उन

1. Motor innervation
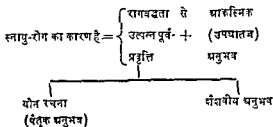
आनुवंशिक यौन रचना में बहुत तरह की पूर्व प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं, और किसीमें कोई घटक-आवेग और किसीमें कोई और घटक-आवेग, अकेला या दूसरों के साथ मिला हुआ, विशेष रूप से प्रबल होता है। यौन रचना और शैशवीय अनुभव मिलकर एक और पूरक श्रेणी बनाते हैं, जो बिलकुल वैसी ही होती है जैसी वयस्क की पूर्व प्रवृत्ति और आकस्मिक अनुभवों से बनने वाली पहली पूरक श्रेणी बताई गई है। प्रत्येक श्रेणी में वैसे ही चरम रोगी मिलते हैं और सम्बन्धित कारकों में वैसी ही कोटियां और सम्बन्ध मिलते हैं। यहां यह विचार करना उचित होगा कि राग-प्रतिगमन के दो प्रकारों में से जो प्रकार अधिक विशिष्ट है, अर्थात् जो प्रकार यौन संगठन की पहले वाली अवस्थाओं पर लौट आता है, वह आनुवंशिक शरीर सम्बन्धी कारक से ही प्रधानतः निर्धारित होता है या नहीं, पर सबसे अच्छा यह होगा कि इस प्रश्न का उत्तर तब तक के लिए टाल दिया जाए जब तक स्नायु-रोगों के अधिक विस्तृत रूपों पर विचार न कर लिया जाए।

अब ज़रा इस तथ्य की ओर ध्यान दीजिए कि : मनोविश्लेषण की जांच से प्रकट होता है कि स्नायु-रोगियों का राग अपने शैशवीय यौन अनुभवों से जुड़ा रहता है। इस जानकारी को देखते हुए ये अनुभव मनुष्य जाति के जीवनों और बीमारियों के लिए बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। विश्लेषण के इलाज वाले अंश के लिए भी इनका उतना ही महत्त्व है, पर एक और दृष्टिकोण से देखा जाए तो आसानी से पता चल जाएगा कि यहां एक गलतफहमी का खतरा है, जो हमें इस भ्रम में डाल सकती है कि हम जीवन को उसी दृष्टिकोण से देखने लगें तो स्नायु-रोगियों की स्थिति से बनता है। यह सोचने पर शैशवीय अनुभवों का महत्त्व घट जाता है कि राग-प्रतिगमन करके उनपर तब लौटता है जब उसे उसकी बाद की स्थितियों से खदेड़ा जाता है। इससे हम बिलकुल विपरीत नतीजे पर पहुंचेंगे, अर्थात् राग-अनुभवों का उस समय कोई महत्त्व नहीं था जब वे हुए, और उन्हें यह महत्त्व बाद में प्रतिगमन द्वारा ही प्राप्त हुआ। आपको याद होगा कि हमने ईडिपस-ग्रन्थि पर विचार करते हुए पहले एक ऐसे ही विकल्प की विवेचना की थी।

सिर्फ हिस्टीरिया-स्नायु-रोग से सम्बन्धित है।

राग को दमनों का घेरा तोड़कर निकलने के लिए जिन बद्धताओं की आवश्यकता है, वे उसे कहां मिलती हैं? वे उसे शैशवीय कामुक चेष्टाओं और अनुभवों में और बालकपन की घटक-प्रवृत्तियों और आलम्बनों में, जो अब त्याग दिए गए हैं, मिलती हैं; इसलिए राग मुड़कर वहीं पहुंचता है। बालकपन का महत्त्व दोहरा है एक तरफ तो, जन्म के कारण नियत निसर्ग-वृत्ति-विन्यास या नैसर्गिक पूर्व प्रवृत्ति सबसे पहले उस समय प्रकट होती है; और दूसरी ओर, अन्य निसर्ग-वृत्तियां तभी बाहरी प्रभावों और अनुभव की गई आकस्मिक घटनाओं से उद्बुद्ध और सक्रिय हो जाती हैं। मेरी राय में हमारा यह युग्मभुजिता[1] स्थापित करना बिलकुल उचित है। इस बात पर निश्चय ही कोई आपत्ति नहीं की जाएगी कि जन्मजात पूर्व प्रवृत्ति अभिव्यक्त होती है, पर विश्लेषण सम्बन्धी प्रेक्षण हमें यह मानने के लिए भी मजबूर करता है कि बालकपन के सर्वथा आकस्मिक अनुभव भी राग की बद्धताएं पैदा कर सकते हैं। मुझे इसमें सिद्धान्त की दृष्टि से कोई कठिनाई नहीं मालूम होती। शरीर-रचनागत पूर्व प्रवृत्तियां निश्चित रूप से किसी पुराने पुरखे के अनुभवों का अनुप्रभाव[2] होती हैं। वे भी किसी समय अर्जित की गई हैं, अर्थात् बाहर से प्राप्त की गई हैं। ऐसे अर्जित गुण न होते तो आनुवंशिकता कोई चीज न होती, और क्या यह बात समझ में आ सकती है कि जो गुण आगे संचरित होंगे, उनका अर्जन उस पीढ़ी में एकाएक बन्द हो जाए जिस पर आज प्रेक्षण किया जा रहा है? पर शैशवीय अनुभवों के महत्त्व की पूरी तरह उपेक्षा करके, जैसा कि आम तौर से किया जाता है, पैतृक अनुभवों या वयस्क जीवन के अनुभवों को ही सब कुछ न समझ लेना चाहिए। इसके विपरीत, उनका महत्त्व खास तौर से समझना चाहिए। वे इस कारण और भी परिणाम पैदा करने में समर्थ हैं कि वे अधूरे परिवर्धन के समय होते हैं और इसी कारण उनका उपघातकारी प्रभाव होने की सम्भावना है। रौक्स तथा दूसरे वैज्ञानिकों ने परिवर्धन के तन्त्र पर जो अनुसन्धान किया है, उससे पता चला है कि विभाजन के समय भ्रूणीय कोशिका-संहति में सुई चुभाने से परिवर्धन में गम्भीर गड़बड़ियां पैदा हो जाती हैं। वही चोट किसी बालक या पूर्णविकसित प्राणी के लिए हानिरहित होती।

इसलिए वयस्क की रागबद्धता को, जिसे हमने स्नायु-रोगों के कारण बताते हुए शारीरिक कारक का निरूपक कहा है, अब दो और भागों में बांटा जा सकता है: वंशागत पूर्व प्रवृत्ति और बचपन के शुरू में अर्जित पूर्व प्रवृत्ति। क्योंकि विद्यार्थी को रेखाचित्र के रूप में बात सदा आसानी से समझ में आती है, इसलिए इन सम्बन्धों को मैं इस तरह रखता हूं:

---

1 Dichotomy 2. A[illegible]

वैसा ही है जैसा हमने पहले वाली दो अन्य श्रेणियो मे देखा था। ऐसे रोगी मिले हैं जिनमें सारा कारण बालकपन के यौन अनुभव ही मालूम होते हैं, इन रोगियो मे इन प्रभावों या संस्कारों का निस्सदेह उपघातकारी प्रभाव हुआ था, और उनकी अनुभूति करने के लिए सिर्फ औसत दर्जे की यौन शरीर-रचना और उनकी अपरिपक्वता की जरूरत थी। कुछ रोगी ऐसे हैं जिनमे बाद के द्वन्द्व महत्वपूर्ण कारण हैं, और बालकपन के सस्कारों पर विश्लेषण मे जो बल पडता दिखाई देता है, वह सिर्फ प्रतिगमन का फल मालूम होता है। इसलिए दो सिरे या चरम पक्ष—'निरुद्ध परिवर्धन' और 'प्रतिगमन'—होते हैं और उनके बीच मे, इन दोनो कारको के विभिन्न अनुपात मे मिश्रण मिलते हैं।

यह स्थिति उन लोगो के लिए कुछ मतलब की है जो बालक के यौन परिवर्धन मे जल्दी से जल्दी पठन-पाठन को लाकर स्नायु-रोगो को रोकने की आशा करते हैं। जब तक ध्यान मुख्यतः शैशवीय यौन अनुभवों की ओर है, तब तक आदमी हर बात को इसी तरह सोचेगा कि इस परिवर्धन की गति को मन्द करने और बालक को इस तरह के अनुभव से बचाने का उपाय करके बाद के स्नायु-रोग का पहले ही निवारण किया जाए। हम जानते हैं कि स्नायु-रोग पैदा करने वाली अवस्थाएं इससे अधिक उलझी हुई हैं और कि उन्हें सिर्फ एक कारक की ओर ध्यान देकर सामान्यतः प्रभावित नहीं किया जा सकता। बालकपन मे कड़ी देख-भाल इसलिए व्यर्थ हो जाती है क्योंकि वह शरीर-सम्बन्धी कारक के बारे मे कुछ नही कर सकती। इससे भी बडी बात यह है कि कडी देख-भाल करना इतना आसान नही है, जितना शिक्षा-शास्त्री लोग समझते हैं, और इनमे दो नये खतरे भी हैं जिनको लापरवाही से उपेक्षित नही किया जा सकता। हो सकता है कि यह बहुत अधिक सफल हो जाए, अर्थात् यह इतना अधिक यौन दमन करा दे जिसका परिणाम हानिकारक हो और तब बालक जीवन में प्रवेश करने पर अपनी यौनप्रवृत्ति की उन प्रबल पुकारों का प्रतिरोध करने की शक्ति नही रखता, जो तरुणावस्था मे पैदा हुआ करती हैं। इसलिए यह बहुत सदिग्ध है कि बालकपन मे कहा तक स्नायु-रोग-निवारक कार्य लाभदायक हो सकते हैं, और यह विचारणीय है कि क्या स्नायु-रोगो की रोकथाम करने के लिए यह अधिक अच्छा नही होगा कि वास्तविकता के प्रति परिवर्तित या दूसरा रुख अपनाया जाए?

अब फिर लक्षणों पर विचार किया जाए। वे यथार्थ रूप मे न मिलने वाली सन्तुष्टि के स्थान पर एक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। वे यह कार्य इस तरह करते हैं कि राग का जीवन के किसी पहले वाले समय को प्रतिगमन हो जाता है, और जीवन के उस समय से प्रतिगमन का अविच्छेद्य सम्बन्ध होता है, या राग आलम्बन-चुनाव की या सगठन की किसी पूर्ववर्ती कला मे लौट जाता है। हमने कुछ समय पहले देखा था कि स्नायु-रोगी अपने पिछले जीवन के किसी काल से किसी रूप में बंधा

रतिगमन शैशवीय अनुभवो के रागात्मक आवेश को बहुत अ
और साथ ही उनके रोगजनक महत्त्व को भी बढा देता है।
राधार पर फैसला करना भ्रामक होगा। इसके साथ और बा
रना होगा। प्रथम तो, प्रेक्षण से बड़े असदिग्ध रूप से यह
शशवीय अनुभवो का अपना अलग महत्त्व होता है जो पहले ब
ा जाता है। बालको मे भी स्नायु-रोग होते हैं। उनके स्ना
मय की ओर विस्थापन वाली बात बहुत कम होती है, जैसा
, या बिलकुल नही होती—रोग किसी उपघातकारी अनुभव
जाता है। शैशवीय स्नायु-रोगो के अध्ययन से हम वयस्कों
तत रूप मे समझने के बहुत-से खतरों से बच जाते है, जैसे ब
ा वयस्कों के स्वप्नो को समझने की कुजी मिल गई थी। बालव
त आम होता है; आम तौर से लोग जितना समझते हैं, यह
म होता है। प्राय. इसकी उपेक्षा कर दी जाती है। इसे दुष्ट व्य
व्यक्त रूप समझ लिया जाता है और प्राय दबा दिया जाता
की ओर देखने पर यह सदा आसानी से पहचाना जा सकता
टीरिया के रूप मे सबसे अधिक दिखाई देता है। इसका अर्थ
चलकर देखेंगे। जब बाद के जीवन मे कोई स्नायु-रोग
लेषण से सदा यह प्रकट होता है कि यह उस शैशवीय स्नायु
लता है जो शायद प्रच्छन्न और आरम्भिक रूप में ही प्रकट
कि कहा जा चुका है, ऐसे रोगी भी सामने आए हैं जिन
यविकता बिना रुके जीवन-भर रोग के रूप में चलती रही। कु
स्नायु-रोग की अवस्था वाले बालक का विश्लेषण करने मे सफ
रन्तु अधिकतर उदाहरणों मे हमें बालकपन के स्नायु-रोग क
झाकी से ही सन्तुष्ट होना पड़ा, जो बड़ी उम्र मे रोगी होने
से मिली—इस बड़ी उम्र मे उचित उपाय और सावधानि
नहीं बरतनी चाहिए।

दूसरे, यह बात भी निश्चित रूप से रहस्यमय या गूढ़ रहेगी कि

का सृजन रोगी ने किया है, और स्नायु-रोग के लिए यह तथ्य उतने ही महत्त्व का है जितने महत्त्व का दूसरा तथ्य—यदि उसने वस्तुत उनमें वर्णित बातों का अनुभव किया होता। भौतिक यथार्थता के मुकाबले में इन कल्पनाओं में मनोधात्वीय या मानसिक यथार्थता है, और क्रमश. हम यह समझने लगते हैं कि स्नायु-रोग की दुनिया में मनोधात्वीय या मानसिक यथार्थता ही निर्धारक कारक है।

जो घटनाएं स्नायु-रोगी के बालकपन की कहानी में बीच-बीच में दुहराती रहती हैं, और जो सदा प्राय हाज़िर रहती हैं, उनमें से कुछ विशेष अर्थपूर्ण होती हैं, और इसलिए उनकी ओर मैं विशेष ध्यान खींचना चाहता हू। इस तरह की घटनाओं के नमूने मैं गिनाऊंगा माता-पिता का सम्भोग देखना, वयस्क द्वारा फुसलाया जाना और बधिया करने, अर्थात् लिंग काट लेने, की धमकी। यह समझना बड़ा गलत होगा कि ये घटनाएं यथार्थ रूप में कभी नहीं होतीं। इसके विपरीत, अधिक उमर वाले रिश्तेदारों की गवाही में उनकी प्राय असंदिग्ध रूप में पुष्टि होती है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, ऐसा बहुत बार होता है कि छोटे बालक को जो अपने शिश्न से खेलने लगा है और जिसने अभी यह नहीं सीखा है कि उसे ऐसे कामों को छिपाना चाहिए, माता-पिता या नर्स यह धमकी देती हैं कि उसका शिश्न या हाथ काट दिया जाएगा। पूछने पर माता-पिता प्राय इस तथ्य को स्वीकार करेंगे, क्योंकि वे समझते हैं कि इस तरह डराना उचित था। बहुत-से लोगों को इस धमकी की स्पष्ट सचेत स्मृति होती है, विशेष रूप से यदि यह बालकपन के पिछले हिस्से में दी गई है। यदि यह धमकी माता या कोई और स्त्री देती है तो वह यह (धमकी में व्यक्त) कार्य करने का भार किसी दूसरे पर डालती है अर्थात् यह कहती है कि पिता या डाक्टर यह कार्य करेगा। बच्चों के चिकित्सक हाफमैन (फ्राकफोर्ट वाले) की प्रसिद्ध रचना स्ट्रुवेलपीटर में, जिसकी लोकप्रियता का कारण यही है कि वह बालकों की यौन तथा अन्य ग्रन्थियों को समझता था, आप देखेंगे कि बधिया करने के विचार का रूप बदलकर उसके स्थान पर अंगूठा चूसते रहने की सज़ा अंगूठे काटना रख दी है। पर यह बहुत असम्भाव्य है कि बधिया या लिंगच्छेद करने की धमकी इतनी बार दी गई हो, जितना किसी स्नायु-रोगी के विश्लेषण से प्रतीत होता है। हमें इतना ही समझना चाहिए कि बालक अपनी इस जानकारी में से कि आत्मकामिक सन्तुष्टियों पर रोक है, संकेतों और निर्देशों के आधार पर इस तरह की धमकी अपने मन से गढ़ लेता है, और इस तरह की बात गढ़ने में वह स्त्री-जननेन्द्रिय को देखने पर प्राप्त संस्कार से भी प्रभावित होता है। इसी तरह यह भी असम्भव नहीं है कि उस छोटे-से बच्चे ने, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसे न समझ है और न स्मृति है, अपने माता-पिता को या गरीब मज़दूरों के अलावा अन्य परिवारों के दूसरे वयस्कों को सम्भोग करते देखा हो। और यह सोचना तर्कसंगत है कि इस समय प्राप्त संस्कार

तरह की खोज से कोई राह मिल सके कि बाल्यकाल की जो थोड़ी-सी स्मृति विश्लेषण से बहुत पहले लोगों ने संकेत रूप से सुरक्षित कर रखी हैं, वे भी इस तरह झूठी सिद्ध हो सकती हैं, या कम से कम, उनमें भी सचाई और झूठ का ऐसा ही बहुत अधिक मिश्रण हो सकता है। उनमें गलती प्रायः साफ दीख जाती है और इस प्रकार हमें कम से कम यह तो निश्चय हुआ कि इस अकस्मात् आने वाली निराशा की जिम्मेदारी विश्लेषण पर नहीं, बल्कि किसी न किसी रूप में रोगी पर ही है।

थोड़ा सोचने पर हम आसानी से समझ सकते हैं कि इस मामले में इतना विस्मय पैदा करने वाली क्या चीज़ है। यह है यथार्थता को हीन या तुच्छ बना देना ; यथार्थता और कल्पना के फर्क को भुला देना। हमें रोगी पर इस कारण गुस्सा आता है कि उसने मनगढ़न्त किस्सों से हमारा समय नष्ट किया। हमारी विचार-रीति के अनुसार गप्प और यथार्थता में आकाश-पाताल का अन्तर है और इन दोनों का मूल्य हम अलग-अलग ढंग से आंकते हैं, यहां तक कि स्वयं रोगी भी प्रकृत रूप में विचार करते हुए इस तरह सोचता है। जब वह ऐसी सामग्री पेश करता है, जिससे हम अभिलषित स्थितियों पर पहुंचते हैं (जो लक्षणों की तह में होती है और बालकपन के अनुभवों पर खड़ी होती है), तब निश्चित ही शुरू में हमें यह शक होने लगता है कि हमें यथार्थता का अध्ययन करना है या कल्पनाओं का। इस प्रश्न का फैसला बाद में कुछ संकेतों के द्वारा सम्भव हो जाता है और तब हमारे सामने इस परिणाम को रोगी को जतलाने का काम आ पड़ता है। यह कभी भी बिना कठिनाई के पूरा नहीं हो जाता। हम शुरू में उससे कहते हैं कि तुम अब वे कल्पनाएं हमारे सामने रखोगे, जिनमें तुमने अपने बालकपन के इतिहास को छुपा रखा है, जैसेकि प्रत्येक जाति अपने भुलाए हुए प्रारम्भिक इतिहास के बारे में पौराणिक कथाएं बना लेती है। तो, हम यह देखेंगे और इससे हमें बड़ा असन्तोष होगा कि इस विषय को आगे चालू रखने में उसकी दिलचस्पी एकाएक घट जाती है—वह भी तथ्य ही निकालना चाहता है, और जिसे 'कल्पना' कहा जाता है, उससे नफरत करता है। पर यदि हम कार्य का यह हिस्सा पूरा होने से पहले यह मानने की गुंजाइश दे दें कि हम उसके प्रारम्भिक जीवन की यथार्थ घटनाओं का पता लगा रहे हैं, तो बाद में यह कहा जाएगा कि हमने गलती की, और हमें इतना विश्वासी देखकर हमारी हंसी की जाएगी। उसे यह बात समझने में बहुत समय लगता है। कल्पना और यथार्थता को एक जैसा मानकर चलना होगा, और शुरू में इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि उसके जिन बालकपन के अनुभवों पर हम विचार कर रहे हैं, वे कल्पित हैं या यथार्थ, परन्तु फिर भी स्पष्टतः उसके मन की इन सृष्टियों के प्रति एकमात्र सही रुख यही हो सकता है। उनमें सचमुच

इसका मेरे पास एक ही उत्तर है, और मैं यह जानता हूं कि वह आपको बड़ा साह-सिक लगेगा। मेरा विश्वास है कि ये आदिम कल्पनाएं[1] (मैं इन्हें तथा कुछ और कल्पनाओं को भी यह नाम देना चाहता हू) जातिवृत्तीय सम्पत्ति हैं। उनमें मनुष्य का अपना अनुभव जहां कहीं नाकाफी रहा, वहां वह इससे बाहर निकलकर अपने-आपको अतीत के युगों के अनुभवों तक फैला लेता है। मुझे यह बिलकुल सम्भव मालूम होता है कि आज विश्लेषण में कल्पना के रूप में जो कुछ बताया जाता है—बचपन में फुसलाना, मात-पिता के मैथुन को देखकर यौन उत्तेजना का पैदा होना, लिंगच्छेद की धमकी, या स्वय लिंगच्छेद भी वह मानव कुटुम्ब के प्रागैतिहासिक कालों में यथार्थत था, और बालक अपनी कल्पना में अपने सच्चे व्यक्तिगत अनुभवों के खाली स्थानों के सच्चे प्रागैतिहासिक अनुभवों से पूतिमात्र कर देता है। हमें बार-बार यह सन्देह करने का मौका आया कि मानव परिवर्धन के आद्य-कालीन रूपों की सबसे अधिक जानकारी हमारे लिए स्नायु-रोगों के मनोविज्ञान में ही संचित है, हमारी गवेषणा के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं।

अब जिन बातों पर हम विचार कर रहे हैं, उनके लिए उस मानसिक व्यापार के उद्गम और अर्थ पर अधिक बारीकी से विचार करने की आवश्यकता है, जिसे 'कल्पना-निर्माण' कहते हैं। साधारणतया, जैसाकि आप जानते हैं, इसे बड़ा सम्मान प्राप्त है, यद्यपि मानसिक जीवन में इसका स्थान स्पष्ट रूप से नहीं समझा गया। मैं इसके बारे में आपको इतना ही बता सकता हू: आप जानते हैं कि बाहरी आवश्यकता के प्रभाव से मनुष्य का अहम् धीरे-धीरे इस तरह प्रशिक्षित हो जाता है कि वह यथार्थता का महत्त्व ग्रहण कर सके और यथार्थता सिद्धांत पर चल सके, और ऐसा करने में इसे अपनी सुख की इच्छा के न केवल यौन बल्कि और बहुत-से आलम्बन और उद्देश्य स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से त्यागने होंगे। पर सुख का त्याग मनुष्य के लिए सदा बड़ा कठिन रहा है। वह किसी न किसी तरह की क्षति-पूर्ति के बिना इसे नहीं कर पाता। इसलिए, उसने अपने वास्ते एक ऐसे मान-सिक व्यापार का विकास कर लिया है जिसमें सुख के ये सब त्यागे हुए साधन और सन्तुष्टि के छोड़े हुए मार्ग अपना ऐसा अस्तित्व बनाए रख सकते हैं, जिसमें वे यथार्थता की आवश्यकताएं पूरी करने से फारिग रहते हैं, और जिसे हम 'प्रयोग-शील यथार्थता'[2] का प्रयोग कहते हैं, उससे मुक्त रहते हैं। प्रत्येक लालसा शीघ्र ही अपनी पूर्ति के मनोबिंब में रूपान्तरित हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कल्पना में इच्छा-पूर्ति करने से तुष्टि होती है, यद्यपि यह ज्ञान कि यह यथार्थता नहीं है इसके द्वारा ढक नहीं जाता। इसलिए कल्पना में मनुष्य उस बाहरी जगत् की पकड़ से आज़ादी का मजा लेता रह सकता है, जिसे असल में उसने बहुत पहले त्याग दिया है। उसने अपने-आपको इस तरह का बना लिया है कि वह कभी सुखार्थी प्राणी और कभी

१. Primal phantasies २. Testing reality

को बालक बाद में समझ सकता है, और तभी इसपर प्रतिक्रिया कर सकता है, पर जब इस सम्भोग-कार्य का वर्णन इतनी बारीक बातें विस्तार से बताकर किया जाता है जो मुश्किल से ही देखी जा सकती थीं, या जब ऐसा प्रतीत होता है जैसा बहुत बार होता है, कि सम्भोग पीछे से किया गया है, तब इसमें कोई शक नहीं रहता कि यह कल्पना सम्भोग करते हुए पशुओं (कुत्तों) को देखने से पैदा हुई है, और इसका प्रेरक बल बालक की अतृप्त दर्शनेच्छा में मौजूद है। इस तरह की कल्पना का सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि रोगी कहता है कि मैंने अपने जन्म से पहले माता के गर्भ में रहते हुए ही माता-पिता का सम्भोग देखा था।

फुसलाने की कल्पना विशेष दिलचस्प है, क्योंकि अधिकतर, यह कल्पना नहीं होती बल्कि वास्तविक स्मरण होती है। पर सौभाग्य से, यह उतने उदाहरणों में यथार्थ नहीं होती जितने में यह पहले विश्लेषण के परिणामों से प्रतीत होती थी। वयस्कों की अपेक्षा उसी आयु के या कुछ अधिक आयु के बालकों द्वारा फुसलाने की बात अधिक होती है, और जब लड़कियां, जो अपने बालपन की कहानी में प्रायः सदा इस घटना को पेश करती हैं, पिता को फुसलाने वाला बनाती हैं, तब न तो इस कथन के कल्पित होने में सदेह किया जा सकता है और न इसके पीछे क्रियाशील प्रेरक भाव में। जब फुसलाने की बात नहीं हुई है तब कल्पना प्रायः बचपन की आत्मकामिता वाली यौन चेष्टा को ढकने के लिए प्रयुक्त की जाती है। बालक आत्मकामिता के बारे में शर्म की भावना से बचने के लिए, कल्पना से, बिलकुल शुरू के काल में किसी वांछित आलम्बन की बात बना लेता है। परन्तु यह मत समझिए कि निकटतम पुरुष रिश्तेदारों द्वारा बालकों का यौन दुरुपयोग पूरी तरह कल्पना-लोक की ही उड़ान है, अधिकतर विश्लेषकों ने ऐसे रोगियों का इलाज किया होगा, जिनके साथ सचमुच ऐसी घटनाएं हुई थीं और जो असंदिग्ध रूप से सिद्ध की जा सकती थीं। पर फिर भी वे बचपन के पिछले वर्षों की घटनाएं थीं और वे उससे पहले के समय की बना दी गई थीं।

इन सबसे एक ही धारणा बनती है, कि स्नायु-रोग के लिए इस तरह के बालपन के अनुभव किसी न किसी रूप में आवश्यक हैं कि वे इसकी स्थायी पूंजी बन जाते हैं। यदि वे यथार्थ घटनाओं में मिलते हैं तो अच्छा है, पर यदि यथार्थता में वे नहीं हैं तो उन्हें संकेतों में से निकालकर कल्पना द्वारा पूरा किया जाएगा। परिणाम वही है, और आज भी हमें परिणामों में कोई भिन्नता पाने में सफलता नहीं हुई, चाहे इन अनुभवों में कल्पना ने मुख्य कार्य किया हो या यथार्थता ने। यह भी इन

वह और सब तरफ से खिचकर कल्पनाओं पर आ जाए। इन कल्पनाओं ने एक तरह की सहिष्णुता का सुख पाया है। उनमें और अहम् में कितना ही स्पष्ट विरोध होने पर भी तब तक कोई द्वन्द्व नहीं बन सका जब तक कि एक खास अवस्था बनी रही—मात्रात्मक[1] स्वरूप की अवस्था बनी रही, जो अब राग का प्रवाह कल्पनाओं पर आ जाने से बिगड़ गई है, या हट गई है। इस आगमन से कल्पनाओं का ऊर्जाविधा या कैथेक्सिस इतना अधिक बढ़ जाता है कि वे अपना व्यक्तित्व दिखाने लगती हैं, और कार्य-सिद्धि की ओर दबाव डालने लगती हैं। पर तब उनमें और अहम् में संघर्ष अवश्यम्भावी हो जाता है। यद्यपि पहले वे पूर्व चेतना या अचेतन थीं, तो भी अब उनपर अहम् की ओर से दमन का प्रभाव पड़ता है और अचेतन की ओर से लगने वाले आकर्षण का प्रभाव होता है। राग कल्पनाओं से, जो अब अचेतन हो गई हैं, अचेतन में मौजूद उनके उत्पत्ति-स्थानों की, अपने खुद के बद्धता-बिन्दुओं की, यात्रा करता है।

राग का कल्पना पर लौटना लक्षण-निर्माण के मार्ग में एक बीच का कदम है, जिसका कोई विशेष नाम देना उचित है। सी० जी० जुंग ने इसे एक उपयुक्त नाम अन्तर्मुखता[2] दिया है, पर उसने इसका दूसरी वस्तुओं के वर्णन करने में भी अनुपयुक्त रूप से प्रयोग किया है। हम इस स्थिति पर दृढ़ रहेंगे कि 'अन्तर्मुखता' शब्द यथार्थ सन्तुष्टि की सम्भावनाओं से राग के परे हट जाने का, और उन कल्पनाओं पर,जो पहले हानिरहित मानकर सहन की जाती थीं, इसके अत्यधिक संचय का वर्णन करता है। अन्तर्मुख व्यक्ति अभी स्नायु-रोगी नहीं होता पर वह अस्थायी दशा में होता है। स्थान बदलते हुए बलों के नये विक्षोभ से लक्षण उभर आएंगे, बशर्ते कि वे भी अपने दबे हुए राग के लिए कोई रास्ता तलाश न कर लें। इस जगह अन्तर्मुखता का रोध होने पर स्नायविक सन्तुष्टि का अयथार्थ रूप और कल्पना व यथार्थता के अन्तर का तिरस्कार होना पहले ही निश्चित हो जाता है।

निस्सन्देह आपने देखा होगा कि अपने इस अन्तिम कथन में मैंने कार्य-कारण-शृंखला जोड़ते हुए एक नया कारक, अर्थात् मात्रा या सम्बन्धित ऊर्जाओं की राशि पेश की है। हमें इस कारण को भी सदा अपनी जांच में शामिल करना चाहिए, कारणात्मक अवस्थाओं का शुद्ध रूप से गुणात्मक[3] विश्लेषण काफी नहीं ; या दूसरी तरह कहा जाए तो इन प्रक्रमों की शुद्ध रूप से गतिकीय अवधारणा काफी नहीं; उसके साथ आर्थिक पहलू भी आवश्यक है। हमें यह अनुभव होना है कि दो विरोधी बलों में तब तक द्वन्द्व नहीं छिड़ता,जब तक आच्छादन की मात्रा में एक विशेष तीव्रता न आ जाए, चाहे उनका अस्तित्व मूर्छित करने वाली अवस्थाएं बहुत समय से मौजूद हों। इसी प्रकार, शरीर-रचना सम्बन्धी कारक का रोग-

१. Quantitative २. Introversion ३. Qualitative

है वह उस भूखा और अतृप्त छोड़ जाती है। वस्तुतः यथार्थता से जो थोड़ी-सी सन्तुष्टि वह कर
पर निर्माणों के बिना कोई भी कार्य नहीं किया जाता।' फौन्टेन ने कहा था, 'महा-
की सृष्टि में ऐसे स्थानों पर 'संरक्षित वनों' और 'प्राकृतिक वाटिकाओं' की
स्थापना इसकी तरह की जाती है, जहां खेती, यातायात या उद्योग के विस्तार
कारण धरती का असली चेहरा बड़ी तेजी से एक अजनबी चीज में बदलने
का खतरा मौजूद है। 'संरक्षित वन' है वस्तुओं की पुरानी अवस्था को कायम
रखना, जिसे और सब जगह, खेद के साथ, आवश्यकता पर बलि चढ़ा दिया
है। वहां प्रत्येक वस्तु, यहां तक कि बेकार और हानिकारक वस्तु भी, मन-
चाहे तौर से बढ़ और फैल सकती है। कल्पना का मनोराज्य भी ऐसा ही संरक्षित
है, जिसे यथार्थतावाद की घुसपैठ से बचाकर हरा-भरा किया गया। कल्पना से उत्पन्न सबसे अच्छी तरह ज्ञात सृष्टियों से हम पहले परिचय कर
चुके हैं। वे दिवा-स्वप्न कहलाती हैं, और ये ऊंची-ऊंची बड़ी बड़ी कामुक इच्छाओं की काल्पनिक परितुष्टि है, और यथार्थता विनय और धीरज रखने के लिए
जितनी तत्परता करती है, उतना ही अधिक समय उन पर लगाया जाता है। उसमें
कल्पना-सुख का सारतत्त्व, अर्थात् सन्तुष्टि का ऐसी अवस्था में आ जाना
जो यथार्थता की अनुमति पर निर्भर नहीं रहती है, असंदिग्ध रूप से
दिखाई देता है। हम जानते हैं कि ये दिवा-स्वप्न रात्रि-स्वप्नों के बीज और
आदर्श हैं। असल में रात्रि-स्वप्न ऐसा दिवा-स्वप्न ही है जिसे मानसिक व्यापार के
रात वाले रूप ने विपर्यस्त कर दिया है, और जो इस कारण बन पाता है
कि रति सम्बन्धी उत्तेजनों को रात में आजादी रहती है। हम पहले ही
देख चुके हैं कि दिवा-स्वप्न का चेतन होना आवश्यक नहीं, और अचेतन दिवा-
स्वप्न भी होते हैं। इसलिए ऐसे अचेतन दिवा-स्वप्नों से जिस तरह रात्रि-स्वप्न
पैदा होते हैं, उसी तरह ही स्नायविक लक्षण भी पैदा होते हैं।

लक्षण-निर्माण में कल्पना की सार्थकता आपको नीचे की बात से स्पष्ट हो
जाएगी। हमने कहा था कि राग कुंठा में प्रतिगमन करके उन स्थानों को आच्छा-
दित कर लेता है जिन्हें वह छोड़ चुका है, पर जिनसे फिर भी इसकी ऊर्जा के कुछ
अंश जुड़े रहते हैं। हम इस कथन को वापस नहीं लेंगे, या इसमें संशोधन
नहीं करेंगे, पर इसके बीच में एक जोड़ने वाली कड़ी रखनी होगी। राग
को इन स्थानों की ओर वापस लौटने का अपना रास्ता कैसे मिलता है?
अच्छा, राग ने जिन लक्ष्यों और धाराओं या प्रवाह-मार्गों को छोड़ दिया है,
उन्हें पूरी तरह नहीं छोड़ दिया है। वे या उनसे बनी हुई वस्तुएं, कुछ तीव्र
रूप में कल्पना की धारणाओं में अब भी कायम हैं। राग को सब दमित बड़ा
स्थानों पर वापस लौटने का खुला रास्ता पकड़ने के लिए सिर्फ इतना ही करना है
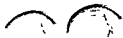
टूटने से रोकने के लिए बहुत-से कारक इकट्ठे होते हैं। यह बात काफी प्रसिद्ध है कि अधिकतर कलाकार स्नायु-रोग के कारण अपनी क्षमताओं से आंशिक निरोध से पीड़ित होते हैं। सम्भवतः उनकी शरीर-रचना में उदात्तीकरण की प्रबल क्षमता होती है, और द्वन्द्व पैदा करने या न करने के कारणरूप दमनों में कुछ लचक होती है, पर कलाकार यथार्थता की ओर लौटने का मार्ग इस तरह पा लेता है। वह अकेला ही ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके पास कल्पना का जीवन हो। कल्पना का मध्यवर्ती लोक सारी मानव जाति में मिलता है, और हर अतृप्त आत्मा आराम और सान्त्वना के लिए इसका सहारा लेती है। पर जो लोग कलाकार नहीं हैं, वे कल्पना से बहुत सीमित आनन्द हासिल कर सकते हैं। उनके क्रूर दमनों के कारण वे उन थोड़े-से दिवा-स्वप्नों का ही आनन्द ले पाते हैं, सब कल्पनाओं का नहीं। सच्चे कलाकार के पास कुछ और भी चीज होती है। सबसे पहले तो वह अपने दिवा-स्वप्नों को इस तरह विशद करना जानता है कि उनमें से वह व्यक्तिगत अंश निकल जाए जो अपरिचित कानों को खटकता है और दूसरों के लिए वे दिवा-स्वप्न रसनीय और रमणीय बन जाते हैं। वह यह भी जानता है कि उनमें इतना काफी परिवर्तन कैसे कर दिया जाए कि आसानी से यह पता न चल सके कि उनकी उत्पत्ति प्रतिषिद्ध स्रोतों से हुई है। इसके अलावा, उसमें यह रहस्यमय प्रवीणता होती है कि अपनी निजी सामग्री को इस तरह से बढ़ा सके कि वह उसकी कल्पना के मनोबिम्बों को ठीक-ठीक अभिव्यक्ति कर सके; और फिर, वह यह भी जानता है कि उसके कल्पना-जीवन के इस प्रतिबिम्ब से ऐसी प्रबल सुखधारा कैसे जोड़ दी जाए कि कम से कम कुछ देर के लिए यह दमनों से अधिक शक्तिशाली हो जाए और उन्हें बाहर कर दे। जब वह यह सब कुछ कर सकता है तब दूसरों के लिए, उनके अपने अचेतन सुख-स्रोतों से आराम और सान्त्वना पाने का रास्ता खोल देता है और इस तरह उनकी कृतज्ञता और प्रशंसा प्राप्त करता है; तब उसे अपनी कल्पना द्वारा वह चीज प्राप्त हो गई है जो पहले वह कल्पना में ही प्राप्त कर सकता था : सम्मान, शक्ति और स्त्रियों का प्रेम।

जनक महत्त्व इस बात से निर्धारित होता है कि घटक-निसर्ग-वृत्तियों में से ए विन्यास में दूसरी की अपेक्षा अधिक हो। यह भी समझा जा सकता है कि गुणात्मक दृष्टि से सब मनुष्यों में एक-सा है, और उसमें जो कुछ भेद है मात्रा के कारण ही है। स्नायविक रोग को सहन करने की क्षमता में भी इस सम्बन्धी कारक का कम महत्त्व नहीं है। अविसर्जित राग की उस राशि पर यह बात निर्भर है कि जिसे कोई व्यक्ति, मुक्त रूप से घूमती हुई, अपने में र कर सकता है, और इसका कितना बड़ा अंश इसे यौन उद्देश्य से हटाकर उद करण में यौनेतर उद्देश्य की ओर प्रेरित कर सकता है। मानसिक व्यापार का प्र लक्ष्य—जो गुणात्मक दृष्टि से यह बताया जा सकता है कि सुख पाने और दु बचने का प्रयत्न करना है—आर्थिक दृष्टि से यह होता है कि मानसिक उप में मौजूद उत्तेजन की मात्राओं (उद्दीपन महलियों) के वितरण को नियमि किया जाए, और उसका ऐसा सचय, जो दु ख पैदा करे, रोका जाए।

स्नायु-रोगों के लक्षण-निर्माण के बारे में मुझे आपको इतना ही बताना था पर यह बात एक बार फिर दोहरा देना चाहता हूं कि मैंने आज जो कुछ कहा है, वह सिर्फ हिस्टीरिया के लक्षण-निर्माण के बारे में है। मनोग्रस्तता-रोग में बहुत अन्तर दिखाई देते हैं, यद्यपि सारभूत बातें वे ही हैं। निसर्ग वृत्ति द्वारा सन्तुष्टि के लिए पेश की गई माग के विरुद्ध अहम् में होने वाले 'प्रति आवेश', जिनका हिस्टीरिया के सिलसिले में पहले उल्लेख किया गया है, मनोग्रस्तता-रोग में अधिक स्पष्ट और प्रबल होते हैं और 'प्रतिक्रिया-निर्माणों' के रूप में रोग-चित्र में प्रधान होते हैं। अन्य स्नायु-रोगों में, जिनमें लक्षण-निर्माण के तत्त्वों की क्षेत्र-गवेषणा[1] अभी किसी भी दिशा में पूरी नहीं हुई, ऐसे ही और अधिक बड़े अन्तर पाए जाते हैं।

आज आपके उठने से पहले मैं जरा देर के लिए आपका ध्यान कल्पना-जीवन के ऐसे पहलू की ओर खींचना चाहता हूं जो व्यापक दिलचस्पी का है। कल्पना से फिर यथार्थता में आने का सचमुच एक रास्ता है और वह है—कला। कलाकार में भी अन्तर्मुख प्रकृति होती है, और थोड़ा और चलते ही वह स्नायु-रोगी बन सकता है। वह ऐसा व्यक्ति है जिसे बहुत प्रबल और जोर शोर वाली निसर्ग-वृत्तिक आवश्यकताएं प्रेरित करती हैं। वह सम्मान, शक्ति, धन, यश और स्त्रियों का प्रेम पाने की लालसा रखता है, पर उसके पास ये सन्तुष्टियां पाने के साधन नहीं हैं। इसलिए असन्तुष्ट लालसा वाले अन्य व्यक्तियों की तरह वह यथार्थ से हट जाता है, और अपनी सारी दिलचस्पी और अपना सारा राग भी कल्पना के जीवन में अपनी इच्छाओं की सृष्टि पर ले जाता है, जहां से कुछ ही दूर चलने पर स्नायु-रोग आ सकता है। उसे अपना परिवर्तन करते-करते स्नायु-रोग या

1. Field research

आप सब स्नायविकता के बारे मे जानते हैं, जिन्होंने बहुत समय से आपकी दिलचस्पी जगा रखी है। या स्नायविक व्यक्तियों के खास तरह के स्वभाव, मानवीय समागम और बाहरी प्रभावों पर उनकी दुर्बोध प्रतिक्रियाओं, उनकी उत्तेजनशीलता, उनकी अविश्वसनीयता और किसी काम में सफल होने की उनकी असमर्थता से इसे क्यों शुरू नहीं किया ? मैंने स्नायविकता के सरल प्रतिदेन दिखाई देने वाले रूपों की व्याख्या से एक-एक कदम बढ़ते हुए आपको इसके उग्र गूढ़ रूपों तक क्यों नहीं पहुंचाया ?

सच पूछिए तो मैं इनमें से किसी भी बात से इन्कार नहीं करता, या यह नहीं कहता कि आपका कहना गलत है। मुझे अपनी प्रतिपादन-क्षमता से इतना प्रेम है कि मुझे इसकी हर कमी में एक विशेष आकर्षण दिखाई देता है। मैं स्वयं यह समझता हूं कि अगर मैं दूसरे तरीके से चलता तो अधिक अच्छा रहता, और सच पूछिए तो मेरा यही इरादा था। पर आदमी सदा तर्कपूर्ण योजना पर नहीं चल पाता। प्राय ऐसा होता है कि सामग्री में कोई ऐसी चीज़ आ पड़ती है, या प्रतिपादन-सामग्री का ही कोई ऐसा अंश बीच में आ कूदता है जो मनुष्य पर हावी हो जाता है, और उसे अपने सोचे हुए रास्ते से हटा देता है। सुपरिचित सामग्री को सिलसिले से सजाने जैसा मामूली काम भी पूरी तरह कर्ता की इच्छा के अधीन नहीं रहता। वह अपने ही तरीके से बाहर आता है, और आदमी बाद में आश्चर्य भी कर सकता है कि यह ऐसा क्यों हुआ, और इससे भिन्न रूप से क्यों नहीं हुआ।

सम्भवत इसका एक कारण यह है कि मेरे मूल प्रतिपाद्य, अर्थात् मनोविश्लेषण के परिचय में, स्नायु-रोगों के विषय से सम्बन्धित अंश नहीं समाता। मनोविश्लेषण का परिचय या भूमिका में गलतियों और स्वप्नों का अध्ययन ही आता है; स्नायु रोग का सिद्धान्त तो स्वयं मनोविश्लेषण ही है। मैं नहीं समझता कि इतने थोड़े-से समय में मैं आपको इस तरह बहुत सघन रूप के अलावा और किसी तरह स्नायु-रोगों के सिद्धान्त की भीतरी सामग्री की कुछ जानकारी दे सकता था। इसमें मुझे लक्षणों का अर्थ और तात्पर्य, और साथ ही लक्षण-निर्माण की बाहरी और भीतरी दशाएं और तन्त्र उनके उपयुक्त सिलसिले में आपके सामने पेश करने थे। यह पेश करने की कोशिश मैंने की है। मोटे रूप में मनोविश्लेषण आज जो कुछ आपके सामने रख सकता है, यह उसका सारभाग है। इसके साथ-साथ राग और उसके परिवर्धन के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, और अहम् के बारे में भी कुछ कहा गया है। प्रारम्भिक व्याख्यानों से आप हमारी विधि के मुख्य सिद्धान्तों के लिए और अचेतन के तथा दमन (प्रतिरोध) के अवधारणों से सम्बन्धित मोटी बातों के लिए पहले से तैयार हो चुके थे। आगे के एक व्याख्यान में आपको यह पता चलेगा कि किस जगह से मनोविश्लेषण आगे जारी रहेगा। अब तक मैंने आपसे यह बात नहीं छिपाई है कि हमारे सब प्रमाण स्नायविक रोगों के सिर्फ एक समूह

साधारण स्नायविकता

पिछले व्याख्यान में हमने जिस कठिन प्रश्न पर विचार किया है, उसके बाद थोडी देर के लिए मैं उस विषय को छोड देता हू और अब कुछ समय के लिए अपने श्रोताओ की ओर ध्यान देता हू।

मैं जानता हू कि आप असन्तुष्ट है। आपने सोचा था कि मनोविश्लेषण का सामान्य परिचय बिलकुल दूसरी ही तरह की चीज होगी। आपको आशा थी कि सिद्धान्तो के बजाय जीवन के उदाहरण पेश किए जाएगे। आप मुझसे कहेंगे कि उन दो बच्चो की कहानी ने, जिनमे से एक निचली मजिल मे और दूसरा ऊपर रहता था, स्नायु-रोग के कारण पर कुछ रोशनी डाली, पर वह एक मनगढत दृष्टान्त के बजाय वास्तविक तथ्य होना चाहिए था; या आप कहेंगे कि जब मैंने शुरू मे आपके सामने दो लक्षणो का वर्णन किया था, (भरोसा रखिए कि वे काल्पनिक नही थे) और उनका समाधान तथा रोगियों के जीवन से उनका सम्बन्ध-सूत्र पेश किया था, तब उससे लक्षणो के अर्थ पर कुछ प्रकाश पडा था, और आपने आशा की थी कि मैं उसी तरह आगे चलता रहूगा। ऐसा करने के बजाय मैंने आपको बहुत समय लेने वाले और बड़े अस्पष्ट सिद्धान्त बताए जो कभी पूरे न हुए और उनमे मैं कुछ न कुछ जोड़ता ही रहा। मैं ऐसे अवधारणो की चर्चा करता रहा, जिनका मैंने अभी आपको परिचय नही दिया था। मैंने वर्णनात्मक व्याख्या छोडकर गतिकीय पहलू से व्याख्या शुरू कर दी, और फिर इसे भी छोड़कर तथा-कथित आर्थिक व्याख्या शुरू कर दी। आपके लिए यह समझना कठिन कर दिया कि इनमे से कितने पारिभाषिक शब्दो का अर्थ एक ही - वे सिर्फ बोलने की सुविधा के लिए एक-दूसरे के स्थान
पाए पेश की, जैसे सुख-सिद्धान्त
परिवर्तन के वशागत अवशेष
के बजाय मैंने उन्हें आपके -
मैंने स्नायु-रोगो के

नी रूढ़ संस्कारों वाली हो कि दूसरे मर्द के साथ गुप्त रूप से अपनी ...र सके; वह इतनी शक्तिशाली न हो कि अपने पति से अलग होने के बाहरी कारणों को चुनौती दे सके, और उससे अलग हो सके, यदि भरण-पोषण कर सकने या अधिक अच्छा पति पा सकने की आशा न ...िसे अन्तिम बात यह है कि यदि वह अब भी यौन दृष्टि से इस क्रूर ...ति प्रबल अनुराग न रखती हो। उसका रोग अपने पति के विरुद्ध किए ...में उसका ऐसा हथियार बन जाता है जिसका वह अपनी रक्षा के लिए ...र सकती है, या बदला लेने के लिए दुरुपयोग कर सकती है। वह अपने ...शिकायत कर सकती है, यद्यपि सम्भाव्यत उसे अपने विवाह करने की ...ो का साहस न होगा। उसका डाक्टर उसका सहायक है। उसके पति को, ... इतना निर्दय है, उसे छुट्टी देनी पड़ती है, उसपर पैसा खर्च करना पड़ता ... घर से अनुपस्थित रहने की छूट देनी पड़ती है, और इस प्रकार विवाह के ...ार से उसे स्वतन्त्रता मिलती है। जहां रोग के कारण मिलने वाली यह ...ा या 'दुर्घटनामूलक' सुविधा जरा भी अधिक होती है, और यथार्थ जीवन में ...सुविधा देने वाली स्थानापन्न वस्तु नहीं मिलती, वहां आप अपनी चिकित्सा ... इस स्नायु-रोग का इलाज करने की बहुत आशा न रखिए।

अब आप कहेंगे कि मैंने 'रोग द्वारा लाभ या सुविधा' के बारे में अभी जो कुछ ...ा है, उससे उस विचार की पुष्टि होती है जिसे मैंने अभी अस्वीकार किया था, ...नि यह कि अहम् स्वयं स्नायु-रोग को चाहता है, और इसे जन्म देता है। पर जरा ...हरिए। शायद इसका सिर्फ यह तात्पर्य है कि अहम् स्नायु-रोग को, जिसे रोकने ... वह हर सूरत में असमर्थ है, स्वीकार करके प्रसन्न होता है, और यदि उसका ...छ लाभ उठाया जा सकता है तो वह उसका अधिक से अधिक लाभ उठाता है। ...यह तो बात का सिर्फ एक पहलू है। जहां तक यह प्रश्न है कि रोग से सुविधा या ...लाभ है, वहां तक यह ठीक है कि अहम् स्नायु-रोग से दोस्ती रखकर बिलकुल सुख ...रहता है। पर इसके साथ होने वाले अलाभों और असुविधाओं पर भी विचार करना होगा। आम तौर से शीघ्र ही यह दीख जाता है कि स्नायु-रोग को स्वीकार करके अहम् ने नुकसान का सौदा किया है। इसने द्वन्द्व के समाधान की बहुत भारी कीमत चुकाई है। लक्षणों के कारण होने वाले कष्ट शायद उतने ही खराब हैं जितना वह द्वन्द्व था जिसके स्थान पर ये आ गए हैं, और बहुत हद तक ये उससे बहुत खराब भी हो सकते हैं। अहम् लक्षणों के दुःख से छूटना चाहता है, पर इसको रोग द्वारा दत्त सुविधा या रोगजनित लाभ नहीं छोड़ना चाहता है, और इसीमें उसे सफलता नहीं हो सकती। इसलिए ऐसा दिखाई देता है कि इस सारे मामले में अहम् का कर्तृत्व ऐसा नहीं रहा जैसाकि उसने समझा था; और हमें यह बात ध्यान में रखनी है।

यदि डाक्टर का कार्य करते हुए आपको स्नायु-रोगियों के बहुत इलाज करने

अर्थात् स्थानान्तरण स्नायु-रोग के अध्ययन से निकले हैं, और इसी तरह मैंने
मनुष्य-निर्माण के तत्व की जांच-पड़ताल सिर्फ हिस्टीरिया-स्नायु-रोग की पेच
की है। यद्यपि सम्भवतः आपको कोई बहुत सांगोपांग जानकारी नहीं हासिल
हुई होगी, और छोटी-छोटी बातें आपको याद नहीं रही होंगी, फिर भी मुझे
आशा है कि आपको मोटे तौर से यह पता चल गया है कि मनोविश्लेषण किन
साधनों से कार्य करता है या किन समस्याओं पर विचार करता है, और यह
कौन से परिणाम पेश कर सकता है।

मैंने कहा था कि आप मन में यह चाहते थे कि मैंने स्नायु-रोगों का विषय
स्नायु-रोगी के व्यवहार के वर्णन से और इन बातों के वर्णन से कि वह अपने रोग
से किस तरह दुःख उठाता है, अपने-आपको इससे किस तरह बचाता है, और किस
तरह स्वयं को इसके अनुकूल बना लेता है, शुरू किया होता। निश्चित ही यह
बड़ा मनोरंजक विषय है, अध्ययन करने योग्य है, और इसमें इलाज करना कुछ
कठिन भी नहीं, तो भी इस पहलू से शुरू करने के विरुद्ध कुछ दलीलें हैं। खतरा
यह है कि अचेतन को नजरन्दाज कर दिया जाएगा, राग या लिबिडो के बहुत
अधिक महत्त्व की ओर ध्यान न दिया जाएगा, और प्रत्येक चीज़ वैसी ही मान ली
जाएगी जैसी यह रोगी के अपने अहम् को दिखाई देती है। अब यह स्पष्ट है कि
उसका अहम् विश्वसनीय और निष्पक्ष प्रमाण नहीं है। आखिरकार अहम् वही बल
है जो अचेतन के अस्तित्व से इन्कार करता है और जिसने इसका दमन कर रखा
है। तो फिर, जहां अचेतन का सम्बन्ध है, वहां हम इसकी ईमानदारी का कैसे
भरोसा कर सकते हैं? जिसका दमन किया गया है, उसमें सबसे मुख्य चीज़ यौन
प्रवृत्ति ही है। यह बिलकुल साफ है कि हमको, इस मामले में अहम् का जो दृष्टि-
कोण है उससे, उस दमित यौन प्रवृत्ति की मात्रा और उसके महत्त्व का कभी भी
पता नहीं चल सकता। जैसे ही हमें दमन की प्रवृत्ति या स्वरूप समझ में आने
लगता है, वैसे ही हमसे कहा जाता है कि द्वन्द्व में लगे हुए दोनों पक्षों में से किसी एक
को, और विशेष रूप से विजयी पक्ष को अधिक महत्त्व न दो। हमें पहले ही य
चेतावनी दे दी जाती है कि अहम् जो कुछ हमें बताता है, उसमें हम गलत रास
पर न चल पड़ें। अहम् की गवाही के अनुसार ऐसा प्रतीत होगा कि जैसे यह
रे समय सक्रिय बना रहा है, और लक्षण इसीकी इच्छा से और इसीके द्
होते हैं। हम जानते हैं कि बहुत सीमा तक इसने निष्क्रिय रहकर कार्य कि
*, और इस तथ्य को यह उस समय छिपाने की कोशिश करता और अपनी
है। यह सच है कि यह सदा अपने इस दिखावटी रूप को कायम :
—मनोग्रस्तता-रोग के लक्षणों में यह स्वीकार कर लेता है कि इसका।
वला हो रहा है, जिसका यह डटकर प्रतिरोध करता है।
े झूठी बातों को उनके पूरे अर्थ में न लेने की चेतावनी दी

ध्यान नहीं देता, वह निश्चित ही आराम से बनता जाता है। उसे उस सारे विरोध का सामना नहीं करना पड़ेगा, जो मनोविश्लेषण का अचेतन, यौन प्रवृत्ति और अहम् के निष्क्रिय रूप पर बल देने के कारण भुगतना पड़ता है। वह एलफ्रेड एडलर के इस विचार से सहमत हो सकता है कि 'स्नायविक चरित' स्नायु-रोग का परिणाम न होकर कारण है, पर वह लक्षण-निर्माण की एक भी ब्यौरे की बात या एक भी स्वप्न की व्याख्या नहीं कर सकेगा।

आप पूछेंगे, 'क्या यह नहीं हो सकता कि मनोविश्लेषण द्वारा प्रकट की गई अन्य व्याख्याओं को पूरी तरह उपेक्षित किए बिना स्नायविकता और लक्षण-निर्माण में अहम् के कार्य को ठीक रूप में समझा जा सके ?' मेरा उत्तर यह है, 'ऐसा हो सकना चाहिए और किसी न किसी समय यह किया भी जाएगा, पर मनोविश्लेषण के करने के लिए जो काम इस समय पड़ा है, वह यहां से करना उपयुक्त नहीं है।' यह भविष्यवाणी अवश्य की जा सकती है कि किस जगह जाकर इस काम को भी इसमें शामिल कर लिया जाएगा। कुछ और स्नायु-रोगी हैं जिन्हें हम स्वरतिक (नारसिसिस्टिक) स्नायु-रोग कहते हैं, जिनमें अहम् उन स्नायु-रोगों की अपेक्षा, जिनपर हमने पहले विचार किया है, अधिक गहरा उलझा होता है। इन रोगों की विश्लेषण द्वारा जांच करके हम अधिक निष्पक्ष और विश्वसनीय रूप से यह निश्चित कर सकते हैं कि स्नायु-रोगों में अहम् का कितना कार्य होता है।

परन्तु अपने स्नायु-रोग से अहम् के जो सम्बन्ध हैं, उनमें से एक इतना प्रमुख था कि यह शुरू से पूरी तरह समझ में आता था। यह कभी भी अनुपस्थित नहीं प्रतीत होता, पर सबसे अधिक स्पष्ट रूप से यह उस रोग में दिखाई देता है, जिसे हम उपघातज स्नायु-रोग कहते हैं और जिसे हम समझ नहीं सकेंगे। आपको यह जानना चाहिए कि स्नायु-रोग के सब विविध रूपों के कारणों और तंत्रों में बार-बार वही कारक क्रिया करते दिखाई देते हैं। बात इतनी ही है कि किसी प्ररूप में कोई एक कारक और किसी प्ररूप में कोई दूसरा कारक लक्षण-निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। यह बिलकुल उसी तरह की बात है जैसी किसी थियेटर कम्पनी के कार्यकर्ताओं में होती है। प्रत्येक कार्यकर्ता एक विशेष प्रकार का पार्ट लेता है—नायक का, विदूषक का, खलनायक का आदि। उनमें से प्रत्येक अपने लिए कोई एक काम चुन लेता है। इस तरह कल्पनाएं, जो लक्षणों में रूपान्तरित होती हैं, किसी रोग में इतनी व्यक्त नहीं होतीं, जितनी हिस्टीरिया में। 'प्रति आवेश' (एण्टी-कैथेक्सिस) या अहम् के प्रतिक्रिया-निर्माण मनोग्रस्तता रोग के चित्र में सबसे प्रधान होते हैं; जिस तन्त्र को स्वप्नों में 'परवर्ती विशदन' कहा गया था, वह पैरानोइया के भ्रमों में सबसे प्रमुख होता है।

उपघातज स्नायु-रोगों में, विशेष रूप से उनमें, जो युद्ध के आतंक में पैदा होते हैं, एक स्वार्थपूर्ण अहम्मूलक प्रेरक भाव, रक्षा और अपने हित की दिशा में

होने वाला प्रयत्न, विशेष रूप से दिखाई देता है। शायद यह अकेला रोग को
जगह न दे सकना, यह रोग को अपना सहारा दे देता है, और एक बार रोग
बन जाने के बाद यह उसे कायम रखता है। इस प्रवृत्ति का लक्ष्य अहम् को उन
खतरों से बचाना है जो अपनी अनिश्चितता से रोग पैदा करते हैं। यह तब तक
इलाज भी नहीं होने देता जब तक कि उन खतरों का फिर पैदा न होना असम्भव
न लगने लगे, या उठाए गए खतरे के बदले में कोई क्षति-पूर्ति न मिल जाए।

अहम् स्नायु-रोग और सब रूपों के जन्म और पोषण में भी इसी तरह की
दिलचस्पी रखता है। हम पहले कह चुके हैं कि अहम् लक्षणों को इसलिए सहारा
देता है क्योंकि इनके एक पहलू से दमनकारी अहम् प्रवृत्ति को सन्तुष्टि मिलती है।
इसके अलावा लक्षण-निर्माण द्वारा द्वन्द्व का समाधान सबसे अधिक सुविधाजनक
और सुख-सिद्धान्त के सबसे अधिक अनुसार है, क्योंकि इससे निःसन्देह अहम् बहुत
कठोर और कष्टदायक भीतरी श्रम से बच जाता है। सचमुच ऐसे रोगी आए हैं
जिनमें स्वयं डाक्टर को यह मानना पड़ता है कि स्नायु-रोग द्वारा द्वन्द्व का समाधान
सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक हानिरहित और सबसे अधिक सह्य है। इसलिए
यह सुनकर आश्चर्य मत कीजिए कि कभी-कभी डाक्टर स्वयं उस रोग का समर्थक
बन जाता है, जिसको वह दूर कर रहा है। वह जीवन की सब स्थितियों में स्वास्थ्य
के बारे में कठमुल्लापन नहीं अपना सकता। वह जानता है कि दुनिया में स्नायु
रोग के कष्ट के अलावा और दूसरे कष्ट भी हैं जो वास्तविक और अटल हैं, अ
आवश्यकता मनुष्य से यह भी कह सकती है कि वह इन कष्टों पर अपना स्वास
कुर्बान कर दे, और डाक्टर जानता है कि एक आदमी के इस तरह कष्ट स
से दूसरे बहुत सारे लोग असीम कष्ट से बच सकते हैं। इसलिए, यद्यपि
स्नायु-रोगी के बारे में कहा जा सकता है कि उसने 'रोग में पलायन' कि
अर्थात रोग को कष्ट कम करने वाला समझकर उसमें पलायन किया है
यह मानना ही होगा कि बहुत-से रोगियों में यह पलायन पूर्णतया उचित
है, और जिस डाक्टर ने इस हालत को समझ लिया, वह बिना कुछ कहे अ
रोगी के हित का विचार करके इलाज से हाथ खींच लेगा।

पर इन अपवादों की ओर ध्यान न देकर हमें आगे विचार करना चाहिए
सामान्यतया यह दिखाई देता है कि स्नायु-रोग में पलायन करके अहम् को एक त
का भीतरी 'रोग-लाभ' अर्थात् रोग के द्वारा सुविधा मिल जाती है। कुछ अ
स्थाओं में मूर्त बाहरी लाभ जो यथार्थता में कभी कम और कभी अधिक म
का होता है, इसके साथ जुड़ा हुआ हो सकता है। इस तरह का आम उदा
लीजिए। जिस स्त्री से उसका पति क्रूर व्यवहार करता है और निर्दयन
उसका शोषण करता है, वह प्रायः सदा स्नायु-रोग में शरण लेती है, ब
उसका स्वभाव इसे ग्रहण कर सके। यह बात तब होती है जब वह स्त्री

कायर या इतनी रूढ़ संस्कारों वाली हो कि दूसरे मर्द के साथ गुप्त रूप से अपनी सन्तुष्टि न कर सके, वह इतनी शक्तिशाली न हो कि अपने पति से अलग होने के विरोधी सब बाहरी कारणों को चुनौती दे सके, और उससे अलग हो सके, यदि उसे अपना भरण-पोषण कर सकने या अधिक अच्छा पति पा सकने की आशा न हो, और सबसे अन्तिम बात यह है कि यदि वह अब भी यौन दृष्टि से इस क्रूर व्यक्ति के प्रति प्रबल अनुराग न रखती हो। उसका रोग अपने पति के विरुद्ध किए जा रहे द्वन्द्व में उसका ऐसा हथियार बन जाता है जिसका वह अपनी रक्षा के लिए उपयोग कर सकती है, या बदला लेने के लिए दुरुपयोग कर सकती है। वह अपने रोग की शिकायत कर सकती है, यद्यपि सम्भवतः उसे अपने विवाह करने की शिकायत का साहस न होगा। उसका डाक्टर उसका सहायक है। उसके पति को, जो वैसे इतना निर्दय है, उसे छुट्टी देनी पड़ती है, उसपर पैसा खर्च करना पड़ता है, उसे घर से अनुपस्थित रहने की छूट देनी पड़ती है, और इस प्रकार विवाह के अत्याचार से उसे स्वतन्त्रता मिलती है। जहां रोग के कारण मिलने वाली यह बाहरी या 'दुर्घटनामूलक' सुविधा जरा भी अधिक होती है, और यथार्थ जीवन में ऐसी सुविधा देने वाली स्थानापन्न वस्तु नहीं मिलती, वहां आप अपनी चिकित्सा द्वारा इस स्नायु-रोग का इलाज करने की बहुत आशा न रखिए।

अब आप कहेंगे कि मैंने 'रोग द्वारा लाभ या सुविधा' के बारे में अभी जो कुछ कहा है, उससे उस विचार की पुष्टि होती है जिसे मैंने अभी अस्वीकार किया था, अर्थात् यह कि अहम् स्वयं स्नायु-रोग को चाहता है, और इसे जन्म देता है। पर जरा ठहरिए। शायद इसका सिर्फ यह तात्पर्य है कि अहम् स्नायु-रोग को, जिसे रोकने में वह हर सूरत में असमर्थ है, स्वीकार करके प्रसन्न होता है, और यदि उसका कुछ लाभ उठाया जा सकता है तो वह उसका अधिक से अधिक लाभ उठाता है। यह तो बात का सिर्फ एक पहलू है। जहां तक यह प्रश्न है कि रोग से सुविधा या लाभ है, वहां तक यह ठीक है कि अहम् स्नायु-रोग से दोस्ती रखकर बिलकुल सुख रहता है। पर इसके साथ होने वाले बलाओं और असुविधाओं पर भी विचार करना होगा। आम तौर से शीघ्र ही यह दीख जाता है कि स्नायु-रोग को स्वीकार करके अहम् ने नुकसान का सौदा किया है। इसने द्वन्द्व के समाधान की बहुत भारी कीमत चुकाई है। लक्षणों के कारण होने वाले कष्ट शायद उतने ही खराब हैं जितना वह द्वन्द्व था जिसके स्थान पर ये आ गए हैं, और बहुत हद तक ये उससे बहुत खराब भी हो सकते हैं। अहम् लक्षणों के दुःख से छूटना चाहता है, पर इसको रोग द्वारा दत्त सुविधा या रोगजनित लाभ नहीं छोड़ना चाहता है, और इसीमें उसे सफलता नहीं हो सकती। इसलिए ऐसा दिखाई देता है कि इस सारे मामले में अहम् का कर्तृत्व ऐसा नहीं रहा जैसा कि उसने समझा था; और हमें यह बात ध्यान में रखनी है।

यदि डाक्टर का कार्य करते हुए आपको स्नायु-रोगियों के बहुत इलाज करने

पड़े तो शीघ्र ही आप यह आशा करना छोड़ देंगे कि जो लोग अपने रोग की बहुत अधिक शिकायत करते हैं, वे आपकी सहायता लेने को सबसे अधिक तत्पर होंगे, और सबसे कम कठिनाई पैदा करेंगे—बात इससे बिलकुल उलटी होगी। सब उदाहरणों में आप आसानी से समझ जाएंगे कि जिस चीज़ से रोगजनित लाभ को सहायता मिलती है, वह दमनों से उत्पन्न प्रतिरोध को और ताकत देती है, और इलाज करने की दिक्कतें बढ़ा देती है, एक और तरह का रोगजनित लाभ भी है जो लक्षण के साथ पैदा होने वाले लाभ के बाद आता है। जब रोग जैसा मानसिक संगठन काफी समय से चला आता है, तब अन्त में वह एक स्वतन्त्र सत्ता का सा स्वरूप प्राप्त करता मालूम होता है। इसमें आत्मसंरक्षण की सी निसर्ग-वृत्ति दिखाई देती है। यह मानसिक जीवन के दूसरे बलों के साथ, यहां तक कि उनके साथ भी जो बुनियादी तौर से इसके विरोधी हैं, एक तरह की संधि कर लेता है, और ऐसे मौके आते रहते हैं जिनमें यह एक बार फिर उपयोगी और समयोचित दिखाई देता है, और इस तरह इसे एक द्वितीय कार्य या गौण कार्य मिल जाता है जो इसकी स्थिति को फिर मज़बूत बनाता है। रोग-शास्त्र का उदाहरण लेने के बजाय हम रोज़ाना के जीवन का एक प्रमुख उदाहरण लेंगे। कोई समर्थ मज़दूर, जो अपनी जीविका कमाता है, अपने रोज़गार में होने वाली किसी दुर्घटना से अंग-हीन हो जाता है। वह अब काम नहीं कर सकता, पर उसे मुआवज़े के रूप में थोड़ी-सी सहायता मिलती है, और वह यह सीख जाता है कि अपनी अंगहीनता का, भिखारी बनकर, किस तरह लाभ उठाया जा सकता है। उसका नया जीवन इतना हीन दर्जे का है, तो भी वही चीज़ उसे सहारा देती है जिसने उसके पुराने जीवन को नष्ट किया है। अगर आप उसकी असमर्थता दूर कर दें तो वह कुछ समय के लिए अपनी जीविका से वंचित रह जाएगा, क्योंकि यह सवाल पैदा होगा कि क्या उसे अब भी उसका पहले वाला काम मिल सकेगा? जब किसी स्नायु-रोग में इस तरह रोग का द्वितीय या गौण लाभ उठाया जाने लगता है, तब हम उसे पहले वाले की कोटि में रख सकते हैं और दूसरा या गौण रोगजनित लाभ कह सकते हैं।

मैं आपको मोटे तौर से यह सलाह देना चाहता हूं कि रोगजनित लाभ के व्यावहारिक महत्त्व को आप बहुत तुच्छ न समझें, और साथ ही इसके सैद्धान्ति[...] महत्त्व से बहुत अधिक प्रभावित भी न हों। पहले दिए गए अपवादों के अलावा भी, इ[...] कारक से सदा उन दृष्टान्तों का स्मरण हो आता है, जो ओबरलैंडर ने फ्लीगे[...] ब्लैटर में 'पशुओं में बुद्धि' के बारे में दिए हैं। एक अरब एक सीधे पहाड़ के [...] और काटकर बनाए हुए सकरे रास्ते पर ऊंट पर चढ़ा जा रहा है। रास्ते के [...] मोड़ पर एकाएक उसे अपने सामने एक शेर दिखाई देता है, जो उस पर झपटने [...] तैयार है। भागने का कोई रास्ता नहीं, एक ओर खड्ड है और दूसरी ओर [...] पहाड़। पीछे लौटना और भागना भी असम्भव है। [...] अब छोड़[...]

है पर ऊट ऐसा नहीं करता। वह अपने सवार सहित गड्ढ में कूद पड़ता है और शेर देखता रह जाता है। साधारणतया स्नायु-रोग द्वारा प्रस्तुत उपाय रोगी को अधिक लाभ नहीं पहुंचाएगा। शायद इस कारण कि आखिरकार लक्षण-निर्माण द्वारा द्वन्द्व का समाधान एक स्वतः होने वाला प्रक्रम है, जो जीवन की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए अपर्याप्त सिद्ध हो सकता है, और जिसके होने से मनुष्य को अपनी सर्वोत्तम और उच्चतम शक्तियां त्यागनी पड़ती हैं। यदि चुनाव का मौका हो तो अधिक सम्मान की बात यह होगी कि वह नियति से धर्मयुद्ध करता हुआ गिरे।

अपनी बात साधारण स्नायविकता से शुरू न करने का एक और भी कारण मैं आपको बताना चाहता हूं। शायद आप यह समझते हों कि मैंने इस कारण ऐसा नहीं किया कि उस तरह स्नायु-रोगों के यौन उद्गम की गवाही पेश करना कुछ ज्यादा मुश्किल होता। पर ऐसा समझना गलत है। स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में लक्षणों को, निर्वचन पर पहुंचने से पहले, निर्वचन के लिए पेश करना पड़ता है; पर जिन्हें असली स्नायु-रोग[1] कहते हैं, उनके साधारण रूपों में यौन जीवन का कारणात्मक महत्त्व इतना साफ दिखाई देता है कि उसी ओर ध्यान खिंच जाता है। यह बात मुझे बीस वर्ष पहले पता चली थी, जब एक दिन मैं आश्चर्य से यह सोच रहा था कि स्नायु-रोगियों की परीक्षा करते हुए हम उनके यौन जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सब बातों को क्यों सदा विचार से बाहर छोड़ देते हैं। पर इस प्रश्न पर जांच करने से मेरे रोगियों में मेरी लोकप्रियता कम हो गई। लेकिन बहुत थोड़े-से समय में अपनी कोशिशों से मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि: जहां यौन जीवन प्रकृत है, वहां कोई स्नायु-रोग—मेरा मतलब है असली स्नायु-रोग—नहीं होता। यह सच है कि इस कथन में लोगों के व्यक्तिगत अन्तरों को बिलकुल भुला दिया गया है, और इसमें यह भी दोष है कि 'प्रकृत' शब्द का सुनिश्चित अर्थ निर्धारित नहीं है; पर मोटे तौर पर, इसका आज तक वह महत्त्व कायम है। उस समय मैंने यहां तक किया कि स्नायविकता के कुछ रूपों और कुछ हानिकारक यौन अवस्थाओं में विशिष्ट सम्बन्ध-सूत्र भी कायम किए। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यदि मेरे पास अब भी जांच की वैसी सामग्री हो तो मैं फिर वही परीक्षण कर सकता हूं। मैंने बहुत बार देखा कि जो आदमी किसी तरह की अधूरी यौन सन्तुष्टि से, उदाहरण के लिए हस्तमैथुन से, आनन्द पैदा करता है, उसमें असली स्नायु-रोग का एक निश्चित रूप होगा, और यदि वह यौन जीवन का उतना ही असन्तोषजनक कोई और तरीका अपना लेगा तो यह स्नायु-रोग भी झटपट दूसरा रूप धारण कर लेगा। उस समय मैं रोगी की अवस्था में होने वाले परिवर्तन से उसके यौन जीवन की रीति में परिवर्तन का अनुमान कर सकता था, और मैं तब तक अपने निष्कर्षों पर अड़ा रहता था, जब तक अपने रोगियों से इस बात की पुष्टि नहीं करा लेता

[1] Actual neuroses

था। यह सच है कि तब वे दूसरे डाक्टर ढूंढने का विचार करते थे, जो उनके यौन जीवन मे इतनी दिलचस्पी न रखें।

उस समय भी यह बात मेरे ध्यान मे आए बिना नही रही थी कि स्नायु-रोग का कारण सदा यौन जीवन ही नही दिखाई देता, ठीक है कि एक व्यक्ति किसी हानिकारक यौन अवस्था के कारण रोगी हो जाएगा, पर दूसरा आदमी इसलिए रोगी हो जाएगा कि उसकी सम्पत्ति नष्ट हो गई, या हाल मे ही उसे कोई सख्त मस्तिष्क-रोग हो गया था। इन विभिन्नताओं का स्पष्टीकरण बाद मे हुआ जब अहम् और राग मे जो परस्पर सम्बन्ध होने का सन्देह था, वे समझ मे आए। व्यक्ति तभी स्नायु-रोग से पीडित होता है जब अहम् की, राग को किसी न किसी तरह तृप्त करने की, क्षमता नष्ट हो जाती है। अहम् जितना अधिक शक्तिशाली होगा, वह उतनी ही आसानी से यह कार्य कर लेगा। अहम मे आने वाली प्रत्येक कमजोरी का, चाहे वह किसी भी कारण से आए, वही परिणाम होगा जो राग की आवश्यकता मे बढोतरी का, अर्थात् उससे स्नायु-रोग सम्भव हो जाएगा। अहम् और राग मे कुछ और भी, तथा घनिष्ट, सम्बन्ध हैं, जिनकी मैं इस समय चर्चा नहीं करूंगा, क्योंकि अपने विषय-विवेचन मे अभी हम वहा नहीं पहुंचे हैं। हमारे लिए सबसे अधिक सारभूत और सबमे अधिक शिक्षाप्रद बात यह है कि स्नायु-रोग के लक्षणों को सहारा देने वाला ऊर्जा-सचय, सदा, और चाहे वह स्नायु-रोग किसी भी परिस्थिति मे पैदा हुआ हो, राग द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है, जिसका इस तरह अप्रकृत प्रयोग होने लगता है।

अब मैं आपको असली स्नायु-रोगों के और मनोस्नायु-रोगों[1] के, जिनके पहले समूह (स्थानान्तरण स्नायु-रोगों) पर हम अब तक इतना विचार करते रहे, लक्षणों को निश्चायक अन्तर बताना चाहता हू। असली स्नायु-रोग और मनोस्नायु-रोग इन दोनों मे ही लक्षण राग से चलते हैं, अर्थात् वे इसका उपयोग करने के अप्रकृत तरीके हैं, इसकी सन्तुष्टि की स्थानापन्न वस्तु हैं, पर असली स्नायु-रोग के लक्षणों—सिरदर्द, दुःख का सम्वेदन, किसी अंग की सन्तापयोग्य[2] अवस्था, किसी कार्य का कमजोर हो जाना या निरोध—का मन मे कोई 'अर्थ' या तात्पर्य नहीं होता। इतना ही नहीं कि वे मुख्यतः शरीर मे प्रकट होते हैं, जैसाकि उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया के लक्षणों मे होता है, बल्कि वे स्वयं भी शुद्ध और बिल्कु शारीरिक प्रक्रम हैं। उनका जन्म इस तरह के उलझनदार मानसिक तत्रों के बि ही होता है, जिनका हमें यहां पता चला है। इसलिए वे वास्तव में वैसे सदा जैसा पहले मनोस्नायु-रोगों को बहुत समय तक समझा जाता रहा। पर कि उस राग की अभिव्यक्ति कैसे हो सकते हैं जिसे हमने मन में कार्य करते हुए दे

1. Psychoneuroses 2. Irritable

रूप मे जाना है ? असल मे, इसका जवाब बड़ा सरल है । मैं मनोविश्लेषण पर सबसे पहले की गई आपत्तियों में से एक आपत्ति की चर्चा करता हू। यह कहा गया था कि मनोविश्लेषण के सिद्धान्तो मे स्नायविक लक्षणों की सिर्फ मनोविज्ञान द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की गई है और इसलिए इससे कोई आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से कभी किसी भी रोग की पूरी व्याख्या नही की जा सकती। इन आलोचको ने इस बात को भुला दिया था कि यौन कार्य जैसे सिर्फ शारीरिक चीज नहीं है, उसी तरह सिर्फ मानसिक चीज भी नहीं है । यह जैसे मानसिक जीवन को प्रभावित करता है, वैसे ही शारीरिक जीवन को भी प्रभावित करता है । यह जान लेने पर कि मनोस्नायु-रोगों के लक्षण इस कार्य मे होने वाले किसी गड़बड़ के मानसिक परिणामो को प्रकट करते हैं, अब हमें यह देखकर आश्चर्य न होना चाहिए कि असली स्नायु-रोग यौन गड़बड़ियों के सीधे कायिक परिणामो को निरूपित करते हैं ।

चिकित्सा-शास्त्र से हमें असली स्नायु-रोगों को समझने की दिशा में एक उपयोगी संकेत मिलता है (जिसे बहुत सारे अनुसंधानकर्ताओं ने स्वीकार किया है) । उनके लक्षण-समूह का ब्यौरा और यह विशेषता कि उनका सब शारीरिक संस्थानों और कार्य पर एकसाथ असर पड़ता है, उन रोगात्मक अवस्थाओं से असंदिग्ध रूप से मिलती-जुलती है जो विजातीय टाक्सिनो के दीर्घकालीन प्रभाव से या एकाएक हट जाने से पैदा होती हैं, अर्थात् विषयुक्तता की या उस विष के अभाव की स्थितियों से असंदिग्ध रूप से मिलती-जुलती हैं । विकारो के इन दोनो समूहों में बैसेडो के रोग (अर्थात ग्रेव'स डिजीज या एक्साफथैलमिक गायटर) जैसी अवस्थाओं से तुलना करने पर और भी अधिक सादृश्य दिखाई देते हैं—इस रोग की अवस्थाएं भी विष के प्रभाव से पैदा होती हैं, पर बाहर से प्राप्त विष से नही बल्कि उस विष से जो अन्दर के विपचन[1] से पैदा होता है । मेरी राय मे इन सादृश्यों से यह आवश्यक हो जाता है कि हम स्नायु-रोगों को यौन विपचन में होने वाले विक्षोभों का परिणाम मानें—ये विक्षोभ या तो इस कारण पैदा होते हैं कि व्यक्ति जितने यौन टाक्सिनों को दूर कर सकता है, उससे अधिक यौन टाक्सिन पैदा हो जाते हैं । अथवा, इनका कारण वे आन्तरिक और मानसिक अवस्थाएं हैं जो इन पदार्थों को उचित रीति से दूर करने में बाधा डालती हैं । यौन इच्छा के स्वरूप के बारे में ऐसी धारणाएं लोग आदिकाल से मानते आए हैं ; प्रेम को 'मद' कहा जाता है; यह 'दवा के घूट' लेने से पैदा हो सकता है—इन धारणाओं में कार्य करने वाले साधन को कुछ सीमा तक बाहरी दुनिया पर प्रक्षेपित कर दिया गया है । यहां हमें कामजनक क्षेत्रों का स्मरण आता है और इस कथन का ध्यान आता है कि यौन

१. Metabolism

उत्तेजन अनेक अंगो मे पैदा हो सकता है। इससे आगे 'यौन विपचन' या 'कामु-
कता के रसायन-शास्त्र' की बात बिलकुल खोजनी है; हमे इसके बारे मे कुछ
पता नही है, और हम यह भी तय नही कर सकते कि दो प्रकार के यौन पदार्थ
माने जाए जिन्हे 'नर' या 'स्त्री' कहा जाए, या रोग से पैदा होने वाले सब उद्दी-
पनो का कारण एक यौनटाक्सिन मानकर संतोष कर लिया जाए। हमने मनो-
विश्लेपण सिद्धान्त का जो भवन खड़ा किया है, वह वास्तव मे सिर्फ ऊपरी
ढाचा है, जिसे कभी न कभी इसकी शारीरिक बुनियाद पर जमाना होगा, प
यह बुनियाद अभी हमे अज्ञात है।

विज्ञान के रूप मे मनोविश्लेपण की विशेपता इसकी कार्य करने की विधि
है, इसकी वर्णित वस्तु नहीं। इन विधियो का जो सारभाग है, वह सभ्यता के
हास पर, धर्म-विज्ञान पर तथा पुराण-शास्त्र पर उसी तरह लागू किया जा स
है, जैसे स्नायु-रोगो के अध्ययन पर। मनोविश्लेपण का लक्ष्य और सफलता
सिक जीवन मे अचेतन की खोज ही है, और कुछ नही। असली स्नायु-रो
समस्या, जिसमे लक्षण सम्भाव्यत सीधे टाक्सिक, अर्थात् विष प्रभावजनित
से पैदा होते हैं, मनोविश्लेपण के विचारणीय विषय नही। इससे उनपर क
रोशनी नही पड सकती, और इसे वह काम जैविकीय तथा चिकित्सा
गवेपणा के लिए ही छोड देना होगा। शायद अब आप यह बात अधिक
तरह समझ गए होगे कि मैंने अपने विषय-प्रतिपादन के लिए यह सिलसिला क्यो
चुना। यदि मेरा विचार स्नायु-रोगों के अध्ययन की भूमिका पेश करना होता तो
निस्सन्देह यही ठीक होता कि मैं पहले (असली) स्नायु-रोगो के सरल रूप पेश
करता और फिर उनसे चलकर राग के विक्षोभो से पैदा होने वाले अधिक उलझे
हुए मनोधात्वीय विकारों पर पहुचता। पहले विषय के बारे में मुझे अनेक स्थानो
से वह सामग्री जमा करनी पड़ती, जो उनके बारे मे हम जानते हैं, या हम सम-
झते हैं कि हम जानते हैं, और इन पिछले स्नायु-रोगो के बारे मे विचार करते हु
इन अवस्थाओ के रहस्य को समझने के सबसे महत्वपूर्ण टेक्नीकल साधन के रू
मे मनोविश्लेपण को पेश करना पडता, पर मुझे मनोविश्लेपण की भूमिका
परिचय देना था, और ऐसा ही मैंने कहा भी था। आपको स्नायु-रोगों के बारे
कुछ समझा देने की अपेक्षा मैंने आपको मनोविश्लेपण की एक रूपरेखा देना अधि
महत्वपूर्ण समझा, और इसलिए असली स्नायु-रोग, जिनसे मनोविश्लेपर
अध्ययन मे कोई मदद नही मिलती, उचित रूप मे सामने न लाया जा स
मैं यह भी समझता हूं कि मेरा चुनाव आपके लिए अधिक उपयोगी था, क
मनोविश्लेपण की क्रान्तिकारी स्वयंसिद्धिया और दूरगामी सम्बन्ध-सू
प्रत्येक शिक्षित की दिलचस्पी का पात्र बनाते हैं, पर स्नायु-रोगो का
और चीजों की तरह चिकित्सा-शास्त्र का ही एक प्रकरण है।

फिर भी, आपका यह आशा करना उचित है कि हमे असली स्नायु-रोगो मे कुछ दिलचस्पी होनी चाहिए। मनोस्नायु-रोगो के साथ उनके निकट सम्बन्ध के कारण भी इसकी आवश्यकता है। तो मैं आपको यह बताऊंगा कि असली स्नायु-रोग के हम तीन शुद्ध रूप मानते हैं: न्यूरॅस्थीनिया या स्नायु-दुर्बलता, चिन्ता-स्नायु-रोग और हाइपोकोन्ड्रिया या उदासी रोग। इस वर्गीकरण पर भी आपत्ति उठाई गई है। ये शब्द निश्चित रूप से प्रयोग मे आते हैं, पर उनका अर्थ अस्पष्ट और अनिश्चित है। कुछ डाक्टर ऐसे हैं जो स्नायविक रोगो की उलझनदार दुनिया मे कोई भी भेद करने के विरोधी हैं, जो रोग-सत्ताओ या रोग-प्ररूपों मे कोई भी विवेक करने पर आपत्ति उठाते हैं, और असली स्नायु-रोगो और मनो-स्नायु-रोगो का भेद भी नही मानते। मेरी राय मे वे क्षति करते हैं, और उन्होने जो दिशा चुनी है, वह तरक्की मे सहायक नहीं हो सकती। ऊपर बताए गए तीन प्रकार के स्नायु-रोग बहुत बार शुद्ध रूप मे पाए जाते हैं। यह सच है कि वे अधिकतर एक-दूसरे से और किसी मनोस्नायु-रोग से मिले हुए होते हैं। इस तथ्य के कारण हमें उनमें विभेद करना ही नही छोड देना चाहिए। विज्ञान मे खनिज-शास्त्र के खनिजो और कच्ची धातु के अन्तर पर विचार कीजिए खनिजों का अलग-अलग वर्गीकरण किया जाता है, जिसका एक कारण यह है कि वे बहुत बार ऐसे मणियों[1] के रूप में पाए जाते हैं जो अपने आसपास की और वस्तुओं से स्पष्टत भिन्न होते हैं; कच्ची धातु मे खनिज मिले हुए होते हैं, जो अकस्मात् नहीं मिल गए हैं, बल्कि अपने निर्माण के समय की अवस्थाओ के अनुसार मिले हैं। स्नायु-रोगों के सिद्धान्त मे स्नायु-रोगो के परिवर्धन के प्रक्रम के बारे मे हमें इतनी थोड़ी जानकारी है कि अपने कच्ची धातु सम्बन्धी ज्ञान की तरह हम कोई ज्ञान क्रमबद्ध नहीं कर सकते, पर लक्षणो के समूह मे से पहचान योग्य रोग-लक्षणो को, जिनकी अलग-अलग खनिजो से तुलना की जा सकती है, पहले अलग कर लेना निश्चित ही सही दिशा मे कदम उठाना है।

असली स्नायु-रोगो और मनोस्नायु-रोगों के बीच मौजूद एक ध्यान देने योग्य सम्बन्ध-सूत्र से मनोस्नायु-रोगों मे लक्षण-निर्माण के बारे मे कीमती सहायता मिलती है; असली स्नायु-रोग का लक्षण बहुधा मनोस्नायु-रोग के लक्षण का नाभिक या केन्द्र और प्रारम्भिक अवस्था होता है। इस तरह का सम्बन्ध-सूत्र स्नायु-दुर्बलता और उस स्थानान्तरण स्नायु-रोग मे, जिसे कन्वर्शन-हिस्टीरिया कहते हैं, चिन्ता-स्नायु-रोग और चिन्ता-हिस्टीरिया मे बहुत स्पष्ट रूप मे रखा जा सकता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह उदासी या हाइपोकोन्ड्रिया मे और पैराफ्रेनिया (डेमेन्शिया प्रिकोक्स और पैरानोइया) नामक स्नायु-रोग के रूपों मे भी पाया

1. Crystal

जाता है, जिसपर हम आगे चलकर विचार करेंगे। उदाहरण के लिए, हिस्टीरि
वाले का सिर-दर्द या पीठ-दर्द ले लीजिए। विश्लेषण से पता चलता है कि सघनन
और विस्थापन द्वारा यह एक पूरी की पूरी रागात्मक कल्पनाओं, या स्मृतियों की
सारी की सारी शृंखला के लिए स्थानापन्न सन्तुष्टि बन गया है, पर किसी समय
यह दर्द वास्तविकता था, एक यौन टाक्सिन का प्रत्यक्ष लक्षण था, एक यौन उत्तेजन
का शारीरिक प्रकाशन था। हम यह नहीं मानते कि हिस्टीरिया के सब लक्षणों
में इस तरह का एक नाभिक होता है, पर बहुधा यह बात सच होती है और
शरीर पर रागात्मक उत्तेजन के जो भी स्वस्थ या रोगात्मक परिणाम होते हैं,
वे हिस्टीरिया के लक्षण-निर्माण के प्रयोजन पूरे करने के लिए विशेष रूप से
अनुकूल बने हुए होते हैं। सम्भोग-कार्य के साथ होने वाले यौन उत्तेजन के अन्दर
चिह्न उसी तरह लक्षण-निर्माण के लिए सबसे अधिक उपयुक्त और सुविधाज
सामग्री के रूप में मनोस्नायु-रोग को लाभ पहुंचाते हैं।

इसी तरह का एक प्रक्रम निदान और चिकित्सा की दृष्टि से विशेष महत्व
का है। उन व्यक्तियों में, जिनमें स्नायविक होने की प्रवृत्ति मौजूद रहती है, प
जिनमें अभी बड़े पैमाने पर कोई स्नायु-रोग परिवर्धित नहीं हुआ है, प्राय
से कोई अस्वस्थ शरीरावस्था—शायद कोई प्रदाह या चोट लक्षण-निर्माण
काम को चालू कर देती है। इसके परिणामस्वरूप, स्नायु-रोग अपर्याप्त
प्रस्तुत किए गए लक्षण पर तेजी से झपट पड़ता है और इसे उन अचेतन कल
को निरूपित करने में प्रयुक्त करता है जो अभिव्यक्ति के किसी साधन की
में चुप पड़ी थीं। इस तरह की अवस्था में डाक्टर पहले एक पद्धति
करेगा, फिर दूसरी से। वह या तो उस शारीरिक आधार को खत्म
कोशिश करेगा, जिसपर लक्षण खड़ा है और इसके मुखर स्नायविक
बारे में परेशान नहीं होगा, अथवा स्नायु-रोग का इलाज करेगा जो अ
पैदा हो गया है, और उस शारीरिक उद्दीपन को एक ओर छोड़ दे
...ति किया है। कभी एक रीति सफल होगी, और कभी दूसरी
...ल्पित माना जाएगा। इस तरह के मिले-जुले केसों
... जा सकता।

चिन्ता

मैंने सामान्य स्नायविकता के बारे में अपने पिछले व्याख्यान में आपको जो कुछ बताया था, उसे आपने मेरे सब वर्णनों में सबसे अधिक अपर्याप्त और अधूरा समझा होगा। मैं जानता हूं कि यह ऐसा ही था, और मुझे आशा है कि आपको यह देखकर सबसे अधिक आश्चर्य हुआ होगा कि मैंने चिन्ता का कोई उल्लेख नहीं किया, जिसकी सब स्नायविक लोग शिकायत करते हैं और जिसे वे अपना सबसे भयंकर दुश्मन बताते हैं। चिन्ता (या त्रास अर्थात् घोर चिंता) सचमुच बड़ा तीव्र रूप धारण कर सकती है, और परिणामतः बड़ी पागलपन भरी सतर्कताओं का कारण बन सकती है, पर कम से कम इस मामले में, मैं आपको थोड़े में नहीं टालना चाहता था। इसके विपरीत, मैंने स्नायविक चिन्ता की समस्या आपके सामने यथासम्भव स्पष्ट रूप से पेश करने का और उसपर बारीकी से विचार करने का निश्चय किया हुआ था।

चिन्ता (या त्रास) का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं, हर व्यक्ति ने किसी न किसी समय इस संवेदन को, या अधिक सही रूप में कहा जाए तो इस भाव दशा को स्वयं अनुभव किया है। पर मेरी राय में इस बात पर काफी गम्भीर विचार नहीं हुआ कि स्नायविक लोग ही चिन्ता से, औरों की अपेक्षा मात्रा में और तीव्रता में अधिक, नष्ट क्यों पाते हैं ? शायद यह तो स्वयंसिद्ध मान लिया गया है कि उन्हें यह कष्ट होना ही चाहिए। सच पूछिए तो चिन्ता और स्नायविकता शब्द एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त कर दिए जाते हैं, मानो उनका एक ही अर्थ हो, परन्तु यह उचित नहीं। कुछ लोग चिंतायुक्त होते हैं, पर वे स्नायविक (नर्वस) नहीं होते; और इसके अलावा, ऐसे स्नायु-रोगी होते हैं जिनमें बहुत-से लक्षण होते हुए भी चिंतित या त्रस्त होने की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती। जो कुछ भी हो, पर एक बात निश्चित है कि चिन्ता या त्रास की समस्या वह केन्द्र-बिन्दु है जो सब तरह के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को एक सिलसिले में बांध देता है। यह एक ऐसी समस्या है जिसके हल होने से हमारे सारे मानसिक जीवन पर अवश्य ही बहुत

अधिक प्रकाश पड़ेगा। मेरा यह दावा नहीं है कि मैं इसका कोई त्रुटिहीन समाधान पेश कर सकता हूं, पर आप यह आशा अवश्य करते होंगे कि मनोविश्लेषण ने इस समस्या पर भी चिकित्सा-शास्त्र की प्रचलित रीति से भिन्न प्रकार से विचार किया होगा। चिकित्सा-शास्त्र में मुख्य बात उन शारीरिक प्रक्रमों को माना जाता है, जिनसे चिंता वाली अवस्था पैदा होती है। हमें पढ़ाया जाता है कि मेडुला ओब्लोंगेटा, अर्थात् मस्तिष्क-पुच्छ, उद्दीपित हो जाता है, और रोगी को बताया जाता है कि तुम्हें वेगसस्नायु में स्नायु-रोग है। मस्तिष्क-पुच्छ एक आश्चर्यकारक और सुन्दर वस्तु है। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने वर्षों पूर्व इसके अध्ययन पर कितना समय और श्रम लगाया था, पर आज मुझे यह कहना पड़ता है कि चिन्ता के मनोवैज्ञानिक रूप को समझने के लिए, जिन स्नायु-मार्गों से उत्तेजन चलते हैं, उनकी जानकारी सबसे अधिक महत्त्वहीन है।

चिंता या त्रास और स्नायविकता में अन्तर करना चाहिए। चिंता को 'वस्तुनिष्ठ या आलम्बननिष्ठ चिंता' समझना चाहिए, और स्नायविकता को स्नायविक चिंता कहना चाहिए। बात यह है कि यथार्थ या वास्तविक चिंता या त्रास हमें बिलकुल स्वाभाविक और बुद्धिसंगत चीज प्रतीत होता है। इसे किसी बाहरी खतरे या किसी आघात के, जिसकी सम्भावना है, और जो पहले ही पता चल रहा है, ज्ञान की प्रतिक्रिया कहना चाहिए। यह पलायन के रिफ्लेक्स अर्थात् प्रतिक्षेप के साथ जुड़ा है, और इसे आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्ति की अभिव्यक्ति माना जा सकता है। इसके अवसर, अर्थात् वे वस्तुएं और स्थितियां, जिनके बारे में चिंता महसूस की जाती है, स्पष्टतः बाहरी दुनिया के बारे में व्यक्ति की जानकारी और शक्ति की अनुभूति की अवस्था पर बहुत दूर तक निर्भर है। हमें यह बात बिलकुल स्वाभाविक लगती है कि कोई जंगली आदमी तोप या सूर्य-ग्रहण को देखकर डर जाए, पर पढ़ा-लिखा आदमी, जो तोप को चला सकता है, और सूर्य-ग्रहण की भविष्यवाणी कर सकता है, वैसी ही स्थिति में बिलकुल भी नहीं डरता। कभी-कभी ज्ञान ही भय पैदा करता है, क्योंकि यह खतरे को जल्दी ही प्रकट कर देता है। इस प्रकार जंगली आदमी जंगल में कोई पद-चिह्न देखकर आतंकित हो जाएगा, पर उसका अर्थ न जानने वाले बाहरी मनुष्य के लिए उसका कोई महत्त्व नहीं है; उसके लिए इसका इतना ही अर्थ है कि कोई जंगली पशु आसपास मौजूद है, और अनुभवी नाविक क्षितिज पर छोटा-सा मेघ-खण्ड देखकर चिंतित हो जाएगा क्योंकि इसका अर्थ यह है कि तूफान आने वाला है पर मुसाफिर के लिए इस मेघ-खण्ड का कोई अर्थ नहीं है।

परन्तु गहराई से विचार करने पर हमें अपने इस खयाल को ऊपर से नीचे

तक बदलना होगा कि आलम्बननिष्ठ चिंता बुद्धिगत और इष्टकर या वाछनीय है। खतरे को निकट देखकर इष्टकर या वाछनीय व्यवहार तो सचमुच यही होगा कि ठण्डे दिमाग से यह सोचा जाए कि आने वाले खतरे के मुकाबले में हमारे पास कितनी ताकत है, और फिर यह फैसला किया जाए कि सफलता की सबसे अधिक आशा पलायन से है, या बचाव से, या हमले से। पर त्रास का इसमे कोई स्थान नही है। प्रत्येक कार्य उतनी ही अच्छी तरह, बल्कि उससे भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकेगा, यदि त्रास पैदा न हो। आप यह भी देखेंगे कि जब त्रास अधिक होता है, तब वह बहुत ही अनिष्टकर हो जाता है। यह सारी क्रिया, यहा तक कि पलायन या भागने में भी असमर्थ कर देती है। खतरे की प्रतिक्रिया आमतौर से दो चीज़ों के मेल के रूप मे होती है—भय-मनोविकार और प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही, डरा हुआ पशु भयभीत होता है और भागता है, पर इसमे कष्टकर या वाछनीय बात भागना है, भयभीत होना नही।

इसलिए यह धारणा प्रबल हो जाती है कि चिन्ता पैदा होना कभी भी वांछनीय नहीं। शायद त्रास वाली स्थिति की अधिक बारीकी से छानबीन करने पर हम इसे अच्छी तरह समझ सकेंगे। इसके बारे में पहली बात खतरे के लिए 'तैयारी' है, जो पहले से अधिक तीव्र ज्ञानेन्द्रिय अवबोधन और कर्मेन्द्रिय तनाव के रूप में प्रकट होती है। यह सतर्क तैयारी स्पष्टतः लाभकारक होती है। सच पूछिए तो इसके अभाव मे बड़े गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। तब इसके बाद, एक ओर तो कर्मेन्द्रिय की क्रिया होती है, जो प्रथमतः भागने और ऊचे स्तर पर प्रतिरक्षा या बचाव की कार्यवाही के रूप में होती है, और दूसरी ओर, इसके बाद वह अवस्था पैदा होती है जिसे हम चिन्ता या त्रास का सवेदन कहते हैं। यह त्रास का परिवर्धन जितना ही क्षणिक और सकेतमात्र होता है, उतना ही यह सचित तैयारी की अवस्था मे क्रिया करने की अवस्था मे आने मे कम बाधा डालता है, और उतने ही अधिक वांछनीय रूप से सारा घटनाक्रम आगे बढ़ता है। इसलिए सचित तैयारी मुझे इष्टकर या वाछनीय अश प्रतीत होती है, और चिंता का परिवर्धन, या बढ़ना, अनिष्टकर या अवाछनीय अश मालूम होता है।

मैं यहा इस विवाद मे नही पड़ूगा कि चिंता (या त्रास)[1], भय[2] और डर[3] का आम प्रयोग मे एक ही अर्थ होता है, या अलग-अलग। मेरी राय में चिंता स्थिति या अवस्था से सम्बन्ध रखती है, और वह वस्तु या आलम्बन की ओर ध्यान नहीं देती, जबकि भय शब्द मे वस्तु या आलम्बन की ओर ध्यान जाता है; डर शब्द का तो एक विशेष अर्थ मालूम होता है, अर्थात् यह उस दशा से ही सम्बन्ध रखता है जो पहले सचित तैयारी बिना किए अप्रत्याशित रूप से आ पड़ने वाले खतरे से

---

१. Anxiety or Dread २. Fear ३. Fright

पैदा होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि चिन्ता डर से बचने का एक साधन है।

इसके अलावा मैं यह बात स्पष्ट कर दूंगा कि चिन्ता शब्द के प्रयोग में कुछ अस्पष्टता रहती है। साथ ही मैं यह समझा जाता है कि जिसे हमने 'वास्तविक' चिन्ता कहा है उसके स्थान में उत्पन्न व्यक्तिनिष्ठ या सार्वजनिक चिन्ता कि है। यह अवस्था एक भाव या मनोविकार कहलाती है, पर दुर्भाग्य से हमें भाव[1] या मनोविकार क्या होता है ? यह निश्चित ही एक संयुक्त चीज है। अगर मैं गहरे चलें तो, कुछ मांसस्नायु-उद्दीपन का विसर्जन होते हैं ; और फिर कुछ संवेदन होते हैं, जो स्वयं दो प्रकार के होते हैं—अंग-स्नायु द्वारा की गई क्रियाओं का प्रत्यवबोधन या ज्ञान, और वे प्रत्यक्ष रूप से सुखात्मक या दुःखात्मक संवेदन, जिनसे भाव में उसका 'प्रधान स्वर' पैदा होता है। पर मैं नहीं समझता कि यह वर्णन भाव के सारतत्व को स्पष्ट कर देता है। कुछ भावों में अधिक गहराई तक जाया जा सकता है, और यह देखा जा सकता है कि उस सारी संयुक्त संरचना को एक जगह बांधने वाली गांठ का स्वरूप किसी विशिष्ट, बहुत अर्थपूर्ण पूर्व अनुभव की पुनरावृत्ति या दोहराने का होता है। यह अनुभव किसी सार्वत्रिक प्रकृति का बहुत प्रारम्भिक काल का संस्कार ही हो सकता है, जो व्यष्टि के बजाय स्पीशीज के पूर्व इतिहास में रहा हो। अपनी बात अधिक साफ करने के लिए मैं यों कह सकता हूं कि भाव की अवस्था की रचना हिस्टीरिया के दौरे जैसी अर्थात् किसी संस्मरण का अवक्षेप होती है। इसलिए हिस्टीरिया के दौरे की तुलना किसी नवनिर्मित व्यक्तिगत भाव से की जा सकती है, और प्रकृत भाव की तुलना सार्वजनिक हिस्टीरिया से, जो मनुष्यमात्र को उत्तराधिकार में मिला है, की जा सकती है।

यह मत समझिए कि भावों के विषय में मैं जो कुछ बता रहा हूं, यह प्रकृत मनोविज्ञान की सामान्य सम्पत्ति है। इसके विपरीत, ये अवधारणा-मनोविश्लेषण की भूमि पर पैदा हुए हैं और ये यहीं देशज[2] हैं। मनोविज्ञान भावों के विषय में जो कुछ कहता है—उदाहरण के लिए, जेम्स लागे सिद्धान्त—वह हम मनोविश्लेषकों की बिलकुल समझ में नहीं आता, और हमारे लिए उसपर विचार करना असम्भव है। पर हम भावों के विषय में जो कुछ जानते हैं, वह कोई अन्तिम रूप से निर्णीत बात नहीं है। यह तो इस रहस्यमय क्षेत्र में अपना पैर जमाने का आधार प्राप्त करने की पहली कोशिश है। अच्छा तो, हम समझते हैं कि हम यह जानते हैं कि इस चिंता-भाव में पुनरावृत्ति के रूप में पुनरुत्पादित होने वाला यह आदि संस्कार क्या है। हम समझते हैं कि यह जन्म का अनुभव है—यह ऐसा अनुभव है जिसमें दुःखात्मक भावनाओं का, उत्तेजन के विसर्जनों का, और शारीरिक संवेदनों का ऐसा गुम्फन हो जाता है कि यह उन सब अवसरों के लिए, जिनमें जीवन को खतरा

१. Affect २. Indigenous

होता है, एक मूल रूप बन जाता है, और फिर सदा हमारे अन्दर त्रास या 'चिंता' की अवस्था के रूप में बार-बार पुनरुत्पादित होता है। रक्त के बदलते रहने में (अर्थात् भीतरी श्वसन में) रुकावट से उद्दीपन में अत्यधिक वृद्धि के कारण जन्म के समय में चिंता अनुभव हुई थी, इसलिए पहली चिंता टाक्सिक अर्थात् विषैले कारण से पैदा हुई थी। (जर्मन का) संगृष्ट शब्द (चिंता) अंगुस्टीओ, एंगे—संकरा स्थान—सांस लेने में होने वाले कसाव पर बल देता है; यह कसाव उस समय एक वास्तविक स्थिति के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था, और बाद में किसी भी भाव से इसकी प्राय. सदा पुनरावृत्ति होती है। यह बात भी बड़ी व्यंजनापूर्ण है कि पहली चिंता-अवस्था माता से अलग होने के मौके पर हुई। स्वभावत हम यह मानते हैं कि इस पहली चिंता-अवस्था को पुनरुत्पादित करने की प्रवृत्ति या स्वभाव जीव-पिंड में इतनी गहराई से आत्मसात् हो गया है कि असंख्य पीढ़ियों में कोई एक मनुष्य भी चिंता-भाव से नहीं बच सकता, चाहे वह किंवदन्तियों में आने वाला मैक्डफ ही क्यों न हो, जो अपनी माता के गर्भ से, चीरकर, असमय में ही निकाल लिया गया था, और इसलिए जिसने जन्म-काल का स्वयं अनुभव नहीं किया। स्तन्यपायी प्राणियों के अलावा, दूसरे प्राणियों के लिए चिंता-अवस्था का मूल रूप क्या होगा, यह हम नहीं कह सकते। हम यह नहीं जानते हैं कि उनमें संवेदनों का वह संकुलन कौन-सा है जो हमारे भय के तुल्य है।

शायद आपको यह जानने में दिलचस्पी होगी कि इस तरह के विचार पर हम कैसे पहुंचे कि जन्म चिन्ता-भाव का मूल स्रोत और मूल रूप है। इसमें परिकल्पना का कोई कार्य नहीं था। इसके विपरीत, मैंने आम जनता के प्रतिभ ज्ञान सम्पन्न मन से एक विचार लिया। बहुत वर्ष पहले कुछ तरुण चिकित्सक, जिनमें मैं भी था, भोजन के लिए मेज के इर्द-गिर्द बैठे थे, और गर्भ-चिकित्सालय का डाक्टर हमें दाइयों की हाल में हुई परीक्षा की मनोरंजक बातें बता रहा था। एक परीक्षार्थी से जब यह पूछा गया कि जन्म के समय मेकोनियम (शिशु का मल) पानी में मौजूद हो तो इसका क्या अर्थ है, तो उसने तुरन्त उत्तर दिया, 'बालक डर गया है।' उसका मजाक उड़ाया गया, और उसे फेल कर दिया गया, पर मैं मन ही मन उसके पक्ष में हो गया, और मुझे यह सन्देह होने लगा कि उस बेचारी गंवार औरत के निर्भ्रान्त अवबोधन ने एक बहुत महत्वपूर्ण सम्बन्ध-सूत्र का उद्घाटन किया।

अब स्नायविक चिन्ता पर विचार कीजिए। स्नायविक व्यक्तियों की चिन्ता में कौन-कौन-सी विशेष बातें और अवस्थाएं होती हैं? इस विषय में बहुत कुछ वर्णन करना होगा। सबसे पहले तो उनमें एक व्यापक भय का भाव दिखाई देता है, जिसे हम 'मुक्त उड़ती हुई' चिन्ता कहते हैं, जो जरा भी उपयुक्त दीखने वाले किसी भी विचार से अपने को जोड़ने को तैयार रहती है, और निर्णय पर असर

से स्वतन्त्र हैं। ऐसा नहीं है कि इनमें से एक कुछ आगे बढ़ने पर दूसरा बन जाता हो। ऐसा बहुत कम होता है कि वे जुड़े हुए हों, और वह भी मानो कभी सयोगवश। साधारण भयपूर्णता के तीव्रतम रूप से भी भीति या फोबिया पैदा होना आवश्यक नहीं। जिन लोगों को सारे जीवन एगोरा फोबिया या खुला स्थान पार करने की भीति सताती रही है, वे निराशावादी सामान्य त्रास से बिलकुल मुक्त हो सकते हैं। बहुत-सी भीतियाँ, उदाहरण के लिए, खुले स्थानों का या रेल-यात्रा का भय, पहली बार बाद के जीवन में ही स्पष्ट रूप से पैदा होती हैं, और भीतियाँ, जैसे अँधेरे, बिजली या (मनुष्येतर) प्राणियों का भय, शुरू से मौजूद मालूम होती हैं। पहले प्रकार की भीतियाँ गम्भीर रोग की सूचक हैं और दूसरे प्रकार की विलक्षणताओं की सूचक हैं। जिस मनुष्य में इन पीछे वाली भीतियों में से कोई विद्यमान है, उसके बारे में यह समझा जा सकता है कि उसमें इस जैसी और भीतियाँ भी होंगी। इतनी बात और कह दूँ कि हम इन सब भीतियों को चिन्ता-हिस्टीरिया के अन्तर्गत रखते हैं, अर्थात् हम उन्हें उस प्रसिद्ध विकार से निकट सम्बन्ध रखने वाला समझते

अर्थात् टक्कर, का सामना होने का अधिक मौका है। हम यह भी जानते हैं कि जहाज डूब सकता है और ऐसा होने पर आम तौर से आदमी डूब जाते हैं, पर हम इन खतरों पर सोचते नहीं रहते, और बिना चिंता के रेल और जहाज में सफर करते हैं। यह भी निश्चित है कि यदि कोई पुल ऐसे समय टूट जाए जब हम उसे पार कर रहे हैं तो हम जलधारा में जा पड़ेंगे। पर ऐसी घटनाएं इतनी कम होती हैं कि हम इन्हें विचार करने योग्य खतरा नहीं समझते। एकांत में भी खतरे हैं, और कुछ परिस्थितियों में हम इनसे बचना चाहते हैं, पर यह नहीं कि हम किसी भी अवस्था में क्षण-भर के लिए भी इसे सहन नहीं कर सकते। यह बात भीड़, घिरी हुई जगह, बिजली की गरज आदि पर लागू होती है। इन भीतियों में हमारे लिए अपरिचित बात उनकी वस्तु उतनी नहीं है जितनी कि उनकी तीव्रता। किसी भीति या फोबिया के साथ जो चिन्ता होती है, वह निश्चित रूप से अवर्णनीय होती है। और कभी-कभी हमें यह मालूम होता है कि स्नायु-रोगी उन वस्तुओं से सचमुच जरा भी नहीं डरते, जिनसे हमारे अन्दर कुछ परिस्थितियों में चिन्ता पैदा हो जाती है और जिसे वे उन्हीं नामों से पुकारते हैं।

अब एक तीसरा समूह रह जाता है जो हमें बिलकुल समझ में नहीं आता। *जब कोई ताकतवर वयस्क आदमी अपने ही सुपरिचित नगर में किसी सड़क या* चौराहे को पार करने में डरता है, या जब कोई स्वस्थ और वयस्क स्त्री सिर्फ इस कारण प्रायः बेहोश हो जाती है कि कोई बिल्ली उसके कपड़े से रगड़ती चली गई, या कोई चूहा कमरे में से भागा, तो हमें इन घटनाओं का किसी खतरे से सम्बन्ध कैसे दिखाई दे सकता है? पर स्पष्टतः इन लोगों के लिए खतरा मौजूद है। इस तरह की (मनुष्येतर) प्राणि-भीति में यह नहीं कहा जा सकता कि उनके प्रति मनुष्य की घृणा अधिक तीव्र हो जाने के कारण ऐसा होता है। असल में बिलकुल इसके विपरीत बात सिद्ध होती है, क्योंकि ऐसे कितने ही लोग हैं जो, उदाहरण के लिए, बिल्ली को देखकर उसे अवश्य अपनी ओर बुलाएंगे, और थपथपाएंगे। चूहे से बहुत सारी स्त्रियां डरती हैं, पर फिर भी यह बहुत प्रचलित पुकारने का नाम है। बहुत-सी लड़कियां, जो अपने प्रेमियों द्वारा इस नाम से पुकारे जाने पर प्रसन्न हो जाती हैं, उस छोटे-से सचमुच के प्राणी को देखकर भय से चिल्ला उठती हैं। जो आदमी सड़कें और चौराहे पार करने में डरता है, उसके व्यवहार में हमें एक ही बात प्रतीत होती है, *कि वह छोटे बालक की तरह व्यवहार कर रहा है।* बालक को सीधे शब्दों में यह समझाया जाता है कि ऐसी स्थितियां खतरनाक होती हैं और इस आदमी की चिन्ताएं भी दूर हो जाती हैं जब कोई और आदमी उसे खुली जगह से पार करा देता है।

चिन्ता के जिन दो रूपों का वर्णन हमने किया है, अर्थात् 'मुक्त उड़ता हुआ'

मे स्वतन्त्र है। ऐसा नही है कि इनमे से एक कुछ आगे बढ़ने पर दूसरा बन जा हो। ऐसा बहुत कम होता है कि वे जुड़े हुए हो, और वह भी मानो कभी संयोगवश। साधारण भयपूर्णता के तीव्रतम रूप मे भी भीति या फोबिया पैदा होना आवश्यक नहीं। जिन लोगों को सारे जीवन एगोरा फोबिया या खुला स्थान पार करने की भीति सताती रही है, वे निराशावादी साधक त्रास से बिलकुल मुक्त हो सकते हैं। बहुत-सी भीतिया, उदाहरण के लिए, खुले स्थानों का या रेल-यात्रा का भय पहली बार बाद के जीवन मे ही स्पष्ट रूप से पैदा होती हैं; और भीतिया, जैसे अंधेरे, बिजली या (मनुष्येतर) प्राणियो का भय, शुरू से मौजूद मालूम होती है पहले प्रकार की भीतिया गम्भीर रोग की सूचक हैं और दूसरे प्रकार की विलक्षणताओं की सूचक हैं। जिस मनुष्य मे इन पीछे वाली भीतियों मे से कोई विद्यमान है, उसके बारे मे यह समझा जा सकता है कि उसमे इस जैसी और भीतिया भी होंगी। इतनी बात और कह दू कि हम इन सब भीतियो को चिन्ता-हिस्टीरिया के अन्तर्गत रखते हैं, अर्थात् हम उन्हे उस प्रसिद्ध विकार से निकट सम्बन्ध रखने वाला मानते है, जो कन्वर्शन-हिस्टीरिया या कायापलट-हिस्टीरिया कहलाता है।

स्नायु-रोगियो की चिन्ता का जो तीसरा रूप है, वह हमे उलझन मे डाल देता है, चिन्ता का और जिस खतरे से डर है, उसका जरा-सा भी सम्बन्ध नही दिखाई देता। यह चिन्ता, उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया मे, हिस्टीरिया के लक्षणों के साथ पैदा होती है, या उत्तेजन की अनेक अवस्थाओ मे पैदा होती है, जिनमे हमे यह तो आशा करनी चाहिए कि कोई भाव प्रदर्शित होगा, पर वह चिन्ता-भाव ही होगा यह आशा बिलकुल नही करनी चाहिए, या परिस्थितियो से कोई सम्बन्ध न रखने वाला और हमे तथा रोगी को भी न समझ मे आने वाला एक असम्बद्ध चिन्ता-दौरा होता है। दूर-दूर तक देखने पर भी कोई ऐसा खतरा या मौका नजर नहीं आता, जिसे अतिरंजित रूप देकर भी इसका कारण बनाया जा सके। इसलिए इन आपसे-आप पैदा हो जाने वाले दौरों या आक्रमणो से यह पता चलता है कि उस संकुल दशा को, जिसे हम चिन्ता कहते हैं, दो खडों मे बाटा जा सकता है। सारे हमले या दौरे को एक तीव्र परिवर्धित लक्षण, कपकपी, कमज़ोरी, दिल की धड़कन, सास बन्द होने के द्वारा निरूपित किया जा सकता है; और वह सामान्य भावना, जिसे हम चिन्ता कहते हैं, बिलकुल अनुपस्थित हो सकती है, या नजर मे आने के अयोग्य हो गई हो सकती है, और फिर भी यह अवस्था की 'चिन्ता पर्याय' कहलाती है, वही रोगात्मक और कारणात्मक प्रामाणिकता है जो स्वयं चिंता की।

अब दो सवाल पैदा होते हैं: क्या स्नायविक चिन्ता को, जिसमे खतरे का बहुत ही थोड़ा स्थान होता है, या बिलकुल भी स्थान नहीं होता, आलम्बननिष्ठ चिन्ता से, जो सारतः खतरे की एक प्रतिक्रिया है, सम्बन्ध जोड़ना असम्भव है, और स्नायविक

रहेंगे कि जहा चिंता है, वहा कोई ऐसी चीज भी अवश्य होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति डरता है।

रोगियों को देखने से स्वाभाविक चिंता को समझने की दिशा में अनेक सूत्र मिलते हैं, अब मैं उनके बारे में आपसे चर्चा करूंगा।

(क) यह समझना कठिन नहीं है कि साधक श्वास या सामान्य भय का यौन जीवन के कुछ प्रक्रमों से, यह कहा जाए कि राग-उपयोजन, अर्थात् राग को उपयोग में लाने, की कुछ रीतियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार की सबसे सरल और सबसे शिक्षाप्रद अवस्था उन लोगों में पैदा होती है, जो 'कुंठित उत्तेजन' अनुभव होने की स्थिति पैदा करते हैं, अर्थात् ऐसी स्थिति पैदा करते हैं जिसमें प्रबल यौन उत्तेजन नाकाफी विसर्जन अनुभव करता है, और सन्तुष्टि देने वाली परिणति तक नहीं ले जाया जाता। यह अवस्था, उदाहरण के लिए, पुरुषों में सगाई हो जाने के बाद होती है, और उन स्त्रियों में होती है जिनके पतियों में काफी पुंसत्व नहीं होता, या जो लोग सम्भोग बहुत तेज़ी से, या गर्भाधान रोकने के विचार से अधूरा करते हैं। इन अवस्थाओं में रागात्मक उत्तेजन लुप्त हो जाता है, और उसके स्थान पर चिंता आ जाती है। यह चिंता साधक श्वास के रूप में होती है। और चिंता के दौरों तथा चिंता-पर्यायों के रूप में भी होती है। अधूरा सम्भोग[1], जो गर्भाधान से बचने के लिए किया जाता है, जब नियमित आदत बन जाता है, तब वह पुरुषों में, और स्त्रियों में और भी विशेष रूप से चिंता-स्नायु-रोग का इतना नियमित कारण होता है कि ऐसे सब रोगियों में डाक्टरों को सबसे पहले इसी कारण के होने की खोज करनी चाहिए। असंख्य उदाहरणों से पता चलता है कि जब अधूरे सम्भोग की लत छोड़ दी जाती है, तब चिंता-स्नायु-रोग भी जाता रहता है। जहा तक मैं जानता हू, अब वे डाक्टर भी इस बात से इन्कार नहीं करते, जो मनोविश्लेषण से विमुख रहते हैं, कि यौन सयम और चिंता-अवस्थाओं में कुछ सम्बन्ध मौजूद है। तो भी मैं आसानी से यह कल्पना कर सकता हू कि वे इस सम्बन्ध को उलटा रखते हैं, और यह विचार पेश करते हैं कि इन लोगों में भयपूर्णता की पूर्वप्रवृत्ति होती है, और इसलिए वे यौन मामलों में सतर्कता बरतते हैं। यही बात और अधिक निश्चित रूप में उन स्त्रियों में होने वाली प्रतिक्रियाओं में दिखाई देती है, जिनमें मैथुन-कार्य सारत. निष्क्रिय होता है, और इसलिए इसका रास्ता पुरुष द्वारा किए गए आचरण से ही निश्चित होता है। किसी स्त्री में सम्भोग की इच्छा और सन्तुष्टि का सामर्थ्य जितना अधिक होगा, उतने ही अधिक निश्चित रूप में पुरुष की नपुंसकता या अधूरे सम्भोग के लक्षण प्रकट होंगे। पर जिन स्त्रियों में उतनी संवेदनशीलता नहीं होती या जिनमें काम-क्षुधा इतनी प्रबल नहीं होती, उनमें इस तरह के दुष्कर्म से बहुत कम गम्भीर

[1]. Coitus interruptus

परिणाम होते हैं।

यौन विरति में भी, जिसकी डाक्टर लोग आजकल इतने उत्साह से सिफारिश करते हैं, चिंता-अवस्थाओं का सिर्फ तब यही अर्थ होता है जबकि राग, जिसके सन्तोषजनक रूप से निकलने का रास्ता रोका जाता है, बहुत प्रबल हो, और उदात्तीकरण में उसका बहुत अधिक मात्रा में उपयोग न हो रहा हो। रोग पैदा होगा या नहीं, इसका उत्तर सदा मात्रा पर निर्भर है। रोग के अलावा भी चरित्र-निर्माण के क्षेत्र में यह आसानी से देखा जा सकता है कि यौन संयम के साथ कुछ चिंतातुरता और सतर्कता रहती है, जबकि निर्भयता और साहसपूर्ण भावना के साथ यौन आवश्यकताओं को बिना रुकावट सहन करने की प्रवृत्ति रहती है। सभ्यता के बहुतेरे प्रभावों से यह सम्बन्ध कितना ही बदल जाए या उलझ जाए, पर यह बात निर्विवाद है कि औसत आदमी के लिए चिंता और यौन रुकावट का नजदीकी सबंध है।

मैंने आपको वे सब प्रेक्षण नहीं बताए हैं जो राग और चिंता के इस जननांतमक सम्बन्ध-सूत्र का संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए, जीवन के कुछ कालों, जैसे तरुणावस्था और रजोरोध की चिंता-अवस्थाओं पर होने वाले प्रभाव में राग का उत्पादन बहुत बढ़ जाता है। उत्तेजना की बहुत-सी अवस्थाओं में भी यौन-उत्तेजन और चिंता का सम्मिश्रण प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, और इसी तरह यौन-उत्तेजन के स्थान पर अंत में चिंता का आ जाना भी स्पष्ट दिखाई देता है। इन सब बातों से दो धारणाएं बनती हैं। पहली तो यह कि इसमें प्रकृत उपयोग में आने से वंचित राग का संचय होता है, और दूसरी यह कि इसमें सिर्फ कायिक प्रक्रम होते हैं। यौन इच्छा से चिंता कैसे बन जाती है, यह बात इस समय स्पष्ट नहीं है। हम सिर्फ यह बात निश्चित रूप से पता लगा सकते हैं कि इच्छा का अभाव है, और उसके स्थान पर चिंता दिखाई पड़ती है।

(ख) दूसरा सूत्र मनोस्नायु-रोगों, खासकर हिस्टीरिया, के विश्लेषण से प्राप्त होता है। हम पहले कह चुके हैं कि इस रोग के लक्षणों के साथ चिंता भी प्रायः होती है और अन-बंधी चिंता जीर्ण रोग के रूप में मौजूद हो सकती है, या दौरों में प्रकट हो सकती है। रोगी यह नहीं कह सकते कि वे किस चीज से डरते हैं। वे इसका सम्बन्ध मरना, पागल होना, चोट खाना आदि बहुत अधिक सुविधाजनक भीतियों के अनदिख परवर्ती विशदन से जोड़ लेते हैं। जब हम उस अवस्था का विश्लेषण करते हैं जिससे चिंता अथवा चिंता के साथ मौजूद लक्षण पैदा हुए, तब हम साधारणतया यह जान सकते हैं कि कौन-सा प्रकृत मानसिक प्रक्रम-मार्ग में रोक दिया गया है, जिसके स्थान पर चिंता प्रकट हुई है। दूसरे शब्दों में, इसे इस तरह कहा जा सकता है : अचेतन प्रक्रम का अर्थ हम इस तरह लगाते हैं जैसे इसका दमन नहीं हुआ, और यह बिना रुकावट चेतना में चला गया है। इस प्रक्रम के साथ

कोई खास भाव रहा होगा, और अब हम आश्चर्य से देखते हैं कि प्रत्येक रोगी में इस भाव के स्थान पर, जो सामान्यतः मानसिक प्रक्रम के साथ चेतना में पहुंच जाता है, चिंता आ जाती है, चाहे यह पहले किसी भी प्रकार का रहा हो। इस प्रकार, जब हमारे सामने हिस्टीरिकल चिंता-दशा हो, तब उसका अचेतन सहसम्बन्धी[1] उसी तरह का कोई उत्तेजन हो सकता है, जैसे साधारण भय, लज्जा, परेशानी; या इसी तरह सम्भव है कि यह धनात्मक रागयत उत्तेजन हो; या सम्भव है कि यह कोई विरोधी और प्रचण्ड उत्तेजन हो, जैसे गुस्सा। इस प्रकार चिंता वह आम चालू सिक्का है जो सब भावों के बदले मिल सकता है या जिसके बदले सब भाव मिल सकते हैं, जबकि तत्सम्बन्धी मनोबिम्बात्मक वस्तु का दमन किया गया हो।

(ग) तीसरा प्रेक्षण उन रोगियों से मिला है जिनके लक्षण मनोग्रस्तता का रूप धारण कर लेते हैं, और जिनमें चिंता से प्रभावित न होने की विशेषता दिखाई देती है। जब हम उन्हें उनके मनोग्रस्त कार्य करने से रोकते हैं, या जब वे स्वयं अपने किसी मनोग्रस्त कार्य को छोड़ने की कोशिश करते हैं, तब एक भीषण त्रास उन्हें इस अनिवार्यता के आगे सिर झुकाने, और उस कार्य को करने के लिए मजबूर कर देता है। हम देखते हैं कि चिन्ता मनोग्रस्त कार्य के नीचे छिपी हुई थी और यह त्रास की भावना से बचने के लिए ही की जाती है। इसलिए मनोग्रस्तता-स्नायुरोग में चिंता के स्थान पर लक्षण-निर्माण हो जाता है, यदि यह न होती तो चिन्ता पैदा हो जाती; और जब हम हिस्टीरिया पर ध्यान देते हैं, तब हमें ऐसा ही सम्बन्ध मौजूद दिखाई देता है—दमन के परिणामस्वरूप या तो शुद्ध परिवर्धित चिंता होती है या लक्षण-निर्माण के साथ चिन्ता होती है, और चिंता के बिना लक्षण-निर्माण होता है। इसलिए सूक्ष्म अर्थ में, ऐसा कहना सही मालूम होता है कि लक्षण सबके-सब चिंता से बचने के लिए ही पैदा होते हैं, अन्यथा उसका परिवर्धन अवश्य होता। इस प्रकार, स्नायुरोगों की समस्याओं में चिन्ता हमारी दिलचस्पी में सबसे आगे आ जाती है।

हमने चिंता-स्नायुरोगों को देखकर यह नतीजा निकाला था कि राग का अपने प्रकृत उपयोजना से हटाव, जिससे चिन्ता मुक्त हो जाती है, कायिक प्रक्रमों के आधार पर हुआ है। हिस्टीरिकल और मनोग्रस्तता-स्नायुरोगों के विश्लेषण से यह नतीजा भी निकला है कि मन में स्थित सस्थाओं की ओर से विरोध के बाद ऐसा ही हटाव और ऐसा ही परिणाम हो सकता है। इसलिए हमें स्नायविक चिन्ता के पैदा होने के बारे में इतना ही पता है। यह जरा अनिश्चित बात मालूम होती है, पर इस समय कोई और रास्ता भी नहीं है, जो हमें और आगे ले जा सके। हमने जो दूसरा कार्य उठाया था, अर्थात् स्नायविक चिन्ता (अप्रकृत रूप से

1. Correlative

का बड़ी आसानी से यह कारण समझ लेते हैं कि वे कमज़ोर और अज्ञानी हैं। इस प्रकार, हम बालकों में आलम्बननिष्ठ चिंता की प्रबल प्रवृत्ति बताते हैं, और यदि यह भयपूर्णता जन्मजात होती तो हम इसे व्यावहारिक ही मानते। बालक प्रागैतिहासिक मनुष्य के और आदिम मानव के व्यवहार को ही आज दोहरा रहा है, जो अपने अज्ञान और असमर्थता के कारण हरएक नई और अपरिचित चीज़ से और बहुत-सी परिचित चीज़ों से त्रास अनुभव करता है; पर इनमें से कोई भी चीज़ अब हमारे अन्दर भय पैदा नहीं करती। यदि बालकों की भीतियां अज्ञात वैसी हों जैसी मानव-परिवर्धन के आदिम कालों में उपस्थित समझी जा सकती हैं, तो यह बात भी हमारी आशाओं से मेल खाएगी।

दूसरी ओर, इस बात को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता कि सब बालक एक समान भयपूर्ण या डरनेवाले नहीं होते, और जो बालक सब तरह की वस्तुओं और स्थितियों से अधिक डरते हैं, वे ही बाद में स्नायुरोगी बनते हैं। इसलिए स्नायविक स्वभाव का एक चिह्न यह है कि इसमें आलम्बननिष्ठ चिंता की बहुत प्रवृत्ति होती है। स्नायविकता के बजाय भयपूर्णता प्राथमिक स्थिति मालूम होती है, और हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि बालक और बाद में वयस्क अपने राग की शक्ति से त्रास सिर्फ इस कारण अनुभव करता है क्योंकि वह हर चीज़ से डरता है। तब चिंता का स्वयं राग से पैदा होना भी अस्वीकार कर दिया जाएगा, और यथार्थ चिंता की अवस्थाओं के अनुसंधान से हम तर्क द्वारा इस विचार पर पहुंचेंगे कि स्नायुरोग का अन्तिम कारण व्यक्तिगत कमज़ोरी और लाचारी की चेतना है—जिसे ए० ऐडलर आत्महीनता[1] कहता है, जबकि वह बाद के जीवन में भी कायम रह सकती हो।

यह बात इतनी सरल और तर्कयुक्त दिखाई देती है कि इसकी ओर हमारा ध्यान बरबस खिंच जाता है। यह सच है कि इसके लिए हमें वह दृष्टिकोण बदलना होगा जिससे हम स्नायविकता की समस्या को देखते हैं। यह बात कि आत्महीनता की ये भावनाएं बाद के जीवन में कायम रहती हैं—और चिंता तथा लक्षण-निर्माण की प्रवृत्ति भी रहती है—इतनी अच्छी तरह सिद्ध मालूम होती है कि जब किसी अपवादरूप रोगी में, जिसे हम 'स्वास्थ्य' कहते हैं, वह परिणामरूप में दिखाई देता है, तब और अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता पैदा होती है। बालकों की भय-पूर्णता को नज़दीक से देखने पर क्या पता चलता है? छोटा बालक सबसे पहले अपरिचित लोगों से डरता है। स्थितियों का महत्त्व उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों के कारण होता है, और आलम्बन या वस्तुएं और भी बहुत बाद में आया करती हैं, पर बालक इन अजनबी लोगों से इस कारण नहीं डरता कि वह उनमें बुरे आशय

१. Inferiority

प्रयाग में आए राग) और 'आलंबननिष्ठ चिंता' (जो खतरे की प्रतिक्रिया की सम्वादी है) का सम्बन्ध-सूत्र स्थापित करना, उसे पूरा करना और भी कठिन मालूम होता है। आप सोचेंगे कि दोनों चीज़ों में कुछ सादृश्य नहीं हो सकता, पर फिर भी ऐसे कोई साधन नहीं हैं, जिनसे स्नायविक चिन्ता के संवेदनों और यथार्थ चिंता के संवेदनों में विवेक किया जा सकता है।

अभीष्ट सम्बन्ध-सूत्र अहम् तथा राग के इतनी बार पेश किए गए वैषम्य में ढूंढ़ा जा सकता है। जैसाकि हम जानते हैं, चिंता का परिवर्धन खतरे पर अहम् की प्रतिक्रिया और भागने की तैयारी का संकेत है। इसके बाद यह कल्पना बहुत दूरारूढ़ नहीं रहती कि स्नायविक चिंता में भी, अहम् अपने राग की पुकार या आवश्यकता से दूर भाग जाने की कोशिश कर रहा है, और इस भीतरी खतरे को बाहरी खतरा समझ रहा है। तब हमारी यह आशा पूरी हो जाएगी कि यहाँ चिंता मौजूद है, वहां कोई ऐसी चीज भी अवश्य होनी चाहिए जिससे आदमी डरता है। पर यह सादृश्य और आगे भी चलता है। जैसे बाहरी खतरे से भागने की कोशिश पैदा करनेवाला तनाव अपने क्षेत्र में जमे रहने, और बचाव या प्रतिरक्षा की उपयुक्त कार्यवाही करने, इन दो भागों में खंडित हो जाता है। ठीक वैसे ही स्नायविक चिंता के परिवर्धन से एक लक्षण-निर्माण पैदा हो जाता है, जिसमें चिंता 'परिसीमित' हो सकती है।

अब, इसे समझने में हमें जो कठिनाई है, वह कहीं और है—वह यह चिन्ता है, जो अहम् के अपने राग से बचकर भागने को सूचित करती है, फिर भी उसी राग में से पैदा हुई मानी जाती है। यह बात अस्पष्ट है, और हमें यह न भूलना चाहिए कि किसी व्यक्ति का राग मूलत उस व्यक्ति का हिस्सा है और उस व्यक्ति से इस राग का इस तरह वैषम्य नहीं दिखाया जा सकता जैसेकि राग कोई बाहरी चीज हो। चिंता परिवर्धन की स्थानवृत्तीय गतिकी प्रश्न हमारे लिए अब भी अस्पष्ट है, अर्थात् किस-किस प्रकार की मानसिक ऊर्जाएं खर्च हो रही हैं, और वे किस-किस स्थान से सम्बन्धित हैं। मैं इस प्रश्न का भी उत्तर देने का वचन आपको नहीं देता, पर हम दो और सूत्रों को पकड़कर अवश्य चलेंगे, और उनमें भी अपनी कल्पना को सहारा देने के लिए प्रत्यक्ष प्रेक्षण और विश्लेषणीय अनुसंधान की फिर सहायता लेंगे। अब हम बालकों में होनेवाली चिन्ता के उद्भवों पर और भीतियों या फोबिया से सम्बन्धित स्नायविक चिंता के उद्गम पर विचार करेंगे।

भयपूर्णता बालकों में आम तौर से पाई जाती है, और यह फैसला करना काफी कठिन है कि यह आलम्बननिष्ठ चिंता है या स्नायविक चिन्ता। सच पूछिए तो स्वयं बच्चों के रुख से इस विभेद की सार्थकता पर ही आपत्ति पैदा हो जाती है, क्योंकि एक ओर तो हमें यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि बच्चे नये आदमियों, नई वस्तुओं और स्थितियों से डरते हैं—और अपने मन में हम इस प्रतिक्रिया

का बड़ी आसानी से यह कारण समझ लेते हैं कि वे कमज़ोर और अज्ञानी हैं। इस प्रकार, हम बालकों में आलम्बननिष्ठ चिंता की प्रबल प्रवृत्ति बताते हैं, और यदि यह भयपूर्णता जन्मजात होती तो हम इसे व्यावहारिक ही मानते। बालक प्रागैतिहासिक मनुष्य के और आदिम मानव के व्यवहार को ही आज दोहरा रहा है, जो अपने अज्ञान और असमर्थता के कारण हरएक नई और अपरिचित चीज़ से और बहुत-सी परिचित चीज़ों से त्रास अनुभव करता है, पर इनमें से कोई भी चीज़ अब हमारे अन्दर भय पैदा नहीं करती। यदि बालकों की भीतियां अधिकांश वैसी हों जैसी मानव-परिवर्धन के आदिम कालों में उपस्थित समझी जा सकती हैं, तो यह बात भी हमारी आशाओं से मेल खाएगी।

दूसरी ओर, इस बात को नजरन्दाज़ नहीं किया जा सकता कि सब बालक एक समान भयपूर्ण या डरनेवाले नहीं होते, और जो बालक सब तरह की वस्तुओं और स्थितियों से अधिक डरते हैं, वे ही बाद में स्नायुरोगी बनते हैं। इसलिए स्नायविक स्वभाव का एक चिह्न यह है कि इसमें आलम्बननिष्ठ चिंता की बहुत प्रवृत्ति होती है। स्नायविकता के बजाय भयपूर्णता प्राथमिक स्थिति मालूम होती है, और हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि बालक और बाद में वयस्क अपने राग की शक्ति से त्रास सिर्फ़ इस कारण अनुभव करता है क्योंकि वह हर चीज़ से डरता है। तब चिंता का स्वयं राग से पैदा होना भी अस्वीकार कर दिया जाएगा, और यथार्थ चिंता की अवस्थाओं के अनुसंधान से हम तर्क द्वारा इस विचार पर पहुंचेंगे कि स्नायुरोग का अन्तिम कारण व्यक्तिगत कमज़ोरी और लाचारी की चेतना है—जिसे ए० ऐडलर आत्महीनता[1] कहता है, जबकि वह बाद के जीवन में भी कायम रह सकती हो।

यह बात इतनी सरल और तर्कयुक्त दिखाई देती है कि इसकी ओर हमारा ध्यान बरबस खिंच जाता है। यह सच है कि इसके लिए हमें वह दृष्टिकोण बदलना होगा जिससे हम स्नायविकता की समस्या को देखते हैं। यह बात कि आत्महीनता की ये भावनाएं बाद के जीवन में कायम रहती हैं—और चिंता तथा लक्षण-निर्माण की प्रवृत्ति भी रहती है—इतनी अच्छी तरह सिद्ध मालूम होती है कि जब किसी अपवादरूप रोगी में, जिसे हम 'स्वास्थ्य' कहते हैं, वह परिणामरूप में दिखाई देता है, तब और अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता पैदा होती है। बालकों की भयपूर्णता को नज़दीक से देखने पर क्या पता चलता है? छोटा बालक सबसे पहले अपरिचित लोगों से डरता है। स्थितियों का महत्त्व उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों के कारण होता है, और आलम्बन या वस्तुएं और भी बहुत बाद में आया करती हैं, पर बालक इन अजनबी लोगों से इस कारण नहीं डरता कि वह उनमें बुरे आशय

१. Inferiority

देखता है, उसकी शक्ति से अपनी कमजोरी की तुलना करता है, और इस प्रकार उसका अनिवार्य सुरक्षा और अपनी दुःख से विमुक्ति के लिए खतरा समझता है। बालक के बारे में यह समझना कि वह संसार में अपने से बहुत प्रबल आक्रामक शक्ति के प्रति असहाय और उससे डरा हुआ रहता है, बहुत ही घटिया सैद्धान्तिक विचार है। इसके विपरीत, बालक अजनबी व्यक्ति से इस कारण डरकर चिल्ला उठता है, क्योंकि उसे एक प्यारी और परिचित शक्ल, मुख्यतः अपनी माता, का अरमान पड़ा हुआ है, और इसलिए वह उसकी ही आशा करता है। उसकी निराशा और लालसा ही त्रास में परिवर्तित हो जाती है—उसका राग, जो उस समय खर्च नहीं हो सका और जो उस समय निलम्बित या निश्चित भी नहीं रह सकता, त्रास में बदलकर विसर्जित हो जाता है। यह भी संयोगवश नहीं हो सकता कि इस स्थिति में, जो बालक की चिंता का मूलरूप है, जन्मकाल की प्राथमिक चिंता-अवस्था की दशा—माता से अलगाव—फिर सामने आती है।

बालकों में स्थितियों की पहली भीतियाँ अंधेरे और अकेलेपन से सम्बन्धित होती हैं। अंधेरे की भीति प्रायः सारे जीवन बनी रहती है। दोनों में सामान्य वस्तु—अनुपस्थित परिपालक की, अर्थात् माता की अभिलाषा है। एक बार अंधेरे से डरे हुए बालक को मैंने यह कहते सुना, 'चाची, मुझसे बात करो, मैं डरा हुआ हूँ।' 'इससे क्या लाभ? तुम मुझे देख तो नहीं सकते।' जिसपर बालक ने जवाब दिया, 'कोई बातचीत करता रहे तो डर कम हो जाता है।' इस प्रकार अंधेरे में अनुभूत लालसा अंधेरे के भय में रूपान्तरित हो जाती है। बजाय इस नतीजे के कि स्नायविक चिंता आलम्बननिष्ठ चिंता का सिर्फ परवर्ती और एक विशेष रूप है, हम यह देखते हैं कि छोटे बालक में कुछ ऐसी चीज है जो वास्तविक चिंता की तरह व्यवहार करती है, और इसमें स्नायविक चिंता की सारभूत विशेषता, अर्थात् अविसर्जित राग से उद्गम, मौजूद है। सच्ची 'आलम्बननिष्ठ चिंता' का बहुत ही थोड़ा अंश बालक दुनिया में प्रकट करता मालूम होता है। उन सब स्थितियों में, जो बाद में भीतियों की अवस्था बन जाती हैं, जैसे ऊँचाइयाँ, पानी के ऊपर बने हुए पुल, रेलगाड़ियाँ और नौकाएँ, बालक कोई भय प्रकट नहीं करता। वह जितना कम जानता है, उतना ही कम डरता है। हम यह ही चाहते हैं कि उसमें ये जीवन-संरक्षक निसर्ग-वृत्तियाँ जन्म से ही और अधिक होतीं; तब उसकी देख-भाल करने और उसे एक के बाद दूसरे खतरे के सामने पहुँचने से रोकने का काम बहुत हलका हो जाता। असल में आप देखते हैं कि बालक शुरू में अपनी शक्तियों का बहुत अधिक अंदाजा लगाता है और बिना भय के व्यवहार करता है, क्योंकि वह खतरों को नहीं पहचानता। वह पानी के किनारे दौड़ेगा, खिड़की पर ——— खतरनाक मशीनों से और आग से खेलेगा, अर्थात् ऐसा कोई भी काम

भयभीत कर देगा। हम उसे हर बात को अनुभव द्वारा सीखने का मौका नहीं देते। इसलिए उसमे यथार्थ चिंता अंत मे बिलकुल पूरे रूप मे प्रशिक्षण के कारण ही पैदा होती है।

अब यदि बहुत-से बालक भयपूर्णता के इस प्रशिक्षण को बहुत आसानी से सीख लेते हैं, और फिर उन खतरों को पहचान लेते हैं, जिनके बारे मे उन्हें चेतावनी नहीं दी गई, तो इसकी व्याख्या इस आधार पर की जा सकती है कि इन बालकों की शरीर-रचना मे रागात्मक आवश्यकता की, औरो की अपेक्षा अधिक मात्रा जन्म से ही होती है, अथवा उन्हें शुरू मे ही राग की परितुष्टियो द्वारा बर्बाद कर दिया गया है। जो लोग बाद मे स्नायविक हो जाते हैं, वे भी इसी तरह के बालक होते हैं। मतलब यह कि इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं। हम जानते हैं कि स्नायुरोग के परिवर्धन के लिए सबसे अनुकूल परिस्थिति दबे हुए राग की प्रचुर मात्रा को अधिक देर तक सहन करने की असमर्थता ही है। अब आप देखते हैं कि यहा शरीर-रचना सम्बन्धी कारक, जिसकी उपस्थिति से हमने कभी इन्कार नहीं किया, अपने पूरे रूप मे दिखाई देता है, हम इसका विरोध सिर्फ तभी करते हैं जब दूसरे लोग इसपर इतना अधिक बल देते हैं कि और सब कारको का निषेध हो जाए, और जब वे वहा भी शरीर-रचना सम्बन्धी कारक ले आते हैं, जहा वह प्रेक्षण और विश्लेषण दोनो के सम्मत विचार के अनुसार नही होता, या बहुत गौण अंश मे होता है।

बालकों में होनेवाली भयपूर्णता के प्रेक्षण से निकाले गए निष्कर्षों का सारांश यह है : शिशुओं के त्रास का आलंबननिष्ठ चिंता (वास्तविक खतरे) के त्रास से कोई सम्बन्ध नही है। इसके विपरीत, इसका वयस्कों की स्नायविक चिंता से नज़दीकी सम्बन्ध है। यह स्नायविक चिंता की तरह अविसर्जित राग से पैदा होता है, और जो प्रेम-आलम्बन इसे नहीं मिल पाता, उसके स्थान पर यह किसी दूसरे बाहरी आलम्बन या किसी स्थिति को ले आता है।

अब आपको यह सुनकर खुशी होगी कि भीतियो के विश्लेषण से हमने जो कुछ सीखा है, उससे कुछ और अधिक सीखा जा सकता है। उनमे भी वही बात होती है जो बालको की चिंता मे—जो राग विसर्जित नही किया जा सकता, वह लगातार देखने में 'आलंबननिष्ठ' लगनेवाली चिंता मे बदलता रहता है, और इस प्रकार तुच्छ-से बाहरी खतरे को उसका प्रतिनिधि मान लिया जाता है, राग जिसकी कामना करता है। चिंता के इन दोनों रूपो मे संवादिता आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि शिशुओ की भीतिया सिर्फ उन भीतियो के पूर्वरूप ही नही हैं जो बाद मे चिंता-हिस्टीरिया मे दिखाई देती हैं, बल्कि वे उनकी सीधी आरम्भिक अवस्था और पूर्व-तैयारी होती हैं। हिस्टीरिया की प्रत्येक भीति का आरम्भ बालकपन के किसी त्रास में ढूंढा जा सकता है, जिसका यह विस्तार है, चाहे इसकी वस्तु भिन्न

है और इसे भिन्न नाम से ही पुकारना होगा। दोनों अवस्थाओं का अन्तर उनं
तत्र का अन्तर है। राग वयस्क में चिंता में परिवर्तित हो सके, इसके लिए म
इतना ही काफी नहीं कि राग का कुछ समय के लिए उपयोग न हो सके। वयस्
बहुत समय तक ऐसे राग को विलम्बित या निष्क्रिय बनाए रखना या विभिन्
तरीकों से इसे कायम रखना सीख चुका है। पर जब राग किसी ऐसे मानसिक
उत्तेजन से जुड़ जाता है, जिसका दमन किया गया है, तब वैसी ही अवस्थाएं पैदा
हो जाती हैं जैसी बालक में, जिसमें अभी चेतन और अचेतन का कोई विभेद नहीं
होता, और शिशु-भीति की ओर प्रतिगमन मानो एक पुल बन जाता है जिससे
राग को आसानी से चिंता में परिवर्तित किया जा सकता है। आपको याद होगा
कि हमने दमन पर कुछ विस्तार से विचार किया है। पर उस विचार में हम सिर्फ
यहीं तक गए कि दमन किए जानेवाले मनोबिम्ब का क्या होता है, और यह
स्वाभाविक भी था, क्योंकि इसे पहचानना और पेश करना आसान था। पर अब
तक हमने इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया कि इस मनोबिम्ब से सम्बन्धित मनो-
विकार या भाव का क्या होता है, और अब पहली बार हमें यह मालूम हुआ है कि
भाव तुरन्त चिंता में परिवर्तित हो जाता है—इससे कुछ मतलब नहीं कि यदि यह
भाव अपने प्रकृत मार्ग पर चला होता तो किस विशेषता वाला होता। इसके
अतिरिक्त, भाव का रूपान्तर दमन के प्रक्रम का अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम है।
यह बात आपके सामने प्रतिपादित करना आसान नहीं, क्योंकि हम अचेतन भावों
का अस्तित्व उसी अर्थ में नहीं मानते जिस अर्थ में हमने अचेतन मनोबिम्बों का
माना था। मनोबिम्ब कुछ दूर तक वैसे का वैसा ही रहता है, चाहे वह चेतन हो
या अचेतन (अर्थात् ज्ञात हो या अज्ञात)। हम ऐसी कोई चीज निर्दिष्ट कर सकते
हैं जो किसी अचेतन मनोबिम्ब की सवादी हो। पर भाव एक ऐसा प्रक्रम है,
जिसमें ऊर्जा का विसर्जन आवश्यक है और इसे मनोबिम्ब से बिलकुल भिन्न
समझना चाहिए। मानसिक प्रक्रमों के सम्बन्ध में अपनी परिकल्पनाओं की गहरी
परीक्षा और स्पष्टीकरण बिना किए हम यह नहीं कह सकते कि अचेतन में इसका
सवादी कौन है—और यह कार्य यहां नहीं किया जा सकता। पर फिर भी हम
अपनी यह धारणा बनाए रखेंगे कि चिंता के परिवर्धन का अचेतन संस्थान से
नजदीकी सम्बन्ध है।

मैंने कहा था कि दमन किए जानेवाले राग का सबसे पहला भविष्य यह होता
है कि वह चिंता में बदल जाता है, या और अच्छे रूप से कहा जाए तो वह चिंता के

रूप में विस
ऐसे प्रश्न ह
अनेक उपाय
स्नायविक प्र

दमन और राग का चिंता मे परिवर्तन करती है, और इस तरह राग किसी बाहरी खतरे से जुड़ जाता है। दूसरी अवस्था मे वे सब सतर्कताएं और रक्षा-साधन खड़े किए जाते हैं जिससे इस बाहर के खतरे से सब तरह के सम्पर्क से बचा जा सके। दमन अहम् का राग से दूर भागने का प्रयत्न है, जिसे वह खतरनाक अनुभव करता है। भीति की तुलना एक किलेबन्दी से की जा सकती है जो त्रस्त राग के लिए अब मौजूद बाहरी खतरे के मुकाबले में की गई थी। भीतियो के रूप मे इस प्रतिरक्षा प्रणाली की कमज़ोरी निस्सन्देह यह है कि यह किला, जिसकी बाहर से इतनी अच्छी तरह रक्षा की जा रही है, अन्दर के खतरे के लिए खुला रहता है। राग से खतरे का बाहर प्रक्षेपण या आरोप कभी भी बहुत सफल नहीं हो सकता। इसलिए अन्य स्नायुरोगों मे चिंता के परिवर्धन की सम्भावना का मुकाबला करने के लिए दूसरी प्रतिरक्षा प्रणालियां अपनाई जाती हैं। यह स्नायुरोगो के मनोविज्ञान का बड़ा मनोरंजक हिस्सा है। बदकिस्मती से हम इसमे बढ़कर विषय से बहुत दूर चले जाएंगे, साथ ही इसके लिए इस विषय के विशेष ज्ञान का मज़बूत आधार भी चाहिए। मैं इतना ही और कह सकता हूं। मैंने पहले 'प्रति आवेशों' की चर्चा की है, जो अहम् द्वारा दमन पर डाले जाते हैं, और जिनका दमन के कायम रहने के लिए बना रहना ज़रूरी है। इस 'प्रति आवेश' का ही यह काम है कि वह दमन के बाद चिंता के परिवर्धन के विरोध मे अनेक प्रकार से बचाव का कार्य करे।

अब फिर भीतियों पर आइए। मुझे आशा है कि अब आप यह समझ सकते हैं कि सिर्फ उनकी वस्तु की व्याख्या करने की कोशिश करना और उनके पैदा होने के स्थान के अलावा उनमें कोई दिलचस्पी न लेना कितना अधूरा काम है, अर्थात् सिर्फ यह विचार करना कि किस वस्तु या स्थिति की भीति है, यह बात कितनी अपर्याप्त है। भीति की वस्तु का वैसा ही महत्त्व है, जैसा व्यक्त स्वप्न की वस्तु का—यह बाहरी दिखावटी रूप है। सारे उचित रूप-भेद करके यह मानना पड़ता है कि विभिन्न भीतियो की वस्तुओ मे बहुत-सी ऐसी वस्तुएं पाई जाती हैं जो, जैसाकि स्टेनली हाल ने बताया है, जाति-चारित्रीय आनुवंशिकता के कारण त्रास की आलंबन बनने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। यह बात इस तथ्य से भी मेल खाती है कि इन त्रासकारक वस्तुओ मे से बहुत-सी वस्तुओ का खतरे के साथ, प्रतीकात्मक सम्बन्ध के अलावा, और कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

इस प्रकार, हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायुरोगो के मनोविज्ञान मे चिंता की समस्या बिलकुल केन्द्रीय अर्थात् सबसे महत्त्वपूर्ण, स्थिति में है। हमारी यह एक प्रबल धारणा बन गई है कि चिंता का परिवर्धन राग के भविष्य और सचेतन संस्थान से किस तरह जुड़ा हुआ है। अब सिर्फ एक असम्बंधित सूत्र, सारे ढांचों में एक खाली स्थान, रह गया है, और वह यह तथ्य है जिसपर आपत्ति करना मुश्किल ही है कि 'आलम्बननिष्ठ चिंता' को अहम् की आत्मसंरक्षण-विषयक निसर्ग-वृत्ति की अभिव्यक्ति माना जाए।

राग का सिद्धान्त : स्वरति

हमने बार-बार, और कुछ देर पहले भी, यौन निसर्ग-वृत्ति और अहम् निसर्ग-वृत्ति के विभेद की चर्चा की है। सबसे पहले दमन से यह प्रकट हुआ कि वे किस तरह एक-दूसरे का विरोध करती हैं, फिर किस तरह यौनवृत्तिया आभासितः पराजित हो जाती हैं और उन्हें चक्करदार प्रतिगामी मार्गों से अपनी सन्तुष्टि करनी पड़ती है, और वहा अभेद्य परिस्थितियो मे रहने से उन्हें अपनी पराजय की क्षतिपूर्ति या हर्जाना मिल जाता है। इसके बाद यह मालूम हुआ कि उन दोनों का शुरू से ही आवश्यकतारूपी मालकिन से भिन्न-भिन्न सम्बन्ध होता है, और इसलिए उनके परिवर्धन भिन्न-भिन्न होते है, और यथार्थता-सिद्धान्त के प्रति उनके भिन्न रुख हो जाते हैं। अन्त मे हम यह मानते है कि हम यह देख सकते हैं कि यौन-वृत्तियो का चिंता की भाव-दिशा से अहम्-निसर्ग-वृत्तियो की अपेक्षा अधिक नजदीकी संबध होना है—और यह निष्कर्ष सिर्फ एक महत्त्वपूर्ण बात मे अब भी अधूरा मालूम होता है। इसके समर्थन मे हम यह एक और उल्लेखनीय तथ्य पेश कर सकते हैं कि भूख या प्यास की जो दो सबसे अधिक प्राथमिक आत्मसरक्षणात्मक निसर्ग-वृत्तिया हैं, उनकी सन्तुष्टि के अभाव का यह परिणाम कभी नही होता कि वे चिंता में परिवर्तित हो जाए, जबकि असन्तुष्ट राग का चिंता मे परिवर्तन, जैसाकि हमनेबताया है, एक बहुत सुविदित और बहुत बार वैज्ञानिक रूप से प्रेक्षित किया है।

यौन और अहम् -निसर्ग-वृत्तियो मे विभेद करने के कारणो पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। सच पूछिए तो मनुष्य मे यौन-प्रवृत्ति का एक विशेष व्यापार के रूप मे अस्तित्व होने से यह विभेद, स्वय ही मान लिया जाता है। प्रश्न सिर्फ यह रह जाता है कि इस विभेद को कितना महत्त्व दिया जाए। हम इसे कितना मूलगत और निर्णायक मानना चाहते हैं, इसका उत्तर इस बात पर निर्भर है कि यौन निसर्ग-वृत्तिया अपने शारीरिक और मानसिक व्यक्त रूपो मे दूसरी निसर्ग-वृत्तियों से, जो हमने उनके मुकाबले मे रखी हैं, भिन्न रूप मे जितनी दूरी तक चलती हैं, उसके बारे मे हम क्या जानकारी प्राप्त कर सकते हैं; और इन अंतरो से पैदा होनेवाले

परिणाम कितने महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। निसर्ग-वृत्तियों के दो समूहों की आधारभूत प्रकृति में निश्चित अन्तर मानने में हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, और वैसे देखा जाए तो इनमें कोई अंतर समझना कठिन भी होगा। वे दोनों हमारे सामने मनुष्य की ऊर्जा के स्रोतों के वर्णन के रूप में आते हैं, और यह विवेचना कि वे मूलतः एक हैं या सारतः भिन्न हैं, और यदि वे एक हैं, तो वे एक-दूसरे से अलग कब होते हैं, सिर्फ इन अवधारणों के आधार पर ही नहीं की जा सकती, उन्हें तो उनके आधार रूप में मौजूद जैविकीय तथ्यों के ऊपर खड़ा करना होगा। इस समय हमें उनके बारे में बहुत ही कम जानकारी है, और यदि हम अधिक भी जानते होते तो मनोविश्लेषण के कार्य में उनकी कोई प्रासंगिकता नहीं थी।

स्पष्ट है कि हमें इस बात से भी कोई खास लाभ नहीं होगा कि हम जुंग की तरह सब निसर्ग-वृत्तियों के आद्य एकत्व पर बल दें, और उनसे प्रवाहित होनेवाली सब ऊर्जाओं को 'राग' या लिबिडो कहें। तब हमें लिंगी या यौन और अलिंगी या अयौन राग मानना होगा, क्योंकि ऐसे किसी तरीके से यौन या लैंगिक कार्य को मानसिक जीवन के क्षेत्र से हटाया नहीं जा सकता। पर राग शब्द यौन जीवन के नैसर्गिक बलों के लिए सुरक्षित है, और यह उचित भी है, जैसेकि हमने अब तक इसका प्रयोग किया है।

इसलिए मेरी राय में यह प्रश्न, कि यौन और आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों में सर्वथा औचित्यपूर्ण अंतर कितनी दूर तक किया जा सकता है, मनोविश्लेषण के लिए अधिक महत्त्व नहीं रखता, और न मनोविश्लेषण इसका उत्तर देने की क्षमता रखता है। जैविकीय दृष्टिकोण से ऐसे अनेक संकेत अवश्य मिलते हैं कि यह अंतर महत्त्वपूर्ण है। कारण यह कि जीवित जीवपिंड का यौन कार्य ही एक ऐसा कार्य है, जो व्यष्टि से बाहर प्रवृत्त होता है, और अपनी स्पीशीज़ से सम्बन्ध जोड़ता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस कार्य के प्रयोग से व्यष्टि को सदा लाभ ही नहीं होता, जैसाकि उसकी अन्य चेष्टाओं से होता है, बल्कि इस कार्य में अत्यधिक सुख मिलने के कारण इसमें उसे ऐसे खतरे भी पैदा हो जाते हैं, जो उसके जीवन को संकट में डाल देते हैं, और प्रायः उसपर बहुत बोझ डालते हैं। व्यष्टि के जीवन का कुछ अंश बाद की पीढ़ी के लिए एक स्वभाव या प्रवृत्तिरूप में सरक्षित करने के वास्ते सम्भवतः बिलकुल विशिष्ट विपचक प्रक्रमों की आवश्यकता होती है, जो अन्य सब कार्यों से बिलकुल भिन्न होते हैं। और अन्त में, व्यष्टि जीवपिंड, जो अपने-आपको सबसे महत्त्वपूर्ण समझता है, और अपनी यौन-प्रवृत्ति को अन्य प्रवृत्तियों की तरह अपनी निजी सन्तुष्टि का साधन समझता है, जैविकीय दृष्टिकोण से, पीढ़ियों या सन्ततियों की एक श्रेणी में एक अवान्तर कथा या उपाख्यान की तरह ही है। यह 'जर्म-प्लाज़्म' था, जो वास्तव में अमरत्व से सम्पन्न है, एक अल्पजीवी उपांग-मात्र है, जिसकी तुलना

ऐसी सम्पत्ति के अस्थायी धारणकर्ता से की जा सकती है जिसके उत्तराधिकारियो का क्रम निश्चित है, और जो उसकी मृत्यु के बाद भी कायम रहेगी।

पर स्नायुरोगो का मनोविश्लेषण द्वारा स्पष्टीकरण करते हुए हमे इतनी दूर की बातें सोचने की आवश्यकता नही। यौन और अहम् प्रवृत्तियो के अतर को पकड़कर हमने स्थानान्तरण स्नायुरोगो को समझने की कुजी हासिल कर ली है। हम उनका उद्गम एक मूल-स्थिति से ढूढने मे सफल हुए थे, जिसमे यौन प्रवृत्तियों का आत्मसरक्षण की प्रवृत्तियो से सघर्ष हुआ था, या यदि जैविकी के शब्दो मे कहे, जो उतना यथार्थ कथन नही होगा, तो—उसमे अहम् अपनी स्वतन्त्र व्यष्टि जीवपिंड की हैसियत मे अपनी दूसरी हैसियत, अर्थात् एक सन्तति-श्रेणी के सदस्य की हैसियत, मे अपने ही विरोध मे आ खड़ा हुआ था। ऐसा विसंघटन[1] शायद सिर्फ मनुष्य मे है, जिसका अर्थ यह हुआ कि कुल मिलाकर उसकी अन्य प्राणियो से श्रेष्ठता उसकी स्नायुरोगी होने की क्षमता ही रह जाती है। उसके राग का अत्यधिक परिवर्धन और उसके मानसिक जीवन का बहुत अधिक विस्तार, जो शायद इसीके कारण सीधा सम्भव हुआ है, होने के कारण ही इस तरह का सघर्ष पैदा हुआ मालूम होता है। जो हो, पर इतनी बात स्पष्ट है कि इन्हीं अवस्थाओ में मनुष्य ने उन बातों के आगे बहुत अधिक तरक्की की है जिनमे वह पशुओ के समान है,और इस प्रकार उसका स्नायुरोग का सामर्थ्य उसकी सास्कृतिक उन्नति के सामर्थ्य का ही अभिरूप[2] है। फिर भी ये सब ऐसी कल्पनाए हैं जो हमे विचारणीय विषय से दूर हटाती हैं।

अब तक हमने इस कल्पना के आधार पर कार्य किया है कि यौन तथा अहम् निसर्ग-वृत्तियो के व्यक्त रूपो मे अतर किया जा सकता है। स्थानान्तरण स्नायुरोगो मे यह बिना कठिनाई के किया जा सकता है। अहम् जो ऊर्जा अपनी यौन इच्छाओं के आलम्बनों की ओर भेजता है, उसे हमने राग या लिबिडो कहा था, और अन्य सब आच्छादनों को, जो उसकी आत्मरक्षण की प्रवृत्तियों से पैदा होते हैं, इसका 'स्वहित' कहा था। और राग के आच्छादनों, उनके रूपान्तरणों, और उनकी अन्तिम गतियों, पर विचार करके हम मानसिक जीवन मे कार्य करनेवाले बलो के बारे मे पहली जानकारी हासिल कर सके थे। स्थानान्तरण स्नायुरोग इस खोज के लिए सबसे अच्छी सामग्री प्रस्तुत करते थे। पर अहम्—अनेक गठनों, से उनकी सरचनाओं और कार्य-रीतियों से से उसके सघटन—का पता नहीं चल सका; हमको यह अनुभव हुआ था कि इन मामलों पर रोशनी डालने से पहले दूसरे स्नायविक विकारों का विश्लेषण आवश्यक होगा।

इन दूसरे विकारों पर भी मनोविश्लेषण-सम्बन्धी अवधारणों का लागू करना

1. Dissociation 2. Obverse

आरम्भिक काल मे शुरू किया गया था। १६०८ मे ही के० अब्राहम मुझसे बातचीत करने के बाद यह विचार प्रकट कर चुका था कि डेमेन्शिया प्रीकौक्स का भेदक लक्षण यह है (यह एक मनोरोग माना जाता था) कि इस रोग मे आलम्बनों पर राग के आच्छादनों का अभाव होता है।[1] पर तब यह प्रश्न पैदा हुआ डेमेन्शिया रोगियों का राग जब अपने आलम्बनों से दूसरी ओर हट जाता है, तब उसका क्या होता है। अब्राहम ने बिना हिचकिचाहट के जवाब दिया कि यह मुडकर ईगो, अर्थात् अहम्, पर आ जाता है, और इसके प्रतिक्षिप्त प्रतिवर्तन[2] से ही डेमेन्शिया प्रीकौक्स मे भव्यता के भ्रम पैदा होते हैं। भव्यता का भ्रम हर दृष्टि से वैसा ही होता है, जैसे किसी प्रेम-सम्बन्ध मे आलम्बन को बढा-चढाकर देखना। इस प्रकार, एक मनोरोग की एक विशेषता को हम जीवन मे प्रेम करने की प्रकृत रीति से जोडकर समझ सके।

[illegible]

आलम्बनों से जुडा हुआ पाते हैं, और जो इन आलम्बनों से कुछ सन्तुष्टि पाने की इच्छा को प्रकट करता है, इन आलम्बनो को त्याग भी सकता है, और उनके स्थान पर अहम् को ही स्थापित कर सकता है, और क्रमश यह विचार अधिक सुसगत होता चला गया। राग के इस तरह उपयोग में आने का नाम स्वरति अथवा नारसिसिज्म हमने पी० नैक द्वारा वर्णित एक काम-विकृति से लिया है, जिसमे एक वयस्क व्यक्ति वे सब आलिंगन, चुम्बन आदि कार्य अपने ही शरीर पर करता है, जो वैसे अपने से भिन्न यौन आलम्बन पर किए जाते हैं।

तब सोचने पर एकदम यह पता चला कि यदि आश्रय, अर्थात् रोगी के अपने शरीर और अपने व्यक्तित्व पर इस तरह की बद्धता हो सकती है, तो यह घटना बिलकुल अपवाद-रूप और निरर्थक नहीं हो सकती। इसके विपरीत, सम्भावना यह है कि यह स्वरति विश्वव्यापी मूल दशा है, जिससे आलम्बन-प्रेम बाद मे पैदा होता है, और आवश्यक नहीं कि आलम्बन-प्रेम पैदा हो जाने पर स्वरति खत्म ही हो जाए। आलम्बन-राग के विकास को भी याद रखना जरूरी है, जिसमे शुरू मे बहुत-से यौन आवेग शिशु के अपने शरीर पर ही परितुष्ट किए जाते हैं—जिसे हम आत्मकामिता कहते हैं—और आत्मकामिता के इस सामर्थ्य के कारण ही यौन वृत्ति यथार्थता-सिद्धान्त के अनुरूप बनने मे पिछडी रहती है। इस प्रकार, यह प्रतीत हुआ कि आत्मकामिता राग की सचरण-दिशा की स्वरति वाली कला का यौन-व्यापार है।

१. The Psycho-Sexual Differences between Hysteria and Dementia Praecox २. Reflex reversion

पूरक है। जब कोई आदमी अहकार की बात करता है, तब वह सम्बन्धित व्यक्ति के स्वहितों की ही बात सोच रहा होता है। पर स्वरति उसकी रागात्मक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से भी सम्बन्ध रखती है। इन दोनों को अलग-अलग जीवन में व्यावहारिक प्रेरक रूप में बहुत दूर तक देखा जा सकता है। कोई आदमी बिलकुल अहकारी हो सकता है और साथ ही अहकारी आलम्बनों के प्रति वहा तक प्रबल रागात्मक रूप से जुड़ा हुआ भी, जहा तक किसी आलम्बन से होनेवाली राग-सन्तुष्टि में उसके अहम् की आवश्यकता पूरी होती हो। तब उसका अहकार यह व्यवस्था कर लेगा कि आलम्बन के प्रति उसकी इच्छाओं से उसके अहम् को कोई चोट न पहुचे। कोई आदमी अहकारी होता हुआ प्रबल स्वरति वाला (अर्थात् आलम्बनों की कोई आवश्यकता अनुभव न करनेवाला) भी हो सकता है, और उसकी स्वरति का रूप वह भी हो सकता है जिसमें सीधे यौन सन्तुष्टि की जाती है; या वे भावना के ऊचे रूप भी हो सकते हैं जो यौन आवश्यकताओं से पैदा होते हैं, और जो आम तौर से 'प्रेम' कहलाते हैं, और जिन्हें 'कामुकता या विषय-वासना' से भिन्न समझा जाता है। इन सब स्थितियों में अहकार स्वत स्पष्ट अचर अश होता है, और स्वरति परिवर्ती अश होता है। स्वार्थ या अहकार का उलटा शब्द परार्थ किसी आलम्बन को राग से आच्छादित करने का वाचक नहीं है। इसमें आलम्बन से यौन सन्तुष्टि की इच्छा का अभाव होता है, पर जब प्रेम की दशा पूर्ण तीव्रता पर आ जाती है, तब परार्थ और किसी आलम्बन को राग से आच्छादित करना एक ही बात हो जाती है। साधारणतया यौन आलम्बन अहम् की स्वरति का एक अश अपनी ओर खींच लेता है, जो आलम्बन के यौन अति-मूल्याकन (यौन आलम्बन को बहुत अच्छा मानने) में दिखाई देता है। यदि इसमें आलम्बन के प्रति प्रेषित और प्रेमी के अहकार से उत्पन्न परार्थ को भी जोड दिया जाए तो यौन आलम्बन सर्वोच्च हो जाता है। इसने अहम् को पूरी तरह निगल लिया है।

मैं समझता हू कि इन शुष्क वैज्ञानिक कल्पनाओं से आप बोझ अनुभव कर रहे होंगे। इसलिए स्वरति की अवस्था और पूर्ण तीव्र प्रेम के 'आर्थिक' वैषम्य का एक कवि-वर्णन आपके सामने पेश करता हू। यह मैं गेटे के वेस्टोस्टलिश डीवन (Westostliche Divan) में जुलेखा और उसके प्रेमी में हुए सम्वाद से ले रहा हू

जुलेखा

सब सहमत हैं, हों वे विश्वविजेता,
दास, या कि जन-साधारण,
अपने आपे का रहना ही है धरती का सुख सच्चा
इसके रहने पर सब जीवन ग्राह्य, और
इसको रखने को हैं सभी त्याग स्वीकार्य।

हातिम

कहते तो हैं ! और ठीक ही कहते होंगे !
पर धरती का सारा सुख,
है मिला मुझे, एकत्र तुलेगा मैं !
यह अपने को मुक्तार करती सर्व
कि जिससे मैं बनता हूं मैं,
हटती यदि वह दूर, नहीं
मुझको अपना आपा ढूंढे मिलता,
और सनम हातिम हो जाता,
पर यदि वह बन जाए किसी
सौभाग्यवान् की हृदय-हार
तो हातिम झट आ जाएगा
उसी हृदय की धड़कन बन कर।'

दूसरी बात है स्वप्नों के सिद्धान्त के अधिक विस्तार की। स्वप्न किस तरह पैदा होता है, इसकी तब तक व्याख्या नहीं हो सकती जब तक हम यह न मानें कि जिसे दमन करके अचेतन में भेज दिया है वह अहम् से कुछ स्वतंत्र हो गया है; इसलिए यह सोने की इच्छा के अधीन नहीं रहता और अपने आच्छादनों को कायम रखता है, हालांकि अहम् से पैदा होनेवाले सब आलम्बन-आच्छादन नींद-प्रयोजन के लिए पीछे खींच लिए गए हैं। इससे ही हम यह समझ सकते हैं कि यह अचेतन सामग्री रात में सेंसरशिप की क्रियाओं के निराकरण या कमी का कैसे उपयोग कर सकती है और यह जानती है कि दिन की बची हुई स्मृतियों से प्रतिषिद्ध स्वप्न-इच्छा का किस तरह निर्माण किया जाए। दूसरी ओर, सोने की इच्छा और इसके द्वारा प्रेरित राग के प्रत्याहरण या वापस खींच लेने के विरुद्ध जो प्रतिरोध होता है, उसका जन्म इस अवशेष और दमित अचेतन सामग्री के बीच पहले से मौजूद साहचर्य से हो सकता है। इसलिए इस महत्त्वपूर्ण गतिकीय कारक को भी अब स्वप्न-रचना के उस अवधारण में समाविष्ट कर लेना चाहिए, जो हमने पहले बताया था।

कुछ दशाओं—अंग-रोग उद्दीपन की कष्टदायक अनुभूति, किसी अंग की प्रदाहात्मक अवस्था—का स्पष्टतः प्रभाव यह होता है कि राग की अपने आलम्बन पर ससक्ति कम हो जाती है। इस तरह जो राग खींचा गया है, वह शरीर के रोगी भाग पर अधिक प्रबल आच्छादन के रूप में फिर अहम् में जुड़ जाता है। सच पूछिए

तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऐसी अवस्थाओं में राग का अपने आलम्बनों से खिंचकर हट जाना बाहरी दुनिया में अहंकारमूलक स्वहितों या दिलचस्पियों के अपने विषयों से हटने की अपेक्षा अधिक विलक्षण होता है। इसमें हाइपोकोण्ड्रिया को समझना सम्भव मालूम होता है। हाइपोकोण्ड्रिया में कोई अंग देखने में रोगी न होते हुए भी अहम् की चिन्ता का विषय बना रहता है। पर मैं इस विषय में आगे नहीं जाऊंगा, और उन स्थितियों पर विचार नहीं करूंगा जो आलम्बन-राग के अहम् पर लौट आने की इस धारणा के आधार पर किए जा सकते हैं। क्योंकि दो आक्षेप अवश्य उठाए जाएंगे, जो इस समय आपके ध्यान में हैं। प्रथम तो, आप यह जानना चाहते हैं कि जब मैं नींद, रोग और ऐसी ही अन्य अवस्थाओं पर विचार करता हूं, तब राग और 'स्वहित' में, यौन निसर्ग-वृत्तियों और अहम्-निसर्ग-वृत्तियों में विभेद पर क्यों बल देता हूं, जबकि यह मानने पर प्रेक्षणों की सन्तोषजनक व्याख्या हो जाती है कि एक ही, एक समान ऊर्जा, जो अबाधित चलती-फिरती है, आलम्बन या अहम् इन दोनों को छाप सकती है, और दोनों के उद्देश्य बराबर सिद्ध कर सकती है। दूसरे, आप यह जानना चाहेंगे कि यदि राग का अपने आलम्बनों से वियोजन या आलम्बन-राग का अहम्-राग में—या साधारणतया अहम्-ऊर्जा में—रूपान्तरण एक प्रकृत मानसिक प्रक्रम है, जो प्रतिदिन और प्रतिरात्रि होता रहता है, तो राग के अपने आलम्बनों से वियोजनों को एक रोगात्मक दशा का उद्गम, मैं कैसे बता सकता हूं?

इसका उत्तर यह है : आपका पहला आक्षेप ठीक मालूम होता है। नींद, रोग और प्रेम में पड़ने की अवस्थाओं की जांच में सम्भवतः कभी भी अहम्-राग और आलम्बन-राग में विभेद या राग और 'स्वहितों' के विभेद का पता नहीं चल सकता था, पर आप यह भूल गए हैं कि हमने शुरू में क्या चीजें देखी थीं, जिनकी रोशनी में हम मानसिक स्थितियों पर विचार कर रहे हैं। राग और स्वहितों में, यौन और आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों में विभेद करने की आवश्यकता हमें इस द्वन्द्व की जानकारी होने पर, जिससे स्थानान्तर स्नायुरोग पैदा होते हैं, मजबूरन माननी पड़ती है। आगे हमें इस विभेद को ध्यान में रखना होगा। यह धारणा ही कि आलम्बन-राग अहम्-राग में परिवर्तित हो सकता है—दूसरे शब्दों में, कि हमें अहम्-राग से भी वास्ता पड़ेगा—एकमात्र ऐसी धारणा प्रतीत होती है जो स्वरति सम्बन्धी स्नायुरोग कहलानेवाले रोगों—उदाहरण के लिए डेमेन्शिया प्रीकौक्स की पहेली सुलझा सकती है, अथवा हिस्टीरिया और मनोग्रस्तताओं से उनके सादृश्यों और असादृश्यों की सन्तोषजनक व्याख्या कर सकती है। इसके बाद हम [illegible], नींद और तीव्र प्रेम की दशा पर लागू करते हैं, जिन्हें हमने [illegible] असन्दिग्ध रूप से प्रमाणित पाया है। हम उनका [illegible] हैं, और यह देख सकते हैं कि वे हमें कहां

पहुँचाएगी। जो एकमात्र निष्कर्ष सीधे विश्लेषण सम्बन्धी अनुभव के आधार पर नहीं है, यह यह है कि राग राग ही है, और राग ही रहता है, चाहे वह आलम्बनों से मुक्त हो या स्वयं अहम् से मुक्त हो और वह कभी भी अहम्मूलक 'रुचियों' में रूपान्तरित नहीं होता और इसी तरह इसका उलटा भी समझिए। पर यह का यौन-निसर्ग-वृत्तियों और अहम्-निसर्ग-वृत्तियों के भेद को, जिसपर पहले ह आलोचनात्मक विचार किया है, प्रकट करने का एक और तरीका है, और इ विभेद को हम और बातें खोज निकालने के उद्देश्य से तब तक मानते रहेंगे ज तक कि वह निरर्थक सिद्ध न हो।

आपके दूसरे आक्षेप से भी एक उचित प्रश्न पैदा होता है, पर वह एक मिथ मुड़ने की ओर जाता है। आलम्बन-राग का वापस खिचकर अहम् में आ जा निश्चित ही रोगजनक नहीं है। यह सच है कि नींद शुरू होने से पहले हर रा यह बात होती है और जागने पर उलटा प्रक्रम होता है। जीवद्रव्यीय (प्रोटोप्ला ज़्मिक) अणुप्राणी' अपने उभारों को भीतर खींच लेता है, और अगली बार फि उन्हें बाहर निकाल देता है; पर जब कोई सुनिश्चित, बड़ा ज़बरदस्त प्रक्रम रा को अपने आलम्बनों से हट आने के लिए मजबूर करता है, तब यह बिलकुल दूसरं ही बात होती है। जो राग तब स्वरति वाला बन चुका है, वह अब अपने आलम्बनं पर वापस नहीं लौट सकता, और राग के मुक्त सचलन के रास्ते की यह रुकावट निश्चित रूप से रोगजनक सिद्ध होती है। प्रतीत होता है कि एक निश्चित सतह से ऊपर स्वरतिक राग का संचय असह्य हो जाता है। यह कल्पना सुसंगत होगी कि इसी कारण आलम्बनों को इसने आच्छादित किया, कि अहम् को अपना राग इसलिए मजबूरन आगे भेजना पड़ा ताकि वह इसके अतिसंचय से रोगी न हो जाए। यदि हमें डेमेन्शिया प्रीकोक्स रोग पर विस्तार से विचार करना होता तो मैं आपको यह स्पष्ट बताता कि जो प्रक्रम राग को अपने आलम्बनों से अलग करता है और उसके फिर उनपर लौटने के मार्ग को रोकता है, उसका दमन के प्रक्रम से निकट सम्बन्ध है, और उसे इसका एक दूसरी ओर का हिस्सा ही समझना चाहिए। जो भी हो, पर जब आपने यह देखा कि इन प्रक्रमों को जन्म देनेवाली आरम्भिक अवस्थाएं, जहां तक हमें इस समय मालूम हैं वहां तक, दमन के प्रक्रमों से प्रायः अभिन्न होती हैं, तब आपको अपना आधार कुछ परिचित भूमि पर पता चलेगा। द्वन्द्व भी वही प्रतीत होता है, और वह उन्हीं दोनों बलों के बीच चल भी रहा मालूम होता है; क्योंकि उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया के परिणाम की अपेक्षा यहां परिणाम *भिन्न* है। इसलिए इसका कारण स्वभाव या मनोविन्यास में कोई अन्तर ही हो सकता है। इन रोगियों में राग-परिवर्धन का दुर्बल स्थान परिवर्धन की एक दूसरी ही कला में पाया जाता है, निर्णायक बद्धता जो आपको याद होगा, लक्षण-निर्माण के प्रक्रम

को शुरू करती है, एक दूसरे स्थान पर, सम्भवत प्राथमिक स्वरति की अवस्था मे, होती है ; जिसपर डेमेन्शिया प्रीकौक्स अन्त मे लौटता है। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि स्वरतिक स्नायु-रोगों के लिए हमें राग के बद्धता-बिन्दु परिवर्धन की उन कलाओं पर मानने पड़ते हैं, जो हिस्टीरिया या मनोग्रस्तता-रोग की दशाओ से बहुत पहले होती हैं, पर आप सुन चुके हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के अध्ययन से हम जिन अवधारणाओं पर पहुचे हैं, वे हमें स्वरतिक स्नायु-रोगो के स्पष्टीकरण में भी, जो व्यवहारत बहुत अधिक तीव्र होते हैं, सहायक होती हैं। उन दोनो मे बहुत अधिक सादृश्य है। आधारत वे एक ही वर्ग की घटनाएं हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि इन रोगों को (जो असल मे मनश्चिकित्सा का विषय हैं), स्थानान्तरण स्नायु-रोगों का विश्लेषण से प्राप्त ज्ञान न होने पर, व्याख्या करने की कोशिश करना कितना व्यर्थ कार्य है।

डेमेन्शिया प्रीकौक्स के लक्षणों से जो तस्वीर बनती है—और यह बहुत परिवर्ती होती है—उसका रूप राग को आलम्बनों से पीछे की ओर धकेलने से पैदा होने वाले लक्षणों और अहम् मे स्वरति के रूप मे इसके सचय मात्र से ही निर्धारित नहीं होता, अन्य घटनाएं भी प्रमुख रूप मे मौजूद होती हैं, और उनका कारण वे प्रयत्न हैं, जो राग अपने आलम्बनों पर फिर पहुचाने के लिए करता है, और इसलिए जो पुन स्थापन¹ और स्वास्थ्य-लाभ के प्रयत्नों के सवादी होते हैं। असल मे, ये ध्यान खींचने वाले मुखर लक्षण होते हैं। इनका हिस्टीरिया के लक्षणों से और कभी-कभी मनोग्रस्तता-रोग के लक्षणो से बहुत सादृश्य दिखाई देता है, पर फिर भी वे हर दृष्टि से भिन्न होते हैं। प्रतीत होता है कि डेमेन्शिया प्रीकौक्स मे राग के, अपने आलम्बनो पर, अर्थात् अपने आलम्बनों के मनोबिंबो पर पहुचने के प्रयत्न सफल हो जाते हैं, और वे उनके कुछ अश को, जो छायामात्र होते हैं, अर्थात् उनमे जुड़ी हुई शाब्दिक प्रतिबिंबों या मूर्तियों, अर्थात् शब्दों को, अपने साथ मिला लेते हैं। यहा इस प्रश्न पर अधिक विचार नहीं किया जा सकता, पर मेरी राय मे राग की इस उलटी प्रक्रिया से हमें कुछ-कुछ यह पता चल जाता है कि चेतन मनोबिंब के बीच वास्तविक अन्तर क्या होता है।

अब हम ऐसी जगह पहुंच गए, जहां से आगे विश्लेषण-कार्य बढ़ाने की आशा होती है। जब हमने अहम्-राग का अवधारणा बनाने का निश्चय किया था, उसके बाद हम स्वरति स्नायु-रोगों के रहस्य को समझने लगे हैं। हमारा लक्ष्य यह था कि इन रोगों मे होने वाले प्रतिक्रीय कारकों का पता लगाएं और साथ ही अहम् को पूरी तरह समझकर मानसिक जीवन के बारे मे अपने ज्ञान का विस्तार करें। हम अहम् के जिस मनोविज्ञान पर पहुचना चाहते हैं, उसकी बुनियाद हमारे अपने

¹ restitution

अवबोधनों से प्राप्त होने वाली सामग्री पर नहीं खड़ी की जा सकती। राग की
तरह इसकी बुनियादी या आधार भी अहम् के विरोधों और विखंडनों के ज्ञ
को ही बनाना होगा। जब हम उस अधिक बड़े कार्य को कर लेंगे, तब स्थान
स्नायु-रोगों के अध्ययन से राग की गति के बारे में प्राप्त अपने मौजूदा ज्ञान
में शायद कुछ भी नहीं सोचेंगे, पर अभी हम इसकी ओर बहुत आगे नहीं ब
जो विधियां स्थानान्तरण स्नायु-रोग के लिए फायदेमन्द रही हैं, उनसे स्व
स्नायु-रोगों का अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसका कारण आपको अभी ब
जाएगा। इन रोगियों के साथ सदा यह होता है कि कुछ दूर घुस जाने के बाद स
एक पत्थर की दीवार आ जाती है, जिसे पार नहीं किया जा सकता। आप ज
हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में भी इस तरह के प्रतिरोध की रुकावटें आतं
पर उन्हें थोड़ा-थोड़ा करके हटा देना सम्भव है। स्वरतिक स्नायु-रोगों में प्रतिरोध
अलङ्घ्य होता है, हम दीवार के ऊपर से गर्दन निकालकर वहां की अवस्था की
एक-दो झांकियां ही ले सकते हैं। इसलिए हमें अपनी पुरानी विधि के स्थान पर अन्य
विधियां अपनानी होंगी। इस समय हमें यह पता नहीं है कि हमें कोई और विधि
प्राप्त करने में सफलता होगी या नहीं। इन रोगियों के पास सामग्री की कमी नहीं
होती। वे बहुत कुछ मसाला हमारे सामने रखते हैं, यद्यपि वह हमारे प्रश्नों के
उत्तर के रूप में नहीं होता। इस समय हम इतना ही कर सकते हैं कि जो कुछ वे
कहते हैं, उसका स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के अध्ययन में प्राप्त जानकारी के प्रकाश
में अर्थ लगाएं। रोग के इन दोनों रूपों में मौजूद सादृश्य इतना अधिक है कि उनसे
हम विचार सन्तोषजनक रीति से शुरू कर सकते हैं। इस रीति से हमें कितनी सफ-
लता मिलेगी, यह अभी देखना है।

हमारे आगे बढ़ने के रास्ते में इसके अलावा और भी कठिनाइयां हैं। स्वरतिक
रोग और उनसे सम्बन्धित मनोरोग की गुत्थी स्थानान्तरण स्नायु-रोग के विश्ले-
षण की दीक्षा पाए हुए प्रेक्षकों द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। पर हमारे मन-
श्चिकित्सक मनोविश्लेषण का अध्ययन नहीं करते और हम मनोविश्लेषकों को
मनश्चिकित्सा के रोगी बहुत कम दिखाई देते हैं। हमें ऐसे मनश्चिकित्सक पैदा
करने होंगे जिन्होंने अपने कार्य की तैयारी के रूप में मनोविश्लेषण की दीक्षा पाई
हो। इस दिशा में एक प्रयत्न अमेरिका में किया जा रहा है। यहां अनेक प्रमुख मन-
श्चिकित्सक मनोविश्लेषण पर अपने छात्रों को व्याख्यान देते हैं, और संस्थाओं
और आश्रमों के अध्यक्ष डाक्टर अपने रोगियों को इस सिद्धान्त के प्रकाश में देखने
की कोशिश करते हैं। फिर भी हमें स्वरति की दीवार के ऊपर से झांकने का मौका
मिला है और अब मैं आपको वे बातें बताऊंगा जो मैं समझता हूं कि हमने इस
दिशा में नई पता लगाई हैं।

मौजूदा मनश्चिकित्सा ने वर्गीकरण करने के जो यत्न किए हैं, उनमें पैरा-

नोइआ रोग की, जो 'सिस्टेमैटिक इन्सैनिटी', अर्थात् व्यवस्थित पागलपन का जीर्ण[1] रूप है, स्थिति बड़ी अनिश्चित है, पर इसमें कोई सदेह नहीं कि डेमेन्शिया-प्रीकौक्स से उसका नज़दीकी सम्बन्ध है। मैंने तो बल्कि यह प्रस्ताव किया है कि इन दोनों को मिलाकर पैराफ्रेनिया कहना चाहिए। पैरानोइआ के रूपों का वर्णन भ्रम की वस्तु के अनुसार किया जाता है, उदाहरण के लिए महानता[2] का भ्रम, सताए जाने का भ्रम, ईर्ष्या का भ्रम, प्रेमपात्रता का भ्रम (ऐरोटोमेनिया) इत्यादि। हम यह आशा नहीं करते कि मनश्चिकित्सा इनकी व्याख्या करने की कोशिश करेगी। उदाहरण के लिए, मैं उस प्रयत्न का उल्लेख करूँगा जो इनमें से एक लक्षण को दूसरे से निकालने या व्युत्पन्न करने के लिए बौद्धिक समीकरण[3] द्वारा किया गया था: जिस रोगी में अपने-आपको सताया गया मानने की प्राथमिक प्रवृत्ति होती है, वह इससे यह निष्कर्ष निकालता है कि वह अवश्य ही बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है, और इसलिए उसमें महानता का भ्रम पैदा हो जाता है। हमारे विश्लेषणीय अवधारण के साथ महानता का भ्रम आलम्बनों को आच्छादन से खींचे गए राग द्वारा अहम् के फुलाव का सीधा परिणाम होता है, और पहले वाले गुरु के शैशवीय रूप के वापस आ जाने से एक परवर्ती स्वरति आरम्भ हो जाती है। पर सताए जाने के भ्रमों के रोगियों में हमें जो चीज़ें दिखाई दीं, उन्हें पकड़कर हम कुछ दूर चल सके। प्रथम तो हमने यह देखा कि अधिकतर उदाहरणों में सताने वाला और सताए जाने वाले व्यक्ति दोनों एक ही लिंग के होते हैं। यह सच है कि इसकी हानिरहित व्याख्या की जा सकती है, पर कुछ अवस्थाओं में, जिनका बारीकी से अध्ययन किया गया, यह पता चला कि उसी लिंग का वह व्यक्ति ही, जो रोगी के प्रकृत होने पर उसे सबसे अधिक प्रिय था, रोग पैदा हो जाने के बाद सताने वाला बन गया। इसमें इसका एक और परिवर्धन साहचर्य के सुविदित तरीकों से सम्भव हो जाता है, जिससे एक प्रिय व्यक्ति के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति ले आया जाता है। उदाहरण के लिए, पिता के स्थान पर मालिक या सत्तारूढ़ व्यक्ति ले आए जाते हैं। इन प्रेक्षणों से, जिनकी बीच-बीच में लगातार पुष्टि होती रही, हमने यह निष्कर्ष निकाला कि सताने का भ्रमोन्माद या पर्सिक्यूटरी पैरानोइआ के द्वारा व्यक्ति अपने-आपको समकामी आवेग से, जो बहुत प्रबल हो गया है, बचाता है। अनुरागपूर्ण भावना का घृणा में परिवर्तन, जैसाकि सुविदित है, प्रेम और घृणा के आलम्बन के जीवन का गम्भीर खतरा बन सकता है, तब रागात्मक आवेगों के चिन्ता में परिवर्तन का सवादी है, जोकि दमन के प्रक्रम का नियत परिणाम होता है। इसके दृष्टान्त के लिए मैं इस तरह के

---

1. Chornic 2. Grandeur 3. Intellectual rationalization

इस रोगी के कथनानुसार [illegible] हूं, जो मेरे [illegible] था। [illegible] के बारे में [illegible] से दूर [illegible], क्योंकि उसके एक [illegible] के [illegible] के जीवन [illegible] जो [illegible] था, [illegible] दी थी। यह [illegible] था कि इस [illegible] है और मेरे [illegible] हुई [illegible] है। [illegible] और [illegible] थी, और [illegible] और किसी औरत के [illegible] दिन देखने [illegible] थे, [illegible] ही दोनों [illegible] था। [illegible] नहीं थी। उस [illegible] और उसके [illegible] किया से ही दृढ़ बनाया था, और स्त्रियों की ओर से [illegible] था। उसके दुबारा [illegible] में उसके जीवन को बर्बाद किया था। दूसरे रोगी का यह विश्वास था कि इस बदमाश को [illegible] से दुनिया भी [illegible] दूर हो जाती, फिर भी उसके प्रति उसका पुराना प्रेम इतना प्रबल था कि जब उसे अपने शत्रु को सामने देखकर गोली मारने का मौका आया, तब वह निष्क्रिय हो गया। रोगी से मेरी जो थोड़ी बातचीत हुई, उससे यह पता चला कि इन दोनों व्यक्तियों की यह घनिष्ठ मैत्री उसके बचपन के दिनों से चली आती थी, कम से कम एक मौके पर वह मित्रता की सीमाओं का उल्लंघन कर गई थी—उन्होंने एक रात इकट्ठे बिताई थी, और इस अवसर पर पूर्ण सम्भोग किया था। रोगी में स्त्रियों के प्रति कभी कोई ऐसी भावना नहीं पैदा हुई थी, जो उस आयु में ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व वाले आदमी में पैदा होनी स्वाभाविक थी। उसका एक सुन्दर और अच्छे घराने की लड़की से वचनबन्ध (सगाई से पहले बातचीत तय होना) हुआ था, पर उसने इस कारण उस बन्धन को तोड़ दिया कि उसका प्रेमी उसके प्रति बहुत उदासीन था। बरसों बाद उसका रोग ठीक उस समय शुरू हुआ, जबकि वह पहली बार एक स्त्री को पूर्ण यौन परितुष्टि देने में सफल हुआ था। जब इसने कृतज्ञता और प्रेम के आवेश में उसे अपनी बाहुओं में भर लिया, तब इसे एकाएक यह अनुभव हुआ कि मेरे सिर के चारों ओर तेज चाकू की धार-सी चल रही है और पीड़ाकारक रहस्यमय घाव हो गया है। बाद में उसने इस संवेदन को दिमाग को नंगा करने के लिए पोस्टमार्टम, अर्थात् मरणोत्तर कार्य के समय किए जाने वाले कटाव जैसा बताया और चूंकि उसका मित्र रोग-शरीर-शास्त्री, या पैथोलोजिकल एने-टोमिस्ट था, इसलिए वह धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उसने इस औरत को प्रलोभन के रूप में भेजा होगा। बाद में उन दूसरी बातों के विषय में उसकी आंखें खुलने लगीं, जिनके द्वारा उसके पुराने दोस्त ने उसे सताया था।

पर उन उदाहरणों का क्या होगा जिनमें सताने वाला सताए जाने वाले से भिन्न लिंग का है और इसलिए जिनसे इस रोग के विषय में हमारी इस व्याख्या का खण्डन होता दिखाई देता है कि यह समकामी राग से बचाव है। कुछ समय पहले मुझे इस तरह के रं

वाले विरोध या खण्डन के पीछे मुझे उसकी पुष्टि होती हुई मिली। एक नौजवान लड़की यह समझती थी कि एक आदमी, जिसके साथ वह दो बार घनिष्ठ सम्बन्ध कर चुकी थी, उसे सताता था। असल में पहले उसका भ्रम एक स्त्री के विरुद्ध था जिसे माता का स्थानापन्न समझा जा सकता है। उस आदमी के साथ दूसरी बार मिलने के बाद ही उसने भ्रमात्मक मनोबिम्ब को स्त्री से पुरुष पर स्थानान्तरित किया। इस प्रकार इस उदाहरण में भी यह शर्त पूरी होती है कि सताने वाला उसी लिंग का है, जिसका सताया जाने वाला है। वकील और डाक्टर से शिकायत करते हुए रोगिणी ने अपने भ्रम की पहले वाली कला की चर्चा नहीं की थी, और इससे पैरानोइया के बारे में हमारे सिद्धान्त का खण्डन होता दिखाई देता था।

आलम्बन का समकामी चुनाव आरम्भ में, विषमकामी चुनाव की अपेक्षा, स्वरति से अधिक नज़दीकी सम्बन्ध रखता है। इसलिए जब कोई प्रबल नापसन्द समकामी उत्तेजन प्रत्याख्यात अर्थात् अस्वीकृत होता है, तब उससे स्वरति पर पहुंचने का रास्ता पा लेना विशेष रूप से आसान है। इन व्याख्यानों में मुझे अब तक यह बताने का कोई मौका नहीं मिला कि जहां तक हम जानते हैं, वहां तक जीवन में प्रेम-आवेग का मार्ग जिस आधारभूत रूपरेखा पर खड़ा है वह क्या है और न मैं अब इस विषय पर विशेष कुछ कह सकता हूं। मैं सिर्फ इतनी बात आपसे कहता हूं कि आलम्बन का चुनाव, जो स्वरति की अवस्था के बाद राग के परिवर्धन में अगला कदम है, दो प्ररूपों के अनुसार आगे बढ़ सकता है—या तो वह स्वरतिक प्ररूप होता है, जिसके अनुसार स्वयं अहम् के स्थान पर इससे यथासम्भव अधिक से अधिक मिलता-जुलता कोई व्यक्ति आलम्बन के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है, या एनेक्लीटिक प्ररूप (Anlehnungstypus)[1], जिसमें राग भी उन्हीं व्यक्तियों को आलम्बन के रूप में चुनता है जो जीवन में आदिम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने के कारण प्रिय बन गए हैं। आलम्बन-चुनाव के स्वरतिक प्ररूप पर प्रबल रागबद्धता भी व्यक्त समकामियों के स्वभाव का एक गुण होता है।

आपको याद होगा कि इस सत्र के अपने पहले व्याख्यान में मैंने एक स्त्री की भ्रमात्मक ईर्ष्या का एक उदाहरण दिया था। अब जबकि हम अपने अध्ययन को प्रायः समाप्त करने वाले हैं आप निश्चित ही यह जानना चाहेंगे कि मनोविश्लेषण भ्रम की क्या व्याख्या करता है, परन्तु जितनी आप आशा करते हैं उससे बहुत कम बात मैं आपको बता सकता हूं। मनोग्रस्तताओं की तरह भ्रमों के भी तार्किक युक्तियों और वास्तविक अनुभव से अप्रभावित रहने की व्याख्या उस सम्बन्ध-सूत्र के

---

१. यह शब्द इस बात का निर्देश करता है कि यौन वृत्तियां अपने प्रथम आलम्बन के लिए आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों पर, अर्थात् स्तन्य पिलाने वाली माता पर, निर्भर हैं।
—अंग्रेजी अनुवादक

सकती जब तक कुछ अधिक परिचय न हो जाए। ये सब अहम्-राग या स्वरतिक राग के अवधारणा का प्रयोग करने से ही सम्भव हुए हैं, जिनके द्वारा हम स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के लिए स्थापित निष्कर्षों को स्वरतिक स्नायु-रोगों पर भी लागू कर सकते हैं। पर अब आप यह पूछेंगे कि क्या स्वरतिक स्नायु-रोगों से और मनोरोगों के सब रूपों को राग-सिद्धान्त के क्षेत्र मे लाया जा सकता है ? क्या सदा यह देखा जा सकता है कि इस रोग के परिवर्धन का कारण सदा और सर्वत्र मानसिक जीवन का रागात्मक कारण ही होता है, और क्या आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों के कार्यों मे उसी परिवर्तन का कारणों मे कोई स्थान नही होता ? मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस प्रश्न का अभी फैसला करने की कोई आवश्यकता नही, और सबसे बडी बात यह है कि अभी फैसला करने का समय नही आया। हम इसे विज्ञान के कार्य की ओर अधिक उन्नति होने पर निर्णीत होने के लिए शान्तिपूर्वक छोड सकते है। यदि बाद मे यह सिद्ध हो तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा कि रोगजनक प्रभाव पैदा करने की क्षमता असल मे रागात्मक आवेगों का एक विशेष अधिकार है। और इस प्रकार, राग का सिद्धान्त असली स्नायु-रोगों से लेकर व्यक्तिगत गड़बडी के उग्रतम मनोविकारों तक, सारे में सफल या सार्थक सिद्ध होगा। कारण यह है कि राग की यह विशेषता है कि वह जीवन मे यथार्थता या आवश्यकता के अनुसार चलने से इन्कार कर देता है, पर मुझे यह अत्यधिक सम्भाव्य मालूम होता है कि अहम् निसर्ग-वृत्तियां गौणरूप से इसमे आती हैं, और राग के रोगजनक विकारों या प्रभावों से उनके कार्यों मे गडबडी या विक्षोभ पैदा हो सकते हैं, न मुझे यह दिखाई देता है कि यदि हमें यह मानना पड़े कि उग्र मनोरोग में स्वयं अहम्-निसर्ग वृत्तियां प्रथमतः विक्षिप्त होती हैं, भविष्य ही इसका फैसला करेगा—कम से कम आपके लिए।

अब जरा चिन्ता के बारे में फिर थोडा-सा विचार किया जाए, जिससे हमने वहां जो बात अस्पष्ट छोड दी थी, उसपर प्रकाश पड़े। हमने कहा था कि राग की चिन्ता और राग का सम्बन्ध जो वैसे इतना सुनिश्चित है, इस प्राय निर्विवाद मान्यता में बड़ी मुश्किल से संगत होता है कि खतरे को देखकर पैदा होने वाली आशंकानिष्ट चिन्ता आत्मसंरक्षण की वृत्ति को प्रकट करती है, पर यह चिन्ता का भाव अहम्-निसर्ग-वृत्ति के स्वार्थं के बजाय अहम्-राग से पैदा होता हो तो ? आखिरकार चिंता की दशा सदा हानिकारक होती है। जब यह तीव्र अवस्था में आ जाती है तब इसकी हानि की ओर ध्यान जाता है। तब यह उस क्रिया में बाधा डालती है जो उस समय एकमात्र हितकर और समयोचित क्रिया होगी और आत्मसंरक्षण का प्रयोजन सिद्ध करेगी, चाहे वह पलायन हो या आत्मरक्षा हो। इसलिए यदि हम आशंकानिष्ट चिंता के भावात्मक पक्ष का कारण अहम्-राग को और आत्मरक्षक निसर्ग-वृत्तियों का बताते हैं, तो [illegible]

स्थानान्तरण

अब हम अपने विषय की समाप्ति पर पहुंच गए हैं, और आपके मन में एक भाव उठ रहा होगा, जो आपको *बहका सकता है, पर ऐसा मौका नहीं आना चाहिए।* सम्भवतः आप सोच रहे हैं कि निश्चित ही ऐसा नहीं हो सकता कि मनोविश्लेषण की इन सब उलझनभरी महेलियों में से गुजरने के बाद, मैं आपको मनोविश्लेषण द्वारा चिकित्सा के बारे में, जिसके आधार पर ही मनोविश्लेषण कार्य किया जा सकता है, बिना कुछ कहे विदा कर दूगा। सच तो यह है कि इसके इस पहलू को छोड़ना सम्भव भी नहीं, क्योंकि इससे सम्बन्धित कुछ घटनाएं आपको एक ऐसे नये तथ्य का पता देंगी, जिसके ज्ञान के बिना आप उन रोगों को ठीक तरह नहीं समझ सकते, जिनपर हम विचार कर रहे हैं।

मैं जानता हू कि आप यह आशा नहीं करते कि चिकित्सा-कार्य के लिए विश्लेपण का प्रयोग करने की विधि के निर्देश आपको दिए जाए। आप तो मोटे तौर पर यह जानना चाहते हैं कि मनोविश्लेपण-चिकित्सा किन साधनों से और उपायों से की जाती है, और यह जानना चाहते हैं कि इससे क्या सफलता होती है, सचमुच यह जानने का आपको अवश्य अधिकार है। फिर भी, मैं आपको यह नहीं बताऊंगा, मैं चाहता हू कि इसका पता आप स्वयं लगाए।

जरा सोचिए तो ! आप उन अवस्थाओं से लेकर, जिनसे रोग आरम्भ होता है, रोगी मन के भीतर पैदा होने वाले सब कारकों तक, प्रत्येक आवश्यक बात पहले जान चुके हैं। इस सबमें चिकित्सा करने का रास्ता कहा है ? सबसे पहले वंशागत स्वभाव है—हम प्राय इसका उल्लेख नहीं करते, क्योंकि अन्य क्षेत्रों में इसपर बहुत बल दिया जाता है, और हम इसके बारे में कोई नई बात नहीं जानते। पर यह न समझिए कि हम इसे कम महत्त्वपूर्ण समझते हैं। चिकित्सक के नाते हम इसकी शक्ति से सुपरिचित हैं। कुछ भी हो, हम इसे बदलने के लिए कुछ नहीं कर सकते। हमारे लिए भी यह इस समस्या का स्थिर अंश है जिससे हमारे प्रयत्नों की एक सीमा बन जाती है। इसके बाद, आरम्भिक बचपन के अनुभवों का प्रभाव है,

जिसे हम विश्लेषण मे बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। वे भूतकाल से सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए हम उन्हें हटा नहीं सकते। इसके बाद, जीवन का वह सब दुःख है जिसे हमने 'यथार्थता मे कुंठा' के अन्तर्गत शामिल किया है, जिससे जीवन का सारा प्रेम का अभाव पैदा होता है—अर्थात् गरीबी, पारिवारिक झगड़े, विवाह मे गलत साथी का चुनाव, प्रतिकूल सामाजिक अवस्थाएं, और व्यक्ति पर नैतिक रूढ़ियों के नियमों की कठोरता। इन सभीमे सफल इलाज की बहुत गुंजाइश है, पर इस इलाज को वियेना की दंतकथा वाले कैसर जोसेफ के ढंग पर चलना पड़ेगा—कैसर जोसेफ ऐसा परोपकारी निरंकुश राजा था जिसकी इच्छा के आगे लोग सिर झुका देते और कठिनाइयां दूर हो जाती। पर हम चिकित्सा मे इतना परोपकार कैसे कर सकते हैं? हम गरीब लोग हैं और समाज मे हमारा कोई ऐसा प्रभाव नहीं, और हमें चिकित्सा करके अपनी रोजी कमानी है। इसलिए हम दूसरे डाक्टरों की तरह, जो दूसरी विधियों से चिकित्सा करते हैं, बहुत गरीब लोगों का इलाज भी नहीं कर सकते, और फिर हमारे इलाज में बहुत समय और मेहनत लगती है। पर शायद आप अब भी पहले पेश किए जा चुके कारकों मे से एक को पकड़े हुए हैं, और यह समझते हैं कि उसके रास्ते हम अपना प्रभाव डाल सकते हैं। यदि समाज द्वारा लगाई गई परम्परागत रुकावटों के कारण रोगी को प्रवंचित होना पड़ा है तो इलाज से उसे साहस प्राप्त होगा, और उसे सीधे यह सलाह भी दी जा सकती है कि वह इन रुकावटों को न माने, और अपनी सन्तुष्टि और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए उस आदर्श को तिलांजलि दे दे जो बहुत आदरणीय होता हुआ भी प्रायः दुनिया में रोज ठुकराया जाता है। तो, स्वास्थ्य 'मुक्त रहन-सहन' से प्राप्त होगा। विश्लेषण पर निश्चित रूप से यह आरोप लगाया जाएगा कि यह सामान्य नैतिकता का पोषण नहीं करता; इसने व्यष्टि को जो कुछ दिया, वह बाकी दुनिया से छीन लिया।

पर विश्लेषण के बारे में ऐसी मिथ्या धारणा आपको किसने दी, यह कहने की आवश्यकता नहीं। विश्लेषण सम्बन्धी इलाज का एक भाग यह होगा कि 'मुक्त रहन-सहन' रखो—इसका एक यह कारण तो है ही कि हम स्वयं आपसे कहते हैं कि रोगी में रागात्मक इच्छाओं और यौन दमन में, भोगात्मक और निवृत्ति की प्रवृत्तियों मे जबर्दस्त द्वन्द्व चल रहा है। दोनों पक्षों में से एक को मदद देकर जिता देने से यह द्वन्द्व दूर नहीं होता। यह सच है कि हम देखते हैं कि स्नायु-रोगियों मे निवृत्ति विजयी होती है जिसका परिणाम यह है कि अवरुद्ध यौन आवेग लक्षणों के रूप में दिखाई देने लगे हैं। यदि इसके स्थान पर हम भोगात्मक पक्ष को जिता सकें तो कामुकता या यौन प्रवृत्ति का दमन करने वाले तिरस्कृत बलों को लक्षणों द्वारा अपनी क्षति-पूर्ति करनी पड़ेगी। इन दोनों में से किसी भी उपाय से भीतरी द्वन्द्व का अन्त करने मे सफलता नहीं मिलेगी। दोनों अवस्थाओं में एक पक्ष अस-

न्तुष्ट रहेगा। बहुत कम रोगियों में यह द्वन्द्व ऐसा स्थायी होता है जिसपर डाक्टर की राय से कोई प्रभाव पड़ सके, और इन रोगियों को वास्तव में विश्लेषण द्वारा इलाज की आवश्यकता नहीं होती। जिन लोगों पर डाक्टरों का इतनी आसानी से असर पड़ जाता है, उन्होंने इस असर के बिना ही अपने द्वन्द्व को दूर करने का रास्ता निकाल लिया होगा। आखिरकार आप जानते हैं कि विषय-वासनाओं से बचकर रहनेवाला कोई नौजवान जब अवैध सम्भोग का इरादा करता है, या कोई असन्तुष्ट पत्नी जो कि किसी जार से सन्तुष्टि प्राप्त करती है, तब ऐसा करने के लिए किसी डाक्टर या मनोविश्लेषण की इजाज़त की राह नहीं देखते।

इस सवाल पर विचार करते हुए लोग आम तौर से कठिनाई के सबसे आवश्यक अंग को भूल जाते हैं, कि स्नायु-रोगी में रहनेवाला रोगजनक द्वन्द्व और एक ही मानसिक क्षेत्र में मौजूद सब विरोधी आवेगों में होनेवाला प्रकृत संघर्ष दो भिन्न चीज़ें हैं। यह प्रकृत संघर्ष दो ऐसे बलों की कुश्ती है जिनमें से एक को मन के पूर्व-चेतन और चेतन भाग की सतह तक आने में सफलता हुई है, जबकि रोगजनक द्वन्द्व अचेतन सतह पर ही घिरा रहा है। इसी कारण, इस द्वन्द्व का किसी एक तरफ अन्तिम फैसला कभी नहीं होगा। परस्पर विरोधी बल एक दूसरे के सामने नहीं आ पाते। निर्णायक फैसला तभी हो सकता है जब वे उसी मैदान में आमने-सामने आएं, और मेरी राय में, यह स्थिति ला देना ही इलाज का एकमात्र कार्य है।

इसके अलावा, निश्चित समझिए कि यदि आपका ख्याल यह है कि जीवन-सम्बन्धी आचरण के विषय में सलाह और पथ-प्रदर्शन विश्लेषण की विधि का अंग भाग है तो आप बड़ी गलतफहमी में हैं। इसके विपरीत, हम यथासम्भव उपदेशक का काम करने से बचते हैं। हम यही चाहते हैं कि रोगी अपने लिए स्वयं अपने समाधान ढूंढ ले। इसके लिए हम चाहते हैं कि वह अपने जीवन को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण निश्चय, जैसे जीवन-कार्य का चुनाव, व्यवसाय, विवाह या तलाक इलाज के दिनों में न करे, और इलाज पूरा हो जाने के बाद ही उनके बारे में तय करे। अब आपको स्वीकार कर लेना चाहिए कि आपने इससे बहुत भिन्न चीज़ की कल्पना की थी। थोड़े-से बहुत कम आयु वाले, या बिल्कुल असहाय और सन्तुलनहीन लोगों के लिए ही ऐसी सख्त पाबन्दी में रहना असम्भव है। इन व्यक्तियों के लिए हम चिकित्सक और शिक्षक दोनों बन जाते हैं। तब हम अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझते हैं और आवश्यक सावधानी से कार्य करते हैं।

मैंने इस आरोप से, कि विश्लेषण वाले इलाज में स्नायु-रोगियों को 'खुला जीवन बिताने के लिए' उत्साहित किया जाता है, जिस उत्सुकता से अपनी सफाई पेश की है, उससे आपको भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए, और न यह नतीजा ही निकालना चाहिए कि हम उन्हें परम्परागत सदाचार का पक्ष लेने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

यद्यपि यह सच है कि हम सुधारक नहीं, बल्कि सिर्फ प्रेक्षक है, पर तो भी हम आलोचक की दृष्टि से प्रेक्षण किए बिना नही रह सकते, और परम्परागत यौन नैतिकता का समर्थन करना या उन उपायो को श्रेष्ठ कहना, जिनके द्वारा समाज ने जीवन मे यौन-प्रवृत्ति की व्यावहारिक समस्याओ को व्यवस्थित करने का यत्न किया है, हमें असम्भव मालूम हुआ है। हम आसानी से यह दिखला सकते हैं कि दुनिया जिसे अपनी नैतिक नियमावली कहती है, उसके लिए जितनी कुर्बानी करनी पड़ती है, उतनी की पात्र वह नहीं है, और इसका व्यवहार न तो ईमानदारी से निर्धारित हुआ है, और न समझदारी से। हम अपने रोगियों को ये आलोचनाए सुनने से नहीं रोकते। हम उन्हे यह आदत डालते हैं कि वे और सब मामलो की तरह यौन मामलो पर भी बिना किसी पूर्वाग्रह के विचार कर सकें, और यदि इलाज के प्रभाव से स्वतन्त्र होने के बाद, वे असयत यौन स्वच्छन्दता और पूर्ण निवृत्ति के बीच का कोई रास्ता चुन लेते हैं, तो हमे कोई परेशानी नही होती, चाहे फिर उसका कुछ भी परिणाम हो। हम यह कहते हैं कि जिस आदमी ने अपने बारे में सच्ची बात समझना और पहचानना सीख लिया है, उसे अब अनैतिकता के खतरो से लड़ने का बल प्राप्त हो गया है, चाहे उसका नैतिकता का मानदण्ड कुछ दृष्टियो से प्रचलित मानदण्ड से भिन्न ही क्यो न हो। प्रसगत, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम स्नायु-रोग पैदा करने मे इन्द्रिय-सयम को बहुत अधिक महत्त्व न दे बैठें। उस तरह के सम्भोग से, जो बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सकता है, कुठा मे और तत्पश्चात् कुठा द्वारा प्रेरित राग-सचय से उत्पन्न रोगजनक स्थितियो में से बहुत थोड़ी-सी स्थितियों में ही, आराम मिल सकता है।

इस प्रकार, मनोविश्लेषण के चिकित्सा सम्बन्धी प्रभाव की व्याख्या हम यह मानकर नहीं कर सकते कि यह रोगियो को यौन सम्भोग करने की खुली छूट देता है। आपको कोई और चीज़ भी देखनी होगी। मैं समझता हू कि आपके इस अनुमान पर विचार करते हुए मैंने जो बातें कही थीं, उनमें से एक बात से आप सही रास्ते पर आ गए होंगे। सम्भवतः किसी अचेतन चीज़ के स्थान पर किसी चेतन चीज़ के आ जाने, अचेतन विचारों के चेतन विचारो से रूपान्तरित हो जाने, से ही हमारा कार्य सफल होता है। आपका खयाल सही है। बिलकुल यही स्थिति है। अचेतन का चेतन मे विस्तार करके दमन दूर किए जाते हैं, लक्षण-निर्माण की अवस्थाए दूर की जाती हैं, और रोगजनक द्वन्द्व के स्थान पर प्रकृत सघर्ष लाया जाता है, जिसमें इधर या उधर फैसला अवश्य होता है। हम अपने रोगियों के लिए कुछ नहीं करते। उन्हें ऐसा करते हैं कि उनमे एक यह मानसिक परिवर्तन होने लगे। यह परिवर्तन उनमे जितनी अधिक मात्रा मे कर दिया जाता है, उतना ही अधिक लाभ हम उन्हें पहुचा देते हैं। जहा कोई दमन, या इस जैसा कोई और मानसिक प्रक्रम नहीं होता, जिसे दूर करना हो, वहा हमारी चिकित्सा के करने योग्य कोई

भी काम नही होता ।

हमारे प्रयत्नो का लक्ष्य अनेक सूत्रो के रूप मे प्रकट किया जा सकता है, जैसे अचेतन को चेतन बनाना, दमनो को हटाना, स्मृति मे खाली स्थानो को भरना; ये सब समान बातें हैं, पर शायद आप इस कथन से असन्तुष्ट है। आपने स्नायु-रोगी के स्वास्थ्य-लाभ की कुछ और ही कल्पना की थी। आपने सोचा था कि मनोविश्लेषण के परिश्रमपूर्ण कार्य के बाद वह बिलकुल ही नया आदमी बन जाएगा और अब आपसे यह कहा जा रहा है कि बात सिर्फ इतनी है कि उसमे जितना अचेतन पहले था अब कुछ कमी हो गई है, और जितना पहले चेतन था उसमे कुछ वृद्धि हो गई है। असलियत यह है कि शायद आप इस तरह के भीतरी परिवर्तन के महत्त्व को पूरी तरह समझ नही पाते। जिस स्नायु-रोगी का इलाज हो जाता है, वह सचमुच ही एक नया आदमी बन जाता है, यद्यपि मूलत वह पहले की तरह ही होता है, अर्थात् वह अपने सर्वोत्तम रूप मे आ जाता है। वह वैसा ही बन जाता है, जैसा सबसे अनुकूल परिस्थितियो मे बना होता, परन्तु यह बहुत बडी चीज है। फिर, जब आपको वे सब बातें पता चलेंगी जो उसके मानसिक जीवन मे यह मामूली-सा लगने वाला परिवर्तन लाने के लिए करनी होगी, तब इन अनेक मानसिक सतहो के इन अन्तरों का अर्थ आपको अधिक समझ मे आएगा।

मैं जरा-सा विषयान्तर करके यह पूछना चाहता हू कि क्या आपको पता है कि 'नैमित्तिक चिकित्सा'[1] का क्या अर्थ है? नैमित्तिक चिकित्सा उस प्रक्रिया को कहते हैं जो रोग के अभिव्यक्त रूपो को छोडकर रोग के कारण को दूर करने के लिए कोई कमजोर पहलू तलाश करती है। अब प्रश्न यह है कि मनोविश्लेषण नैमित्तिक चिकित्सा है या नही? इसका उत्तर सरल नहीं है, पर इससे हमे ऐसे प्रश्नो का व्यर्थता अच्छी तरह समझने का मौका मिल सकता है। जहां तक इसका प्रश्न है कि मनोविश्लेषण चिकित्सा का लक्ष्य लक्षणो को तत्काल दूर करना नहीं होता; उस सीमा तक यह नैमित्तिक चिकित्सा के रूप मे की जाती है। और दृष्टियों मे यह कहा जा सकता है कि वह नैमित्तिक चिकित्सा नहीं, क्योंकि हम कारण-शृंखला पर पीछे की ओर चलते-चलते दमन से परे नैसर्गिक पूर्वप्रवृत्तियो, शरीर-रचना, उनकी आपेक्षिक तीव्रता और उनके परिवर्धन के मार्ग मे होने वाले विचलनों तक पहुचे हैं। अब मान लीजिए कि किसी रासायनिक साधन से इस मनोयन्त्र पर असर डाला जा सकता, किसी खास समय उपलब्ध राग की मात्रा को बढ़ाया-घटाया जा सकता, या एक आवेग की ताकत छीनकर दूसरे आवेग की ताकत बढ़ाई जा सकती, तो यह शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से नैमित्तिक चिकित्सा होती, और हमारा विश्लेषण उसका अनिवार्य आरम्भिक कार्य होता। जैसाकि आप जानते ...

---

1. Casual ...

इस समय रोग के प्रक्रमों पर ऐसे किसी प्रभाव का प्रश्न नहीं है। हमारी मानसिक चिकित्सा इस शृंखला के एक और स्थान पर हमला करती है। यह स्थान बिलकुल वही नहीं है, जहां रोग के अभिव्यक्त रूप जमे हुए दिखाई देते हैं, पर फिर भी यह लक्षणों से बहुत पीछे है। यह स्थान बड़ी विशिष्ट परिस्थितियों में हमारे काबू में आ जाता है।

तो, रोगी में जो कुछ अचेतन है, उसे चेतना में लाने के लिए हमें क्या करना पड़ता है? किसी समय हमने समझा था कि यह बड़ा सरल काम होगा। हमें सिर्फ इतना करना होगा कि हम इस अचेतन वस्तु को पहचान लें और फिर रोगी को यह बता दें कि यह वस्तु क्या है, परन्तु हम पहले ही यह समझ चुके हैं कि वह हमारी अदूरदर्शिता थी। उसमें जो कुछ अचेतन है, उसके बारे में हमें जानकारी होना, और रोगी को जानकारी होना एक ही बात नहीं है। जब हम उससे ये बातें कहते हैं जो हम जानते हैं, तो वह उन्हें अपने निज के अचेतन विचारों के स्थान पर नहीं अपनाता, बल्कि उनके साथ-साथ अपनाता है; और उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। हमें इस अचेतन सामग्री पर स्थानवृत्तीय दृष्टि से विचार करना पड़ता है। हमें उसकी स्मृति में वह असली जगह खोजनी पड़ती है, जिसमें इसका दमन शुरू में आरम्भ हुआ। पहले इस दमन को हटाना होगा, और फिर सीधे ही अचेतन विचार के स्थान पर चेतन विचार लाया जा सकता है। इस तरह के दमन को कैसे हटाया जाए? यहां हमारे कार्य की दूसरी कला प्रारम्भ होती है। प्रथम तो दमन को खोजना, और फिर उस प्रतिरोध को हटाना, जो इस दमन को कायम रखता है।

इस प्रतिरोध से कैसे पिंड छूट सकता है? एक ही तरीका है : इसका पता लगाकर, और रोगी को इसके बारे में बताकर। प्रतिरोध भी किसी दमन में से पैदा होता है—या तो यह उसी दमन में से पैदा होता है, जिसे हम दूर करने की कोशिश कर रहे थे, या किसी पहले वाले दमन से पैदा होता है। यह उस प्रति आवेश द्वारा स्थापित किया जाता है जो प्रतिकर्षी आवेग[1] का दमन करने के लिए पैदा हुआ था। इस प्रकार हम ठीक वही कार्य कर रहे हैं जो पहले करने की कोशिश कर रहे थे। हम रोगी का निर्वचन करते हैं, उसे ठीक-ठीक पहचानते हैं, और जानकारी देते हैं; पर इस बार हम यह काम ठीक स्थान पर कर रहे हैं। प्रति आवेश या प्रतिरोध अचेतन का भाग नहीं, बल्कि अहम् का भाग है, जो हमारे साथ सहयोग करता है और इसके वास्तव में चेतन न होने पर भी यही बात रहती है। हमें मालूम है कि यहां 'अचेतन' शब्द का अर्थ एक ओर तो एक घटना या क्रिया, और दूसरी ओर एक सस्थान होने के कारण कठिनाई पैदा होती है। यह बात बड़ी अस्पष्ट और

१. Repellent impulse

कठिन मालूम होती है, पर आखिरकार यह उस बात को
हमने पहले कही थी। इस बात पर हम बहुत पहले पहुंच
हम यह आशा करते हैं कि जब हम अपने निर्वचन-कार्य द्वा
आवेश को पहचान लेंगे, तब यह प्रतिरोध दूर हो जाएगा
जाएगा। ऐसा कर सकने के लिए हमारे पास कौन-से नै
धकेलने वाले) बल हैं? प्रथम तो, रोगी की स्वास्थ्य-लाभ क
होकर उसने हमारे सहयोग से विश्लेषण आरम्भ किया और
मदद जिसे हम अपने निर्वचन द्वारा मदद देते हैं। इसमे कोई
के लिए प्रतिरोध को अपनी बुद्धि से पहचानना और अप
संवादी मनोबिंब को पकड़ना तब अधिक आसान हो जाता है
ऐसा मनोबिंब प्रस्तुत कर दिया हो जो इसके विषय मे उसमे
यदि मैं आपसे कहूं, 'आकाश की ओर देखिए तो आपको
देगा', तो आपको गुब्बारा उस समय की बनिस्बत अधिक ज
जब मैं आपसे यह कहूं कि ऊपर देखकर बताइए कि
सूक्ष्मदर्शी या माइक्रोस्कोप सबसे प्रथम बार देखने वाले छात्र को
है कि उसे क्या देखना है; अन्यथा उसे कुछ भी नहीं दिखाई
चीज वहां है और काफी साफ दिखाई देती है।

और अब तथ्य को लीजिए। बहुत-से स्नायु-रोगियो, जैसे
दशाएं, मनोग्रस्तता-रोग, मे हमारी परिकल्पना पूरी उतरती है
को खोजकर, प्रतिरोधों का पता लगाकर, दमित को निर्दिष्ट कर
पाना, प्रतिरोधो को दूर करना, दमन को हटा देना और अ
वस्तु मे बदल देना सचमुच सम्भव है। जब हम यह काम कर
चलता है कि प्रत्येक प्रतिरोध को दूर करने के समय रोगी की अ
युद्ध होने लगता है—यह उसी मैदान मे लड़ रही दो प्रवृत्तियो के
को कायम रखने मे यत्नशील प्रेरक भावों और उसे दूर करने को
के बीच प्रकृत मानसिक संघर्ष है। इनमे से पहले प्रेरक भाव
भाव होते हैं जिन्होंने शुरू में दमन को कायम किया था। दूसरे
नये प्रेरक भाव हैं जो कुछ ही समय पहले प्राप्त हुए हैं, और जिनमे
इस द्वंद्व का हमारे पक्ष में फैसला कर देंगे। हमें दमन के पुराने
जीवित करने में, इतने समय पहले निर्णीत प्रश्न को दुबारा वि
करने में सफलता मिली है। हमने इसमें जो नया कार्य किया है
है कि हमने यह दिखला दिया कि पहले वाले समाधान में रोग पैदा

था, तब से परिस्थितियां बहुत बदल चुकी थीं। उस समय अहम् दुर्बल और दीर्घ-वीर्य था, और शायद राग की प्रवृत्तियों को अपने लिए खतरनाक मानकर भय से संकुचित होता था। आज वह सबल और अनुभवी हो चुका है, और साथ ही चिकित्सक के रूप में एक सहायक उसके पास है। हम यह आशा कर सकते हैं कि यह पुनर्जीवित द्वन्द्व दमन की अपेक्षा किसी अच्छे परिणाम पर पहुंचेगा, और जैसा कि कहा जा चुका है, हिस्टीरिया, चिन्ता-स्नायु-रोग और मनोग्रस्तता-रोग में प्राप्त सफलता से हमारे कथन की सचाई सिद्ध होती है।

रोग के कुछ अन्य रूप भी हैं, जिनमें हमारा इलाज कभी सफल नहीं होता, यद्यपि अवस्थाएं एक-सी होती हैं। उनमें भी शुरू में अहम् और राग में द्वन्द्व हुआ था, और फिर दमन हुआ था, यद्यपि इस द्वन्द्व में और स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के द्वन्द्व में स्थानवृत्तीय फर्क थे। उनमें भी रोगी के जीवन का वह स्थान खोजा जा सकता है, जिसमें दमन हुए। हम वही विधि अपनाते हैं, वही आश्वासन देने को तैयार हैं; रोगी को यह बतलाकर कि वह क्या चीज़ खोजे, उसे वही सहायता पेश करते हैं; और यहां भी जिस समय दमन हुए थे, उनके और आज के बीच का समयान्तरण द्वन्द्व का अधिक अच्छा परिणाम होने के लिए अनुकूल हैं, और फिर भी हम उसके एक भी प्रतिरोध को हटाने या एक भी दमन को दूर करने में सफल नहीं हो सकते। ये रोगी, जो पैरानोइया, मैलाकोलिया (उदासी रोग) और डेमेन्शिया प्रीकौक्स के रोगी होते हैं, मनोविश्लेषण के इलाज के लिए बिल्कुल घड़े सिद्ध होते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है? बुद्धि की कमी इसका कारण नहीं है। यह ठीक है कि विश्लेषण के लिए बौद्धिक क्षमता की कुछ मात्रा स्वभावतः आवश्यक है; पर उदाहरण के लिए, बड़े हाज़िर-जवाब डिडेक्टिव-पैरानोइया-रोगी में इस दृष्टि से कोई कमी नहीं होती। इसी तरह, दूसरे प्रेरक बल भी सदा अनुपस्थित नहीं होते, उदाहरण के लिए, पैरानोइया-रोगियों के मुकाबले उदासी रोगी इस बात को बहुत अधिक अनुभव करते हैं कि वे रोगी हैं, और उनके कष्टों का कारण यह रोग है; पर इसके कारण उनपर अधिक आसानी से प्रभाव नहीं पड़ता। इस तरह हमारे सामने एक ऐसा तथ्य आ जाता है जिसे हम नहीं समझ पाते, और इसीलिए यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या हमने दूसरे स्नायु-रोगों में सफलता पाने के लिए आवश्यक सब अवस्थाओं को वास्तव में समझ लिया है?

जब हम हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता के रोगियों पर विचार करते हैं, तब हमारे सामने शीघ्र ही एक दूसरा बिलकुल असम्भावित तथ्य आ जाता है। कुछ समय इलाज होने के बाद हम देखते हैं कि इन रोगियों का हमारे प्रति बड़ा अजीब व्यवहार होता है। हमने सचमुच समझा था कि हमने इलाज-सम्बन्धी प्रेरक बलों पर विचार कर लिया है, और अपने तथा रोगी के बीच की स्थिति को इतनी अच्छी तरह स्पष्ट कर लिया है कि वह गणित की राशि के समान सन्तुलित हो गई है।

पर अब फिर कोई ऐसी चीज बीच में आ गई मालूम होती है, जो हमारी गणना से बिलकुल छूट गई थी। इस नई और अप्रत्याशित बात के खुद बहुत-से पहलू और उलझनें हैं। सबसे पहले मैं इसके अधिक आम और सरल रूप आपके सामने पेश करूंगा।

तो, हम देखते हैं कि रोगी में, जिसके मन में अपने को परेशान करने वाले द्वन्द्वों के समाधान के अलावा कोई और बात नहीं होनी चाहिए, डाक्टर के व्यक्तित्व में विशेष दिलचस्पी पैदा होने लगती है। उसे इस व्यक्ति से सम्बन्धित हर बात अपने निजी मामलों से अधिक महत्व की लगने लगती है, और उसके रोग से उसका ध्यान हटाने लगता है। तब रोगी के सम्बन्ध कुछ समय के लिए बड़े मधुर हो जाते हैं। यह बिलकुल आपकी इच्छा के अधीन चलने लगता है, जहां मौका मिले वहीं अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने की कोशिश करता है, चरित्र की निर्मलता और अन्य ऐसे श्रेष्ठ गुण प्रदर्शित करता है, जिनकी हमने उसमें पहले शायद कल्पना नहीं की थी। इस प्रकार, रोगी के बारे में विश्लेषक की राय बहुत अच्छी हो जाती है और वह ऐसे गुणी व्यक्ति का सहायक बनने को अपना सौभाग्य समझने लगता है। यदि डाक्टर को रोगी के रिश्तेदारों से मिलने का मौका पड़ता है, तो उनसे यह सुनकर सन्तोष होता है कि यह समादर दोतरफा है। रोगी अपने घर पर विश्लेषक की प्रशंसा करता और उसमें नये-नये गुण बताता हुआ कभी नहीं थकता। 'वह तो आपके पीछे पागल हो गया है, उसे आपपर पूरा भरोसा है: *आपकी कही हुई हर बात उसके लिए ईश्वर की वाणी जैसी है*'—ये बातें रिश्तेदार उसे बताते हैं। कोई अधिक तीव्र दृष्टि वाला व्यक्ति यह भी कह देता है, 'वह आपके सिवाय और कोई बात ही नहीं करता, जिससे जी बिलकुल ऊब जाता है, वह हर समय आपकी ही बातों के उद्धरण देता है।

हमें यही आशा करनी चाहिए कि डाक्टर में इतनी विनय होगी कि वह रोगी द्वारा की हुई अपनी प्रशंसा का यह मतलब बताएगा कि रोगी को मेरे बताए हुए तरीकों से स्वास्थ्य-लाभ की आशा हो गई है, और इस इलाज में होने वाले आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटनों और उनके मुक्तिकारक प्रभाव के परिणामस्वरूप रोगी का बौद्धिक क्षितिज विस्तृत हो गया है। इन अवस्थाओं में विश्लेषण भी बड़े अच्छे ढंग से आगे बढ़ता है। रोगी अपने सामने पेश किए गए सुझावों को समझता है, इलाज के लिए आवश्यक कार्यों पर ध्यान देता है, आवश्यक सामग्री—उसकी पुरानी स्मृतियां और साहचर्य—बड़ी मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। वह विश्लेषक को उसके निर्वचन की निश्चितता और सत्यता से आश्चर्य में डाल देता है, और विश्लेषक को यह देखकर बड़ा *सन्तोष होता है कि रोगी व्यक्ति उन सारे* नये मनोवैज्ञानिक विचारों को कितनी आसानी से और तत्परता से स्वीकार कर लेता है, जिनपर बाहरी दुनिया में स्वस्थ व्यक्ति इतना गरमागरम वाद-विवाद

करते हैं। विश्लेषक के इस मधुर सम्बन्ध के साथ-साथ रोगी की दशा में भी सामान्य सुधार दिखाई देता है, जिसकी सब ओर से वैज्ञानिक पुष्टि हो जाती है।

पर ऐसी बहार सदा नहीं रह सकती। एक दिन आता है, जब कि घटा घिर आती है, विश्लेषण में कठिनाइयां पैदा होने लगती हैं। रोगी कहता है कि मुझे और कोई बताने लायक बात नहीं सूझती। स्पष्ट यही दिखाई देता है कि अब उसे इस कार्य में दिलचस्पी नहीं रही, और वह अपने को दिए गए इस आदेश की बीच-बीच में उपेक्षा कर रहा है कि अपने मन में आने वाली प्रत्येक बात वह कह डाले, और अपने मन में आने वाले आलोचनात्मक आक्षेपों में से किसीसे न दबे। उसके व्यवहार का रूप इलाज की स्थिति के कारण ऐसा नहीं होता। ऐसा लगता है कि जैसे उसने डाक्टर से उस आशय का इकरार ही नहीं किया था। स्पष्टतः वह किसी और बात में व्यस्त है, और साथ ही यह बात वह किसीसे कहना भी नहीं चाहता। इस स्थिति में इलाज का खतरा है। साफ बात यह है कि कोई बहुत प्रबल प्रतिरोध पैदा हो गया है। फिर, क्या बात हो सकती है?

यदि इस स्थिति को स्पष्ट किया जा सके तो यह पता चलता है कि इस गड़बड़ी का कारण यह है कि रोगी ने अनुराग की कुछ तीव्र भावनाएं डाक्टर पर स्थानान्तरित कर दी हैं, और इसका कारण न तो डाक्टर का व्यवहार है और न इलाज से पैदा होने वाले सम्बन्ध। यह अनुरागपूर्ण भावना जिस रूप में प्रकट होती है और जिस लक्ष्य पर पहुंचना चाहती है, वे स्वाभावत. दोनों व्यक्तियों के बीच की स्थिति के हालात पर निर्भर होते हैं। यदि उनमें से एक जवान लड़की हो और दूसरा अभी नौजवान-सा ही हो, तो उनमें प्रकृत प्रेम की-सी धारणा पैदा होती है। यह स्वाभाविक लगता है कि कोई लड़की ऐसे आदमी के साथ प्रेम करने लगे जिसके साथ वह बहुत समय एकान्त में रहती है और जिससे वह अपनी बहुत गुप्त बातें भी कह सकती है, और जो अधिकारपूर्वक सलाह देने वाले की स्थिति में है—हम सम्भवतः इस तथ्य को भूल जाएंगे कि स्नायु-रोग से पीड़ित लड़की में प्रेम करने की क्षमता में कुछ गड़बड़ी की आशा करनी ही चाहिए। दोनों व्यक्तियों की बीच की स्थिति इस कल्पित उदाहरण से जितनी अधिक भिन्न होगी, उतना ही कठिन यह बताना होगा कि अन्य रोगियों में भी इसी तरह की भावना क्यों दिखाई देती है। यदि कोई जवान स्त्री, जो अपने विवाह में सुखी नहीं हुई, अपने चिकित्सक के प्रति गंभीर प्रेमावेश से अभिभूत मालूम हो, जो कि अभी अविवाहित है, और वह तलाक लेने के लिए और अपने को उसको अर्पित करने के लिए तैयार हो जाए, या जहां परिस्थितियों के कारण ऐसा नहीं हो सकता हो, वहां उसके साथ गुप्त प्रेम-सम्बन्ध रखने लगे, तो यह बात फिर भी समझ में आ सकती है। अब प्रसंगवश तो इस तरह की बात मनोविश्लेषण से भिन्न क्षेत्र में हो चुकी है, पर इस स्थिति में स्त्रियां और लड़कियां बड़े आश्चर्यजनक रहस्य प्रकट करती हैं, जिनसे

रागात्मक इच्छा अपने रूप में थोड़ा परिवर्तन करके स्थायी और आदर्श धार्मिक मित्रता की इच्छा के रूप में सामने आ सकती है। बहुत-सी स्त्रियां यह समझती हैं कि स्थानान्तरण को ऐसा उदात्त रूप कैसे दिया जाए और इसको इस तरह कैसे ढाला जाए कि इसके अस्तित्व का एक तरह से औचित्य सिद्ध होने लगे। कुछ स्त्रियां इसे इसके स्थूल मौलिक, प्राय असम्भव, रूप में प्रकट करती हैं, पर सार रूप में यह सदा एक ही चीज होती है और इसका जन्म उसी स्रोत से होता है।

यह सोचने से पहले कि इस नये तथ्य को हम कहां जमाएं, हम इसका वर्णन थोड़ा विस्तार से करेंगे। पुरुष रोगियों में क्या होता है? उनके साथ कम से कम यह आशा तो की ही जा सकती है कि लिंग-भेद और लिंग-आकर्षण का परेशानी पैदा करने वाला अंश नहीं होगा, पर यहां भी उत्तर बहुत कुछ वही है जो स्त्रियों के मामले में था—चिकित्सक के प्रति वही अनुराग, उसके गुणों का वही कीर्तिगान, उसके स्वहितों को उसी तरह अपनाना, उससे सम्बन्धित सब व्यक्तियों से वही ईर्ष्या। पुरुष और पुरुष के बीच स्थानान्तरण के उदात्त स्वरूप अधिक मिलते हैं और सीधे यौन-सम्बन्ध बहुत कम मिलते हैं। इनकी मात्रा इस बात पर निर्भर है कि रोगी की व्यक्त समकामिता दूसरे तरीकों से, जिनसे यह घटक निसर्ग-तृप्ति अपनी अभिव्यक्ति कर सकती है, वहां तक अधीन है। इसके अलावा पुरुष-रोगियों में ही विश्लेषक को स्थानान्तरण का वह रूप अधिक दिखाई देता है जो ऊपर से, उस वर्णन के विरुद्ध मालूम होता है जो अभी दिया गया है, अर्थात् विरोधी या ऋणात्मक स्थानान्तरण।

प्रथम तो हमें फौरन यह समझ लेना चाहिए कि स्थानान्तरण रोगी में इलाज के शुरू से मौजूद होता है, और कुछ समय तक वह विश्लेषण-कार्य का सबसे प्रबल प्रेरक होता है। तब तक यह दिखाई नहीं देता और इसके विषय में परेशान होने की आवश्यकता नहीं होती, जब तक इसका प्रभाव उस काम के अनुकूल होता है, जिसमें दो व्यक्ति सहयोग कर रहे हैं। जब यह प्रतिरोध के रूप में बदल जाता है, तब इसकी ओर ध्यान देना पड़ता है, और तब यह प्रतीत होता है कि इसमें दो भिन्न और परस्पर विरोधी मानसिक अवस्थाएं बीच में आ गई हैं, और उन्होंने इलाज के प्रति उसके रुख को बदल दिया : प्रथम तो जब अनुरागमय आकर्षण इतना प्रबल हो गया है, और उसका जन्म यौन-इच्छा से होने के चिह्न इतने स्पष्ट दीखने लगे हैं कि इससे अपने विरुद्ध एक आन्तरिक विरोध पैदा होना अनिवार्य था; और दूसरे जब यह अनुरागमय भावना के बजाय विरोधपूर्ण भावना का रूप होता है। साधारणतया विरोधपूर्ण भावनाएं अनुरागपूर्ण भावनाओं के बाद और उनकी आड़ में दिखाई देती हैं। जब वे दोनों इकट्ठी पैदा होती हैं, त

१. Platonic

ये भावना की उस उभयता का बहुत अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती हैं जो ह
मनुष्यों के साथ हमारे अधिकतर घनिष्ट सम्बन्धों की नियामक होती है। इस
विरोधी भावनाएं भावना का वैसा ही लगाव सूचित करती हैं, जैसा अनुराग
भावना का। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि विद्वेषक-विरोधी भावना
को स्थानान्तरण कहना उचित है, क्योंकि इलाज की स्थिति में उनके पैदा ह
का कोई पर्याप्त मौका नहीं है। ऋणात्मक स्थानान्तरण को इस रूप में मा
की आवश्यकता से धनात्मक या अनुरागपूर्ण स्थानान्तरण के विषय में पहले कि
गए हमारे इसी तरह के विचार की पुष्टि होती है।

स्थानान्तरण कहां से पैदा होता है, इससे हमारे सामने कौन-सी कठिनाइ
आ जाती हैं, हम उन्हें कैसे हल कर सकते हैं, और अन्त में हम इससे क्या ला
उठा सकते हैं? इन प्रश्नों का ठीक-ठीक ढंग से उत्तर विश्लेषण की विधि क
टेक्निकल विवरण देकर ही दिया जा सकता है। यहां तो मैं उनका संकेतमा
कर सकता हूं। यह तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता कि हम अपने स्थानान्तरण
प्रभाव के वश में होकर रोगी जो कुछ कराना चाहता है, उसे करने लगें। उ
लापरवाही से ठुकरा देना मूर्खता होगी और रोष से ठुकरा देना और भी बड़
मूर्खता। रोगी को यह जतलाकर स्थानान्तरण को दूर किया जा सकता है कि
उसकी भावनाएं वर्तमान स्थिति में नहीं पैदा हुई हैं, और वे असल में चिकित्सक
के व्यक्तित्व से सम्बन्ध नहीं रखतीं, बल्कि वह किसी ऐसी चीज को फिर पैदा कर
रहा है, जो बहुत पहले उसके साथ हुई थी। इस तरह हम उसकी पुनरावृत्ति को
पूर्वस्मरण में बदलने के लिए कहते हैं। तब स्थानान्तरण, चाहे वह अनुरागपूर्ण था
या विरोधपूर्ण था, जो इलाज के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया था, अब इसका
सर्वोत्तम उपकरण बन जाता है, और इसकी सहायता से हम आत्मा के बन्द
दरवाजों को खोल सकते हैं। पर आपपर इस असम्भावित घटना से लगे आघात से
जो बुरा असर पड़ा होगा, उसे दूर करने के लिए कुछ शब्द कहना चाहता हूं।
आखिरकार, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि रोगी के जिस रोग का विश्लेषण करने
की जिम्मेदारी हमने उठाई है, वह कोई अन्तिम रूप में तैयार पूर्ण वस्तु नहीं है, बल्कि
वह जीवित वस्तु की तरह सारे समय बढ़ रही है, और अपना परिवर्धन जारी रखती

रोगी के पूर्वस्मरणों का विश्लेषण गौण पड़ जाता है। तब यह कहना गलत नहीं है कि अब हम पुराने रोग का सामना नहीं कर रहे, बल्कि एक नये पैदा हुए और रूपान्तरित स्नायु-रोग का सामना कर रहे हैं, जो पहले वाले रोग के स्थान में आ गया है। पुराने रोग का यह नया संस्करण अपने शुरू होने के समय से हमारी नज़र में है। हम इसे पैदा होने और बढ़ते देखते हैं, और इसमें इस कारण विशेष रूप से परिचित हैं क्योंकि इसमें हम स्वयं ही केन्द्र हैं। रोगी के सब लक्षणों का पहले वाला अर्थ खत्म हो गया है, और उन्होंने एक नया अर्थ अपना लिया है, जो स्थानान्तरण के साथ उनके सम्बन्ध में निहित है; अथवा सिर्फ वे लक्षण शेष रह गए हैं, जो इस तरह नये अर्थ के अनुकूल बन सकते थे। इस नये कृत्रिम रूप से उत्पन्न स्नायु-रोग पर विजय, इलाज से पहले मौजूद रोग को दूर करने, अर्थात् चिकित्सा-कार्य को पूरा करने के साथ ही होती है। जो व्यक्ति प्रकृत हो गया है, और चिकित्सक के साथ अपने सम्बन्ध से दमित नैसर्गिक प्रवृत्तियों के प्रभाव से मुक्त हो गया है, वह अपने जीवन से चिकित्सक के हट जाने पर भी वैसा ही बना रहता है।

स्थानान्तरण का हिस्टीरिया, चिन्ता हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग के इलाज में बहुत महत्त्वपूर्ण और बिलकुल केन्द्रीय महत्त्व है, और इसलिए इनको 'स्थानान्तरण स्नायु-रोग' समूह में इकट्ठा रखना उचित ही है। जिस व्यक्ति ने मनोविश्लेषण के अनुभव से स्थानान्तरण के तथ्य की सही धारणा बना ली है, उसे दबे हुए आवेगों के स्वरूप के बारे में, जिन्होंने लक्षणों के रूप में अपने बाहर निकलने का एक रास्ता बना लिया है, फिर कभी सन्देह नहीं हो सकता, और उसे उनके रागात्मक स्वरूप के बारे में इससे बड़े किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होगी। हम यह कह सकते हैं कि हमारा यह विश्वास स्थानान्तरण की घटना का मूल्यांकन करने से अन्तिम रूप से और सुनिश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है, कि लक्षणों का अर्थ यह है कि वे राग की स्थानापन्न परितुष्टि हैं।

पर अब हमें इलाज के प्रक्रम के बारे में अपने पहले वाले गतिकीय अवधारण को सही करना होगा, और नई खोज के साथ इसका मेल बिठाना होगा। जब रोगी को प्रतिरोधों के साथ, जो हमने विश्लेषण द्वारा उसमें पता लगाए हैं, प्रकृत द्वन्द्व में जूझना पड़ता है, तब उसे स्वास्थ्य-लाभ की ओर ले जाने वाले हमारे सोचे हुए निश्चय की ओर धकेलने के लिए एक प्रबल नोदक (या धकेलने वाले) बल की आवश्यकता होती है, अन्यथा, हो सकता है कि वह पिछले परिणाम की पुनरावृत्ति करने का ही फैसला कर ले और जो चीज उठकर चेतना में आ गई थी, उसे फिर दमन के प्रभाव में सरक जाने दे। इस द्वन्द्व का परिणाम उसकी बौद्धिक अन्तर्दृष्टि से तय नहीं होगा—ऐसे कार्य की सिद्धि के लिए न तो यह काफी प्रबल है और न काफी मुक्त—बल्कि चिकित्सक के साथ उसके सम्बन्ध से और सिर्फ इस सम्बन्ध से ही निर्धारित होगा। जहां तक उसका स्थानान्तरण

की तरह आदेश की सहायता लेते हैं। हम तो सारे समय यही समझते रहे है
पर फिर, गुज़रे हुए अनुभवों के द्वारा इन सब चक्करदार रास्तों का, अचेत
सामग्री को खोजने, विपर्यासों का निर्वचन करने और उन्हें फिर अनुवादित कर
का, और समय, मेहनत और धन का इतना भारी खर्च करने का, क्या ला
जब अन्त में असली कार्यकारी साधन आदेश ही है ? आप लक्षणों के विरु
सीधे आदेश ही क्यों नहीं देते, जैसा कि दूसरे लोग करते हैं, जो ईमानदारी
अपने-आपको सम्मोहक बताते हैं। और इसके अतिरिक्त, यदि आप यह क
हैं कि इन चक्करदार रास्तों के द्वारा आपने अनेक महत्त्वपूर्ण खोजें की हैं,
सीधे आदेश में छिपी रहती हैं, तो उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि कौन करेगा
क्या वे भी आदेश का, अर्थात् अनभिप्रेत आदेश का, परिणाम नहीं है ? क
आप रोगी पर इस दिशा में भी मनचाहा प्रभाव नहीं डालते ?''

इस तरह आप मुझपर जो आरोप लगाते हैं, वह बहुत अधिक मनोरं
है, और उसका जवाब देना होगा, पर वह मैं आज नहीं दूंगा। 'हमारा स
पूरा हो गया है, इसलिए अगली बार सही। आप देखेंगे कि मैं आपकी आप
का उत्तर दे सकूंगा। आज मुझे एक बात खत्म करनी है, जो मैंने शुरू की थ
मैंने स्थानान्तरण के कारण के जरिये आपके सामने यह व्याख्या करने का वा
किया था कि स्वरति-सम्बन्धी स्नायु-रोगों में हमारे चिकित्सा के प्रयत्न स
क्यों नहीं होते।

यह व्याख्या मैं थोड़े-से शब्दों में कर सकता हूं और आप देखेंगे कि कि
सरलता से पहेली हल हो जाती है, और हर चीज कैसे एक-दूसरे के साथ सम
हो जाती है। अनुभव से पता चलता है कि स्वरतिक स्नायु-रोगों से पी
स्नायु-रोगियों में स्थानान्तरण की क्षमता नहीं होती, या इसका नाकाफी
होता है। वे उदासीन भाव से चिकित्सक से विमुख हो जाते हैं, विरोध भा
नहीं। इसलिए चिकित्सक का उनपर प्रभाव नहीं पड़ सकता। चिकित्सक
कुछ कहता है, उससे वे उदासीन रहते हैं; उनपर उसकी कोई छाप नहीं पड़ती
इसलिए इलाज का प्रक्रम, जो दूसरी बातों में, अर्थात् रोगजनक द्वन्द्व के
पुनर्जीवन और दमन के कारण होने वाले प्रतिरोध को दूर करने के साथ-
चल सकता है, उनके साथ नहीं चलाया जा सकता। वे जैसे हैं, वैसे ही
हैं। उन्होंने बहुत बार अपने-आप स्वास्थ्य-लाभ के प्रयत्न किए हैं, जिनसे व्या
परिणाम पैदा हुए हैं। हम इसे बदलने के लिए कुछ नहीं कर सकते।

इन रोगियों की रोग-परीक्षा के आधार पर हमने कहा था कि उन्होंने
से आलम्बनों का आच्छादन अवश्य त्याग दिया होगा और आलम्बन-रा
अहम्-राग में रूपान्तरित कर दिया होगा। इसके द्वारा, हमने उनमें स्नायु-

विश्लेषण-चिकित्सा

आज हम जिस बात पर विचार करने वाले हैं, उसका आपको पता है। मैंने यह स्वीकार किया कि मनोविश्लेषण-चिकित्सा के प्रभाव का अनिवार्य आधार स्थानान्तरण, अर्थात् आदेश है, तब आपने मुझसे पूछा था कि हम सीधे ही आदेश का प्रयोग क्यों नहीं करते, और आपने यह सन्देह भी पेश किया था कि जब आदेश इतना बड़ा कार्य करता है, तब भी क्या हम अपनी मनोवैज्ञानिक खोजों की आलम्बननिष्ठता या वैज्ञानिकता का समर्थन कर सकते हैं? मैंने इसका पूरा उत्तर देने का आपसे वायदा किया था।

सीधा आदेश वह आदेश है, जो लक्षणों द्वारा ग्रहण किए गए रूपों के विरुद्ध सीधे ही दिया जाता है। यह आपकी सत्ता और रोग की तह में मौजूद प्रेरक भावों के बीच एक द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व में आप इन प्रेरक भावों के बारे में कुछ नहीं सोचते। आप सिर्फ यह आवश्यक समझते हैं कि रोगी लक्षणों के रूप में उनके व्यक्त होने को दबा दे। मुख्यतः इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप रोगी को सम्मोहित करते हैं या नहीं। बर्नहीम ने बड़े जोरदार शब्दों में बार-बार कहा था कि आदेश सम्मोहन के व्यक्त रूपों का सार तत्व है, और सम्मोहन स्वयं आदेश का परिणाम है, एक आदेशित अवस्था है। वह जाग्रत् अवस्था में आदेश का प्रयोग करना पसन्द करता था, जिससे सम्मोहन से वही परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

तो, अब मैं अनुभव के परिणामों पर पहले विचार करूँ या सिद्धान्त-सम्बन्धी विवेचनाओं पर? हम अनुभव से शुरू करेंगे। मैंने १८८९ में नान्सी में बर्नहीम को जा पकड़ा, और मैं उसका शिष्य बन गया। मैंने उसकी आदेश वाली पुस्तक का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। बरसों तक मैं सम्मोहन द्वारा इलाज करता रहा। पहले तो मैं प्रतिषेधात्मक आदेशों द्वारा और बाद में ब्रायर की, रोगी के जीवन के बारे में पूरी जाँच करने की प्रणाली को मिलाकर इलाज करता रहा। इसलिए सम्मोहन-चिकित्सा या आदेश द्वारा चिकित्सा के परिणामों के बारे में विस्तृत आधार पर बोल सकता हूँ। एक पुरानी डाक्टरी कहावत के अनुसार, आदर्श चिकित्सा-शैली शीघ्र कार्य करने वाली, भरोसा करने योग्य, और रोगी को प्रिय

लगनी या ही होनी चाहिए । बर्नहीम की विधि में इसकी दो बातें निश्चित रूप से
पूरी होती थी । यह बहुत शीघ्र, अर्थात् विश्लेषण-चिकित्सा की अपेक्षा बहुत ही
अधिक शीघ्र कार्य करती थी और इसमें रोगी को किसी परेशानी या दुविधा में
नहीं पड़ना पड़ता था । चिकित्सक के लिए यह अन्त में नीरस हो जाती थी । इसका
मतलब यह था कि हर रोगी का एक ही तरीके से इलाज किया जाए । बड़े भिन्न-
भिन्न प्रकार के लक्षणों को रोकने के लिए सब कार्य सदा वैसे ही किए जाए और
उनके अर्थ या आशय के बारे में कुछ भी न जाना जा सके । यह एक तरह का
यान्त्रिक कार्य था, वैज्ञानिक कार्य नहीं । इससे जादू, मन्त्र-तन्त्र और झाड़-फूंक का
स्मरण होता था, पर तब भी रोगी के हित की दृष्टि से उनकी ओर आंख मूंदनी
पड़नी थी । पर तीसरी बात इसमें नहीं थी । यह किसी भी दृष्टि से भरोसा करने
योग्य नहीं थी । इसका उपयोग कुछ रोगियों में ही हो सकता था, सबमें नहीं।
कुछ रोगियों में इससे बड़ी सफलता मिल जाती थी, और कुछ में कुछ भी सफलता
नहीं मिलती थी, और इसका कारण कभी पता नहीं चलता था । पर इससे भी
बुरी बात यह थी कि इसके परिणामों में स्थायित्व नहीं था । कुछ समय के बाद
रोगी फिर आकर कहता था कि—रोग फिर दुबारा हो गया है, या उसके स्थान
पर कोई और रोग हो गया है । तब आप उसे फिर सम्मोहित करना शुरू कर सकते
हैं । साथ ही, आपको अनुभवी लोगों की यह चेतावनी भी ध्यान में रखनी थी कि
बार-बार सम्मोहन करके रोगी से उसकी स्वतन्त्रता छीनना उचित नहीं, और उसे
इस इलाज की आदत डाल देना ठीक नहीं, मानो यह कोई नींद लाने वाली दवा
हो । उधर, यह भी सच है कि कभी-कभी सब चीज हमारे मन के अनुकूल हो जाती
थी, मामूली परिश्रम से पूर्ण और स्थायी सफलता मिल जाती थी । पर इस संतोष-
जनक परिणाम की अवस्थाएं छिपी रहती थीं । एक रोगिणी में मैंने थोड़े-से सम्मोहन
के इलाज द्वारा एक उग्र अवस्था को पूरी तरह दूर कर दिया, पर जब रोगिणी ने
बिना उचित कारण के मेरे प्रति दुर्भाव अपनाया, तब वह रोग फिर उसी रूप में
हो गया । तब आपसी समझौते के बाद मैंने फिर उसे और अधिक पूरी तरह दूर
कर दिया । पर जब वह दूसरी बार मेरी विरोधी बनी, तब वह रोग फिर पैदा
हो गया । एक और अवसर पर मुझे यह अनुभव हुआ । एक रोगिणी ने, जिसके
स्नायविक लक्षण मैं कई बार दूर कर चुका था, एक विशेषरूप से जमे हुए रोग
के इलाज के समय, एकाएक अपनी भुजाएं मेरी गरदन में डाल दीं । मैं चाहूं
या न चाहूं, पर इस तरह की चीज ने अन्त में यह अनिवार्य कर दिया कि मैं
अपने आदेश देने के अधिकार की प्रकृति और स्रोत की समस्या की जांच करूं ।
इतनी बात तो अनुभव के बारे में हुई । इससे पता चलता है कि सीधे आदेश
का त्याग करके हमने कोई ऐसी चीज नहीं त्याग दी, जिसके स्थान पर कोई और
चीज न आ सकती हो । अब इन तथ्यों के साथ कुछ बातें और जोड़नी हैं ।

सम्मोहन की विधि का प्रयोग होने पर रोगी को और चिकित्सक को कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह विधि अधिकतर डाक्टरों द्वारा स्नायु-रोगों के बारे में माने जाने वाले आम विचार से पूरी तरह मेल खाती है। डाक्टर स्नायविक व्यक्ति से कहते हैं, 'आपमें कोई रोग नहीं है। यह सिर्फ स्नायविकता है, इसलिए मेरे कुछ शब्दों से ही पांच मिनट में आपके सब कष्ट दूर हो जाएंगे।' पर यह बात ऊर्जा के बारे में हमारे साधारण विश्वासों के विरुद्ध है, कि बहुत थोड़ा प्रयास किसी भारी बोझ को, बिना किसी उपयुक्त साधन की सहायता के, सीधे ही जाकर हटा सकता है। जहां तक दोनों परिस्थितियों की तुलना हो सकती है, वहां तक अनुभव से पता चलता है कि यह तिकड़म स्नायु-रोगों में सफल नहीं हो सकती। पर मैं जानता हूं कि यह युक्ति अकाट्य नहीं है; विस्फोटों जैसी चीजें भी होती हैं।

मनोविश्लेषण के द्वारा हमने जो जानकारी हासिल की है, उसे देखते हुए सम्मोहन के और मनोविश्लेषण के आदेशों के भेद का इन शब्दों में वर्णन किया जा सकता है : सम्मोहन-चिकित्सा-शैली मन में चल रही बात को ढकने को जैसे मानो ऊपर पोचा फेरने की कोशिश करती है, और विश्लेषण की शैली उसे उघाड़ने की और कुछ चीज हटाने की कोशिश करती है। पहली, अर्थात् सम्मोहन की शैली प्रसाधन करती है, और विश्लेषण की शैली शल्यक्रिया। सम्मोहन-शैली आदेश का उपयोग लक्षणों को रोकने में करती है, यह दमनों को और ताकत देती है; पर इतने काम के अलावा, उन सब प्रक्रमों को जैसे का तैसा छोड़ देती है, जिनसे लक्षण-निर्माण हुआ है। विश्लेषण-चिकित्सा-शैली नीचे गहराई में रोग की जड़ों के पास उन द्वन्द्वों में पहुंचती है जिनसे लक्षण पैदा होते हैं। यह आदेश का उपयोग उन द्वन्द्वों के परिणाम को बदलने में करती है। सम्मोहन-चिकित्सा-शैली रोगी को निष्क्रिय और अपरिवर्तित रहने देती है, और इसलिए वह रोग के प्रत्येक नये उत्तेजन के सामने असहाय होता है। विश्लेषण के इलाज में चिकित्सक की तरह रोगी को भी प्रयत्न करना पड़ता है, अर्थात् भीतरी प्रतिरोधों को खत्म करने के लिए उद्योग करना पड़ता है। इन प्रतिरोधों को दूर कर देने पर रोगी का मानसिक जीवन स्थायी रूप से बदल जाता है। वह परिवर्धन की अधिक ऊंची सतह पर उठ जाता है और रोग की नई सम्भावनाओं से अप्रभावित बना रहता है। प्रतिरोधों को दूर करने का परिश्रम विश्लेषण-चिकित्सा का आवश्यक कार्य है। रोगी को इसे पूरा करना पड़ता है और चिकित्सक उसे आदेशों द्वारा, जो शिक्षण के रूप में होते हैं, इसे पूरा करने में सहायता देता है। इसलिए यह ठीक कहा गया है कि मनोविश्लेषण द्वारा इलाज एक प्रकार का पुनः शिक्षण है।

मुझे आशा है कि आदेश का चिकित्सा में उपयोग करने की हमारी विधि में और सम्मोहन-चिकित्सा-शैली में इसका प्रयोग करने की एकमात्र विधि में जो अन्तर है, वह मैंने आपके सामने स्पष्ट कर दिया है। क्योंकि हमने आदेश का प्रभाव

धीरे की ओर मोड़कर स्थानान्तरण कर देता है, इसलिए [illegible]
होंगे कि सम्मोहन-चिकित्सकों ने [illegible] द्वारा [illegible]
और हिप्नोसिस-चिकित्सकों, इसी नौकरों के [illegible]
सम्मोहन का प्रयोग करते हुए हमें पूरी तरह रोगी के स्थानान्तरण
निर्भर रहना पड़ता है, और फिर भी हम इस दशा पर कोई [illegible]
सकते। जिस रोगी को सम्मोहित किया जा रहा है, उसका स्थानान्तरण
भी हो सकता है, या उभयभावक भी हो सकता है, जैसा कि [illegible]
या हो सकता है कि उसने विशेष ढंग से [illegible] अपने स्थानान्तरण ने
बचाए रखा हो। इस सबके बारे में हमें कुछ पता नहीं चलता। क्योंकि
हम स्वयं स्थानान्तरण पर विचार करते हैं। जो कुछ इसके मार्ग में बा
है, उसे हटा देते हैं, और जिस साधन को कार्य करता है, उसे मजबू
है। इस प्रकार आदेश की शक्ति से हम बिलकुल नये फायदे उठाते हैं। ह
नियन्त्रण कर सकते हैं। अब रोगी अकेला अपनी इच्छा के अनुसा
आदेशवश्यता की व्यवस्था नहीं करता, बल्कि जहाँ तक वह इसके प्र
अधीन हो सकता है, वहाँ तक हम उसकी आदेशवश्यता को रास्ता दिखा

अब आप कहेंगे कि इस बात की परवाह किए बिना कि विश्लेषण
मौजूद प्रेरक बल को स्थानान्तरण कहा जाए या आदेश, यह खतरा अब भ
रोगी पर हमारे प्रभाव के कारण, हमारी खोजों की आलम्बननिष्ठ निश्चि
पर सन्देह पैदा हो जाए, और जो चीज चिकित्सा में लाभकारक है, वहीं ग...
में हानिकारक है। यह आक्षेप मनोविश्लेषण पर बहुत बार किया गया और
मानना होगा कि यद्यपि यह आक्षेप उचित नहीं कहा जा सकता, पर फिर भी य
तर्कविरुद्ध नहीं है। यदि इसे उचित सिद्ध किया जा सकता तो मनोविश्लेषण ए
विशेष रूप से छिपाया हुआ और खास प्रभावकारी किस्म का आदेश वाला इला
ही होता, और रोगी के पिछले जीवन के अनुभवों, मानसिक गतिकी, अचेत
इत्यादि के बारे में इसके सब निष्कर्षों को हल्के रूप में ग्रहण किया जा सकता
था। इस प्रकार, हमारे विरोधी यह सोचते हैं कि सारे अनुभव न सही, तो भी यौन-
अनुभवों का महत्त्व, हमने पहले अपने भ्रष्ट मनों में ये सब बातें गढ़कर 'रोगी के
मन में डाल दी हैं।' इन आरोपों का खंडन सिद्धान्त की अपेक्षा अनुभव की
सहायता से अधिक सन्तोषजनक रीति से हो जाता है। जिसने स्वयं किसीका
मनोविश्लेषण किया है, उसे असंख्य बार यह निश्चय हुआ होगा कि इस तरह रोगी
के मन में बातें डाल देना असम्भव है। उसे किसी सिद्धान्त-विशेष का अनुयायी बना
लेने में, और इस प्रकार चिकित्सक द्वारा माने जाने वाले किसी गलत विश्वास का
विश्वासी बना लेने में कोई कठिनाई नहीं है। इस मामले में वह किसी आज्ञाकारी
शिष्य की तरह व्यवहार करता है, पर इस तरह आपने सिर्फ उसकी बुद्धि पर

र डाला है, रोग पर नहीं। उसके द्वन्द्वों का समाधान और उसके प्रतिरोधों
पराजय तभी होती है जब उसको अपने भीतर खोजने के लिए बताई बातें
ी हों जो सचमुच उसमें मौजूद हैं। जो चीज़ चिकित्सक ने करने में गलत
मान की है, वह विश्लेषण के समय दूर हो जाएगी। इसे हटाना होगा और
के स्थान पर अधिक सही चीज़ लानी होगी। चिकित्सक का लक्ष्य यह है कि
बड़ी सावधानी से चलता हुआ आदेश से पैदा होने वाली अस्थायी सफलताओं
रोके; पर यदि वे पैदा हो जाती हैं तो कोई बड़ी हानि नहीं होती, क्योंकि
पहले परिणाम से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते। यदि रोग की सब अस्पष्ट बातों
व्याख्या न हो जाए, स्मृति के सब खाली स्थान न भर जाए, और दमनों
आरम्भिक अवसरों का पता न लग जाए, तो हम विश्लेषण को अधूरा ही
झते हैं। जब परिणाम समय से पहले दिखाई देते हैं, तब हम उन्हें विश्लेषण-
र्य को आगे बढ़ाने वाले के बजाय रोकने वाले समझते हैं, और बीच-बीच में
स्थानान्तरण को उद्घाटित करके, जिसपर वे स्थिर होते हैं, उन्हें फिर नष्ट
दिया जाता है। मूलतः यह अन्तिम विशेषता विश्लेषण-कार्य और शुद्ध
देश में भेद करती है, और यह स्पष्ट कर देती है कि हमारे परिणाम विश्लेषण
परिणाम हैं, आदेश के नहीं। दूसरे प्रकार के प्रत्येक आदेशात्मक इलाज में
नान्तरण को सावधानी से जैसे का तैसा कायम रखा जाता है। विश्लेषण में
यं इसका इलाज किया जाता है और इसको इसके विविध रूपों में काट-छांट
ा जाता है। विश्लेषण के बाद स्वयं स्थानान्तरण ही नष्ट हो जाना चाहिए।
द तब सफलता आती है और बनी रहती है, तो वह आदेश के आधार पर नहीं
ी है, बल्कि आदेश की सहायता से की गई, भीतरी प्रतिरोधों की विजय पर
ी के भीतर लाए गए आन्तरिक परिवर्तन पर खड़ी है।

इलाज के समय आदेश के एकाकी प्रभावों को पैदा होने से सम्भवतः रोकने
ी चीज़ वह द्वन्द्व है जो प्रतिरोधों के खिलाफ लगातार चल रहा है, और इन
रोधों को, अपने-आपको ऋणात्मक (विरोधपूर्ण) स्थानान्तरण में रूपान्तरि
ता जाता है। हम यह बताए बिना भी नहीं रह सकते कि विश्लेषण के बहुत
रे सूक्ष्म निष्कर्षों की, जिनके आदेश द्वारा उत्पन्न होने का शक हो सकता है,
रे असंदिग्ध स्रोतों से पुष्टि हो जाती है। हमारे पास इस सम्बन्ध में असंदिग्ध
गह है, अर्थात् डेमेन्शिया रोगी और पैरानोइया रोगी है, जिनके बारे में यह शक
ी हो सकता कि वे आदेशों से प्रभावित हुए हैं। ये रोगी अपनी चेतना में घुसी
ई कल्पना-सृष्टियों और प्रतीकों के अनुवादों के रूप में जो कुछ बताते हैं, वह
नान्तरण स्नायु-रोगियों के अचेतन के बारे में हमारी जांच-पड़ताल के परि-
ों से बिलकुल मिलता है, और इस प्रकार हमारे किए हुए निर्वचनों की, जिन-
र प्रायः सन्देह किया जाता है, वस्तुनिष्ठ सत्यता की पुष्टि हो जाती है।

मैं समझता हूं कि यदि इन मामलों में भाप विश्लेषण पर विश्वास करें तो आ
यह विश्वास गलत सिद्ध नहीं होगा।

अब हमें स्वास्थ्य-लाभ के प्रश्न को राग-सिद्धान्त की पदावली में प्र
करके उसके वर्णन को पूरा करना है। स्नायु-रोगी सुख-भोग में या कार्य-सि
में असमर्थ है—सुख-भोग में तो इस कारण कि उसका राग किसी यथार्थ आल
से नहीं लगा हुआ है, और कार्य-सिद्धि में इसलिए क्योंकि बहुत अधिक ऊर्जा,
जो वैसे उसके पास उपयोग करने के लिए होती है, राग को दमन किए रखने में
और उसको सिर उठाने की कोशिशों को विफल करने में ही खर्च हो जाती है।
यदि उसके अहम् और राग के बीच चल रहा द्वन्द्व खत्म हो जाए और उसके अहम्
को उपयोग करने के लिए राग फिर मिल जाए, तो वह स्वस्थ हो जाए। इसलिए
इलाज का काम यह है कि वह इसके पहले वाले लगावों से राग को छुड़ाए, जो अहम्
की पहुंच से परे हैं, और इसे फिर अहम् के लिए उपयोगी बनाए। अब स्नायु-रोगी
का राग कहां है ? इसका आसानी से पता चल जाता है. यह लक्षणों से लगा
हुआ है जिनसे इसे इन परिस्थितियों में प्राप्त हो सकने वाली एकमात्र चीज़—
स्थानापन्न सन्तुष्टि—मिल जाती है। तो, हमें लक्षणों को अपने वश में करना
होगा, उन्हें खत्म करना होगा, और रोगी हमसे यही चाहता है। लक्षणों को
खत्म करने के लिए आवश्यक है कि हम पीछे लौटकर उस स्थान पर पहुंचें,
जिस स्थान पर वे शुरू में पैदा हुए थे। जिस द्वन्द्व से वे पैदा हुए, उसपर विचार
करें, और उन नोदक बलों की सहायता से, जो उस समय उपलब्ध नहीं थे, इसे
रास्ता दिखाते हुए नये समाधान की ओर ले जाएं। दमन के प्रक्रम का यह
संशोधन दमन तक पहुंचाने वाले प्रक्रमों के स्मृति-लेखों की सहायता से अंशत
ही किया जा सकता है। इस कार्य का असली अंश उन आरम्भिक द्वन्द्वों के नये
संस्करण—चिकित्सक के साथ सम्बन्ध में 'स्थानान्तरण'—में पैदा करके किया
जाता है, जिसमें रोगी वैसा ही व्यवहार करने की कोशिश करता है जैसा उसने
पहले किया था, और चिकित्सक उसकी आत्मा के सब उपलब्ध बलों को ऐसे
प्रेरित करता है कि वे उसे दूसरे निश्चय पर पहुंचाएं। इस प्रकार स्थानान्तरण
वह युद्ध-क्षेत्र है जिसमें द्वन्द्व करने वाले सब बलों को मिलना पड़ता है।

सारा राग और इसका विरोध करने वाले सब बलों की पूरी शक्ति एक चीज़—
चिकित्सक के साथ सम्बन्ध—पर केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार यह अनिवार्य हो
जाता है कि लक्षण अपने राग से वंचित हो जाए। रोगी के पहले वाले रोग के
स्थान पर कृत्रिम रूप से बनाया गया स्थानान्तरण विकार पैदा हो जाता है। उसके
राग के अनेक अयथार्थ आलम्बनों के स्थान पर चिकित्सक के व्यक्तित्व का एक
[illegible] ना [illegible] है, और वह [illegible] 'केन्द्रित' होता है। इस आलम्बन के विषय में
[illegible] के आदेशों के आधार तल पर, अधिक
[illegible] लेता है,

ऊंची मानसिक सतहों पर आए हुए विश्लेषक के आदेशों द्वारा पैदा हुआ है, और वहाँ यह एक प्रकृत मानसिक द्वन्द्व के रूप में चलाया जाता है। क्योंकि इस प्रकार एक नया दमन नहीं होने दिया जाता, इसलिए, अहम् और राग के बीच विरोध खत्म हो जाता है। रोगी के मन में फिर एकता या अखण्डता पैदा हो जाती है। जब राग चिकित्सक के व्यक्तित्व-रूप अपने अस्थायी आलम्बन से अलग किया जाता है, तब यह अपने पहले वाले आलम्बनों पर नहीं लौट सकता, और अब यह अहम् के उपयोग के लिए उसकी सेवा में रहता है। इलाज के समय इस द्वन्द्व में हमारा विरोध करने वाले बलों में एक ओर तो राग की कुछ प्रवृत्तियों से अहम् की अरुचि है, जो प्रवृत्तियों का दमन करने के रूप में प्रकट हुई है, और दूसरी ओर, राग की आसक्तता या लगन या 'चिपकूपन' है, जो उन आलम्बनों से आसानी से अलग नहीं होता, जिन्हें इसने एक बार आच्छादित किया है।

इस प्रकार चिकित्सा-कार्य में दो कलाएं होती हैं। पहली कला में सारे राग को लक्षणों से परे धकेलकर स्थानान्तरण में लाया जाता है और वहां इकट्ठा कर दिया जाता है, और दूसरी कला में इस नये आलम्बन के आसपास द्वन्द्व होता रहता है, और राग को इससे मुक्त किया जाता है। इस नये संघर्ष के सफल परिणाम का निश्चायक परिवर्तन यह है कि दमन को परे रखा जाए, जिससे राग अचेतन में भागकर अपने-आपको अहम् से फिर न हटा सके। यह बात विश्लेषक के आदेशों के परिणामस्वरूप अहम् में होने वाले परिवर्तनों से सम्भव हो जाती है। अचेतन को चेतन करके अहम्, निर्वचन-कार्य द्वारा, जिससे अचेतन सामग्री चेतन में आ जाती है, विस्तृत हो जाता है। शिक्षण के द्वारा इसका राग से फिर मेल हो जाता है, और इसे राग को कुछ सन्तुष्टि देने के लिए तत्पर बना लिया जाता है और अपने राग की मांग से इसे जो भय था, वह इसके उस नये सामर्थ्य से कम हो जाता है; जो यह राग की कुछ मात्रा उदात्तीकरण में खर्च करने के लिए प्राप्त करता है। इलाज का रास्ता इस आदर्श वर्णन के जितना समीप होता है, मनोविश्लेषण-चिकित्सा में उतनी ही सफलता होती है।

इसके मार्ग की रुकावटें हैं—राग की अनिष्पन्नता का अभाव, जो इसके आलम्बनों से मुक्त किए जाने का प्रतिरोध करता है, और रोगी की स्वरति की दृढ़ता, जो आलम्बन-स्थानान्तरण को एक निश्चित मात्रा से अधिक नहीं पैदा होने देती। शायद स्वास्थ्य-लाभ के क्रम की गतिकी तब अधिक स्पष्ट हो जाएगी जब हम इसका वर्णन यों करें कि स्थानान्तरण के जरिये इसका एक भाग अपनी ओर खींचकर हम राग की उस सारी मात्रा को इकट्ठा कर लेते हैं, जो अहम् के नियन्त्रण से हटाई गई है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि विश्लेषण के समय और विश्लेषण के द्वारा राग के जो वितरण हुए हैं, उनमें पहले वाले रोग में इसके स्वभाव

मैं समझता हूँ कि यदि इन मामलों में हम चिकित्सा पर विचार करें तो हमारा यह विचार गलत सिद्ध नहीं होता।

अब हमें स्नायुरोग-सम्बन्धी प्रश्न को राग-सिद्धान्त की शब्दावली में प्रकट करके उसके उत्तर को पूरा करना है। स्नायु-रोगी सुख-भोग में या कार्य-सिद्धि में असमर्थ है—सुख-भोग में तो इस कारण कि उसका राग किसी यथार्थ आलम्बन से नहीं लगा हुआ है, और कार्य-सिद्धि में इसलिए क्योंकि बहुत अधिक ऊर्जा, जो वैसे उसके पास उपयोग करने के लिए होती है, राग को दमन किए रखने में और उसकी फिर उभरने की कोशिशों को विफल करने में ही खर्च हो जाती है। यदि उसके अहम् और राग के बीच चल रहा द्वन्द्व खत्म हो जाए और उसके अहम् को उपयोग करने के लिए राग फिर मिल जाए, तो वह स्वस्थ हो जाए। इसलिए इलाज का काम यह है कि वह इसके पहले वाले लगावों से राग को छुड़ाए, जो अहम् की पहुँच से परे हैं, और इसे फिर अहम् के लिए उपयोगी बनाए। अब स्नायु-रोगी का राग कहाँ है? इसका आसानी से पता चल जाता है: यह लक्षणों से लगा हुआ है जिनसे इसे इन परिस्थितियों में प्राप्त हो सकने वाली एकमात्र चीज—स्थानापन्न सन्तुष्टि—मिल जाती है। तो, हमें लक्षणों को अपने वश में करना होगा, उन्हें खत्म करना होगा, और रोगी हमसे यही चाहता है। लक्षणों को खत्म करने के लिए आवश्यक है कि हम पीछे लौटकर उस स्थान पर पहुँचें, जिस स्थान पर वे शुरू में पैदा हुए थे। जिस द्वन्द्व से वे पैदा हुए, उसपर विचार करें, और उन नोदक बलों की सहायता से, जो उस समय उपलब्ध नहीं थे, इसे रास्ता दिखाते हुए नये समाधान की ओर ले जाएं। दमन के प्रक्रम का यह संशोधन दमन तक पहुँचाने वाले प्रक्रमों के स्मृति-लेखों की सहायता से अंशत ही किया जा सकता है। इस कार्य का असली अंश उन आरम्भिक द्वन्द्वों के नये संस्करण—चिकित्सक के साथ सम्बन्ध में 'स्थानान्तरण'—में पैदा करके किया जाता है, जिसमें रोगी वैसा ही व्यवहार करने की कोशिश करता है जैसा उसने पहले किया था, और चिकित्सक उसकी आत्मा के सब उपलब्ध बलों को ऐसे प्रेरित करता है कि वे उसे दूसरे निश्चय पर पहुँचाएं। इस प्रकार स्थानान्तरण वह युद्ध-क्षेत्र है जिसमें द्वन्द्व करने वाले सब बलों को मिलना पड़ता है।

सारा राग और इसका विरोध करने वाले सब बलों की पूरी शक्ति एक चीज—चिकित्सक के साथ सम्बन्ध—पर केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार यह अनिवार्य हो जाता है कि लक्षण अपने राग से वंचित हो जाएं। रोगी के पहले वाले रोग के स्थान पर कृत्रिम रूप से बनाया गया स्थानान्तरण विकार पैदा हो जाता है। उसके राग के अनेक अयथार्थ आलम्बनों के स्थान पर चिकित्सक के व्यक्तित्व का एक आलम्बन आ जाता है, और यह भी 'कल्पित' होता है। इस आलम्बन के विषय में यह जो नया द्वन्द्व पैदा होता है, वह विश्लेषक के आदेशों के ऊपरी तल पर, अधिक

निष्कर्ष भी निकालना पड़ता है कि स्वस्थ व्यक्तियों में भी दमन मौजूद होते हैं, और उन्हें कायम रखने के लिए ऊर्जा की कुछ मात्रा खर्च करनी पड़ती है। इसी तरह, हमें यह भी मानना पड़ता है कि उनके अचेतन मनों में भी दमित आवेग रहते हैं, जिनमें अब भी ऊर्जा होती है, और उनमें भी राग का कुछ हिस्सा अहम् के उपयोग से हटाया हुआ होता है। इसलिए स्वस्थ आदमी भी, फलत, स्नायु-रोगी होता है, पर उसमें ऐसा एकमात्र लक्षण, जो परिवर्धित होने में समर्थ प्रतीत होता है, स्वप्न ही है। जब आप उसके जाग्रत् जीवन की आलोचनात्मक जांच करते हैं, तब आपको एक ऐसी चीज़ मिलती है जो इस तर्कसंगत मालूम होने वाले निष्कर्ष का खंडन करती है, क्योंकि ऊपर से स्वस्थ लगने वाले इस जीवन में असंख्य छोटे-छोटे और व्यवहार की दृष्टि से महत्त्वहीन लक्षण-निर्माण व्याप्त हैं।

इसलिए स्नायविक स्वास्थ्य और स्नायविक रोग (स्नायु-रोग) का अंतर कम होकर एक व्यावहारिक अंतर या विभेद रह जाता है, और उसका निश्चय व्यावहारिक परिणाम द्वारा किया जाता है—कोई व्यक्ति जीवन में सुख-भोग और सक्रिय कार्य-सिद्धि के सामर्थ्य की काफी मात्रा का अनुभव करने में कहाँ तक समर्थ है? सम्भवतः इस अन्तर का रूप उस अनुपात के अनुरूप होता है, जो उसके पास मौजूद मुक्त ऊर्जा में और दमन से बंधी हुई ऊर्जा में होता है, अर्थात् यह मात्रात्मक अन्तर है, गुणात्मक नहीं। मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि इस विचार से हमारे इस विश्वास का सैद्धान्तिक आधार बनता है कि स्नायु-रोगों का स्वास्थ्य इलाज अवश्य किया जा सकता है चाहे उनका आधार शरीर-रचना पर आश्रित स्वभाव या मनोविन्यास भी हो।

इसलिए स्वास्थ्य की विशिष्टताओं की जानकारी प्रदान करते हुए इतनी बात, स्नायु-रोगी और स्वस्थ व्यक्तियों के स्वप्न समान होने से, अनुमित की जा सकती है। पर स्वयं स्वप्नों के बारे में एक और अनुमान निकालना होगा, और वह यह है कि उन्हें स्नायविक लक्षणों के साथ उनके बन्धन से पृथक् नहीं किया जा सकता, कि हम यह मानने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं कि उनकी सारभूत प्रकृति उन्हें इस सूत्र में बांध लेने से खत्म हो जाती है, कि वे 'विचारों या, अभिव्यक्ति के बहुत पुराने और अवर्चानित रूपों से अनुवाद' हैं। और हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि उनसे राग के वे विन्यास और इच्छा के वे आलम्बन प्रकट होते हैं, जो उस समय सचमुच क्रियाशील और प्रबल हैं।

अब हम लगभग अन्त पर आ गए हैं। शायद आप इस बात से निराश होंगे कि, मनोविश्लेषण-चिकित्सा की चर्चा करते हुए, मैंने सिर्फ सिद्धान्त पर विचार [illegible] अवस्थाओं में प्रयोग किया जाता है या इसके जो परिणाम आपको कुछ नहीं बताया, पर मैं उन दोनों को छोड़ता [illegible] दिया शायद यह कभी भी नहीं था कि मैं आपको

के विषय में कोई ऐसा अनुमान नहीं किया जा सकता। मान लो कि हमने क्रिया-स्थानान्तरण कायम करके और फिर उसे चिकित्सक के व्यक्तित्व पर लाकर किसी रोगी का सरलता से इलाज कर दिया जाता है, पर इसका यह मतलब निष्कर्ष नहीं है कि रोगी पहले अपने क्रिया पर राग का अचेतन स्थिर करके इस तरह रोगी हुआ था। क्रिया-स्थानान्तरण सिर्फ वह युद्ध-क्षेत्र है जिसपर हम राग को जीतते और बंदी बना लेते हैं। रोगी के राग को अन्य स्थानों से हटाकर यहाँ खींच लिया गया है। आवश्यक नहीं कि यह रण-क्षेत्र दुश्मन का सबसे महत्त्वपूर्ण मोर्चा हो। दुश्मन की राजधानी की रक्षा इसके द्वारों से ठीक पहले करने की आवश्यकता नहीं। स्थानान्तरण को फिर समाप्ति हो जाने के बाद ही चिकित्सक भावी कल्पना में रोग द्वारा निरूपित राग के स्थानों की पुन रचना आरम्भ कर सकता है।

राग-सिद्धान्त के प्रकाश में स्वप्नों के बारे में एक अन्तिम बात कहनी होगी। स्नायु-रोगी की 'गलतियों' और उसके मुक्त साहचर्यों की तरह उसके स्वप्नों की सहायता से हम लक्षणों का अर्थ जान पाते हैं, और राग के स्थानों का पता लगा सकते हैं। उनमें इच्छा-पूर्ति जो रूप ग्रहण करती है, उससे हमें यह पता चलता है कि दमन किए गए इच्छा-आवेग कौन-से हैं, और वे आलम्बन कौन-से हैं, जिनपर अहम् से हटने के बाद राग ने अपना लगाव किया है। इसलिए मनोविश्लेषण-चिकित्सा में स्वप्नों का निर्वचन बहुत बड़ा कार्य करता है, और बहुत-से रोगियों में यह बहुत समय तक विश्लेषण का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन होता है। हम पहले देख चुके हैं कि नींद की अवस्था अपने-आप ही दमनों को कुछ शिथिल कर देती है। इसपर जो भारी दबाव होता है, उसमें यह कमी होने पर यह दमित इच्छा स्वप्न में अपनी इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकती है जितनी दिन में लक्षणों के रूप में नहीं की जा सकती। इसलिए दमित अचेतन की जानकारी का, जो अहम् से हटे हुए राग का घर है, सबसे आसान रास्ता स्वप्नों का अध्ययन ही हो जाता है।

पर स्नायु-रोगियों के स्वप्नों में और प्रकृत लोगों के स्वप्नों में कोई सारभूत भेद नहीं होता। सच पूछिए तो शायद इनको उनसे अलग भी नहीं किया जा सकता। स्नायु-रोगियों के स्वप्नों की ऐसे तरीके से व्याख्या करना, जो प्रकृत लोगों के स्वप्नों पर ठीक न बैठे, तर्क-विरुद्ध होगा। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि स्नायु-रोग और स्वास्थ्य का अन्तर सिर्फ दिन के समय होता है—स्वप्न-जीवन में कायम नहीं रहता। इस प्रकार, यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ ऐसे निष्कर्ष, जो स्नायु-रोगियों के स्वप्नों और लक्षणों के परस्पर सम्बन्ध के परिणामस्वरूप प्राप्त हुए हैं, स्वस्थ व्यक्तियों पर लागू किए जाएं। हमें मानना पड़ता है कि स्वस्थ आदमी में भी मानसिक जीवन के वे कारक होते हैं, जो स्वप्न का या लक्षण का निर्माण कराने वाले एकमात्र कारक हैं, और हमें यह

भी निकालना पड़ना है कि स्वस्थ व्यक्तियो मे भी दमन मौजूद होते हैं,
हें कायम रखने के लिए ऊर्जा की कुछ मात्रा खर्च करनी पड़ती है। इसी
मे यह भी मानना पड़ना है कि उनके अचेतन मनो मे भी दमित आवेग
, जिनमें अब भी ऊर्जा होती है, और उनमें भी राग का कुछ हिस्सा अहम्
ोग से हटाया हुआ होता है। इसलिए स्वस्थ आदमी भी, फलत, स्नायु-
ोता है, पर उसमें ऐसा एकमात्र लक्षण, जो परिवधित होने मे समर्थ प्रतीत
, स्वप्न ही है। जब आप उसके जाग्रन् जीवन की आलोचनात्मक जाच
, तब आपको एक ऐसी चीज मिलती है जो इस तर्कसंगत मालूम होने वाले
का खडन करती है, क्योंकि ऊपर से स्वस्थ लगने वाले इस जीवन मे असख्य
टे और व्यवहार की दृष्टि से महत्त्वहीन लक्षण-निर्माण व्याप्त हैं।

सलिए स्नायविक स्वास्थ्य और स्नायविक रोग (स्नायु-रोग) का अतर
कर एक व्यावहारिक अनर या विभेद रह जाता है, और उसका निश्चय
रिक परिणाम द्वारा किया जाता है—कोई व्यक्ति जीवन मे सुख-भोग
क्रिय कार्य-सिद्धि के सामर्थ्य की काफी मात्रा का अनुभव करने मे कहा तक
है? सम्भवत इस अन्तर का रूप उस अनुपात के अनुरूप होता है, जो
ास मौजूद मुक्त ऊर्जा मे और दमन से बधी हुई ऊर्जा मे होता है, अर्थात्
ात्मक अन्तर है, गुणात्मक नहीं। मुझे आपको यह याद दिलाने की
कता नहीं कि इस विचार से हमारे इस विश्वास का सैद्धान्तिक आधार बनता
ायु-रोगों का सारत. इलाज अवश्य किया जा सकता है चाहे उनका आधार
रचना पर आश्रित स्वभाव या मनोविन्यास भी हो।

सलिए स्वास्थ्य की विशेषताओं की जानकारी प्रदान करते हुए इतनी बात,
रो ... स्वप्न समान होने से, अनुमित की जा सकती

विश्लेषण की विधि का प्रयोग करने की क्रियात्मक शिक्षा दे दूं; और पिछले को इस कारण, क्योंकि इसके विरोध में मेरे मन मे अनेक भाव है। इन व्याख्यानो के आरम्भ मे मैंने बलपूर्वक कहा था कि अनुकूल परिस्थितियों मे हम ऐसे इलाज करने में सफल हो जाते हैं जो अन्य चिकित्सा-शैलियों के सर्वोत्तम इलाजो से किसी तरह भी घटिया नही होते। शायद मैं यह भी कह सकता हूं कि ये परिणाम और किसी विधि से प्राप्त नही किए जा सकते। यदि मैं इससे अधिक कहूंगा तो यह सन्देह किया जाएगा कि मैं आत्मविज्ञापन द्वारा अपने विरोधियो की निन्दाकारक आवाज़ को दबा देना चाहता हू। 'सहयोगी' चिकित्सको ने सार्वजनिक सम्मेलनो मे भी मनोविश्लेषको को बार-बार यह धमकी दी है कि हम विश्लेषण की विफलताओ और हानिकारक प्रभावो का संग्रह प्रकाशित करके इलाज की इस विधि की निरर्थकता के बारे मे जनता की आखें खोल देंगे। इस तरह की कार्यवाही द्वेषपूर्ण और खण्डनात्मक तो होगी ही, पर उस बात को छोड़ दिया जाए, तो भी, इस तरह के सग्रह को विश्लेषण के चिकित्सा-सम्बन्धी परिणामो के बारे मे सही अन्दाजा लगाने के लिए ठीक गवाही नही माना जा सकता। मनोविश्लेषण-चिकित्सक-शैली, जैसा कि आप जानते हैं, अभी शैशव काल में है। इसकी विधि को पूरा बनाने में अनेक वर्ष लगेंगे, और यह काम विश्लेषण करते हुए, अनुभव बढने के साथ-साथ ही किया जा सकता है। इसकी विधियो की शिक्षा देने में जो कठिनाइया हैं, उनके कारण नये आदमी को अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए अधिकतर अपनी ही सूझ-बूझ पर निर्भर होना पड़ता है और उसके आरम्भिक वर्षों के परिणामो को विश्लेषण-चिकित्सा की अधिकतम सम्भव सफलताओं का सूचक नही माना जा सकता।

मनोविश्लेषण के आरम्भ मे किए गए इलाज के बहुत-से प्रयत्न विफल रहे थे, क्योंकि वे प्रयत्न ऐसे रोगियो मे किए गए जो इसकी प्रक्रिया के लिए बिलकुल अनुपयुक्त थे, और जिन्हे आज हम कुछ संकेतो का अनुसरण करके अलग कर देते हैं। पर इन संकेतो का पता जाच करने से ही चलता है। शुरू में हम यह नहीं जानते थे कि पैरानोइया और डेमेन्शिया प्रीकौक्स जब पूर्णत: परिवर्धित होते हैं, तब वे विश्लेषण से काबू में नहीं आते। फिर भी, सब तरह के रोगो पर इस विधि को परख करना उचित है। पर उन आरम्भिक वर्षों की अधिकतर विफलताओं का कारण चिकित्सक की त्रुटियां पात्र के चुनाव में अनुपयुक्तता नहीं थी, बल्कि प्रतिकूल बाह्य अवस्थाएं थीं। मैंने सिर्फ आन्तरिक प्रतिरोधो की चर्चा की है, जो रोगी की ओर से किए जाते हैं—ये अनिवार्य हैं और इन्हें दूर किया जा सकता है। रोगी की परिस्थितियां और वातावरण विश्लेषण के विरुद्ध जो बाह्य प्रतिरोध खड़े कर देते हैं, उनका सैद्धान्तिक महत्त्व कुछ भी नहीं है पर व्यावहारिक महत्त्व बहुत अधिक है। मनोविश्लेषण द्वारा इलाज की तुलना शल्य-कार्य या शरीर के आपरेशन से की जा

सकती है, और उसको तरह इसे भी अपनी सफलता के लिए अनुकूलतम परिस्थितियों में किए जाने का अधिकार है। सर्जन या शल्य-चिकित्सक जो पूर्व व्यवस्थाएं करता है उनसे आप परिचित हैं—उपयुक्त कमरा, काफी प्रकाश, विशेषज्ञ सहायक, रिश्तेदारों को अलग हटा देना आदि। अब आप बताइए कि यदि आपरेशन करने के समय उसका सारा परिवार आपरेशन-स्थल में झांक रहा हो, और हर नश्तर लगने पर ज़ोर से चीख रहा हो, तो कितने आपरेशन सफल होंगे ? मनोविश्लेषण द्वारा इलाज में रिश्तेदारों का दखल पूरा खतरा है, और साथ ही ऐसा खतरा है जिसको दूर करने का तरीका हमारी समझ में नहीं आता। हमारे पास रोगी के भीतरी प्रतिरोधों को, जिन्हें हम आवश्यक मानते हैं, दूर करने का उपाय है, पर इन बाहरी प्रतिरोधों से हम अपने-आपको कैसे बचाएं ? कितना भी स्पष्टीकरण कीजिए, पर रिश्तेदारों को समझा लेना असम्भव है, और न आप उनसे कह सकते हैं कि वे सारे मामले से बिलकुल अलग रहें। आप उन्हें अपने मन की बातें भी नहीं बता सकते, क्योंकि तब यह खतरा है कि रोगी को हमपर विश्वास नहीं रहेगा, क्योंकि वह चाहता है, और ठीक ही चाहता है, कि जिस मनुष्य को वह अपने मन की बात बताता है, वह उसका ही पक्ष ले। जिसे पारिवारिक जीवन में आम तौर से फूट डालने वाले मतभेदों की जानकारी है उसे, विश्लेषक के नाते, यह देखकर कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा कि रोगी के निकटतम लोग बहुधा उसके इलाज में कम और उसके वर्तमान रूप को कायम रखने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। जब ऐसा होता है कि स्नायु-रोग परिवार के विभिन्न सदस्यों के आपसी संघर्षों से सम्बन्धित होता है, तब स्वस्थ व्यक्ति अपने निजी हित को रोगी के स्वास्थ्य-लाभ के मुकाबले अधिक महत्त्व देता है। आखिर यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पति ऐसे इलाज को पसन्द नहीं करता जिसमें, जैसी कि उसकी सही कल्पना है, उसके सब पाप खुल जाएंगे। हम इसपर आश्चर्य भी नहीं करते, पर जब हमारे प्रयत्न निष्फल रहते हैं और बीच में ही इसलिए छोड़ देने पड़ते हैं कि

लिया था। उसने तब बड़े व्यवहारशून्य तरीके से—अथवा बड़ी चतुराई से—अपनी माता को सकेत से यह बता दिया कि विश्लेषण के समय क्या बातचीत हुई थी। ऐसा उसने अपनी माता के प्रति अपना व्यवहार बदलकर, यह ज़िद करके कि उसे अकेलेपन के भय से माता के अलावा और कोई नही बचा सकता, और जब उसने घर से जाने की कोशिश की, तब उस दरवाज़े को पकड़े रखकर, यह बात जताई। उसकी माता भी पहले बहुत स्नायविक थी, पर कई वर्ष पहले एक जल-चिकित्सा के अस्पताल मे जाने से स्वस्थ हो गई थी या दूसरे शब्दो मे यो कह सकते हैं कि उसने वहा एक आदमी से अच्छा परिचय कर लिया था, और उसके साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर लिया था जो एक से अधिक बातो मे तृप्तिकारक सिद्ध हुआ था। अपनी पुत्री की ज़िद से सदेह पैदा हो जाने पर माता एकदम समझ गई कि लड़की के भय का क्या अर्थ है। वह अपनी माता को रोके रखने के लिए और उसे अपने प्रेमी से अपना सम्बन्ध बनाए रखने के लिए आवश्यक आज़ादी से वचित करने के लिए रोगी हो गई थी। माता ने तुरन्त निश्चय कर लिया। उसने इस हानिकारक इलाज को बन्द कर दिया। लडकी को स्नायु-रोगियो के एक आश्रम मे भेज दिया गया, और बहुत वर्षों तक उसे दिखाकर यह कहा जाता रहा कि यह 'बेचारी मनोविश्लेषण की मारी हुई' है, और मेरे इलाज के दुष्परिणामों के बारे मे भी ऐसी ही विरोधी अफवाहें उडती रही। मैं चुप रहा, क्योकि मैं यह समझता था कि मैं अपने पेशे की गोपनीयता के नियमो से बधा हुआ हू। वर्षों बाद मुझे एक सहयोगी से पता लगा, जो उस आश्रम मे आ गया था और जिसने अकेलेपन से डरने वाली उस लडकी को देखा था, कि उसकी माता और उस धनी आदमी के सम्बन्ध के बारे मे हर कोई जानता है, और सम्भवत उस स्त्री का पति और लडकी का पिता जान-बूझकर इसकी ओर से आखें बन्द किए हुए हैं। इस 'रहस्य' पर उस लडकी के इलाज को कुर्बान कर दिया गया।

युद्ध से पहले के वर्षों मे, जबकि बहुत-से देशों से रोगियो के आ जाने के कारण मैं अपने नगर की खुशी-नाखुशी पर निर्भर नही रहा था, तब मैंने यह नियम बना लिया था कि मैं ऐसे व्यक्ति का इलाज अपने हाथो मे नही लेता था जो जीवन के सब आवश्यक रिश्तो से स्वतन्त्र न हो। हरेक मनोविश्लेषक यह नियम नहीं बना सकता। रिश्तेदारो के बारे मे मेरी चेतावनियों से शायद आप यह निष्कर्ष निकालेंगे कि मनोविश्लेषक को, मनोविश्लेषण के हित की दृष्टि से, रोगी को उसके परिवार के वातावरण से अलग कर देना चाहिए, और यह चिकित्सा उनकी ही करनी चाहिए जो निजी सस्थाओं मे रहते हैं। पर मैं इस विचार का समर्थन नहीं कर सकता। रोगियो के लिए—कम से कम उन रोगियो के लिए, जिनकी हालत बहुत गिरी हुई नहीं है—यही अधिक लाभदायक है कि वे इलाज के दिनों मे उन परिस्थितियों मे रहें जिनमे उन्हें अपने सामान्य जीवन की आवश्यकताओं से द्वन्द्व

करना पड़े। पर रिश्तेदारों को अपने व्यवहार से इस लाभ को नष्ट नहीं होने देना चाहिए, और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें डाक्टर के चिकित्सा-प्रयत्नों का विरोध नहीं करना चाहिए। पर जिन लोगों से आप नहीं मिलते, उन्हें यह रुख अपनाने के लिए आप कैसे प्रेरित करेंगे ? स्वभावत आप यह नतीजा निकालेंगे कि इलाज की सफलता पर सामाजिक वातावरण का और रोगी के निकटतम लोगों की सुसस्कृति की मात्रा का बड़ा असर पड़ेगा।

यदि हम अपनी बहुत सारी विफलताओं का कारण इन बाधाकारक बाह्य वारकों को बता दें तो भी चिकित्सा-शैली के रूप में मनोविश्लेषण की प्रभावकारिता के लिए बड़ा निराशामय क्षेत्र है। मनोविश्लेषण के प्रेमियों ने हमें यह सलाह दी है कि विफलताओं के सग्रह के मुकाबले में हम अपनी सफलताओं के आंकड़े तैयार करें। मैंने यह सुझाव भी पसन्द नहीं किया; मैंने यह युक्ति पेश की कि यदि इकट्ठे किए गए अलग-अलग रोगी एक जैसे नहीं हैं, तो आंकड़े अर्थहीन हो जाते हैं; और जिन रोगियों का इलाज किया गया है, वे असल में बहुत-सी दृष्टियों से एक जैसे नहीं थे। इसके अलावा, जितने समय पर विचार किया गया था, वह इतना थोड़ा था कि उसके आधार पर इलाजों के स्थायित्व का निर्णय नहीं किया जा सकता। और कुछ रोगियों के बारे में तो कुछ भी विवरण देना असम्भव है। वे ऐसे लोग थे जिन्होंने अपने रोग और इलाज, दोनों को गुप्त रखा था, और इसलिए उनके स्वास्थ्य-लाभ को भी उसी तरह गुप्त रखना था। पर इसके खिलाफ सबसे जबरदस्त दलील यह है कि हम जानते हैं कि चिकित्सा-शैली के मामलों में मनुष्य-जाति सबसे अधिक विवेकहीन है। इसलिए तर्कसगत दलीलों से उसे प्रभावित कर सकने की कोई सम्भावना नहीं है। इलाज के सबंध में नई बात को या तो बड़े प्रबल उत्साह से ग्रहण किया जाता है, जैसे कि उदाहरण के लिए, तब हुआ था जब कोच ने ट्युबरक्युलिन के बारे में अपने परिणाम पहले-पहल प्रकाशित किए थे; अथवा, इसपर बहुत अधिक विश्वास किया जाता है, जैसा जेनर के टीके (वैक्सीनेशन) के बारे में हुआ था, जो असल में एक स्वर्गीय वरदान था, पर जिसके विरोधी

देख रहे हैं, जिनमें एक-दूसरे के विरुद्ध पूर्वग्रह पैदा हो गए हैं। सबसे
दारी की बात यह है कि प्रतीक्षा करो और समय बीतने के साथ उन्हें
दो। एक दिन आता है जब यही लोग उन्हीं वस्तुओं को पहले से भिन्न
लगते हैं। पहले उनका विचार क्यों और था, यह बात सदा छिपी रह
सम्भवतः विश्लेषण-चिकित्सा-शैली के विरुद्ध पूर्वग्रह ढीला पड़ने
विश्लेषण के सिद्धान्त के लगातार फैलते जाने से और अनेक देशों में
चिकित्सा अपनाने वाले डाक्टरों की संख्या से यही बात सूचित होती है।
युवक था, तब सम्मोहन के आदेश-इलाज के लिए चिकित्सक-वर्ग में मेरे
रोष का तूफान आ गया था। और आज 'समझदार और गंभीर लोग' उसे
विश्लेषण के विरोध में रखते हैं। पर चिकित्सा के साधन-रूप में सम्मोहन से
आशाएं की गई थीं, उन्हें यह पूरा नहीं कर सका। हम मनोविश्लेषक लोग इस
सच्चे उत्तराधिकारी होने का दावा कर सकते हैं, और हमें यह नहीं भूलना चाहिए
कि इससे हमें कितना अधिक बढ़ावा और सैद्धांतिक प्रकाश प्राप्त हुआ है। मनो-
विश्लेषण के जो हानिकारक प्रभाव हुए बताए जाते हैं, वे सिर्फ द्वन्द्व की अतिशयता
या प्रकोप के बीच में आने वाले रूप तक ही सीमित हैं, और ये रूप तब पैदा हो
सकते हैं, जब विश्लेषण ठीक तरह न किया जाए, या इसे एकाएक छोड़ दिया जाए।
हम अपने रोगियों के साथ जो कुछ करते हैं, उसका वर्णन आप सुन सकते हैं, और
अब आप स्वयं यह फैसला कर सकते हैं कि क्या हमारे प्रयत्नों से स्थायी हानि हो
सकती है ? विश्लेषण का दुरुपयोग कई तरह किया जा सकता है. विशेष रूप से
स्थानान्तरण धूर्त चिकित्सक के हाथ में बड़ा खतरनाक हथियार है, पर कोई भी
दवाई दुरुपयोग से नहीं बच सकती। यदि किसी चाकू में धार नहीं है, तो वह
शल्य चिकित्सक के लिए भी बेकार है।

अब मैं समाप्त ही करने वाला हूं। मैं सिर्फ परम्परागत औपचारिकता के रूप
में यह बात नहीं कह रहा कि मैंने आपके सामने जो व्याख्यान दिए हैं, उनकी बहुत-
सी त्रुटियों से मैं स्वयं बहुत परेशान हूं। मुझे इस बात का सबसे अधिक खेद है कि
अनेक बार मैंने किसी विषय का संक्षिप्त उल्लेख करने के बाद आगे फिर उसपर
विचार करने का वचन दिया, और फिर जिस प्रसंग में मैं अपना वचन पूरा कर
सकता था, वह नहीं आया। मैंने एक ऐसी चीज का विवरण आपके सामने पेश
करने का भार उठाया था, जो अभी अधूरी है, और परिवर्धित हो रही है, और
अब मेरा संक्षिप्त सारांश भी अधूरा रह गया है। बहुत-से स्थानों पर मैंने निष्कर्ष
निकालने के लिए सारी चीज़ तैयार कर दी, पर निष्कर्ष नहीं निकाला, पर मैं
आपको मनोविश्लेषण का विशेषज्ञ बनाने का लक्ष्य नहीं रख सकता था। मैं
तो सिर्फ यह चाहता था कि आपको इसकी
इसमें आपकी दिलचस्पी

परिशिष्ट

पारिभाषिक शब्दों की सूची

Abnormal	अप्रकृत
Actual neuroses	असली स्नायु-रोग
Adhesiveness	आसक्तता
Aetiology	कारणता
Affect	भाव
Affective attitudes	भावात्मक अभिवृत्तियां
After-effect	अनुप्रभाव
Allusion	अस्पष्ट निर्देश
Ambivalent	उभयक
Amnesia	स्मृतिनाश
Anagogic	रहस्यवादी
Anamnesis	पूर्ववृत्त
Anatomical	शारीरीय
Animalcule	अणुप्राणी
Ante-room	पूर्वकक्ष
Anticipation	पूर्वोच्चारण
Anxiety or dread	चिन्ता या त्रास
Arrested	रुद्ध
Assimilation	स्वीयकरण, स्वीकरण
Attitudes	अभिवृत्तियां
Auto-erotically	आत्मकामितः
Bacteriologist	जीवाणुशास्त्री
Biological	जैविकीय
Bisexually	द्विलिंगितः
Cambium layer	एधास्तर
Casual therapy	नैमित्तिक चिकित्सा
Chemistry	रसायन
Chronic	जीर्ण
Clitoris	भगनासा
Cognizance	संज्ञान
Combinatory Paranoia	कम्बिनेटरी पैरानोइया
Communication	सम्प्रेषण
C[illegible] series	पूरक श्रेणी

Complexes	ग्रंथियां
Component instincts	घटक निसर्ग-वृ...
Compounding or contamination	(शब्द) मिश्रण...
Conception	अवधारण
Conceptual connection	अवधारणीय स...
Condemnation	तिरस्करण
Condensation	सघनन
Correlative	सह-सम्बन्धी
Counter-will	विपरीत-इच्छा
Crystal	मणिभ
Cuneiform writing	कीलकाक्षरलेख
Cyclic	चक्रीय
Deductive	निगमनात्मक
Degenerate	पतित
Delusion	भ्रम
Descriptive Psychology	वर्णनात्मक मनोविज्ञा...
Determinism	नियतिवाद
Development	परिवर्धन
Diagnosis	रोग-निर्णय, निदान
Dialectics	द्वन्द्वात्मकता
Dichotomy	युग्म-भुजिता
Dicotyledonous Plants	द्विबीजपत्री पादप
Differentiated	भिन्नित
Discharged	विसर्जित
Disparate	असम
Displacement	विस्थापन
Dispositions	विन्यास
Dissimulated	प्रच्छन्न
Dissociation	विघटन
Distraction	मनोविक्षेप
Disturbance	विक्षोभ
Dream-Work	स्वप्न-तन्त्र
Dynamic	गतिकीय
Dynamic conception	गतिकीय अवधारण
Dynamics	गतिकी, गतिविज्ञान

Empirical	आनुभविक
Endogenous	अन्तर्जात
Endo-psychic	अन्तर्मानसिक
Erection	दृढ़ीकरण
Erotogenic	कामजनक
Evolution	विकास
Exogenous	बहिर्जात
Experimental Psychology	प्रायोगिक मनोविज्ञान
Fear	भय
Fetichist	जड़ासक्त
Field-research	क्षेत्र-गवेषणा
Fixated	बद्ध
Form	आकृति
Free association	मुक्त साहचर्य
Fright	डर
Frustration	कुंठा
Function	कार्य
Fusion	सायुज्यन
Genitalia	जननेन्द्रिय संस्थान
Grandeur	महानता
Hallucination	मतिभ्रम
Hammers	चाभियां, कुंजियां
Hereditary Predisposition	पित्रागत पूर्व-प्रवृत्ति
Heterosexual	विषमकामी
Histology	ऊतिकी
Homosexual or invert	समलिंगकामी या समकामी
Hypnotic Suggestibility	सम्मोहन-आदेशवश्यता
Hypotheses	परिकल्पनाएं
Illusion	माया, भ्रम
Illusory	मायात्मक
Imagery	कल्पना-चित्र
Immediate	प्रत्यक्ष
Impulse	आवेग
In-breeding	अन्तरभिजनन
Incest	निषिद्ध सम्भोग, अगम्यागमन
Incestuous objects	निषिद्धसम्भोग के आलम्बन
Indigenous	देशज
Infantilism	शैशवीयता
Infatuation	मोहासक्ति
Inferiority complex	आत्महीनता-ग्रंथि

Symptomatic act	लाक्षणिक कार्य
Testing reality	प्रयोगशील यथार्थता
Tissue	ऊतक
Topographical Process	स्थानवृत्तीय प्रक्रम
Transference	स्थानान्तरण
Transference neuroses	स्थानान्तरण स्नायु-रोग
Traumatic neuroses	उपघातज स्नायु-रोग
Typical	प्रारुपिक
Unconscious	अचेतन (अर्थात् अज्ञात)
Value	मान
Variations	परिणमन
Visual image	दृष्टिगम्य प्रतिबिंब
Wood	दारु
Word association	शब्द-साहचर्य

०००

सज्जन मनोविश्लेषण के ऊपरी परिचय से संतुष्ट न रहकर इससे स्थायी नाता जोड़ना चाहेगा तो उसे मैं निरुत्साहित ही नहीं करूंगा, ऐसा करने के विरुद्ध चेतावनी भी दूंगा। कारण यह है कि आज की परिस्थितियों में इसे जीवनकार्य के रूप में अपनानेवाला व्यक्ति *विद्या के क्षेत्र में सफलता पाने के मौकों से तो वंचित* हो ही जाएगा, और बाद में व्यवसाय के रूप में यह कार्य आरंभ करने पर उसे पता चलेगा कि वह एक ऐसे समाज के बीच रह रहा है जो उसके लक्ष्यों और आशयों को गलत रूप में समझता है, उसे संशय और शत्रुता की दृष्टि से देखता है, और उसे अपनी तमाम छिपी हुई दुष्टताओं से तंग करता है। इस समय यूरोप में हो रहे युद्ध के दुष्कार्यों से शायद आप यह अनुमान कर सकते हैं कि उसे कैसे असंख्य विरोधों का सामना करना पड़ता है।

परंतु सदा कुछ ऐसे लोग हुआ करते हैं जिन्हें ज्ञानवृद्धि का इतना प्रबल आकर्षण होता है कि वे ऐसी सब असुविधाएं झेल जाते हैं। यदि आपमें कुछ ऐसे लोग हैं जो मेरी चेतावनी के बाद भी मेरा दूसरा व्याख्यान सुनने आएंगे तो उनका मैं स्वागत करूंगा। पर मनोविश्लेषण की जिन सहज कठिनाइयों की मैंने चर्चा की है, उनका तो आप सबको ही पता होना चाहिए।

सबसे पहले, यह विषय पढ़ाने और प्रस्तुत करने की समस्या है। डाक्टरी पढ़ते हुए आपको अपनी आंखों का प्रयोग करने की आदत पड़ गई है। शरीर के अवयवों के नमूने, रासायनिक क्रियाओं के अवक्षेप और मांसपेशी के स्नायुओं के उद्दीपन से पेशी का सिकुड़ना आप आंखों से देख सकते हैं। बाद में आप रोगियों

आपको भी वे कार्य अपने हाथ से करने का मौका दिया जाता है। मनश्चिकित्सा[१] में भी रोगियों का, तथा उनके भाव, वचन और व्यवहार में हुए परिवर्तनों का आँखों के सामने प्रदर्शन किया जाता है जिससे बहुत-से तथ्य आपके मन पर गहरी छाप छोड़ जाते हैं। इस प्रकार चिकित्सा-शास्त्र के अध्यापक का अधिकतर कार्य किसी विवरण बतानेवाले पथप्रदर्शक का सा होता है, जो मानो आपको एक संग्रहालय में घुमा रहा है, इस तरह, वहां प्रदर्शित वस्तुओं से आपका सीधा या प्रत्यक्ष संबंध कायम हो जाता है और आप यह मानने लगते हैं कि उन नये तथ्यों के अस्तित्व को आपने स्वयं अनुभव किया है।

पर, बदकिस्मती से, मनोविश्लेषण में यह सब नहीं होता। मनोविश्लेषण द्वारा इलाज में रोगी और चिकित्सक के बीच सिर्फ कुछ शब्दों का आदान-प्रदान होता है। रोगी बात करता है, अपने पिछले अनुभव और इस समय की अनुभूतियां बताता है, शिकायतें करता है, और अपनी इच्छाएं तथा भाव का मनोविकार प्रकट करता है। चिकित्सक ध्यान से उसकी बात सुनता है, उसके विचार-मार्गों को किसी दिशा में ले जाने की कोशिश करता है, उसे याद दिलाता है, कुछ विशेष दिशाओं में ध्यान ले जाने के लिए उसे मजबूर करता है, उसके सामने कुछ स्पष्टीकरण पेश करता है, और इस तरह उसमें इसे समझने या इसका खण्डन करने की जो प्रतिक्रियाएं पैदा होती हैं, उन्हें ध्यान से देखता है। यह हालत देखकर रोगी के नासमझ रिश्तेदार अपना अविश्वास प्रकट किए बिना नहीं रह सकते, 'सिर्फ बातचीत से भी कहीं बीमारी का इलाज हो सकता है?' ये लोग कोई वैसी 'हरकत' देखकर ही प्रभावित होते हैं जैसी सिनेमा में दिखाई जाती है। इनका सोचने का तरीका निस्संदेह तर्कहीन और असंगत होता है, क्योंकि ये वही लोग हैं जो सदा यह विश्वास रखते हैं कि स्नायुरोगियों की तकलीफें 'उनकी अपनी कल्पना में ही होती हैं।' शुरू में शब्द और जादू एक ही चीज थे, और आज भी शब्दों में कुछ जादुई शक्ति कायम है। शब्दों द्वारा एक आदमी दूसरे को अधिक से अधिक सुख भी पहुंचा सकता है और उसे घनी से घनी निराशा में भी डाल सकता है; शब्दों द्वारा ही अध्यापक अपना ज्ञान छात्रों को देता है, शब्दों द्वारा ही कुशल वक्ता अपने श्रोताओं को हंसाता और रुलाता है और उनसे अपना मनचाहा फैसला करा लेता है। शब्द भावों को जगाते हैं और इनके द्वारा मनुष्य सब देशों और कालों में, दूसरे मनुष्यों पर अपना प्रभाव डालता है। इसलिए यदि मानसिक चिकित्सा में सिर्फ शब्दों का प्रयोग होता है तो हमें इसी कारण इसे हल्की नजर से नहीं देखना चाहिए, और चिकित्सक तथा रोगी के बीच होनेवाली बातचीत को पर्दे की ओट से सुनकर ही संतोष करना चाहिए।

---

१. Psychiatry

एक आदमी के लिए चल सकता है, छात्रों की पूरी कक्षा के लिए नहीं।

पर, मनोविश्लेषण के सम्बन्ध में आपको जो दूसरी कठिनाई होगी, उ लिए आप स्वयं ज़िम्मेदार हैं, विशेषतः वहां तक जहां तक आप अपनी डाक्ट की पढ़ाई से प्रभावित हैं। आपकी शिक्षा ने आपके मन का वह ढांचा बना दि होगा जो *मनोविश्लेषण के ढांचे से बहुत भिन्न होता है।* आपको सिखाया गया है कि जीवपिंड[1] के कार्यों[2] और विक्षोभों[3] की शारीरीय[4] आधार पर स्थापना करो, रसायन[5] और भौतिकी[6] के शब्दों में उनकी व्याख्या करो और उन्हें जैविकीय[7] दृष्टि से मानो, पर जीवन के मानसिक पहलुओं में आपकी दिलचस्पी कभी नहीं जगाई गई—यद्यपि अद्भुत जटिलताओं वाले जीवपिंड के परिवर्धन[8] की अन्तिम परिणति उसीमें होती है। इस कारण, मन के मनोवैज्ञानिक ढांचे से आप अभी अपरिचित हैं। इसे सदेह की नज़र से देखने और अवैज्ञानिक मानने और इसे *आम जनता,* कवियों, तान्त्रिकों और दार्शनिकों के लिए छोड़ देने की आपको आदत पड़ी हुई है। आपका इस तरह सीमा में बंध जाना आपकी डाक्टरी दक्षता को हानि पहुंचाने-वाला है, कारण यह है कि जैसे अधिकतर मानवीय सम्बन्धों में होता है वैसे ही रोगी में भी उसका मानसिक पहलू सबसे पहले हमारी निगाह में आता है, और मुझे डर है कि आपको इसकी यह सज़ा मिलेगी कि आप जितना इलाज करने का लक्ष्य रखते हैं, उसका कुछ हिस्सा आपको नीमहकीमों, तान्त्रिकों और जादू-टोने वालों के लिए छोड़ना पड़ेगा, जिन्हें आप नीची नज़र से देखते हैं।

मैं मानता हूं कि आपको पहले की शिक्षा में यह कमी कुछ उचित कारणों से है। ऐसा कोई सहायक दार्शनिक विज्ञान नहीं है जो आपके पेशे में आपको लाभ पहुंचा सके। विचारात्मक दर्शन[9] या वर्णनात्मक मनोविज्ञान[10] या तथाकथित प्रायोगिक मनोविज्ञान[11] (जो ज्ञानेन्द्रियों की कार्यिकी[12] के सिलसिले में पढ़ाया जाता है), जिस रूप में स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं, उस रूप में वे मन और शरीर के बीच के सम्बन्धों के बारे में कोई उपयोगी बात नहीं बता सकते, या मानसिक कार्यों में होनेवाली गड़बड़ को समझने की राह नहीं दिखा सकते। यह सच है कि चिकित्साशास्त्र की मनश्चिकित्सा शाखा पहचानने योग्य मानसिक विक्षोभों[13] के विभिन्न रूपों का कुछ वर्णन करती है, और इलाज की दृष्टि से उनके कुछ लक्षण-समूह बनाती है, पर असल में कुछ मनश्चिकित्सकों को भी यह

---

[1] Organism [2] Functions [3] Disturbances [4] Anatomical [5] Chemistry [6] Physics [7] Biological [8] Development [9] Speculative philosophy [10] Descriptive psychology [11] Experimental psychology [12] Physiology [13] Mental disturbances

सन्देह है कि उनके बिलकुल वर्णनात्मक समूहों को विज्ञान कहना चाहिए या नहीं। जिन लक्षणों से ये रोगचित्र बनते हैं, उनके प्रारम्भ, कार्य की रीति, और आपसी सम्बन्ध का कुछ पता नहीं चला है। या तो मस्तिष्क में होनेवाले प्रदर्शन-योग्य परिवर्तनों से उनका सम्बन्ध जोड़ा ही नहीं जा सकता अथवा यदि जोड़ा भी जा सकता है तो सिर्फ ऐसे परिवर्तनों से, जो किसी भी तरह उनकी व्याख्या नहीं करते। इन मानसिक विक्षोभों पर इलाज का असर तभी होता है जब यह पता चल जाए कि वे किस शारीरिक रोग के कारण हुए हैं।

मनोविश्लेषण इसी कमी को दूर करने की कोशिश कर रहा है। यह मनश्चिकित्सा को वह मनोवैज्ञानिक आधार देने की आशा रखता है, वह सामान्य आधार खोजना चाहता है, जिसपर शारीरिक और मानसिक रोग का आपसी सम्बन्ध समझ में आ सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसे सब तरह के बाहरी, पहले से बने हुए विचारों को—चाहे वे शरीर-सम्बन्धी हों, और चाहे रसायन-सम्बन्धी या कायिकी-सम्बन्धी हों—दूर रखना होगा, और शुद्ध रूप में मनोवैज्ञानिक ढंग के विचारों से वास्ता रखना होगा और इसी कारण मुझे यह डर है कि शुरू में यह आपको अजीब लगेगा।

अगली कठिनाई के लिए मैं आपको, आपकी शिक्षा को, या आपके मानसिक ढंग को दोषी नहीं बताऊंगा। मनोविश्लेषण के दो सिद्धान्त ऐसे हैं जो सारी दुनिया को नाराज़ करते हैं, एक तो बौद्धिक पूर्वग्रहों[१] अर्थात् बने हुए सस्कारों को चोट पहुंचाता है और दूसरा नैतिक तथा सौन्दर्य-सम्बन्धी सस्कारों या पूर्वग्रहों को। इन पूर्वग्रहों को मामूली चीज़ नहीं समझना चाहिए। ये बड़ी ज़बर्दस्त चीज़ें हैं और मनुष्य के विकास की मंज़िलों के कीमती और आवश्यक अवशेष हैं। उन्हें भावनाओं के बल से कायम रखा जाता है और उनसे बड़ा कड़ा मुकाबला है।

मनोविश्लेषण की इन बुरी लगनेवाली बातों में से पहली यह है कि मानसिक प्रक्रम असल में अचेतन[२] (अर्थात् अज्ञात) होते हैं, और जो चेतन (अर्थात् ज्ञात) होते हैं, वे कोई इक्के-दुक्के काम होते हैं, और वे भी पूर्ण मानसिक सत्ता के हिस्से होते हैं। अब आप ज़रा यह याद कीजिए कि हमें इससे बिलकुल उल्टी, अर्थात् मानसिक और चेतन को एक समझने की, आदत पड़ी हुई है। चेतना—हमें मानसिक जीवन को सूचित करनेवाली विशेषता मालूम होती है और हम मनोविज्ञान को चेतना-सम्बन्धी अध्ययन ही समझते हैं। यह बात इतनी साफ और सीधी लगती है कि इसका खण्डन बिलकुल बकवास मालूम होता है, पर फिर भी मनोविश्लेषण को तो इसका खण्डन करना ही होगा और चेतन तथा मानसिक को एक मानने का विरोध करना ही पड़ेगा। मनोविश्लेषण के अनुसार मन की परिभाषा यह है कि इसमें अनुभूति, विचार और इच्छा के प्रक्रम होते हैं और

१. Prejudice २. Unconscious

गलतियों का मनोविज्ञान

हम अब सिद्धान्तो के बजाय एक जाच-पडताल से अपनी बातचीत शुरू करेंगे।
इसके लिए हम कुछ ऐसी घटनाएं देंगे जो बहुत होती हैं, जिन्हें हम रोज़ देखते हैं, औ
नज़रदाज़ कर देते हैं, और जो किसी बीमारी के कारण नहीं होतीं, क्योंकि ह
स्वस्थ आदमी में वे दिखाई देती हैं। मेरा मतलब उन गलतियो से है, जो
आदमी करता है, जैसे, आदमी कुछ कहना चाहता है, पर गलत शब्द बोल ज
है; या इसी तरह की भूल लिखने में कर जाता है, और उसपर उसका ध
नही जाता, या कोई आदमी किसी छपी या लिखी हुई चीज़ को गलत पढ
है, या आदमी से जो कुछ कहा गया है उसे वह गलत सुन लेता है, हालांकि
श्रवण-इन्द्रिय में कोई रोग नही है। इसी तरह की दूसरी घटनाएं वे हैं
आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए भूल जाता है, पर सदा के लिए
जैसे उदाहरण के लिए, कोई आदमी कोई नाम बहुत अच्छी तरह जानत
उसे सोचने पर वह याद नही आता, हालांकि चीज़ देखकर वह उसे तुरन्त
लेता है, या कोई आदमी कोई काम करना चाहता है, पर भूल जाता है
बाद में उसे वह याद आ जाता है, और इसलिए वह उसे कुछ ही समय
भूला था। तीसरी तरह की घटनाएं वे हैं, जिनमें उतने थोड़े समय की
होती, जैसे कोई चीज़ कही रख बैठना और फिर उसे ढूंढ न स
भुलक्कडपन आम भुलक्कडपन से कुछ दूसरी तरह का होना है।
कारण समझने के बजाय, आदमी इसपर चकित या परेशान होना है।
सम्बन्ध रखनेवाली कुछ भूलें होती हैं, जिनमें फिर वही थोडे सम
की बात दिखाई देती है, जैसे, एक आदमी किसी बात को कुछ स
सच मानता है, पर उसके पहले और उसके पीछे वह इसे झूठ सम
इसी तरह की कई बातें दिखाई देती हैं जिनके हमने अलग-अ
रखे हैं।

जर्मन भाषा में इस तरह की सब घटनाओ में मौजूद कुछ
'Ver' उपसर्ग का प्रयोग करके सूचित किया जाता है। यह ऊपर

वाचक सब शब्दों में लगाया जाता है।[1] ये सब शब्द प्राय महत्त्वहीन क्रिया
के वाचक हैं। ये क्रियाएं आम तौर पर बहुत थोड़ी देर रहनेवाली होती हैं औ
जिन्दगी में उनका खास महत्त्व नहीं होता। ऐसा बहुत कम होता है कि इस त
की घटना का व्यवहार में कोई महत्त्व हो, जैसे, कोई चीज खो जाने पर; इ
कारण ऐसी घटनाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता, और उनके विषय में क
विशेष भावना नहीं पैदा होती।

अब मैं आपसे इन घटनाओं पर गौर करने के लिए कहना चाहता हूं।
आप बड़े परेशान होंगे, और यह एतराज उठाएंगे, 'इस लम्बी-चौड़ी दुनिया
और आत्मा के छोटे-से दायरे में इतनी सारी और इतनी बड़ी-बड़ी पहेलियां प
हुई हैं, मन के रोगों के क्षेत्र में इतनी सारी गुत्थियां मौजूद हैं, जिन्हें हल कर
और सुलझाना है, ऐसी स्थिति में इन छोटी-छोटी बातों पर अपनी मेहनत ब
करना सचमुच बेकार मालूम होता है। अगर आप हमें यह समझा सकते
किस तरह ठीक आंख और कान वाला कोई आदमी दिन में सबके सामने ऐ
चीजें देख और सुन सकता है जो कहीं भी नहीं हैं, या कोई आदमी किस तरह एक
एक यह मान सकता है कि उसके इष्टमित्र उसे सता रहे हैं, या बच्चे को भी बेहूदा लग
वाले भ्रम को कोई आदमी किस तरह की बड़ी-बड़ी अक्लमन्दी की दलीलें देकर र
ठहरा सकता है तब तो हम मनोविश्लेषण को सचमुच कोई चीज मानने को तैयार
सकते थे परन्तु यदि मनोविश्लेषण इस तरह की छोटी-मोटी बातों से, कि कोई आ
क्यों गलत शब्द का प्रयोग करता है या कोई गृहलक्ष्मी क्यों अपनी चाबियां रख
भूल गई है, ज्यादा दिलचस्प कोई बात नहीं पेश कर सकता, तो हम अपने स
और अपनी दिलचस्पी का कोई और अधिक अच्छा उपयोग तलाश कर लेंगे

मेरा जवाब यह है जरा धीरज रखें। आपकी आलोचना सही रास्ते पर
चल रही। यह सच है कि मनोविश्लेषण यह शेखी नहीं मारता कि इसने व
छोटी बातों पर विचार नहीं किया। इसके विपरीत, इसकी जांच-परख की
आम तौर से वे हर जगह होनेवाली मामूली घटनाएं ही होती हैं, जिन्हें
विज्ञानों ने निरर्थक, या यों कहें कि इस घटनामय संसार का कूड़ा समझकर
फेंक दिया है, पर आप जो आलोचना कर रहे हैं, उसमें समस्या के महत्त्व को
उस समस्या के दिखाई देनेवाले रूप को गड़बड़ा तो नहीं रहे? क्या यह नहं
सकता कि किसी समय और कुछ अवस्थाओं में बड़ी महत्त्व की बातें बहुत
संकेतों द्वारा अपनी झांकी दे जाती हों? मैं इसके बहुत-से उदाहरण आसानी
सकता हूं। उदाहरण के लिए, किसी तरुणी के हृदय का समर्पण आप नौजवानं

---

१. हिंदी में 'अप' उपसर्ग इस अर्थ का वाचक होता है। उदाहरण के लिए अपशब्द,

कार्य की ओर काफी ध्यान नहीं दिया गया। उस अवस्था में यह बहुत आसान है कि काम गडबड हो जाए और बिलकुल ठीक तरह पूरा न किया जा सके मामूली बीमारी या स्नायु-संस्थान के केन्द्रीय अंग में रक्त के संचरण में परिवर्तन का भी यही नतीजा हो सकता है, और इस तरह इन अवस्थाओं में असली बात अर्थात् ध्यान, पर वैसा ही असर पड़ेगा। हर सूरत में, यह शारीरिक या मानसिक कारणों से ध्यान गडबड होने के परिणामों का ही सवाल रहेगा।

पर इस सबमें मनोविश्लेषण-संबंधी जांच के लिए कोई दिलचस्पी की बात दिखाई नहीं देती। हमारा मन होगा कि इस विषय को छोड़कर आगे चलें। सही बात तो यह है कि तथ्यों की ओर बारीकी से जांच करने पर यह पता चलता है कि वे सबके सब इस तरह की गलतियों के 'ध्यान' वाले सिद्धान्त से मेल नहीं खाते, या कम से कम हर चीज इससे सीधे-सीधे नहीं निकाली जा सकती। हम देखते हैं कि ऐसी गलतियां और भुलक्कड़पन तब भी होते हैं, जब लोग थके हुए या उत्तेजित नहीं होते, बल्कि हर तरह से अपनी सामान्य अवस्था में होते हैं— यह बात और है कि इन गलतियों के कारण ही हम बाद में यह कहने लगें कि वे उत्तेजित अवस्था में थे, जबकि वे स्वयं यह बात मंजूर नहीं करते। और न यह मामला इतना सीधा हो सकता है कि यदि ध्यान खूब केन्द्रित हो तो कार्य सफलता-पूर्वक हो जाएगा या ध्यान कम हो तो उसके बिगड़ने का डर रहेगा। कारण यह कि बहुत सारी क्रियाएं बिलकुल स्वतःचालित मशीन की तरह बहुत थोड़े ध्यान से की जाती हैं, पर फिर भी वे ठीक हो जाती हैं। चलते हुए आदमी को शायद यह पता भी न हो कि वह कहां जा रहा है, पर वह सही रास्ते पर जाएगा और बिना भटके अपनी मंजिल पर पहुंचकर ठहर जाएगा। कम से कम आम तौर से तो यही होता है। अभ्यस्त पियानो बजानेवाला बिना सोचे ठीक स्वरों पर हाथ रखता है। हो सकता है कि वह कभी कोई भूल भी कर जाए, पर यदि आपसे-आप, अर्थात् स्वतः-चालित, वादन से गलतियों का खतरा बढ़ जाता है, तो अभ्यस्त वादक की, जिसकी उंगलियां निरंतर अभ्यास से बिलकुल स्वतःचालित की भांति चलती हैं सबसे अधिक गलतियां होनी चाहिए, पर इसके विपरीत, हम देखते हैं कि बहुत-से कार्य तब बहुत सफलतापूर्वक हो जाते हैं जब उनपर ध्यान खास केन्द्रित नहीं किया जाता और गलतियां ठीक उस समय हो जाती हैं जब आदमी सही काम करने के लिए बहुत उत्सुक होता है, अर्थात् जब आवश्यक ध्यान के लिए कोई भी बाधा नहीं होती ... 'उत्सुकता' का प्रभाव है, पर यह बात समझ ... तब यह कहा जा सकता है कि ... ध्यान को उस तरफ पर केन्द्रित क्यों नहीं कर देती ... [illegible]

गलतियों के सिलसिले में और भी बहुत-सी छोटी-छोटी बातें हैं, जिन्हें
समझ पाए, और जो इन स्पष्टीकरणों से अधिक सुबोध नहीं हो जाती।
के लिए, जब कोई आदमी कोई नाम थोड़ी देर के लिए भूल जाता है,
परेशान होता है, उसे याद करने का पक्का इरादा करता है और इस
से बाज नहीं आ सकता। क्या कारण है कि इस तरह परेशान होने के
वह आदमी उस शब्द पर, जिसके बारे में वह कहता है कि यह मेरी जबान
हुआ है, और जिसे सामने आने पर वह तुरंत पहचान लेता है, अपना
जाने में प्रायः सफल नहीं होता। या एक और उदाहरण लिया जाए;
स्थाएं भी होती हैं जिनमें गलतियों की संख्या बढ़ती जाती है। वे एक-
जुड़ जाती हैं या एक-दूसरे की स्थानापन्न[1] बन जाती हैं। पहली बार
अपने किसी नियत कार्य को भूल जाता है; अगली बार वह इसे न भूलने का
संकल्प कर लेता है, परन्तु वह देखता है कि इस बार वह दिन या समय के बारे
कर गया। या मनुष्य किसी भूले हुए शब्द को याद करने की तरह-तरह
तश करता है और इस तरह करते हुए एक ऐसा नाम भूल जाता है जिससे
री कड़ी के उससे पहले वाले नाम को याद कर पाता। यदि तब वह दूसरे
ो पकड़कर चलता है तो तीसरे को भूल जाता है और इसी तरह आगे होता
है। इस बात की बड़ी बदनामी है कि गलत छपाई, जो असल में कम्पोजीटर
ती है, बार-बार उसी रूप में होती जाती है। कहते हैं कि इस तरह की
'डियल गलती एक सोशल डिमोक्रेटिक अखबार में निकल गई थी, जिसमें
त्सव का समाचार देते हुए ये शब्द छप गए थे, "उपस्थित व्यक्तियों में हिज़
क्लाउन प्रिंस भी थे।"[2] अगले दिन भूल-सुधार की कोशिश की गई।
र ने माफी मांगी और लिखा, "यह वाक्य इस तरह होना चाहिए था 'दी
स'।"[3] इसी तरह, एक युद्ध-संवाददाता ने एक प्रसिद्ध सेनापति से, जिसकी
काफी प्रसिद्ध थीं, मिलने के बाद जो वर्णन लिखा उसमें सेनापति का
'यह बैटल-स्केअर्ड वैटरन' (अर्थात् युद्धभीत योद्धा) छपा। अगले दिन
-प्रार्थना में ये शब्द लिखे हुए थे, 'ये शब्द इस तरह होने चाहिए
' वैटरन'। यहां स्कार्ड = Scarred शब्द तो ठीक कर दिया गया
—Battle के स्थान पर बौटल = Bottle छप गया जिसका यहां कुछ

bstitute २. अंग्रेजी Clown = क्लाउन = विदूषक; असली शब्द
था; इसमें 'r' अक्षर के स्थान पर 'l' अक्षर कम्पोज हो गया
The Crow Prince, जिसमें Crown शब्द का 'n' छूट गया है
'Crow' का अर्थ कौआ होता है—अनुवादक

मे पहले वाले पदों, 'मेम्बर फार सेण्ट्रल' की 'ए' ध्वनि की निरर्थकावृत्ति हो गई है और दूसरे मे, मैन की 'म' ध्वनि की निरर्थकावृत्ति होकर 'मोटिफाइड' बन गया है। ये तीन तरह की गलतिया बहुत आम नहीं हैं। वे गलतिया अधिक होती हैं जिनमें शब्द-मिश्रण या शब्दो के सिकुड़कर एक बन जाने की घटना होती है, उदाहरण के लिए एक नौजवान एक महिला से कहता है कि क्या मैं रास्ते मे आपको बेग्लीट-डाइजेन (begleit-digen--जर्मन भाषा मे) = इन्सोर्ट (अंग्रेजी मे) कर सकता हू। यह मिश्रित रूप बेग्लीटेन (begleiten) = हिफाज़त से पहुचाना और बेलीडाइजेन (beleidigen) = अपमान करना, का मिश्रण है। (अंग्रेजी मे बेग्लीटेन = एस्कोर्ट तथा बेलीडाइजेन = इन्सल्ट, और दोनो का मिश्रण = इन्सोर्ट)। (और प्रसगवश, किसी महिला से इस तरह की बात कहने पर नौजवान को विशेष सफलता होने की आशा तो नही है)। स्थानापन्नता का उदाहरण यह है कि जब कोई दीन औरत कहती है कि 'मुझे असाध्य इन्फर्नल (अंग्रेजी नारकीय, वह कहना चाहती थी इण्टर्नल = भीतरी या गुप्त) रोग है', या जब श्रीमती मैलाप्राप कहती है, 'स्त्रियो के इनेफेक्च्युअल (निष्फल, कहना चाहती थी इण्टेलेक्च्युअल = बौद्धिक) गुणो का मूल्य आंकना बहुत थोडे लोगो को आता है।'

इन दोनो लेखको ने अपने उदाहरण-सग्रह के आधार के रूप मे जो व्याख्या पेश की है, वह विशेष रूप से अपर्याप्त है। उनका कहना है कि शब्द की ध्वनियो और अक्षरों[1] का अलग-अलग मान[2] होता है, और कि अधिक मान वाली ध्वनियों का स्नायु-दीपन[3] कम मान वाली ध्वनियो का बाधक बन सकता है। स्पष्ट है कि उनके निष्कर्ष का आधार पूर्वोच्चारण और निरर्थकावृत्ति के उदाहरण हैं, जो बहुत कम होते हैं। यदि यह मान भी लें कि ध्वनियो के मान अलग-अलग होते हैं, तो भी बोलने की गलतियो के और रूपों मे इस तरह ध्वनियो के अधिक मान वाली होने का प्रश्न पैदा ही नही होता, सबसे अधिक होने वाली गलती वह है जिसमे मनुष्य किसी शब्द के स्थान पर उससे मिलता-जुलता दूसरा शब्द बोल जाता है, और दोनो के सादृश्य को इस गलती का काफी कारण मान लिया जाता है। उदाहरण के लिये कोई प्रोफेसर अपने आरभिक व्याख्यान मे कह सकता है, 'मैं अपने पूर्ववर्ती प्रोफेसर के गुणो का मूल्यांकन करने के लिए इच्छुक (geneigt) (उसे कहना था, योग्य = geeignet) नही हूं।' कोई दूसरा प्रोफेसर कहता है, 'स्त्री की जननेन्द्रिय के बारे में, प्रलोभनजनक (Versuchungen)···मेरा मतलब है, आयासजनित Versuche......

परन्तु सबसे अधिक होनेवाली और सबसे अधिक नजर आनेवाली बोलने की गलती वह है जिसमें आदमी जो कुछ कहना चाहता है, ठीक उससे उल्टी बात कह

जाता है। इन उदाहरणों पर ध्वनियों के संबंधों या साहश्य के कारण होनेवाली गड़बड़ी का कोई प्रभाव नहीं होता, और इसलिए और कोई कारण दिखाई न देने पर आदमी का ध्यान इस बात पर जाता है कि विरोधी अर्थों में परस्पर प्रबल अवधारणीय[1] संबंध होता है, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका निकट संबंध होता है। इस तरह के बहुत-से प्रसिद्ध प्रसंग हैं। उदाहरण के लिए, हमारी पार्लियामेंट के अध्यक्ष ने एक बार अधिवेशन का उद्‌घाटन इन शब्दों में किया, 'सज्जनो, मैं घोषणा करता हूं कि कोरम पूरा है और अब मैं अधिवेशन को बंद घोषित करता हूं।'

और कोई साझा संबंध भी इसी तरह कार्य कर रहा हो सकता है, जैसे एक-दूसरे की विरोधी बातों का संबंध। इसीलिए इस तरह की एक घटना है कि एच० हेल्म होल्ट्ज़ की एक संतान का प्रसिद्ध आविष्कारक और उद्योगपति डब्ल्यू० सीमन्स की किसी संतान से विवाह हो रहा था। उत्सव के बाद प्रसिद्ध कायिकी-वेत्ता डुबोयरेमंड से भाषण करने के लिए कहा गया। उन्होंने निस्सन्देह बड़ा शानदार भाषण दिया, पर अंत में मंगलकामना इन शब्दों में की, 'यह नई साझेदारी, सीमन्स और हाल्स्के सफल हो!' हाल्स्के असल में पुरानी फर्म का नाम था। बर्लिन में रहनेवाले के मन में इन दोनों नामों का साहचर्य उसी तरह जमा हुआ होगा जैसे लन्दन निवासी के मन में 'क्रास एंड ब्लैकवेल' का।

इस प्रकार, शब्दों में ध्वनि-मानों और साहश्यों के साथ-साथ शब्द-साहचर्यों[2] का भी विचार करना होगा। परंतु इतना भी काफी नहीं है। एक तरह के उदाहरण में गलती की पर्याप्त व्याख्या पर पहुंच सकने से पहले हमें किसी ऐसे वाक्यांश या पदावली पर अवश्य विचार करना चाहिए जो पहले कही गई है, या शायद सिर्फ सोची गई है। यह फिर निरर्थकावृत्ति हुई, जैसाकि मेरिंगर का कहना है, पर इसका जनक कारण अधिक दूर है—मैं मानता हूं कि मुझे यही मालूम हो रहा है कि हम बोलने की गलतियों का कारण समझने से अब भी पहले जितने ही दूर हैं।

पर मुझे आशा है कि मेरा यह विचार गलत नहीं है कि ऊपर के उदाहरणों की जांच करते हुए हमारे मन में एक चित्र बन गया है जो शायद आगे हमारे लिए उपयोगी होगा। अब तक हमने बोलने की गलतियां होने की सामान्य दशाओं पर, और गलती में दिखाई देनेवाली विकृति के कारणभूत प्रभावों पर ही विचार किया है, पर अब तक हमने गलती के परिणाम पर जरा भी विचार नहीं किया, जो अपने-आपमें दिलचस्पी का विषय है; यह प्रश्न अलग है कि उसके पैदा होने का कारण क्या है। यदि हम इसपर विचार करें तो अन्त में हमें साहस से कहना

१. Conceptual connection २. Word-association

"'बतला सकती थी मैं तुमको
कैसे सही चुनो यह डिबिया, किन्तु शपथ है मेरे ऊपर
मत नहीं वह सकती कुछ, इसका बुरा न मानो ;
बुरा मान कर पाप कराओगे तुम मुझसे
क्योंकि शपथ है मेरे ऊपर ; जालिम नयन तुम्हारे !
मुझे देखकर बांट चुके हैं दो टुकड़ों में,
मेरा आधा हुआ तुम्हारा, आधा शेष तुम्हारा—
मेरा-मेरा, कहना था ; पर यदि मेरा, तो भी रहा तुम्हारा,
यों सारा हुआ तुम्हारा ।

सिर्फ वह बात, जो वह उसे गूढ़ इशारे से बताना चाहती थी, क्योंकि असल में उसे यह बात सर्वथा उससे छिपानी चाहिए थी, यानी कि 'लाटरी से पहले भी मैं तुम्हारी थी और तुमसे प्यार करती थी', यह कवि ने मनोवैज्ञानिक अनुभूति की अत्यधिक सुन्दरता के साथ, उसकी गलती में, उसके मुह से कहलवा दी है, और इस कलापूर्ण युक्ति द्वारा उसने प्रेमी की असह्य अनिश्चितता को भी दूर कर दिया है, और चुनाव के प्रश्न के बारे में दर्शकों के अनिश्चय को भी शात कर दिया है।

और देखिए अत में, पोर्शिया गलती से कही गई दोनो बातों का किस तरह मेल बिठाती है, कैसे वह उनके विरोध का परिहार करती है, और अन्त में उस गलती को उचित भी सिद्ध करती है :

"'पर यदि मेरा, तो भी रहा तुम्हारा,
यों सारा हुआ तुम्हारा ।

ऐसा हुआ है कि डाक्टरी के क्षेत्र से बाहर के दूसरे विचारकों ने अपने कथन द्वारा किसी गलती का अर्थ प्रकट किया है, और इस दिशा में हमने जो कार्य किया, उसको उन्होंने हमसे पहले किया है। परिहास-व्यग्य-लेखक लिस्टनबर्ग (१७४२–१७६६) को आप सब जानते हैं, जिसके बारे में गेटे ने कहा था, 'जहा वह मजाक करता है, वहा कोई समस्या छिपी पड़ी होती है ।' और कभी-कभी उस समस्या का हल उस मजाक में ही दिखाया होता है । लिस्टनबर्ग ने अपने परिहास तथा व्यग्य से पूर्ण नोट्स में लिखा है, 'वह 'एगेनोम्मेन' [क्रिया, जिसका अर्थ है (गलती से) सिद्ध या स्वीकृत मान लेना] के स्थान पर सदा 'एगामेम्नोन' पढ़ा करता था, होमर का वह इतना महान पडित था ।' इसमें पढ़ने में होने [illegible] सारा सिद्धात आ जाता है ।

[illegible]न में हम देखेंगे कि कवियों का मनोवैज्ञानिक गलतियों के अर्थ [illegible] है, उससे हम सहमत हो सकते हैं या नहीं ।

गलतियों का मनोविज्ञान

पिछले व्याख्यान में हमने गलती पर विचार किया था, और यह सवाल छोड़ दिया था कि इसने जिस अभिप्रेत, अर्थात् मन के भीतर मौजूद, कार्य में बाधा पहुंचाई है, उससे इसका क्या सम्बन्ध है, और हमने देखा था कि कुछ उदाहरणों में इसका अपना अलग अर्थ भी अपना नजर आता था। हमने अपने-आपमें कहा था कि यदि बड़े पैमाने पर यह सिद्ध किया जा सके कि गलती का अपना अर्थ होता है तो वह अर्थ हमारे लिए उन अवस्थाओं की जांच से भी बहुत अधिक मनोरंजक सिद्ध होगा, जिनमें गलतियां होती हैं।

आइए, एक बार यह और तय कर लें कि किसी मानसिक प्रक्रम के 'अर्थ' से हम क्या समझते हैं। इसका मतलब है वह आशय या अभिप्राय जिससे वह प्रक्रम किया जाता है और किसी मानसिक अनुक्रम या सिलसिले में उसका स्थान। जिन उदाहरणों पर हमने विचार किया है, उनमें से अधिकतर में हम 'अर्थ' शब्द के स्थान पर 'आशय' और 'प्रवृत्ति' शब्द रख सकते हैं। तो, हम जो यह मानने लगे थे कि गलती में हमें कोई आशय दिखाई पड़ सकता है, वह क्या ऊपरी धोखा या गलती का व्यर्थ प्रशंसा-मात्र थी?

हम बोलने की गलतियों के उन्हीं उदाहरणों को लेते हैं और इस तरह की बहुत सारी अभिव्यक्तियों पर विचार करते हैं। इस तरह, हम देखते हैं कि ऐसे उदाहरणों के पूरे के पूरे समुदाय बन जाते हैं जिनमें गलती का आशय, यानी अर्थ, आसानी से समझ में आ जाता है; खास तौर से उन उदाहरणों में जिनमें मन की बात से उलटी बात कह दी गई है। अध्यक्ष अपने उद्घाटन भाषण में कहता है, 'मैं अधिवेशन को बन्द घोषित करता हूं।' निश्चित रूप से इसका अर्थ अस्पष्ट नहीं। इस गलती का अर्थ यह है कि वह अधिवेशन को बन्द करना चाहता है। आप आसानी से कह सकते हैं, 'उसने स्वयं ऐसा कहा था', हम तो उसके अपने शब्दों को ही ले रहे हैं। कृपा करके यह एतराज उठाकर मुझे मत टोकिए कि यह तो असम्भव है, कि हमें बिलकुल अच्छी तरह पता है कि वह

ग्रधिवेशन को खोलना चाहता था, न कि बन्द करना, और कि वह स्वय, ि
हमने अभी अपने आशय का सबसे अच्छा जज स्वीकार किया है, इस बात
बल देगा कि वह इसे खोलना चाहता था। ऐसा एतराज करते हुए आप यह
जाते हैं कि हमने सिर्फ गलती पर विचार करना तय किया था; जो आशय
पैदा कराता है, उसके और गलती के संबंध पर आगे विचार किया जाएग
आपपर तर्कदोष का आक्षेप आता है क्योंकि आप साध्य को पहले ही सिद्ध म
कर सारे विचारणीय प्रश्न को आराम से खतम कर देना चाहते हैं।

दूसरे उदाहरणो में, जिनमें गलती का रूप आशय से ठीक उल्टा नही
विरोधी अर्थ आम तौर से प्रकट हो जाता है। 'मैं अपने पूर्ववर्ती के गुणो
सराहना करने को इच्छुक (Geneigt) नहीं हू।' 'इच्छुक' 'की स्थिति
(Geeignet) का उलटा नही है, बल्कि यह उस विचार की खुली स्वीकृि
जो वक्ता के उस स्थिति की शोभा कायम रखने के कर्तव्य से बिल्कुल उल्टा

कुछ और उदाहरणो में गलती से आशय के साथ सिर्फ एक दूसरा अर्थ
जुड़ जाता है। तब वाक्य सक्षिप्त रूप, या कई वाक्यों का एक वाक्य में
हुआ वाक्य मालूम होता है। इस प्रकार उस पक्के इरादे वाली महिला का वा
ऐसा ही था, जिसने कहा था, 'वह जो मैं चाहू वह खा-पी सकता है।' अ
में मानो उसने कहा था, 'वह जो कुछ चाहे खा-पी सकता है, पर उसके चा
का क्या महत्व है; मेरा चाहना ही उसका चाहना है।' बोलने की गलती
प्राय. यह असर पड़ता है कि संक्षेप हो गया है, उदाहरण के लिए जब शारी
शास्त्र का एक अध्यापक नासिका-विवरों[1] पर व्याख्यान देने के बाद अपनी क
से यह पूछता है कि क्या आपने विषय को अच्छी तरह समझ लिया, तब स
सामान्य रूप से 'हां' कहने पर वह कहता है, 'मुझे इस बात पर विश्वास
होता क्योंकि नासिका-विवरों को पूरी तरह समझ सकनेवाले लोग करोड़
शहर में भी एक उंगली पर गिने जा सकते हैं · · 'मेरा मतलब है, एक
की उगलियों पर' ·।' संक्षिप्त वाक्य का अपना ही अर्थ है, इसका अर्थ य
कि इस विषय को समझनेवाला सिर्फ एक व्यक्ति है।

इस तरह की गलतियो के मुकाबले में, जिनमें गलतियो का अर्थ बिल
साफ हो जाता है, दूसरी ओर कुछ ऐसी गलतिया हैं, जिनमें गलती से कुछ
समझ में नहीं आता, और इसलिए वे हमारी आशाओं के बिलकुल विपरीत मा
होती हैं। व्यक्तिवाचक नामों का भूल से गलत उच्चारण, या अर्थहीन ध्व
का बोल जाना इस तरह की एक ऐसी आम घटना है, जो अकेली ही इस प्रश्न
उत्तर प्रतीत होती है कि सब गलतियों का कोई अर्थ होता है या नहीं। पर

1 Nasal Cavities

उत्तेजना, ध्यान न होना, और मनोविक्षेप या ध्यानबटाई का कितना प्रभाव होता
है ? इसके अलावा, यह भी स्पष्ट दिखाई देता है कि गलती में जो दो मुकाबले के
अर्थ होते हैं, उनमें से एक तो सदा स्पष्ट दिखाई देता है, परन्तु दूसरा सदा स्पष्ट
नहीं दिखाई देता, तब दूसरा अर्थ कैसे निकाला जाए ? और यदि आप यह
समझते हैं कि उसका आपने अंदाजा लगाया है तो इसका क्या प्रमाण है कि यही
सच्चा अर्थ है, और यह एक संभावना-मात्र नहीं है ? क्या आप कोई और बात
भी पूछना चाहते हैं ? यदि नहीं, तो मैं ही आगे बोलना जारी रखता हूं। मैं
आपको यह याद दिलाऊंगा कि असल में हमें गलतियों से अधिक वास्ता नहीं है;
हम तो उनका अध्ययन करके मनोविश्लेषण की दृष्टि से कोई काम की चीज़
सीखना चाहते थे। इसलिए मैं यह प्रश्न पेश करूंगा इस तरह हमारे आशयों
को रोकनेवाले या बाधा देनेवाले प्रयोजन या प्रवृत्तियां कौन-कौन-सी हैं, और
बाधाकारक प्रवृत्ति तथा दूसरी प्रवृत्ति में क्या संबंध है ? इस प्रकार ज्योंही हमने
इस पहेली को हल किया, त्योंही हमारी कोशिशें फिर प्रारम्भ हो गई।
अच्छा, तो यह प्रश्न था कि क्या इससे बोलने की सब तरह की गलतियों की
व्याख्या हो जाती है ? मेरा बहुत कुछ झुकाव ऐसी ही बात मानने की ओर है, और
इसका कारण यह है कि जब कभी हम इस तरह के किसी उदाहरण पर विचार
करते हैं, तब इसी तरह का समाधान प्राप्त होता है। तब भी यह सिद्ध नहीं किया
जा सकता कि इस तंत्र के कारण के बिना बोलने की गलती नहीं हो सकती है। बात
ठीक हो सकती है। सिद्धांततः अपने प्रयोजन के लिए हमें इस बात से कुछ विशेष
दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि यदि बोलने की कुल गलतियों में से कुछ थोड़ी-सी
गलतियों की भी व्याख्या इस तरह हो जाती है, तो मनोविश्लेषण के आरंभिक
परिचय की दृष्टि से, हम जो निष्कर्ष निकालना चाहते हैं, उनकी मान्यता बनी
रहती है, परन्तु यहां थोड़ी-सी गलतियों वाली बात नहीं है। अगला प्रश्न यह है कि
क्या हम व्याख्या से दूसरी तरह की गलतियों का भी समाधान हो सकता है। उस
उत्तर हम पहले ही 'हां' में दे सकते हैं। जब आप लिखने के या काम गलत रीति
करने के उदाहरणों पर विचार करेंगे, तब आपको स्वयं इसका निश्चय हो जाए
परन्तु मैं टेकनिकल कारणों से इस प्रश्न को तब तक के लिए छोड़ देना चाहता
जब तक हम बोलने की गलती पर और अधिक विस्तार से विचार न कर लें।
इस प्रश्न का, जिसे कुछ लेखकों ने बहुत तूल दिया है, अधिक विस्तार से उत्तर
देने की आवश्यकता है कि रक्त-संचार की गड़बड़ियों, थकावट, उत्तेजना, ध्यान-
बटाई, अन्यमनस्कता आदि का हमारे लिए क्या अर्थ हो सकता है, यदि हम
गलतियों के बारे में ऊपर बताया गया मानसिक तंत्र या कार्यप्रणाली मानते हैं।
ध्यान दीजिए कि हम इन कारकों के होने का निषेध नहीं करते, यदि साधारणतया
यह कहा जा सकता है कि मनोविश्लेषण द्वारा ... किसी भी

बात का खण्डन नहीं करता। सामान्यतया जो कुछ उन्होंने कहा है, उसमें मनो
विश्लेषण कुछ नई बात जोड़ता है, और कभी-कभी सचमुच ऐसा होता है कि जिस
बात की ओर अब तक किसीने ध्यान नहीं दिया था, और जिसे अब मनोविश्लेषण
सामने रखता है, वही उस मामले का सबसे अधिक सारभूत हिस्सा है। मामूली
बीमारी में, रक्त-संचार की गड़बड़ में और थकावट की अवस्था में पैदा होनेवाली
[कार्यि]कीय प्रवृत्तियों का प्रभाव बोलने की गलतियों का एक कारण होता है, यह त
[बि]ना किसी विरोध के हम स्वीकार करते हैं; अपने रोज़ के अनुभव से हमें इसक
बारे का निश्चय हो सकता है; पर इस स्वीकृति से व्याख्या कितनी-सी होती
? सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह कारण गलतियों की आवश्यक शर्त नहीं है
[ब]ोलने की गलती बढ़िया स्वास्थ्य और बिल्कुल सामान्य अवस्थाओं में भी इस
[त]रह हो सकती है, इसलिए ये शारीरिक कारण तो सहायक-मात्र हैं। उनसे बोल
[न]े गलती पैदा करनेवाले इस खास मानसिक तन्त्र को अनुकूलता और सुविधा
[म]ात्र हो जाती है। इस तरह की अवस्था के लिए मैंने एक बार एक दृष्टान्त दिय
[थ]ा, जो मैं यहां भी दोहराऊंगा, क्योंकि मुझे उससे अच्छा दृष्टान्त मालूम नहीं है
[ज़]रा कल्पना कीजिए कि किसी अन्धेरी रात में मैं सड़क पर अकेला जा रहा
और कोई लुटेरा मुझपर हमला करके मेरी घड़ी और रुपया-पैसा छीन ले जात
है। मैं लुटेरे का चेहरा साफ नहीं देख सका, इसलिए मैं इन शब्दों में थाने में ए
लिखाता हूं, 'सुनसान और अन्धेरे ने मुझसे घड़ी और अन्य कीमती वस्तुएं अ
लूट ली हैं।' पुलिस अफसर मुझसे कहेगा, "प्रतीत होता है कि आप तथ्यों
बहुत अधिक यन्त्रवादी दर्शन (मैकेनिस्टिक) के दृष्टिकोण से पेश कर रहे हैं
मान लीजिए कि हम आपकी रपट इस रूप में दर्ज करें कि 'अन्धेरा और सुनस
देखकर कोई अज्ञात लुटेरा मेरी चीजें छीनकर भाग गया है। मुझे ऐसा लग
है कि असली काम यह है कि लुटेरे को तलाश किया जाए, शायद तब हम उस
लूटा हुआ माल वापस ले सकते हैं।'

ज़ाहिर है कि उत्तेजना, असावधानता, मनोविक्षेप या ध्यानबंटाई आदि मन
कायिकीय कारणों से कोई व्याख्या नहीं होती। वे शब्द-मात्र हैं, वे तो पर्दे हैं, अ
हमें उनके पीछे झांकने में संकोच नहीं करना चाहिए। असल में प्रश्न यह है कि य
उत्तेजना या ध्यानबटाई क्यों पैदा हुई। ध्वनि-सादृश्यों का प्रभाव, मिलते-जु
शब्दों का होना और कुछ शब्दों का सामान्य साहचर्यों द्वारा जुड़े होना भी महत्
पूर्ण बातें हैं। उनमें यह सुविधा हो जाती है कि गलती अपने अर्थ की ओर सं
करने लगती है। परन्तु यदि मेरे सामने एक रास्ता है, तो क्या इसका आवश
रूप से यह अर्थ है कि मुझे इसपर ज़रूर जाना होगा? मुझे इसपर जाने के लि
कोई प्रवर्तक या प्रेरक कारण भी, मुझे आगे ठेलनेवाला कोई बल भी, तय कर
होगा। इसलिए ये ध्वनि-सादृश्य और शब्द-साहचर्य बिल्कुल शारीरिक अवस्था

वेगिवी से मागे निरर्थक निकालता है। पर जब किसी मानसिक तथ्य का प्रश्न
माता है, जब यह प्रश्न माता है कि पूछने पर उस मनुष्य के मन में यही विचार
था, अन्य कोई नहीं था, तब आप इसे विश्वसनीय नहीं मानेंगे, और कहेंगे कि
उसके मन में कोई और विचार भी तो हो सकता था। सचाई यह है कि आपके मन
में मानसिक स्वतन्त्रता की भ्रान्ति है, जिसे आप छोड़ना नहीं चाहते। मुझे खेद
से कहना पड़ता है कि इस मामले में मेरा आपके विचारों से तीव्र विरोध है।

अब आप यहां से हटकर एक और बात पर अपने मन में प्रतिरोध करेंगे।
आप कहेंगे, 'हम समझते हैं कि मनोविश्लेषण का विशेष कौशल विश्लेषित
व्यक्ति से अपनी समस्याओं का हल निकलवा सकता है। अब वह उदाहरण लीजिए
जिसमें भोजन के बाद वक्ता अतिथियों से कहता है कि वे अपने अतिथि के स्वास्थ्य
के लिए हिकफ=Hiccough (हिचकी लें)। आप कहते हैं कि इस उदाहरण में
बाधक प्रवृत्ति है उपहास करना, यह सम्मान करने के आशय की विरोधी है,
पर यह आप उस गलती को स्वतन्त्र रूप से देखकर अपनी ओर से उसका अर्थ
ही तो लगा रहे हैं। यदि इस उदाहरण में आप गलती करनेवाले से प्रश्न करें
→ वह आपके इस विचार की पुष्टि नहीं करेगा कि उसका आशय उपहास य
ान करना था। इसके विपरीत, वह इसका प्रबल शब्दों में निषेध करेगा
उसके इस स्पष्ट निषेध को देखते हुए, आप अपना ऐसा अर्थ छोड़ क्यों न
, जिसे प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं किया जा सकता ?'

हां, इस बार आपने कुछ जोरदार सवाल उठाया है। मैं अपनी आंखों
मने उस अज्ञात वक्ता का चित्र रख सकता हूं। सम्भवतः वह असली अतिथि
हायक, या शायद स्वयं एक छोटा अध्यापक है, और भविष्य के सुनहले स
ाकार करने की आशा रखनेवाला नौजवान है। मैं उससे आग्रहपूर्वक यह पू
कि क्या उसे निश्चित रूप से अपने अन्दर ऐसी भावना नहीं दिखाई दी जो
उस अफसर का सम्मान करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध हो। इसपर वडा तमा
जाता है। वह धीरज खोकर मुझपर एकाएक बौखला पड़ता है, 'देखो भई, इ
जिरहबाजी को खत्म करो, नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। तुम अप
सन्देहों से मेरा भविष्य बिगाड़ दोगे। मैंने तो एन्स्टोसेन (Anstossen) के स्थ
पर आफ्स्टोसेन (Aufstossen) ही कहा था, क्योंकि मैं इससे पहले दो बार अ
(Auf) कह चुका। यह वही चीज है जिसे मेरिंगर निरर्थकावृत्ति कहता है, अ
इसमें कोई छिपी हुई बात नहीं है। समझ गए?' हूं! यह विचित्र प्रतिक्रिया
सचमुच प्रबल खण्डन है! मैं समझता हूं कि उस नौजवान के साथ और कुछ
नहीं की जा सकती। पर अपने मन में मैं सोचता हूं कि उसने यह जानला
बड़ी प्रबल व्यक्तिगत दिलचस्पी दिखाई है कि उसकी गलती का और कुछ
...और इस बात में तो सहमत होंगे कि एक निरो भैंडा
नहीं है। शायद

जाँच-पड़ताल में उसे इतना गवारपन दिखाने का कोई हक नहीं था। पर आप सोचेंगे कि आखिरकार उसे यह अवश्य पता होगा कि वह क्या कहना चाहता था, और क्या नहीं।

तो उसे यह अवश्य पता होगा ? यह शायद अब भी विवादास्पद है।

अब आप सोच रहे हैं कि आपने मुझे फाँस लिया। आप कह रहे हैं, 'आपकी यही तो रीति है। जब गलती करनेवाला आदमी ऐसी व्याख्या करता है, जो आपके विचारों के अनुकूल बैठती है, तब आप उसे उस विषय पर असली फैसला करने में समर्थ बता देते हैं। वह स्वयं जो ऐसा कहता है ! पर यदि उसकी कही हुई बात आपके विषय के अनुकूल नहीं मालूम होती तो आप कह देते हैं कि उसके कथन का कोई महत्त्व नहीं, और उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता।'

बिलकुल यही बात है। पर इसी तरह की अजीब प्रक्रिया का एक और उदाहरण मैं आपको दे सकता हूं। जब कोई अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार कर लेता है, तब जज उसका विश्वास कर लेता है, पर जब वह उसे अस्वीकार करता है, तब जज उसका विश्वास नहीं करता। यदि ऐसा न होता तो कानून चल ही नहीं सकता था, और आपको मानना होगा कि कभी-कभी गलत फैसले होने के बावजूद कुल मिलाकर कानून-प्रणाली अच्छी तरह कार्य कर रही है।

'पर आप क्या जज हैं, और गलती करनेवाला क्या आपके सामने अभियुक्त है ? क्या बोलने में गलती कर जाना जुर्म है ?'

शायद हमें इस तुलना को भी अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं। पर अब यह देखिए कि इधर से हानिरहित दिखाई देनेवाली गलतियों की समस्या की जाँच-पड़ताल में भी हम कितने गहरे मतभेदों पर पहुंच गए हैं—इस समय हम यह ज़रा भी नहीं जानते कि इन मतभेदों को कैसे सुलझाया जाए। मेरा यह सुझाव है कि हमें जज और अभियुक्त के सादृश्य के आधार पर थोड़ी देर के लिए एक समझौता कर लेना चाहिए। मैं समझता हूं कि आप मेरी इतनी बात तो स्वीकार करेंगे कि यदि विश्लेषण के अधीन व्यक्ति किसी गलती का एक अर्थ स्वीकार करता है तो उसमें कोई शक नहीं किया जा सकता। इधर मैं यह स्वीकार किए लेता हूं कि यदि विश्लेषण के अधीन व्यक्ति स्वयं जानकारी देने से इन्कार कर दे तो जिस अर्थ के होने की हम आशंका करते हैं, उसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल सकता, और यह बात निस्सन्देह तब भी लागू होती है जब वह व्यक्ति हमें जानकारी देने के लिए स्वयं मौजूद नहीं है। तब कानूनी कार्यवाही की तरह यहां भी किसी फैसले पर पहुंचने के लिए हमें संकेतों का ही सहारा रह जाता है, और इनके आधार पर किए गए फैसले की सचाई कभी कम और कभी अधिक सम्भाव्य होती है। अदालत में, व्यावहारिक कारणों से परिस्थिति-सम्बन्धी गवाही के आधार पर भी अपराध की घोषणा करनी पड़ती है। यहां ऐसी कोई आवश्यकता

अतिथी ने आगे [illegible] निकलता है । पर जब किसी मानसिक भाव का प्रश्न
आता है, जब यह प्रश्न आता है कि गलती करते उस मनुष्य के मन में यही विचार
था, अगर कोई नहीं था, तब आप इसे विश्वसनीय नहीं मानेंगे, और कहेंगे कि
उसके मन में कोई और विचार भी तो हो सकता था। सचाई यह है कि आपके मन
में मानसिक स्वतन्त्रता की भ्रान्ति है, जिसे आप छोड़ना नहीं चाहते । मुझे खेद
से कहना पड़ता है कि इस मामले में मेरा आपके विचारों से तीव्र विरोध है ।
[illegible] अपने मन में प्रतिरोध करेंगे ।

अब आप यहां से हटकर एक और बात पर [illegible] मनोविश्लेषण का विशेष कौशल [illegible]
आप कहेंगे, 'हम समझते हैं कि मनोविश्लेषण का [illegible] उदाहरण लीजिए
व्यक्ति से अपनी समस्याओं का हल निकलवा सकता है। अब यह उदाहरण लीजिए
जिसमें भोजन के बाद वक्ता अतिथियों से कहता है कि वे अपने अतिथि के स्वास्थ्य
के लिए हिचक=Hiccough (हिचकी लें)। आप कहते हैं कि इस उदाहरण में
बाधक प्रवृत्ति है उपहास करना, यह सम्मान करने के आशय की विरोधी है,
पर यह आप उस गलती को स्वतन्त्र रूप से देखकर अपनी ओर से उसका अर्थ
ही तो लगा रहे हैं । यदि इस उदाहरण में आप गलती करनेवाले से प्रश्न करें
तो वह आपके इस विचार की पुष्टि नहीं करेगा कि उसका आशय उपहास या
अपमान करना था । इसके विपरीत, वह इसका प्रबल शब्दों में निषेध करेगा ।
तो उसके इस स्पष्ट निषेध को देखते हुए, आप अपना ऐसा अर्थ छोड़ क्यों नहीं
देते, जिसे प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं किया जा सकता ?'

हां, इस बार आपने कुछ ज़ोरदार सवाल उठाया है । मैं अपनी आंखों के
सामने उस अज्ञात वक्ता का चित्र रख सकता हूं। सम्भवत वह असली अतिथि का
सहायक, या शायद स्वयं एक छोटा अध्यापक है, और भविष्य के सुनहले स्वप्न
साकार करने की आशा रखनेवाला नौजवान है। मैं उससे आग्रहपूर्वक यह पूछूंगा
कि क्या उसे निश्चित रूप से अपने अन्दर ऐसी भावना नहीं दिखाई दी
उस अफसर का सम्मान करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध हो । इसपर वह
जाता है । वह धीरज खोकर मुझपर एकाएक बौखला पड़ता है, '
जिरहबाज़ी को खत्म करो, नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा
सन्देहों से मेरा भविष्य बिगाड़ दोगे । मैंने तो एन्स्टोसेन (Anstos
पर आफ्स्टोसेन (Aufstossen) ही कहा था, क्योंकि मैं इससे पह
(Auf) कह चुका । यह वही चीज़ है जिसे मेरिंगर निरर्थक
इसमें कोई छिपी हुई बात नहीं है । समझ गए ?' हूं ! यह त्रि
सचमुच प्रबल खण्डन है ! मैं समझता हूं कि उस नौजवान के
नहीं की जा सकती । पर अपने मन में मैं सोचता हूं कि
बड़ी प्रबल व्यक्तिगत दिलचस्पी दिखाई है कि उसकी गलत
नहीं है । शायद आप भी इस बात से तो सहमत होंगे कि

इस छोटे-से कौशल से लेखक ने सीज़र में एक बड़प्पन की भावना, जो उसमें नहीं थी और जिसकी उसने कभी आकांक्षा भी नहीं की थी, दिखाने का प्रयत्न किया है। इतिहास से आप जान सकते हैं कि सीज़र ने यह व्यवस्था की थी कि क्लियोपेट्रा उसके पीछे-पीछे रोम आ जाए, और कि वह सीज़र की हत्या होने के समय अपने बच्चे के साथ वहीं रह रही थी। हत्या के बाद वह शहर से भाग गई।

पक्के इरादों को भूल जाने के उदाहरण आम तौर से इतने स्पष्ट होते हैं कि हमारे प्रयोजन के लिए वे खास उपयोगी नहीं हैं। हमारा प्रयोजन तो गलती के अर्थ के मानसिक स्थिति-संबंधी संकेत ढूंढ़ना है। इसलिए अब हम गलती के एक विशेष रूप से एक संदिग्ध और अस्पष्ट रूप पर, अर्थात् वस्तुएं खो देने या गलत जगह पर रख देने पर, विचार करेंगे। यह बात तो निश्चय ही आपको अविश्वसनीय मालूम होगी कि वस्तुएं खोने में, जिससे प्रायः इतनी परेशानी और कष्ट उठाना पड़ता है, खोनेवाले व्यक्ति का अपना कोई प्रयोजन हो सकता है, पर इस तरह के असंख्य उदाहरण हैं। एक नौजवान ने एक पेन्सिल खो दी, जो उसे बहुत पसन्द थी। कुछ ही दिन पहले उसे अपने बहनोई का एक पत्र मिला था, जिसके अन्त में ये शब्द थे, 'मेरे पास न तो समय है और न यह इच्छा ही है कि इस समय तुम्हारे निकम्मेपन और आवारागर्दी को बढ़ावा दूं।'[1] वह पेन्सिल उसे उसके बहनोई ने भेंट में दी थी। यदि यह संयोग न होता तो निश्चय ही हम यह नहीं कह सकते थे कि इस खोने का अर्थ यह है कि उसके मन में इस उपहार से छुटकारा पाने की बात थी। इसी तरह के और बहुत-से उदाहरण हैं। मनुष्य तब अपनी वस्तुएं खो देता है, जब उसका वस्तु देनेवाले से झगड़ा हो गया हो, या वह उसका नाम अपने मन में न आने देना चाहता हो, या फिर जब वह उन वस्तुओं से ऊब गया हो, और कोई दूसरी, और इससे अच्छी, चीज़ लेने के लिए बहाना चाहता हो। वस्तुओं को गिराने, तोड़ने और बर्बाद करने से वस्तु के विषय में निश्चित रूप से ऐसा ही प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या इस बात को आकस्मिक माना जा सकता है कि एक बालक अपने जन्मदिन से ठीक पहले अपनी वस्तुएं, उदाहरण के लिए, अपनी घड़ी और बस्ता, खो देता है या बर्बाद कर लेता है?

जिस आदमी को कभी यह परेशानी अनुभव हुई है कि उसकी अपने हाथ से रखी हुई वस्तु उसके हाथ नहीं आई, वह निश्चित रूप से कभी यह मानने को तैयार नहीं होगा कि ऐसा करने में उसका कोई आशय हो सकता था, परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरण दुर्लभ नहीं जिनमें कोई चीज़ कहीं रख देने के समय की परिस्थितियों से यह संकेत मिलता है कि वस्तु को कुछ समय, या सदा के लिए हटा देने की प्रवृत्ति मन में मौजूद थी। शायद इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है

१. B. Dattner से

गलती होती है।

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि संकल्पों या पक्के इरादों को मनु
इसलिए भूल जाता है कि उसके मन में उन संकल्पों को पूरा करने की विरो
भावना की धारा वह रही होती है। किंतु यह हमारा, मनोविश्लेषकों का
विचार नहीं है। वह हर आदमी का अपने रोजाना के कारबार में होनेव
सामान्य रवैया है, जिसे वह सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार करता है। जब
आश्रित का आश्रयदाता उसकी प्रार्थना भूल जाने के कारण क्षमा मांगता है
आश्रित व्यक्ति ऐसी क्षमाप्रार्थना से शांत नहीं होता। वह तुरत यह सोच
'जाहिर है कि इस क्षमाप्रार्थना का कोई मतलब नहीं। उसने वायदा किय
पर अब वह उसे पूरा नहीं करना चाहता।'

इसलिए जीवन मे भी कुछ प्रसंगो मे भूलने की जो आलोचना की ज
और इन गलतियो के बारे में आम प्रचलित विचार और मनोविश्लेप
विचार का अन्तर मिट जाता है। कल्पना करें कि कोई गृहलक्ष्म
अतिथि का इन शब्दो में स्वागत करती है, 'ओहो, क्या आपको आज आन।
मैं तो बिलकुल भूल गई थी कि मैंने आपसे आने के लिए कहा था।' या कल्पना
करे कि कोई नवयुवक अपनी प्रेयसी के सामने यह स्वीकार करता है कि हमने

छोटे-से कौशल से लेखक ने सीज़र मे एक बड़प्पन की भावना, जो उसमे ी थी और जिसकी उसने कभी आकाक्षा भी नही की थी, दिखाने का प्रयत्न या है। इतिहास से आप जान सकते है कि सीज़र ने यह व्यवस्था की थी कि नयोपाट्रा उसके पीछे-पीछे रोम आ जाए, और कि वह सीज़र की हत्या होने के य अपने बच्चे के साथ वही रह रही थी। हत्या के बाद वह शहर से भाग गई।

पक्के इरादो को भूल जाने के उदाहरण आम तौर से इतने स्पष्ट होते हैं कि मारे प्रयोजन के लिए वे खास उपयोगी नही हैं। हमारा प्रयोजन तो गलती के र्थ के मानसिक स्थिति-सबधी सकेत ढूढना है। इसलिए अब हम गलती के एक शेष रूप से एक सदिग्ध और अस्पष्ट रूप पर, अर्थात् वस्तुएं खो देने या गलत गह पर रख देने पर, विचार करेंगे। यह बात तो निश्चय ही आपको अविश्वसनीय लूम होगी कि वस्तुए खोने मे, जिसमे प्राय इतनी परेशानी और कष्ट ठाना पड़ता है, खोनेवाले व्यक्ति का अपना कोई प्रयोजन हो सकता है, पर स तरह के असख्य उदाहरण हैं। एक नौजवान ने एक पेन्सिल खो दी, जो उसे हुत पसन्द थी। कुछ ही दिन पहले उसे अपने बहनोई का एक पत्र मिला था, जसके अन्त मे ये शब्द थे, 'मेरे पास न तो समय है और न यह इच्छा ही है कि इस समय तुम्हारे निकम्मेपन और आवारागर्दी को बढ़ावा दू।'[१] वह पेन्सिल से उसके बहनोई ने भेंट मे दी थी। यदि यह सयोग न होता तो निश्चय ही हम यह नहीं कह सकते थे कि इस खोने का अर्थ यह है कि उसके मन मे इस उपहार से छुटकारा पाने की बात थी। इसी तरह के और बहुत-से उदाहरण हैं। मनुष्य तब अपनी वस्तुएं खो देता है, जब उसका वस्तु देनेवाले से झगड़ा हो गया हो, या वह उसका नाम अपने मन मे न आने देना चाहता हो, या फिर जब वह उन वस्तुओ से ऊब गया हो, और कोई दूसरी, और इससे अच्छी, चीज़ लेने के लिए बहाना चाहता हो। वस्तुओं को गिराने, तोड़ने और बर्बाद करने से वस्तु के विषय मे निश्चित रूप से ऐसा ही प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या इस बात को आकस्मिक माना जा सकता है कि एक बालक अपने जन्मदिन से ठीक पहले अपनी वस्तुए, उदाहरण के लिए, अपनी घड़ी और बस्ता, खो देता है या बर्बाद कर लेता है ?

जिस आदमी को कभी यह परेशानी अनुभव हुई है कि उसकी अपने हाथ से रखी हुई वस्तु उसके हाथ नहीं आई, वह निश्चित रूप से कभी यह मानने को तैयार नही होगा कि ऐसा करने मे उसका कोई आशय हो सकता था, परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरण दुर्लभ नहीं जिनमें कोई चीज़ कही रख देने के समय की परिस्थितियो से यह सकेत मिलता है कि वस्तु को कुछ समय, या सदा के लिए हटा देने की प्रवृत्ति मन में मौजूद थी। शायद इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है :

---

१. B. Dattner से

गलती होती है।

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि संकल्पों या पक्के इरादों को मनुष्य इसलिए भूल जाता है कि उसके मन में उन संकल्पों को पूरा करने की विरोधी भावना की धारा बह रही होती है। किंतु यह हमारा, मनोविश्लेषकों का ही विचार नहीं है। वह हर आदमी का अपने रोजाना के कारबार में होनेवाला सामान्य रवैया है, जिसे वह सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार करता है। जब किसी आश्रित का आश्रयदाता उसकी प्रार्थना भूल जाने के कारण क्षमा मांगता है, त[ब] आश्रित व्यक्ति ऐसी क्षमाप्रार्थना से शांत नहीं होता। वह तुरंत यह सोचता [है]: 'जाहिर है कि इस क्षमाप्रार्थना का कोई मतलब नहीं। उसने वायदा किया था, पर अब वह उसे पूरा नहीं करना चाहता।'

इसलिए जीवन में भी कुछ प्रसंगों में भूलने की जो आलोचना की जाती है, और इन गलतियों के बारे में आम प्रचलित विचार और मनोविश्लेषण वाले विचार का अन्तर मिट जाता है। कल्पना करें कि कोई गृहलक्ष्मी किसी अतिथि का इन शब्दों में स्वागत करती है, 'ओहो, क्या आपको आज आना था? मैं तो बिलकुल भूल गई थी कि मैंने आपसे आने के लिए कहा था।' या कल्पना करें कि कोई नवयुवक अपनी प्रेयसी के सामने यह स्वीकार करता है कि हमने पिछली बार आगे मिलने के बारे में जो बात तय की थी, उसे मैं बिलकुल भूल गया था। वह कभी यह बात स्वीकार नहीं करेगा, बल्कि वह फौरन इधर-उधर की अविश्वसनीय असम्भव-असम्भव रुकावटें गढ़कर बता देगा, जिनके कारण वह नहीं आ सका, और उसके लिए उस दिन से आज तक अपनी प्रेयसी को सूचना देना असम्भव हो गया। हम सब जानते हैं कि फौज में भूल जाने का बहाना बिलकुल बेकार समझा जाता है, और यह किसीको सजा से नहीं बचा सकता। यह पद्धति उचित मानी जाती है। यहां हर कोई अनायास सहमत है कि किसी विशेष गलती का कुछ अर्थ है, और वह अर्थ क्या है। वे लोग अपनी बात पर दृढ़ रहकर दूसरी गलतियों पर भी अपनी सूक्ष्म दृष्टि क्यों नहीं पहुंचा सके और फिर इन्हें क्यों न इसी प्रकार स्वीकार नहीं कर लेते? स्वभावतः इसका भी एक उत्तर है।

यदि सामान्य लोगों के मन में अपने इरादों को भूल जाने का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट समझा हुआ है, तो साहित्यकारों को देखकर कुछ भी आश्चर्य न होगा [illegible] भूलों का इसी तरह के अर्थ में उपयोग करते हैं। [illegible] दिखाई देता जा रहा है, [illegible] [illegible] के मन में [illegible] रही है कि वह [illegible] [illegible] भूल गया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ा छोटे-से कौशल से लेखक ने मीडर में एक बड़प्पन की भावना, जो उसमें ह़ीं थी और जिसकी उसने कभी आशा भी नहीं की थी, दिखाने का प्रयत्न ाया है। इतिहास से आप जान सकते हैं कि मीडर ने यह व्यवस्था की थी कि त्योपाट्रा उसके पीछे-पीछे रोम आ जाए, और कि वह सीज़र की हत्या होने के मय अपने बच्चे के साथ वहीं रह रही थी। हत्या के बाद वह शहर से भाग गई।

पत्रके इरादों को भूल जाने के उदाहरण आम तौर से इतने स्पष्ट होते हैं कि मारे प्रयोजन के लिए वे खास उपयोगी नहीं हैं। हमारा प्रयोजन तो गलती के र्थ के मानसिक स्थिति-संबंधी संकेत ढूंढ़ना है। इसलिए अब हम गलती के एक विशेष रूप से एक संदिग्ध और अस्पष्ट रूप पर, अर्थात् वस्तुएं खो देने या गलत गह पर रख देने पर, विचार करेंगे। यह बात तो निश्चय ही आपको अविश्वसनीय मालूम होगी कि वस्तुएं खोने में, जिससे प्राय इतनी परेशानी और कष्ट उठाना पड़ता है, खोनेवाले व्यक्ति का अपना कोई प्रयोजन हो सकता है, पर इस तरह के असंख्य उदाहरण हैं। एक नौजवान ने एक पेन्सिल खो दी, जो उसे बहुत पसन्द थी। कुछ ही दिन पहले उसे अपने बहनोई का एक पत्र मिला था, जिसके अन्त में ये शब्द थे, 'मेरे पास न तो समय है और न यह इच्छा ही है कि इस समय तुम्हारे निकम्मेपन और आवारागर्दी को बढ़ावा दूं।'[1] वह पेन्सिल उसे उसके बहनोई ने भेंट में दी थी। यदि यह संयोग न होता तो निश्चय ही हम यह नहीं कह सकते थे कि इस खोने का अर्थ यह है कि उसके मन में इस उपहार से छुटकारा पाने की बात थी। इसी तरह के और बहुत-से उदाहरण हैं। मनुष्य तब अपनी वस्तुएं खो देता है, जब उसका वस्तु देनेवाले से झगड़ा हो गया हो, या वह उसका नाम अपने मन में न आने देना चाहता हो, या फिर जब वह उन वस्तुओं से ऊब गया हो, और कोई दूसरी, और इससे अच्छी, चीज लेने के लिए बहाना चाहता हो। वस्तुओं को गिराने, तोड़ने और बर्बाद करने से वस्तु के विषय में निश्चित रूप से ऐसा ही प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या इस बात को आकस्मिक माना जा सकता है कि एक बालक अपने जन्मदिन से ठीक पहले अपनी वस्तुएं, उदाहरण के लिए, अपनी घड़ी और बस्ता, खो देता है या बर्बाद कर लेता है ?

जिस आदमी को कभी यह परेशानी अनुभव हुई है कि उसकी अपने हाथ से रखी हुई वस्तु उसके हाथ नहीं आई, वह निश्चित रूप से कभी यह मानने को तैयार नहीं होगा कि ऐसा करने में उसका कोई आशय हो सकता था, परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरण दुर्लभ नहीं जिनमें कोई चीज कहीं रख देने के समय की परिस्थितियों से यह संकेत मिलता है कि वस्तु को कुछ समय, या सदा के लिए हटा देने की प्रवृत्ति मन में मौजूद थी। शायद इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है :

---

१ B. Dattner से

एक नौजवान ने मुझे यह किस्सा बताया, 'कुछ वर्ष पहले मुझमें और मेरी पत्नी में मनमुटाव था, मैं उसे बिलकुल प्यारहीन समझता था, और यद्यपि मैं उसके श्रेष्ठ गुणों को खुशी से स्वीकार करता था, पर तो भी हम बिना प्रेम के साथ रहते थे। एक दिन घूमकर लौटते हुए वह मेरे लिए एक पुस्तक लाई जो उसने मेरे लिए यह सोचकर खरीदी थी, कि मुझे वह पसन्द आएगी। उसने मेर[illegible] थोड़ा-सा ध्यान रखा, इसके लिए मैंने उसे धन्यवाद दिया, वह पुस्तक पढ़ने क[illegible] वचन दिया और उसे अपनी चीजों में रख दिया, और फिर वह कभी मेरे हा[illegible] न आई। महीनों गुजर गए और कभी-कभी मैंने उस पुस्तक को पढ़ने की ब[illegible] सोची, पर उसे ढूंढने की सब कोशिशें बेकार गईं। छः महीने बाद मेरी प्य[illegible] मां, जो कुछ दूरी पर रहती थी, बीमार पड़ी। उसकी हालत खराब हो [illegible] और मेरी पत्नी अपनी सास की सेवा करने के लिए चली गई। बीमारी गम्भीर होने से मेरी पत्नी को अपने श्रेष्ठ गुण दिखाने का मौका मिला। एक दिन शाम को मैं अपनी पत्नी के प्रति उत्साह और कृतज्ञता से भरा हुआ घर आया। मैं अपनी मेज के पास पहुंचा, और मैंने बिना किसी निश्चित आशय के, बल्कि एक तरह की नींद-भरी निश्चिन्तता से उसकी एक दराज खोली और वहां मेरे सामने वही खोई हुई पुस्तक रखी थी जिसे मैं इतनी बार तलाश कर चुका था।'

प्रवर्तक अथवा प्रेरक कारण' के लुप्त हो जाने पर, रखकर भूली हुई पुस्तक खोजने की अयोग्यता भी लुप्त हो गई।

मैं इस तरह के सैकड़ों उदाहरण दे सकता हूं पर अब ये नहीं दूंगा। मेरी 'साइको-पैथोलोजी ऑफ एवरीडे लाइफ (Psycho-pathology of Everyday Life)' जो पहले १९०१ में प्रकाशित हुई थी, में गलतियों के अध्ययन के लिए बहुत सारे उदाहरण मिलेंगे। इन सब उदाहरणों से यही बात बार-बार सामने आती है। उनसे आपको यह सम्भाव्य मालूम होने लगता है कि भूलों का कुछ अर्थ होता है, और वे आपको यह बताती हैं कि साथ की परिस्थितियों से किस तरह अर्थ का अनुमान या पुष्टि की जा सकती है। आज मैं अधिक विस्तृत बातों में नहीं जा रहा क्योंकि यहां हमारा आशय सिर्फ इतना था कि हम मनोविश्लेषण का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से इन घटनाओं पर विचार करें। सिर्फ दो घटना-समूह और हैं जिनपर मुझे अभी कुछ कहना है—संचित और मिली-जुली गलतियां, और बाद की घटनाओं से हमारी व्याख्याओं की पुष्टि।

संचित और मिली-जुली गलतियां निश्चित ही सबसे बढ़िया किस्म की गलतियां [illegible] है। यदि हमें सिर्फ इतना ही सिद्ध करना होता कि गलतियों का कुछ अर्थ होता है [illegible] [illegible] पर ही रहते, क्योंकि उनका कुछ अर्थ होने की बात कुछ [illegible]

बुद्ध भी समझ सकता है, और बड़े तीव्रबुद्धि आलोचक को भी उसे मानना पड़ता है। घटनाओं के दोहराए जाने से एक ऐसे आग्रह का पता चलता है जो कभी अकस्मात् या अचानक नहीं हो सकता, बल्कि जिसके पीछे कोई विचार होने की बात ही जचती है। फिर, एक तरह की भूल के स्थान पर दूसरी तरह की भूल होने में हमें यह पता चलता है कि गलती में सबसे महत्त्वपूर्ण और आवश्यक तत्त्व क्या है, और वह न तो गलती का बाह्य रूप है, और न वह साधन है जिसके द्वारा यह प्रकट होता है, बल्कि वह प्रवृत्ति है जो इसका उपयोग करती है, और बड़े भिन्न-भिन्न तरीकों से अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकती है। इस प्रकार मैं आपको बार-बार भूलने का एक उदाहरण दूंगा। अर्नेस्ट जोन्स लिखता है, 'मैंने एक बार एक पत्र किसी अज्ञात कारण से कई दिन तक अपनी मेज़ पर पड़ा रहने दिया। अन्त में मैंने इसे डाक में डालने का निश्चय किया, पर वह मृतपत्र-कार्यालय से लौटकर आ गया, क्योंकि मैं उसपर पता लिखना भूल गया था। उसपर पता लिखने के बाद मैं उसे डाक में डालने गया, पर इस बार टिकट लगाना भूल गया। अब मुझे अपने मन में यह मानना पड़ा कि असल में मैं उस पत्र को बिलकुल भेजना ही नहीं चाहता था।'

दूसरे उदाहरण में, भूल से कोई चीज़ उठा लेना और उसे कहीं रखकर भूल जाना, ये दो बातें जुड़ी हुई हैं। एक महिला अपने बहनोई के साथ, जो एक प्रसिद्ध कलाकार था, रोम गई। कलाकार का रोम में रहनेवाले जर्मनों ने बड़ा स्वागत किया, और उसे भेंट में, और वस्तुओं के साथ, एक पुराना सोने का तमगा भी दिया। उस महिला को इस बात से बड़ी परेशानी हुई कि उसके बहनोई ने उस

मतलब है ? मैं ऐसा नहीं समझता; इसके विपरीत, यह अधिक अनिश्चित कथन है, और इसमें गलतफहमी की अधिक गुंजायश है। मानसिक जीवन में दिखाई देनेवाली प्रत्येक चीज़ को किसी न किसी समय एक मानसिक घटना कहा जाएगा, परंतु यह इस बात पर निर्भर है कि कोई विशेष मानसिक घटना सीधे रूप से शारीरिक या ऐन्द्रिय या भौतिक कारणों से पैदा होती है—इस अवस्था में इसकी जांच का काम मनोविज्ञान का नहीं है, अथवा यह सीधे अन्य मानसिक प्रक्रमों से पैदा हुई है, जिनके पीछे किसी जगह ऐन्द्रिय कारणों का सिलसिला शुरू होता है। जब हम किसी घटना को मानसिक प्रक्रम कहते हैं, तब हमारा आशय इस दूसरी अवस्था से ही होता है और इसलिए अपने कथन को इस रूप में पेश करना अधिक अच्छा होगा। घटना का अर्थ होता है, और अर्थ से हमारा मतलब है सार्थकता, आशय, प्रवृत्ति, और मानसिक कड़ियों की शृंखला में एक स्थान।

घटनाओं का एक और समूह है जिसका गलतियों से बड़ा नज़दीकी संबंध है, और जिनके लिए यह नाम उपयुक्त नहीं। हम उन्हें 'आकस्मिक' और लक्षणसूचक कार्य कहते हैं। वे भी बिना किसी प्रवर्तक या प्रेरक कारण के होनेवाले, अर्थहीन, और महत्त्वहीन कार्य प्रतीत होते हैं, पर इसके साथ-साथ उनमें स्पष्ट रूप से 'अनावश्यक' होने की विशेषता होती है। एक ओर तो वे गलतियों से अलग पहचाने जाते हैं; क्योंकि उनमें ऐसा कोई दूसरा आशय नहीं होता जिसका वे विरोध करते हों, या जिसे वे बाधित करते हों, दूसरी ओर, वे उन हाव-भावों और चेष्टाओं में बिना किसी निश्चित भेदक सीमा के आ जाते हैं, जिन्हें हम भावों की अभिव्यक्ति मानते हैं। आकस्मिक घटनाओं के इस वर्ग में ऊपर से निष्प्रयोजन दीखनेवाले सब कार्य आ जाते हैं, जो हम कपड़ों से, शरीर के अंगों से और अपनी पकड़ में आनेवाली वस्तुओं से मानो खेल-खेल में किया करते हैं। ऐसे कार्यों का लोप भी और वे स्वर-लहरियां भी, जो हम आपसे-आप गुनगुनाया करते हैं, इसीके अंतर्गत आते हैं। मेरा यह कहना है कि ऐसे सब कार्यों का अर्थ होता है और उनकी उसी तरह व्याख्या की जा सकती है जैसे गलतियों की, अर्थात् यह कि वे अधिक महत्त्वपूर्ण मानसिक कार्यों के हल्के संकेत हैं, और सही रूप में मानसिक कार्य हैं। पर अब मैं मानसिक घटनाओं के क्षेत्र के और अधिक विस्तार पर अधिक समय न लगाकर फिर [illegible] मनोविश्लेषण-विषयक जांच-

जुलते दूसरे शब्द घर (होम) की विकृति के रूप में ज़बान से निकल पड़ा।

अब हम मुख्य प्रश्न पर आ सकते हैं, जिसे हम अब तक टालते आए हैं, और वह यह है कि ये प्रवृत्तियां, जो इस तरह दूसरे आशयों को बाधित करके अजीब रीति से सामने आती हैं, किस तरह की होती हैं। स्पष्टत वे अनेक प्रकार की होती हैं, पर हमें ऐसा तत्त्व खोजना है जो उन सबमें रहता हो। यदि इस काम के लिए हम कुछ उदाहरणों पर विचार करें तो हमें शीघ्र ही मालूम हो जाएगा कि वे तीन समूहों में आते हैं। पहले समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें बाधाकारक प्रवृत्ति का वक्ता को ज्ञान है, और इसके अलावा गलती करने से पहले उसने उसे अनुभव किया था। इस प्रकार 'रिफिल्ड' की गलती में, वक्ता ने न केवल यह स्वीकार किया कि उसने प्रस्तुत घटनाओं को 'फिल्दी' कहकर उनकी आलोचना की थी, बल्कि यह भी स्वीकार किया कि उसका आशय इस राय को शब्दों में प्रकट करने का था, पर उसने बाद में इस आशय को बदल लिया। दूसरे समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें बाधाकारक प्रवृत्ति को वक्ता अपनी प्रवृत्ति मानता है, पर उसे यह पता नहीं है कि गलती करने से पहले उसके भीतर वह प्रवृत्ति प्रबल थी। इसलिए वह हमारे बताए गए अर्थ को मान लेता है, पर कुछ देर तक इसपर आश्चर्य करता रहता है। इस तरह के प्रवृत्ति के उदाहरण बोलने की गलतियों की अपेक्षा शायद अन्य गलतियों में अधिक आसानी से मिल जाएंगे। तीसरे समूह में, बाधक प्रवृत्ति का वक्ता द्वारा ज़ोर-शोर से खंडन किया जाता है, वह इसका ही खंडन नहीं करता कि गलती से पहले यह प्रवृत्ति उसमें प्रबल थी बल्कि वह यह भी कहता है कि यह प्रवृत्ति कभी मेरे पास तक नहीं फटकी। हिक्क वाला मामला, तथा वह निश्चित रूप से अभद्र तिरस्कार याद कीजिए जो मैंने बाधक प्रवृत्ति का पता लगाकर अपने सिर लिया था। आप जानते हैं कि इन उदाहरणों के विषय में आपका और मेरा कोई समझौता नहीं हो सका। मैं भोजन के बाद वाले वक्ता के खंडन के बारे में अपने अर्थ पर अटल हूं, जबकि आप, मेरा ख्याल है, उसकी प्रबलता से अब भी प्रभावित हैं, और शायद यह सोच रहे हैं कि क्या ऐसी गलतियों का अर्थ न लगाना और उन्हें शुद्ध रूप में कायिकीय कार्य समझकर छोड़ देना उचित नहीं होगा, जैसा कि विश्लेषण से पहले के दिनों में किया जाता था। आप किस बात से भयभीत हैं, यह मैं कल्पना कर सकता हूं। मैंने जो अर्थ लगाया है, उसमें यह कल्पना भी आ जाती है कि जिन प्रवृत्तियों के बारे में वक्ता कुछ नहीं जानता वे भी उसमें प्रकट हो सकती हैं, और कि मैं अनेक लक्षणों से उन्हें सिद्ध कर सकता हूं। आपको ऐसे नये निष्कर्ष पर पहुंचने में संकोच होता है, जिसके बाद में बहुत-से परिणाम हो सकते हैं। मैं इस बात को समझता हूं और मानता हूं कि कुछ दूर तक आपका संकोच उचित है, परन्तु एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए, यदि आप गलतियों के सम्बन्ध में उस विचार को, जिसकी इतने सारे उदाहरणों से पुष्टि हो गई है, उनके

न्तम तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचाना चाहते हैं, तो आपको यह चौंकानेवाली ाना स्वीकार करनी होगी। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो आपको गलतियो समझने का काम, जो अभी आपने शुरू ही किया है, छोड़ देना होगा।

जरा उस बात पर विचार कीजिए जो तीनो समूहो को जोड़ती है, और बोलने गलती के तीनो तन्त्रो में एक-सी है। सौभाग्य से यह सामान्य अश बिलकुल ष्ट है। पहले दो समूहो मे वक्ता बाधाकारक प्रवृत्ति का अस्तित्व मानता है, सरे समूह मे इतनी बात और भी है कि वह प्रवृत्ति गलती से ठीक पहले दिखाई थी, पर पिछली दोनो अवस्थाओ में इसे पीछे धकेल दिया गया है। वक्ता ने स विचार को न बोलने का पक्का इरादा किया हुआ था, और फिर ऐसा होता कि वह बोलने की गलती कर जाता है; मतलब यह हुआ कि जिस प्रवृत्ति को ाहर आने से रोका गया है, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध बल लगती है, और मुह निकलती है—या तो वह वक्ता द्वारा प्रकट किए जा रहे आशय की अभिव्यक्ति ो बदलकर या उसमें मिलकर या स्वय उसके स्थान पर आकर प्रकट होती है। ही बोलने की गलती का तन्त्र या प्रक्रिया है।

जहा तक मेरा सवाल है, मैं तीसरे समूह मे भी उपर्युक्त प्रतिक्रिया को बिलकुल ठीक बिठा सकता हू। मुझे सिर्फ इतना मान लेना होगा कि इन तीनो समूहो मे इतना ही अन्तर है कि किसीमे आशय को पीछे धकेलने मे कम सफलता हुई है और किसीमे अधिक। पहले समूह मे आशय मौजूद है, और शब्द बोले जाने से पहले सामने आ जाता है। तब तक इसे पीछे नही धकेला गया है, और धकेले जाने की भरपाई यह गलती मे कर लेता है। दूसरे समूह मे आशय और भी पीछे धकेल दिया जाता है, उसका भाषण से पहले भी कही पता नही चलता। यह उल्लेखनीय बात है कि पीछे धकेले जाने से उसके गलती का सक्रिय कारण होने मे जरा भी रुकावट नहीं होती। पर यह अवस्था तीसरे समूह मे इस प्रक्रम की व्याख्या को सरल बना देती है। यह कल्पना करना साहस का काम है कि कोई प्रवृत्ति तब भी गलती के रूप मे प्रकट हो सकती है जब उसे बहुत दिनो तक, बहुत ही दिनो तक, प्रकट होने से रोके रखा गया हो, वह जरा भी दिखाई न दी हो और इसलिए वक्ता सीधे तौर से उसका खण्डन कर सकता है। पर तीसरे समूह के सवाल को एक ओर छोड़कर अन्य उदाहरणो मे आप इस नतीजे पर पहुंचते हैं, कि बोलने की गलती होने की यह अपरिहार्य शर्त है कि कोई बात कहने के आशय को पहले निगृहीत या अवरुद्ध[1] किया गया हो (अर्थात् दबाया गया हो।)

अब हम यह कह सकते हैं कि गलतियो को समझने मे हम कुछ आगे बढ़े हैं। हम यह जानते हैं कि वे मानसिक घटनाए हैं; जिनमे अर्थ और प्रयोजन पहचाने जा

[1] ...ression

जैसे 'एइ' या 'ओइ' को अस्पष्टता से और असावधानी से 'इ' की तरह बोल जाता है, वह बाद में 'इ' आने पर उसे 'एइ' या 'ओइ' बोलकर इसे शुद्ध करना चाहता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उसे श्रोता का ध्यान है, और मानो वह सुननेवाले को यह नहीं समझने देना चाहता कि मैं अपनी मातृभाषा बोलने के बारे में उदासीन हूं। दूसरी क्षतिपूरक विकृति से सुननेवाले का ध्यान पहली विकृति की ओर भी जाता है, और उसे यह निश्चय हो जाता है कि वक्ता का ध्यान भी उस ओर जा चुका है। सबसे अधिक होनेवाली, महत्वहीन और सरल गलतियां भाषण के दिलचस्पी-रहित भागों में, शब्दों के सिकुड़ने या संक्षिप्त होने और पूर्वोच्चारणों के रूप में होती हैं। उदाहरण के लिए, किसी लम्बे वाक्य में बोलने की गलतियां वैसी होंगी जिनमें अंतिम आशयित शब्द किसी पहले वाले शब्द की ध्वनि पर असर डालता है। इससे हम पर यह असर पड़ता है कि वाक्य बोलने में कुछ अधैर्य था, और साधारणतया इससे यह संकेत मिलता है कि उस वाक्य या सारी बात बोलने का कुछ प्रतिरोध हो रहा है। इसमें हम ऐसे सीमावर्ती उदाहरणों पर आ जाते हैं, जिनमें बोलने की गलती के विषय में मनोविश्लेषण वाली और सामान्य कायिकीय अवधारणा के अन्तर मिलकर एक हो जाते हैं। हम यह कल्पना करते हैं कि उदाहरणों में बाधक प्रवृत्ति आशयित भाषण का विरोध कर रही है, पर वह अपनी उपस्थिति ही जाहिर कर सकती है, अपना निजी प्रयोजन नहीं। यह जो बाधा पैदा करती है, वह किसी ध्वनि-प्रभाव या साहचर्य के सबंध के बाद होती है, और इसे आशयित भाषण से ध्यान बटानेवाली प्रवृत्ति माना जा सकता है, किन्तु इस घटना का सारतत्त्व न तो ध्यानबटाई है और न साहचर्यात्मक प्रवृत्ति है, जो सक्रिय हो गई है। इसका सारतत्त्व [illegible] आशय मौजूद है, [illegible] उसके परिणामों से नहीं चल सकता, जैसा कि बोलने की गलती के अधिक प्रमुख तथा उदाहरणों में सम्भव होता है।

बोलने की गलतियां, जिनकी अब मैं चर्चा कर रहा हूं, [illegible]

[illegible]

कार्य नहीं कर रहा था। बात क्या थी, यह हमेशा निश्चित नहीं हो सकता। बोलने की गलतियों की तरह, लिखने की गलतियों पर भी स्वयं लिखनेवालों का ध्यान नहीं जाता। इस प्रसंग में निम्नलिखित बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। निस्सन्देह कुछ लोगों को सदा अपना लिखा हुआ प्रत्येक पत्र भेजने से पहले दुबारा पढ़ने की आदत होती है। कुछ लोग ऐसा नहीं करते, पर यदि वे लोग कभी किसी पत्र को दुबारा पढ़ें तो उन्हें कोई न कोई महत्त्वपूर्ण गलती देखने और उसे सही करने का मौका सदा मिलता है। इसकी कैसे व्याख्या की जाए। यह तो कुछ ऐसा मालूम होता है, जैसे उन्हें पता था कि उन्होंने पत्र लिखने में कोई गलती की है। क्या हम सचमुच यह मान सकते हैं कि ऐसी बात थी?

लिखने की गलतियों के व्यावहारिक महत्त्व के साथ एक मनोरंजक समस्या जुड़ी हुई है। आपको उस हत्यारे ह का मामला याद होगा जिसने अपने-आपको जीवाणुशास्त्री[1] बताकर वैज्ञानिक संस्थाओं से बड़े भयंकर रोगाणु-बीज प्राप्त कर लिए थे, पर उनका उपयोग उसने अपने से सबंधित व्यक्तियों से इस बिलकुल नये तरीके द्वारा पिण्ड छुड़ाने में किया। इस व्यक्ति ने एक बार एक वैज्ञानिक संस्था के अधिकारियों से शिकायत की कि मुझे भेजे गए रोगाणु-बीज प्रभावहीन थे, पर उसने लिखने में एक गलती कर दी; पत्र में यह लिखने के बजाय कि 'Mausen und Meerchweinchen' (चूहों और गिनी-पिगों) पर किए गए मेरे परीक्षणों में, उसने लिखा कि 'Menschen' (लोगों) पर किए गए मेरे परीक्षणों में—ये शब्द साफ पढ़े जाते थे। इस गलती की ओर उस संस्था के डाक्टरों का ध्यान भी गया, पर जहां तक मैं जानता हूं, उन्होंने इससे कोई नतीजा नहीं निकाला। अब आपका क्या विचार है? क्या यह अच्छा नहीं होता कि डाक्टर उस गलती को उसकी अपराध-स्वीकृति मानते, और जांच शुरू कर देते, जिससे हत्यारे की हलचलें समय पर रोकी जा सकतीं? इस उदाहरण में क्या यह उपेक्षा, जो असल में बड़ी महत्त्वपूर्ण हो सकती थी, इसलिए नहीं की गई कि हमें गलतियों की अपनी अवधारणा के बारे में जानकारी नहीं थी। मैं कहता हूं कि लिखने की इस तरह की गलती से मेरे मन में निश्चय ही बड़ा सन्देह पैदा हो गया होता, पर इसे अपराध-स्वीकृति मानने के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण आपत्ति है। यह मामला इतना सीधा नहीं है। लिखने की गलती निश्चित रूप से एक संकेत है, पर सिर्फ इसके आधार पर जांच करना उचित न होता। इससे यह बात सचमुच सामने आती है कि वह आदमी मनुष्यों को रोगाणुओं से प्रभावित करने की बात सोच रहा है, पर इससे यह बात निश्चित रूप से नहीं प्रकट होती कि यह विचार हानि पहुंचाने की कोई सुनिश्चित योजना है, या एक कल्पना-मात्र है, जिसका व्यवहार में कोई महत्त्व नहीं। यह भी संभव है

१. Bacteriologist

अपनानी होगी कि मनुष्यों में ऐसी प्रवृत्तियों का वास है जिनसे परिणाम तो पैदा
होते है, पर मनुष्य उन्हें जानता नहीं, परन्तु ऐसा कहकर हम अपने-आपको जीवन
मे, और मनोविज्ञान मे प्रचलित सब विचारो के विरोध मे खडा कर लेते हैं।

व्यक्तिवाचक नामो और विदेशी नामो तथा शब्दो को भूलने का कारण भी
इस तरह एक ऐसी विरोधी प्रवृत्ति मे पाया जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से हो या
परोक्ष रूप से, पर प्रस्तुत नाम की विरोधी है। इस तरह के प्रत्यक्ष विरोध के अनेक
उदाहरण मैं पहले आपको दे चुका हू। यहा परोक्ष कारण विशेष रूप से अधिक
दिखाई देता है, और आम तौर से इसपर रोशनी डालने के लिए सावधानी से
जाच करना आवश्यक होता है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, इस युद्धकाल मे,
जिसने हमे अपने बहुत सारे पहले के सुख छोडने को मजबूर कर दिया है, व्यक्ति-
वाचक नामो को याद रखने की हमारी योग्यता को बडे-बडे दूर के सबधो के
कारण बडी हानि पहुची है। कुछ समय पहले ऐसा हुआ कि मुझे मोराविया के
सीधे-सादे नगर बिसेन्ज का नाम याद न आया, और विश्लेषण से पता चला कि
इस मामले मे मैं प्रत्यक्ष विरोध का दोषी नही था, बल्कि इसका कारण यह था
कि यह नाम ओरविएटो के प्लाजो बिसेन्जी के नाम से मिलता हुआ था, जहा मैंने
पहले बहुत समय सुख से बिताया था। इस नाम के याद आने का विरोध करने
वाली प्रवृत्ति के प्रवर्तक कारण के रूप मे, यहा पहली बार, हमारे सामने एक
सिद्धान्त आ रहा है जो बाद मे स्नायु-लक्षणो के पैदा करने मे बहुत महत्वपूर्ण
बनकर सामने आएगा, वह यह है कि स्मृति-शक्ति कष्टकारक भावनाओ से
सम्बन्धित किसी बात को, जिसके याद आने से कष्ट फिर जाग उठेगा, याद नही
करना चाहती। स्मरण द्वारा या अन्य मानसिक प्रक्रमो द्वारा कष्ट से बचने की
ओर होने वाली इस प्रवृत्ति मे, कष्टकर बातो से मन के इस पलायन मे, शायद
हम वह अन्तिम प्रयोजन देख सकें जो न केवल नामो को भूलने के पीछे, बल्कि
और बहुत-सी गलतियो, भूलो और चूकों के पीछे भी क्रियाशील है।

पर नामो को भूलने की व्याख्या मनोशारीरिक दृष्टि से विशेष आसानी से हो
जाती प्रतीत होती है, और इसलिए नाम भूलने की घटना वहा भी प्राय होती है
जहा अप्रिय-भावप्रेरक का होना नही सिद्ध किया जा सकता। जब किसी आदमी मे
नाम भूल जाने की प्रवृत्ति होती है, तब विश्लेषण द्वारा जाच करके इस बात की
पुष्टि की जा सकती है कि उसके मन मे नाम सिर्फ इसलिए नहीं गायब हो जाते
कि वह उन्हें पसद नहीं करता, या वे उसे किसी कष्टकर बात की याद दिला
देते है, बल्कि इसलिए भी गायब हो जाते है क्योंकि वह विशेष नाम अधिक घनिष्ठ
या गहरे प्रकार के साहचर्यो की किसी और श्रृंखला से जुड़ा होता है। वह नाम
... और उस समय ... अन्य साहचर्यो मे प्रवेश
... की प्रक्रियाओ का स्मरण
वहा मानो ... मे बध
करने से रोक दिया जा

करें तो आप कुछ आश्चर्य के साथ यह महसूस करेंगे कि जो साहचर्य नामों को भूल जाने से रोकने के लिए वहां कृत्रिम रूप से प्रविष्ट कराए जाते हैं, उन्हीके कारण वे नाम भूल जाते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण व्यक्तियों के नाम हैं, जिनके मान स्वभावतः व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बहुत भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, एक पहला नाम लें, जैसे थियोडोर। आपमें से कुछ के लिए इसका कोई खास अर्थ नहीं होगा, कुछ के लिए यह पिता, भाई, या मित्र का, या अपना ही नाम होगा। विश्लेषण के अनुभव से पता चलेगा कि आपमें से पहले वर्ग के लोगों को यह भूलने का कोई खतरा नहीं होगा कि यह किसी अजनबी का नाम है, पर शेष लोगों को यह बात लगातार चुभती-सी रहेगी कि एक ऐसा नाम, जो आपको अपने किसी निकट संबंधी के लिए ही सुरक्षित रखा हुआ मालूम होता है, किसी अजनबी का भी हो। अब यह कल्पना करें कि साहचर्यों के कारण उत्पन्न यह निरोध 'कष्ट'-सिद्धान्त के क्रियाशील होने के समय ही होता है, और इसके अतिरिक्त परोक्ष प्रक्रिया से होता है, तब आपको कार्य-कारण सम्बन्ध की दृष्टि से इस तरह नाम अस्थायी रूप से भूलने की प्रक्रिया की जटिलता ठीक-ठीक समझ में आ जाएगी। परन्तु पर्याप्त विश्लेषण, जिसमें तथ्यों का पूरा ध्यान रखा जाए, इन सब जटिलताओं को खोलकर स्पष्ट कर देगा।

प्रभावों और अनुभवों को भूलने से पता चलता है कि स्मृति से उन बातों को दूर करने की प्रवृत्ति क्रियाशील है जो नामों को भूलने की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप और सदा अप्रिय है। ये सारी की सारी बातें निःसंदेह गलतियों की श्रेणी में [illegible] आतीं; गलतियों की श्रेणी में ये वहीं तक आती हैं, जहां तक सामान्य [illegible]भव के पैमाने से नापने पर, ये हमें विशिष्ट और अनुचित प्रतीत होती हैं, जैसे, [illegible]हरण के लिए वहां, जहां हाल के या महत्त्वपूर्ण प्रभाव भूल जाते हैं, या जहां

उसने ओर से पुकारा --हटो ! --इस आदेश पर कानेपूरी ताक
कर उसे घुमा दिया--बाईं ओर ! (अभी तक दाईं ओर को कहीं
कोई सवार नहीं होता।) इससे सवार का सारा दाव एकाएक
गया, पर सवोचक गलियां इतना दाव सहने के लिए नहीं बनी होतीं
एक घट गई। यह बिलकुल निरापद दुर्घटना थी, पर तब भी उ
घट करके घर चले आने के लिए मजबूर कर दिया। यह विलक्षण ब
घटना के कुछ ही समय बाद जब हम बातें कर रहे थे तो मेरे मित्र
से घटना की याद बिलकुल नहीं आई, पर मुझे यह अच्छी तरह य

इस प्रकार ये बातें ध्यान में रखने पर आप यह सन्देह करते ह
के कामों में नौकर-चाकर जो कभी-कभी ऐसे खतरनाक दुश्मनी के
बैठते हैं, उसका कारण 'अकस्मात्' ही सदा नहीं होता। और आप
उठा सकते हैं कि जब कोई आदमी अपने-आपको घायल कर बैठता
में डालता है, तब क्या यह सदा आकस्मिक घटना ही होती है। इ
मिलने पर इन विचारों की विश्लेषण द्वारा जांच कर सकते हैं।

गलतियों के बारे में जो कुछ कहा गया है, उसके अलावा और
बाकी है। अभी बहुत-सी बातें जांच और विचार के लिए शेष हैं। म
से ही सन्तुष्ट हो जाऊंगा, यदि आपके पुराने विश्वास, हमारी अब तक
पड़ताल से, हिल गए हों और यदि आपमें नये विश्वास अपनाने के
तत्परता पैदा हुई है। कुछ समस्याएं मैं अभी आपके लिए उलझन में
देना चाहता हूं। हम गलतियों पर विचार करके अपने सब सिद्धान्त सिद्ध
सकते, और न यही बात है कि हम एकमात्र इसी सामग्री पर अवल
हमारे प्रयोजन के लिए गलतियों का बड़ा महत्त्व इस बात में है कि वे इत
तौर से होनेवाली घटनाएं हैं, अपने में आसानी से देखी जा सकती हैं, और
पर ज़रा भी निर्भर नहीं हैं। अपना व्याख्यान खतम करने से पहले आप
और प्रश्न की चर्चा करना चाहता हूं, जिसका उत्तर नहीं दिया गया है
यही बात है, जैसा हमें इतने उदाहरणों से पता चलता है, कि लोग ग
को इतनी दूर तक समझते हैं, और बहुत बार इस तरह चेष्टाएं करते ह
कि उन्होंने उनका अर्थ समझ लिया है, तो यह कैसे सम्भव है कि वे इतने
रूप में उन्हें आकस्मिक, भावहीन और अर्थहीन समझें और उनकी मनोविश्ले
षणात्मक व्याख्या का इतने ज़ोर-शोर से खण्डन करें ?'

आप ठीक कहते हैं। यह सचमुच विचित्र बात है और इसकी व्याख्या
आवश्यकता है। पर मैं आपके सामने *व्याख्या नहीं करूंगा ; मैं तो आपको*
धीरे उन सबूतों की ओर ले जानेवाला रास्ता दिखाऊंगा, जिनसे व्याख्या.

दूसरा भाग

स्वप्न

एक और भी बात है जिसके कारण ठीक-ठीक जांच के लिए दार
परिस्थितियां नहीं मिल सकतीं । स्वप्नों की जांच-पड़ताल में अवेक्षण का वि
अर्थात् स्वयं स्वप्न भी अनिश्चित है । उदाहरण के लिए, भ्रम में स्पष्ट
निश्चित रूपरेखा होती है । मानसा रोगी साफ शब्दों में कहता है, 'मैं चीन
सम्राट् हूं।' पर स्वप्न ? इसका अधिकतर हिस्सा तो कहकर बताया ही नहीं
सकता । जब कोई आदमी किसीको स्वप्न सुनाता है तब इस बात की
गारंटी है कि उसने सही रूप में सुनाया है, और उसे सुनाते हुए कुछ बदल
दिया है, या अपनी याददाश्त धुंधली होने के कारण उसका कुछ हिस्सा क
कल्पना से जोड़ने के लिए वह मजबूर नहीं हुआ है ? अधिकतर स्वप्न जर
याद नहीं रहते, और उनके छोटे-मोटे हिस्सों को छोड़कर, बाकी सब कुछ
जाता है । और क्या कोई वैज्ञानिक मनोविज्ञान या रोगियों के इलाज का तं
ऐसी सामग्री की बुनियाद पर खड़ा किया जा सकता है ?

किसी आलोचना में कुछ अतिशयोक्ति देखकर हमें संदेह पैदा हो जाता
स्वप्न को वैज्ञानिक गवेषणा का विषय बनाने के विरोध में पेश की गई दः
साफ तौर से अति की सीमा तक पहुंचती हैं । तुच्छ होने के एतराज पर हम प
'गलतियों' के सिलसिले में विचार कर चुके हैं, और यह देख चुके हैं कि छोटे-
संकेतों से बड़ी-बड़ी बातें प्रत्यक्ष हो सकती हैं । जहां तक स्वप्नों की अस्पष्ट
का संबंध है, यह तो उनकी अन्य विशेषताओं की तरह एक विशेषता है—ह
आदेश से वस्तुएं अपनी विशेषताएं नहीं बदल लेंगी । इसके अलावा, ऐसे स्व
भी होते हैं जो साफ और सुनिश्चित होते हैं । फिर, मनश्चिकित्सा-संबंधी जा
पड़ताल के बहुत-से दूसरे विषयों में भी यह अनिश्चितता वाली बात होती
उदाहरण के लिए, बहुत-से रोगियों के मनोग्रस्तता[2] वाले विचार, पर फिर

1. Tissues 2. Obsessive ideas

बहुत-से प्रसिद्ध और अनुभवी मनश्चिकित्सकों ने उनके अध्ययन में समय लगाए
मैं आपके सामने इस तरह का वह 'केस' रखूंगा जो डाक्टरी की दुकान करते
मेरे पास सबसे अंत में आया था। रोगिणी ने अपनी अवस्था इन शब्दों में
की, 'मुझे कुछ ऐसा महसूस होता है जैसे मैंने किसी जीवित प्राणी को, श
किसी बच्चे को, नहीं, नहीं,—शायद कुत्ते को, घायल कर दिया है, या घ
करने की इच्छा की है, जैसे शायद मैंने उसे पुल से नीचे धकेल दिया या
और किया है।' स्वप्न की अनिश्चित याद से जो असुविधा होती है, उसे यह
करके दूर किया जा सकता है कि जो कुछ स्वप्न देखनेवाला सुनाता है, ठीक
स्वप्न माना जाए, और जो कुछ वह भूल गया है या याद करने के बीच में
गया है, उसे छोड़ दिया जाए। अंत में आप इतनी आसानी से यह बात नहीं
सकते कि स्वप्न महत्वहीन चीज़ है। हम अपने निजी अनुभव से जानते हैं
स्वप्न से हम जिस मानसिक अवस्था में जागते हैं, वह सारे दिन बनी रहती है,
डाक्टरों ने ऐसे रोगी देखे हैं, जिनमें मानसिक रोग स्वप्न से शुरू हुआ—
से उत्पन्न भ्रम जम गया। इसके अलावा, ऐतिहासिक व्यक्तियों के बारे में कहा
है कि उनमें महत्वपूर्ण कार्य करने के आवेग उनके स्वप्नों से ही पैदा हुए। इ
हम यह पूछना चाहते हैं : वैज्ञानिक क्षेत्रों में स्वप्नों को हल्की नज़र से देख
असली कारण क्या है ? मेरी राय में, पहले उनका जो बहुत अधिक मूल्य
जाता था, उसकी यह प्रतिक्रिया है। यह बात सब जानते हैं कि गुज़रे हुए
की घटनाओं को फिर से जोड़कर तैयार करना आसान काम नहीं है, पर ह
निश्चिन्त होकर मान सकते हैं (मज़ाक के लिए माफ करें,) कि तीन हज़ार वर्ष
उससे भी अधिक समय पहले हमारे पूर्वज उसी तरह स्वप्न देखते थे, जैसे हम
देखते हैं। जहां तक हम जानते हैं, सब प्राचीन जातियां स्वप्नों को बहुत महत्व
थीं, और उनका व्यावहारिक मूल्य समझती थीं। उन्हें उनसे भविष्य के
सूचनाएं मिलती थीं, और शकुन दिखाई देते थे। यूनानियों और पूर्वी देशों के
निवासियों में उस ज़माने में स्वप्न का अर्थ पढ़नेवाले के बिना कोई युद्ध
उसी तरह असम्भव था, जैसे जासूसी के लिए शत्रुपक्ष में उतरनेवाले सैनि
बिना आज यह असम्भव है। जब सिकन्दर महान ने अपनी दिग्विजय के
प्रस्थान किया था, तब सबसे प्रसिद्ध स्वप्नशास्त्री उसके साथ थे। टायर न
जो उस समय द्वीप पर ही था, उसका इतना प्रबल मुकाबला किया कि व
उठा लेने का विचार करने लगा। पर उसे एक रात एक सेटायर (एक
देवता, जिसके पूंछ और लंबे कान होते हैं) विजय-हर्ष से नाचता दिखा
और जब उसने स्वप्नशास्त्रियों को अपना स्वप्न सुनाया, तब उन्होंने बत
यह नगर पर आपकी विजय का सूचक है। उसने हमले का हुक्म दे दिय
वह तूफान की तरह टायर पर टूट पड़ा। ऐट्रस्कनों और रोमनों में भवि

बारे मे स्थिति कुछ और थी, क्योकि वे कम से कम जागने के जीवन मे दिखाई देनेवाली क्रियाएं तो थी , पर यदि मैं सो जाता हू और मैंने मानसिक व्यापार को पूरी तरह बन्द कर दिया है (सिवाय उन अशो के जिन्हे मैं नही बचा सका) तो कुछ आवश्यक बात नहीं कि उनका कोई अर्थ हो । सच तो यह है कि ऐसे किसी अर्थ का मैं उपयोग भी नही कर सकता, क्योंकि मेरा बाकी मन सोया पडा है । तब यह वस्तुत *सिर्फ बीच-बीच मे प्रबल हो जानेवाली प्रति-क्रियाओं का,* ऐसी मानसिक घटनाओं का ही मामला रह जाता है, जो शारीरिक उद्दीपन से पैदा होती हैं । इसलिए स्वप्न जागते हुए जीवन के मानसिक व्यापार के अवशेष हैं जो नींद को भग करते है, और हमे इस तरह के विषय को, जो मनोविश्लेषण के काम के लिए बिलकुल बेकार है, तुरन्त छोड देने का पक्का इरादा कर लेना चाहिए ।

परतु अनावश्यक या बेकार होते हुए भी स्वप्न होते तो हैं ही, और हम उनके अस्तित्व के कारण ढूढने की कोशिश कर सकते हैं । मानसिक जीवन नीद मे क्यो नही चला जाता ? शायद इस कारण कि कोई ऐसी चीज और मौजूद है जो मन को शाति से नहीं रहने देती । उद्दीपक उसपर क्रिया कर रहे है और इससे वह अवश्य प्रतिक्रिया करेगा । इसलिए स्वप्न नींद मे मन पर क्रिया करने-वाले उद्दीपको पर मन की प्रतिक्रिया का प्रकार है । यहा हमें स्वप्नो को समझने के मार्ग की एक सभावना दिखाई देती है । अब हम विभिन्न स्वप्नो से यह ढूढने की कोशिश कर सकते हैं कि नींद भग करने का यत्न करनेवाले उद्दीपक कौन-से हैं, जिनपर होनेवाली प्रतिक्रिया स्वप्नो का रूप लेती है । ऐसा करने पर सब स्वप्नो की पहली सामान्य विशेषता हमारे हाथ मे आ जाएगी ।

क्या उनकी कोई और सामान्य विशेषता है ? हा, एक और असदिग्ध विशेषता है, पर फिर भी उसे पकड़ना और उसका वर्णन करना कठिन है। नींद मे मानसिक प्रक्रमों का स्वरूप जागते समय के प्रक्रमो से बिलकुल भिन्न होता है। *स्वप्नो मे हम बहुत-से अनुभवो मे से गुजरते हैं, जिनपर हम पूरा विश्वास करते* हैं जबकि वास्तव मे हम शायद एक ही नींद का बाधक उद्दीपक अनुभव करते हैं । हमारे अनुभव अधिकतर नेत्रगोचर या आख से दीखनेवाले प्रतिबिम्बों के रूप मे होते हैं । उनके साथ भावना और विचार भी मिले हो सकते हैं, और अन्य ज्ञानेन्द्रिया भी अपना कार्य करती हो सकती हैं, किन्तु स्वप्नो का अधिकांश नेत्रगोचर-प्रतिबिंबों का ही बना होता है । कोई स्वप्न सुनाने मे कठिनाई का एक कारण यही होता है कि हमें इन प्रतिबिंबो को शब्दों के रूप मे बदलना होता है । स्वप्न देखने-वाला हमसे बहुत बार कहता है, 'मैं उसकी तसवीर बना सकता हू, पर उसे शब्दो मे कहना नहीं जानता !' यह यथार्थत. मानसिक क्षमता मे कमी नहीं है, जैसी-कि किसी दुर्बल मन वाले व्यक्ति और प्रतिभाशाली आदमी के अतर मे दिखाई देती

हैं मगर कुछ गुणात्मक[1] अन्तर है, परंतु ठीक-ठीक यह कहना
। अन्तर है। जी० टी० फेक्नर ने एक बार यह सुझाव रखा था
पर (मस्तिष्क के भीतर) स्वप्न का नाटक खेला जाता है वह
के विचारों के जीवन के रंगमंच से भिन्न होता है। यह ऐसा कथन
सचमुच हमारी समझ में नहीं आता, न हमें यह पता चलता है कि यह
जतलाना चाहता है। पर इससे विचित्रता का प्रभाव सचमुच सूचित हो
है जो अधिकतर स्वप्नों से हमारे ऊपर पड़ता है। दूसरे, स्वप्न की क्रिय
संगीत से अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा वादन की तुलना यहां व्यर्थ हो जाती है
पियानो पर अकस्मात् उंगली लगाने पर भी निश्चित रूप से वही स्वर
चाहे लये वे नहीं होगी। स्वप्नों की इस दूसरी सामान्य विशेषता को हम सा
से अपने ध्यान में रखेंगे, चाहे हम इसे समझ न सकें।

क्या कोई और भी गुण सभी स्वप्नों में सामान्य रूप से होते हैं? मेरी
में, कोई नहीं होता। जिधर देखता हूं उधर ही मुझे उनमें अंतर दिखाई
और अन्तर भी हर बात में प्रतीत होनेवाली अवधि में, सुनिश्चितता में, भ
कार्य में, मन में, उनके स्थायित्व में इत्यादि। पर किसी उद्दीपक को दूर
लिए किए जाने वाले बाध्यताकारक प्रयत्न में, जो मामूली भी है और बीच-
प्रबल हो उठता है, हमें स्वभावतः जिस चीज की आशा करनी चाहिए
वास्तव में वह चीज नहीं है। लम्बाई की दृष्टि से कुछ स्वप्न बहुत ही छोटे
हैं, जिसमें सिर्फ एक ही प्रतिबिंब या बहुत थोड़े या एक ही विचार, और कभी
तो एक ही शब्द, होता है। कुछ स्वप्नों में वस्तु विशेष रूप से अधिक होती
एक पूरी की पूरी कथा उनमें प्रदर्शित होती है, और बहुत अधिक देर तक
रही मालूम होती है। कुछ स्वप्न इतने स्पष्ट होते हैं जितने कि वास्तविक अनु
यहां तक कि जागने के कुछ समय बाद तक हमें यह स्पष्ट नहीं होता कि वे
ही थे, और कुछ स्वप्न बहुत ही हल्के, धुंधले और अस्पष्ट होते हैं। एक ही
में कुछ हिस्से बहुत अधिक सजीव होते हैं, और उनके बीच-बीच में ऐसे अस
अंश आने-जाते हैं कि वह सारा ही प्रायः धोखा मालूम होता है। फिर, कुछ
सर्वथा सुसंगत या कम से कम सुसम्बद्ध या समझदारी से भरे हुए या बहुत
अधिक सुन्दर होते हैं। कुछ स्वप्न मिले-जुले, असम्बद्ध, कमजोर दिखाई देने
बेहूदे या प्रायः बिलकुल पागलपन के होते हैं। कुछ स्वप्नों का हमपर कोई प्र
नहीं मालूम होता, और कुछ स्वप्नों में प्रत्येक भाव अनुभव होता है, इतना
होता है कि आंसू आ जाते हैं, इतना भय लगता है कि हम जाग जाते
आश्चर्य होता है, आनन्द होता है इत्यादि। बहुत-से स्वप्न जागने के कुछ

1. Qualitative